आधुनिक काव्य – प्रवृत्तियों के रूपायन में निराला का योग

NIRALA'S ROLE IN THE ADVENT OF MODERN TRENDS IN HINDI POETRY

Thesis submitted

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

VISWAM. V. V.

SUPERVISOR

PROF. (DR.) A. RAMACHANDRA DEV

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN - 22.

1985

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by Viswam,V.V. under my supervision for the degree of Doctor of Philosophy in Hindi and no part of this has hither-to been submitted for a degree in any University.

PROF. (Dr.) A.RAMA CHANDRA DEV,
Supervising Teacher

Dept. of Hindi
University of Cochin
Cochin - 22.

समर्पण

. . . . .

- प्राक्कथन -

निराला पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अपने जीवन-काल में उन्हें विवेकशून्य विरोध ही आलोचकों की ओर से मिलता रहा, लेकिन उनकी मरणोपरान्त इस विरोध ने स्नेह - प्रवाह का रूप धारण कर लिया। ऐसे सत्यान्वेषी आलोचक विरले ही हैं जो निराला - साहित्य पर शुरू से ही पूर्वाग्रह-मुक्त होकर निरपेक्ष भाव से विचार करते आये हैं। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री, डॉ० रामविलास शर्मा, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, गंगाप्रसाद पाण्डेय डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन और डॉ० नामवरसिंह इस दिशा में सराहनीय कार्य कर गये हैं। निराला पर पहली कविता जानकी वल्लभ शास्त्री ने लिखी थी। बाद में उनके संपादकत्व में 'महाकवि-निराला' आलोचना-पुस्तक भी निकली। 'निराला' और 'निराला की साहित्य-साधना' (तीन खंड) लिखकर डॉ०रामविलास-शर्मा ने निराला साहित्य का गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया। नंददुलारे-वाजपेयी ने 'कवि निराला' के माध्यम से युगकवि के चरणों पर अपनी श्रद्धांजली अर्पित की। गंगाप्रसाद पाण्डेय की प्रसिद्ध कृति 'महाप्राण निराला' भी इस संदर्भ में विशेष महत्व रखती है।

निराला के कृतित्व के गूढ़-रहस्यात्मक पहलुओं को-अन्तर्धाराओं को-पकड़ने तथा उन्हें प्रकाशित करने में उपर्युक्त आलोचक सफल हुए हैं। लेकिन कवि के व्यक्तित्व पर विचार करते समय अधिकांश आलोचक जैसे अंधभक्ति के शिकार बने हैं। अतिरंजित कहानियों से कवि के चरित्र को अलौकिक परिवेश प्रदान करने का प्रयत्न प्रायः सभी में पाया जाता है। हाँ, डॉ०हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामविलास शर्मा और डॉ०नामवरसिंह इसके अपवाद हैं।

'निराला की साहित्य-साधना' (तीन खंड) का आलोचना के क्षेत्र में अपना महत्व है। पर इस में कवि के कृतित्व तथा व्यक्तित्व संबंधी तथ्यों का 'सर्च' (खोज) ही हुआ है, 'रिसर्च' (अनुसंधान) नहीं। खोजे हुए तथ्यों की छान-बीन करके उनका उचित व्याख्यान डॉ० रामविलास शर्मा ने शोध-कर्ताओं के लिए छोड़ा है।

ऐसे आलोचकों की कमी भी नहीं है जो निराला की मुक्त-प्रतिभा को राजनैतिक दलों से संबद्ध करके देखना चाहते हैं। कवि की कुछ प्रगतिशील कृतियों को देखकर उन्हें मार्क्सवादी कहने तथा उनके काव्य के अन्य पक्षों को अनदेखे छोड़ने का आग्रह भी इनकी ओर से हुआ है। इन में से किसी ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया कि हिन्दी के आधुनिक काव्य के उन्नयन में निराला ही सबसे प्रबल प्रेरक शक्ति हैं। पूर्वाग्रहों से मुक्त रहकर यथासंभव वस्तुन्मुखी दृष्टि से निराला-काव्य की मूलवर्ती अनुशासन प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में निरूपित करना ही मेरा लक्ष्य रहा है।

निराला का व्यक्तित्व उनके काव्य के समान ही रोचक तथा प्रासंगिक है। एक के अध्ययन के अभाव में दूसरे का अध्ययन अधूरा ही नहीं अवैज्ञानिक भी रहेगा। प्रस्तुत शोध प्रबंध इस दिशा में एक नया प्रयास है। कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन घटनाओं के बाह्य पक्ष पर प्रतिष्ठित करके नहीं किया जा सकता।

उसकी अंतः शक्तियों का अन्वेषण ही व्यक्तित्व का अन्वेषण है। कवि-व्यक्तित्व का विस्फोट ही उसका काव्य है। पर निराला के

संपूर्ण साहित्य के अध्ययन - मनन के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि निराला के व्यक्तित्व पर जिस अतिरंजित मिथ्य परिवेश का आवरण चढ़ा हुआ था वह केवल मिथ्या है । वे असाधारण प्रतिभाशाली साधारण मानव हैं । ऊँचे तख्त से नीचे उतरकर वे अध्येता के दिल में आ बसे हैं । ऐसी स्थिति में अध्येता की कवि के साथ विशेष आत्मीयता का अनुभव होना स्वाभाविक भी है । जहाँ व्यक्तित्व की दृष्टि से वे महान मानव न रहकर साधारण मानव बनते नज़र आते हैं वहाँ कृतित्व की बात में वे सामान्य से उठकर प्रौढ़ , उदात्त और विराट होते दिखाई दे रहे हैं । ज्यों-ज्यों निराला - साहित्य को पढ़ता गया त्यों - त्यों कवि के कृतित्व की अनेकों पर्तें सामने खुलती गयीं , भावों की नयी दुनियाँ उद्घाटित होती गयी । वस्तुतः निराला-साहित्य अगाध समुद्र है , ऊपर से सरल तथा सामान्य दिखाई पड़नेवाली कृतियों के निचले तलों में भी भँवरें हैं , कई अंतर्धाराएं , मोती हैं , सीपी हैं , अमृत है और विष भी ।

निराला के कृतित्व की समस्त विशेषताओं को सामने लाना आसान काम नहीं । गद्य तथा पद्य पर उनका समान अधिकार है । साहित्य के साथ-साथ विज्ञान, राजनीति, दर्शन आदि समाज को सभ्य, सुसंस्कृत तथा आधुनिक रखने में उपयोगी सिद्ध होनेवाले सभी शास्त्रों को उन्होंने उदात्त भावों तथा उच्च विचारों से संपन्न बनाया है ।

हिन्दी काव्य-क्षेत्र में आधुनिकता की प्रतिष्ठा के लिए निराला का सर्वाधिक योगदान रहा है । इसको प्रमाणित करने के लिए हमने आधुनिक हिन्दी काव्य-प्रवृत्तियों के प्रकाश में निराला की प्रतिभा को आँका है।

सामान्यतः : निराला को छायावादी कहकर उनकी प्रतिभा को उस वाद के संकुचित दायरे में बंद रखने का प्रयास तो किया जाता है, लेकिन हमारी समझ में निराला प्रतिभा की प्रथम किरणें ही छायावाद-काल में प्रकट हुईं, उन किरणों के उष्म - ताप का अनुभव उनकी परवर्ती कृतियों में हुआ ।

छायावाद के अभ्युदय-काल में ही निराला हिन्दी काव्य-क्षेत्र में उतरे थे । इसलिए छायावाद से लेकर आज तक काव्य में हुए नए - नए उन्मेषों का सिलसिला से हमने विवेचन किया है ।

प्रथम पाँच अध्यायों में 'छायावाद' 'रहस्यवाद', 'प्रगतिवाद' 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' का प्रवृत्तिगत अध्ययन करते हुए प्रत्येक क्षेत्र में निराला के योगदान का क्रमगत विवेचन किया गया है । छठे अध्याय में निराला को नयी कविता का अग्रदूत घोषित किया गया है । सातवाँ तथा आठवाँ अध्याय 'आधुनिकता' के स्वरूप-विवेचन और आधुनिकता के संदर्भ में निराला-काव्य के अनुशीलन पर केन्द्रित हैं । कवि निराला के संघर्षमय जीवन और उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का अनावरण नवें अध्याय का विषय है । निराला का व्यक्तित्व अनुपम बहुआयामी है जिसके निर्माण में अतीत तथा आधुनिक युग के अनेक महामानवों और मनीषियों का प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रभाव लक्षित है । अंतिम अध्याय में उन प्रतिभाओं का आकलन करते हुए उनके, कवि निराला के व्यक्तित्व पर पड़े प्रभाव का विवेचन है । ऐसे महामानवों में प्रमुख हैं महात्मा गांधी , कार्ल मार्क्स, फ्रायड , तुलसी , रवीन्द्र, शैली आदि । इस अध्याय की स्थापना यह है कि

देशी-विदेशी दर्शनों के बीच सामंजस्य स्थापित करके उसे आत्मसात् करने में निराला ने कोई संकोच नहीं किया ।

प्रस्तुत शोध का प्रणयन आदरणीय डॉ० ए० रामचन्द्र देव, प्रोफेसर, कोचिन विश्वविद्यालय के निर्देशन में हुआ । आपके अमूल्य निर्देश तथा सुस्पष्ट विचार मेरे पथ को प्रशस्त करने में अत्यधिक सहायक रहे हैं । उनके पद-चिह्न ही मुझे लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं । केवल स्नेह एवं आदर के फूल उन चरणों पर चढ़ाने से मेरा ऋण चुकेगा नहीं ।

मेरे पूज्य पिताजी श्री० पी०जी०वासुदेव, महासचिव, हिन्दी-विद्यापीठ, तिरुवनंतपुरम से भी मुझे समय-समय पर आवश्यक उपदेश तथा प्रोत्साहन मिले हैं । अपने पिता से कृतज्ञता का ज्ञापन केवल औपचारिकता रहेगा । डॉ० एन०रामन नायर, हिन्दी विभागाध्यक्ष, कोचिन विश्वविद्यालय का भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने बड़ी सद्भावना से इस शोध कार्य को सुगम बनाने की कृपा की है ।

यूनिवर्सिटी-लाइब्रेरी, तिरुवनंतपुरम ; यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कोचिन ; हिन्दी पुस्तकालय, कोचिन विश्वविद्यालय ; सेंट्रल लाइब्रेरी, तिरुवनन्तपुरम ; ब्रिटिश कौंसिल लाइब्रेरी, तिरुवनन्तपुरम ; जनरल - लाइब्रेरी, कालेज फॉर विमन, तिरुवनन्तपुरम ; हिन्दी पुस्तकालय, हिन्दी मीडियम विमन्स कालेज, तिरुवनन्तपुरम आदि संस्थाओं ने मेरे इस प्रयत्न में पूर्ण सहयोग दिया है ।

मेरे अन्य मित्रों का, जिन्होंने स्नेह तथा उत्साह देकर मेरी सहायता की है, मैं चिरऋणी हूँ ।

मैं सबसे बड़ा उन मनीषी लेखकों का आभारी हूँ जिनकी कृतियों से इस शोध-ग्रंथ को पूरा करने सहायता मिली है । इनकी संख्या इतनी अधिक है कि सबका उल्लेख असंभव है । फिर भी कतिपय कृतियों का नामोल्लेख न करना न्यायसंगत न होगा । इस दिशा में डा० रामविलास शर्मा का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ । निराला की जीवन-रेखाएँ प्रस्तुत करते समय रामविलास शर्मा की 'निराला की साहित्य साधना' (प्रथम खंड) को ही आधार रूप में मैंने ग्रहण किया है । अन्य लेखकों से भी पर्याप्त सहायता मैंने ली है ।

सब के प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

विक्रम ० पी०सी०

विषयानुक्रमणिका

	पहला अध्याय	पृष्ठ
1.	**निराला और छायावाद**	1 - 53
1.1.	निराला : विभिन्न वादों के संदर्भ में	1
1.1.1.	पथ की खोज	1
1.1.2.	कर्मयोगी निराला	2
1.1.3.	नवीनता के प्रेमी	3
1.1.4.	विविध भावों का संगम	3
1.1.5.	वादों से दूर	4
1.1.6.	आधुनिक अभिमन्यु	7
1.2.1.	छायावाद का आरंभ	9
1.2.2.	नामकरण	10
1.2.3.	छायावाद : देशी या विदेशी	12
1.2.4.	छायावाद का इतिहास	15
1.2.5.	छायावाद और स्वच्छंदतावाद	17
1.2.6.	'रोमांस' और 'रोमांटिसिज्म'	17
1.2.7.	छायावाद - स्वच्छंदतावाद : अंतर	18
1.3.	छायावाद : मुख्य प्रवृत्तियाँ	21
1.3.1.	स्थूल का विरोध	22
1.3.2.	उन्मुक्त शृंगार वर्णन	23
1.3.3.	राष्ट्रीय - भावना	24
1.3.4.	प्रकृतिचित्रण	26
1.3.5.	मुक्ति की कामना	28

		पृष्ठ
1.3.6	वेदना और करुणा	29
1.3.7	मानवता की भूमिका	30
1.3.8	'मैं' की अभिव्यक्ति	31
1.3.9	शिल्प	32
1.3.9.1	लाक्षणिकता	32
1.3.9.2	प्रतीक योजना	33
1.3.9.3	बिंब-विधान	33
1.3.9.4	छन्द विधान	34
1.3.9.5	गीतितत्व	35
1.3.9.6	शब्द - चयन	36
1.4	परिभाषाओं की परख	38
1.5	छायावाद पर आक्षेप	43
1.5.1	कल्पना की अधिकता	43
1.5.2	पलायनवादिता	45
1.5.3	अतिवैयक्तिकता	48
1.5.4	अस्पष्टता	49
1.6	छायावाद के प्रमुख स्तंभ	50
1.7	निष्कर्ष	52

दूसरा अध्याय

2	निराला और छायावाद	54 –77
2.1	ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	54
2.2	नामकरण	55
2.3	रहस्यवाद - छायावाद : अंतर	56

		पृष्ठ
2.4	रहस्यवाद - छायावाद : साम्य	58
2.5	रहस्यवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ	58
2.5.1	प्रेमतत्व की व्यंजना	59
2.5.2	आध्यात्मिक तत्वों की प्रधानता	59
2.5.3	परोक्ष - सत्ता के प्रति आकर्षण	60
2.5.4	आत्म समर्पण की भावना	61
2.5.5	तन्मयता	62
2.5.6	रूपकों तथा प्रतीकों की योजना	63
2.5.7	मुक्तक गीति शैली	63
2.6	रहस्यवाद की परिभाषा	64
2.7	रहस्यवाद का दार्शनिक आधार	65
2.7.1	उपनिषद	66
2.7.2	बौद्ध दर्शन :	67
2.7.3	योगदर्शन :	68
2.7.4	न्यायदर्शन	69
2.8	रहस्यवाद के प्रमुख कवि :	69
2.9	रहस्यवाद - नवरहस्यवाद :	71
2.10	रहस्यवाद पर आक्षेप :	73
2.10.1	पलायन वादिता :	74
2.10.2	अलौकिकता की आड़ में लौकिकता का आग्रह :	74
2.11	निष्कर्ष :	75

तीसरा अध्याय

3	निराला और प्रगतिवाद	78 - 107
3.1	नामकरण :	78
3.2	प्रगतिवादी दर्शन :	78

		पृष्ठ
3.3.	प्रगतिवाद का इतिहास	79
3.4.	हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद :	81
3.5.	प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ	84
3.5.1.	यथार्थ का आग्रह	84
3.5.2.	रूढ़ियों का विरोध :	85
3.5.3.	शोषकों के प्रति आक्रोश :	85
3.5.4.	शोषितों के प्रति सहानुभूति :	87
3.5.5.	क्रांति की भावना :	88
3.5.6.	रूस का गुणगान	91
3.5.7.	शिल्प संबंधी नवीनता :	92
3.5.7.1.	प्रतीक विधान	92
3.5.7.2.	बिंब योजना	93
3.5.7.3.	छन्द प्रयोग	94
3.5.7.4.	शब्द चयन	95
3.6.	प्रगतिवाद की परिभाषा	96
3.7.	[illegible]	102
3.7.1.	राजनीतिक विचार धारा का उभार	102
3.7.2.	अहं की निन्दा	103
3.7.3.	अभारतीयता	103
3.7.4.	बौद्धिकता की अति	104
3.8.	निष्कर्ष	105

पृष्ठ

चौथा अध्याय

4.	निराला : प्रयोगवाद के प्रवर्तक :	108-153
4.1.	प्रयोगवाद : नामकरण	109
4.2.	ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	110
4.3.	प्रयोगवाद : प्रपद्यवाद : साम्य :	114
4.4.	प्रयोगवाद - प्रपद्यवाद : अन्तर :	115
4.5.	प्रयोगवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ	117
4.5.1.	अतियथार्थ का आग्रह	117
4.5.2.	सामाजिकता का अभाव	119
4.5.3.	बौद्धिकता की प्रतिष्ठा	120
4.5.4.	लघुता के प्रति आकर्षण	122
4.5.5.	प्रेम का स्वरूप	123
4.5.6.	वैचित्र्य प्रदर्शन	124
4.5.7.	शिल्प संबंधी नवीनताएँ	126
4.5.7.1.	भाषा	127
4.5.7.2.	प्रतीक विधान	129
4.5.7.3.	बिंब योजना	131
4.5.7.4.	मुक्त छंद	133
4.5.7.5.	अलंकार	135
4.6.	प्रयोगवाद की परिभाषा	136
4.7.	प्रयोगवाद के कवि	140
4.8.	निराला : प्रयोगवाद के प्रवर्तक	143
4.9.	निष्कर्ष	150

		पृष्ठ
	पाँचवाँ अध्याय :	
५·	नयी कविता	154 - 21
५·१·	नामकरण	154
५·२·	प्रयोगवाद - नयी कविता : अंतर	155
५·३·	नयी कविता का स्वरूप	157
५·४·	आक्षेप :	162
५·४·१·	विदेशी प्रभाव	162
५·४·२·	दुरूहता तथा दुर्बोधता	163
५·४·३·	अहंवाद की अतिशयता	163
५·४·४·	गंदापन	164
५·५·	अन्य नयी काव्यविधाएँ :	168
५·५·१·	अ - गीत	168
५·५·२·	अस्वीकृत कविता	173
५·५·३·	अ - कविता	175
५·५·४·	[illegible] कविता	178
५·५·५·	बीट पीढ़ी	182
५·५·६·	भूखी पीढ़ी	184
५·६·	नयी कविता - मुख्य प्रवृत्तियाँ	186
५·६·१·	मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा	186
५·६·१·१·	लघुमानव - व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा	188
५·६·२·	आधुनिक युगबोध	190
५·६·२·१·	क्षण का महत्व	192
५·६·२·२·	आधुनिक भाव बोध और अस्तित्ववाद	193
५·६·३·	नयी नैतिकता की स्थापना	194

		पृष्ठ
5.6.4.	नवीन सौंदर्यबोध	197
5.6.5.	वैयक्तिकता	199
5.6.5.1.	अलग वैयक्तिकता	201
5.6.6.	शिल्प संबंधी नवीनताएँ :	202
5.6.6.1.	भाषा का नया प्रयोग	202
5.6.6.2.	बिम्ब	203
5.6.6.3.	प्रतीक	205
5.6.6.4.	फैंटसी	208
5.6.6.5.	मुक्त छंद	210
5.7.	नयी कविता के प्रतिनिधि कवि :	214
5.7.1.	सप्तकों के प्रतिनिधि कवि	217
5.7.1.1.	अज्ञेय	217
5.7.1.1.1.	कवि के अपने सिद्धांत	221
5.7.1.2.	गजानन माधव - मुक्तिबोध :	222
5.7.1.3.	गिरिजाकुमार माथुर	227
5.7.1.4.	धर्मवीर भारती	232
5.7.1.5.	शमशेर बहादुर सिंह	235
5.7.1.6.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	238
5.7.1.7.	स्वदेश भारती	240
5.7.2.	सप्तकेतर कवि	244
5.7.2.1.	जगदीश गुप्त	244
5.7.2.2.	नागार्जुन	248
5.7.2.3.	लक्ष्मीकांत वर्मा	252
5.7.2.4.	सुदामा पांडेय धूमिल	254
5.7.2.5.	विपिनकुमार अग्रवाल	257

		पृष्ठ
5.7.2.6	मलयज	259
5.7.2.7	अजित कुमार	261
5.8	निष्कर्ष	264
	छठा अध्याय :	
6	6.1 निराला : नयी कविता के अग्रदूत	267 - 275
	6.2 निराला काव्य : नयी कविता के संदर्भ में	276 - 33
6.1.1	नयी प्रवृत्तियों का आविर्भाव	267
6.1.2	नयी कविता : आन्दोलन नहीं	267
6.1.3	नयी कविता: अनुभूति नहीं	268
6.1.4	नयी कविता पर अंग्रेज़ी प्रभाव	269
6.1.5	नयी कविता हिन्दी में	270
6.1.6	नयी कविता मूल प्रति	272
6.1.7	निराला वसन्त के अग्रदूत	274
6.2	निराला काव्य : नयी कविता के संदर्भ में	276
6.2.1	निराला - काव्य में मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा	278
6.2.2	आधुनिक भावबोध	284
6.2.2.1	क्षणानुभूति	286
6.2.2.2	भोगा हुआ सत्य	287
6.2.3	नैतिकता	288
6.2.4	नवीन सौंदर्यबोध	293
6.2.5	वैयक्तिकता	295
6.2.6	शिल्प :	298
6.2.6.1	भाषा	298

		पृष्ठ
6.2.6.1.1	प्रौढ़ शैली	300
6.2.6.1.2	मधुर शैली	301
6.2.6.1.3	सरल सुबोध व्यावहारिक शैली :	305
6.2.6.1.4	वीररस की शैली :	307
6.2.6.1.5.	[illegible]	309
6.2.6.2	बिम्बयोजना	315
6.2.6.3	प्रतीक विधान	319
6.2.6.4	फैंटेसी	323
6.2.6.5	मुक्तछन्द :	325
6.2.7	निष्कर्ष	331
	सातवाँ अध्याय	
7.	आधुनिकता	334 - 40
7.1.	मॉडर्निटी और मॉडर्निज़्म	336
7.2.	आधुनिकता : पाश्चात्य परिभाषा	337
7.3.	कुण्ठा और हिंसा	338
7.4.	आधुनिकता : भारतीय परिभाषा	340
7.5.	खड़ीबोली काव्य में आधुनिकता का विकास	346
7.5.1.	भारतेन्दु युग	347
7.5.2.	छायावाद युग	348
7.5.3.	प्रगतिवाद काल	350
7.5.4.	प्रयोगवाद तथा नयी कविता का काल :	352
7.6	आधुनिकता की मुख्य प्रवृत्तियाँ :	358
7.6.1.	मुक्ति का बोध :	359
7.6.2.	रूढ़ि - भंजन :	366
7.6.3.	नयी नैतिकता :	369

		पृष्ठ
7·6·4·	वैज्ञानिक विकास :	377
7·6·5·	वस्तुनिष्ठ यथार्थ :	385
7·6·6·	नया मानवतावाद :	388
7·6·7·	वर्तमान पर भरोसा :	394
7·6·8	निष्कर्ष :	399
	आठवाँ अध्याय :	
8·	**निराला काव्य : आधुनिकता के संदर्भ में**	403 - 470
8·1·	मुक्ति का बोध :	403
8·1·1·	देश की मुक्ति :	403
8·1·1·1·	शिवाजी के प्रति श्रद्धा :	411
8·1·1·2·	देश की रक्षा :	414
8·1·1·3·	स्वाधीनता के बाद	414
8·1·2·	विश्व की मुक्ति	415
8·1·3·	मानव की मुक्ति	417
8·1·3·1·	विश्व की सबसे छोटी इकाई : व्यक्ति	419
8·2·	रूढ़ि भंजन :	419
8·3·	नयी नैतिकता	425
8·4·	नया मानवतावाद	434
8·5·	वर्तमान पर भरोसा	441
8·5·1·	अन्दर अन्दर का टूटना	443
8·5·2·	आशा का मिलना तथा जाना	444
8·5·3·	मृत्युपर्यन्त कर्मनिरत भूमिका	446

		पृष्ठ
8.5.4.	समकालीन व्यवस्था पर रुष्ट और असंतुष्ट	447
8.6.	वैज्ञानिक चेतना :	449
8.7.	नवीन यथार्थवाद :	454
8.8.	शिल्प के क्षेत्र में :	463
8.9.	निष्कर्ष :	467
	नवाँ अध्याय :	
9.	जीवन रेखाएँ	471-527
9.1.	विवाद-पुरुष निराला :	471
9.2.	निराला का जन्म :	471
9.3.	निराला के पिता :	474
9.4.	बचपन का नाम :	475
9.5.	माँ :	476
9.6.	नटखट निराला :	476
9.7.	जनेऊ संस्कार	477
9.8.	शिक्षारंभ :	478
9.9.	कूटनीति :	478
9.10.	ब्याह	479
9.11.	साहित्य से संपर्क :	480
9.11.1.	तुलसी का प्रभाव :	481
9.12.	स्वास्थ्य की चिंता :	481
9.13.	पिता का निधन :	482

पृष्ठ

9.14.	नौकरी :	483
9.15.	पत्नी का निधन :	483
9.16.	अध्ययन पर आक्षेप :	484
9.17.	पहली कविता :	485
9.18.	पहला लेख :	485
9.19.	राजनीति से संबंध	486
9.20.	समन्वय के संपादक :	486
9.21.	बंगला रंगमंच और मुक्त छंद :	487
9.22.	पंचवटी प्रसंग और जुही की कली :	488
9.23.	अनामिका (प्रथम) का प्रकाशन :	491
9.24.	मतवाला - मण्डल :	492
9.25.	विविधता के उपासक :	493
9.26.	पंत से छेड़ - छाड़ :	494
9.27.	एक दुर्घटना :	497
9.28.	सरोज का ब्याह :	498
9.29.	किसानों का संगठन :	498
9.30.	अभिनन्दन	499
9.31.	विधि के प्रहार :	499
9.32.	पंत की लोकप्रियता :	500
9.33.	कवि का कमरा :	501 .
9.34.	सरोज की मृत्यु :	502
9.35.	पुण्य और शान्ति :	503
9.36.	पुत्र की शादी :	505

		पृष्ठ
9.37.	गर्म पकौड़ी :	505
9.38.	मृत्यु - प्रेम :	506
9.39.	मोह और मोहभंग :	507
9.40.	कुकुरमुत्ता :	508
9.41.	अज्ञातवास :	510
9.42.	अप्सरा :	511
9.43.	योग और भोग :	513
9.44.	बीमार :	513
9.45.	मृत्यु :	514
9.46.	वैयक्तिक विशेषताएँ :	516

दसवाँ अध्याय

उपसंहार

10. उपसंहार	518 - 533
परिशिष्ट-1 : अखबार ग्रंथ सूची -	534 - 538
परिशिष्ट-2 संदर्भ ग्रंथ सूची -	539 - 558

. . . .

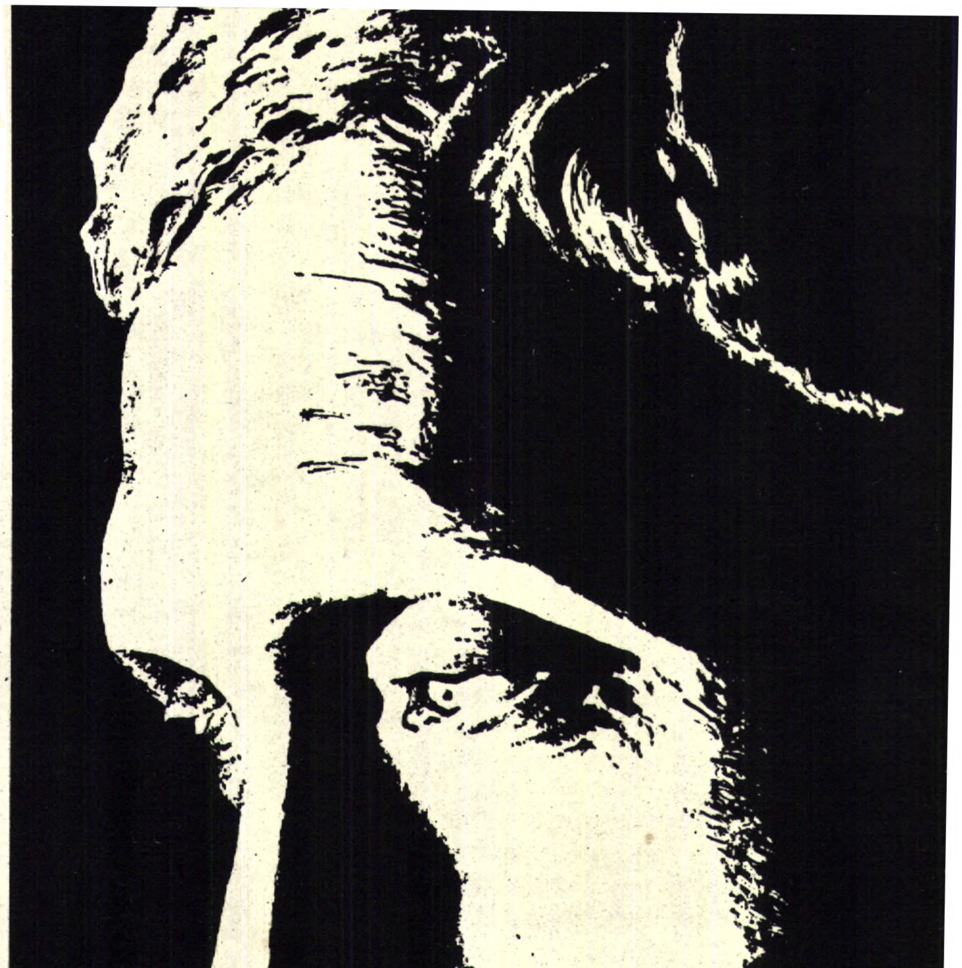

निराला

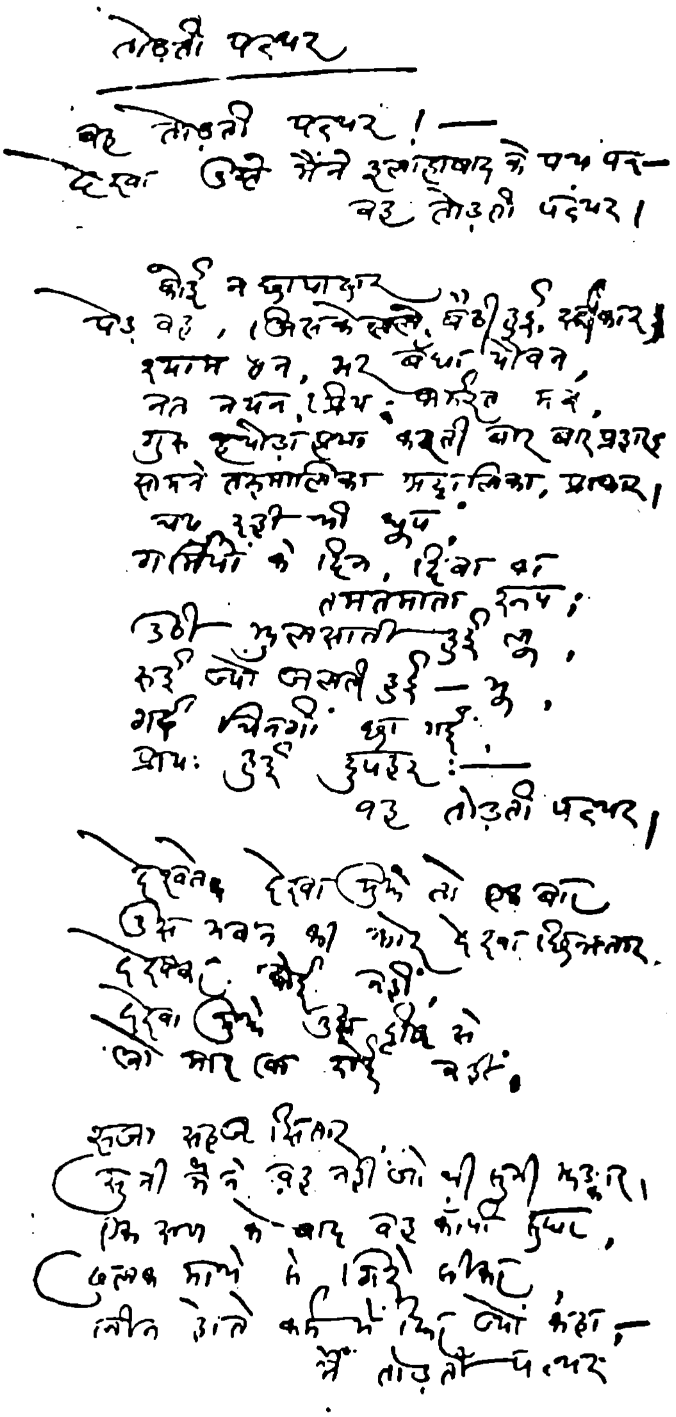
तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर!—
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह, जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ करती बार बार प्रहार;
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन, दिवा का
तमतमाता रूप;
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगीं छा गयीं,
प्रायः हुई दुपहर :—
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्नतार,
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
मैं तोड़ती पत्थर।

निराला की हस्तलिपि

पहला अध्याय

निराला और छायावाद

पहला अध्याय

1. निराला और छायावाद

1.1. निराला विभिन्न वादों के संदर्भ में :

हिन्दी साहित्य में कई वाद समय-समय पर चल पड़े हैं और कभी उन वादों के बल पर लेखकों ने तथा कभी लेखकों के बल पर वादों ने कुछ ख्याति पायी है । उन्मुक्त भाव से किसी वाद-विशेष के चंगुल में फँसे बिना अपने स्वाभाविक उद्गारों को अभिव्यक्ति देने में जो सफल हुए हैं, वे ही साहित्य के सारथी बन सके हैं । युग के प्रभाव से कोई भी मुक्त नहीं, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि साहित्यिक किसी खास युग या वाद-विशेष की सीमा में बंद रहे । इस परिवेश में ही सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जैसे प्रतिभावान कवि के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का महत्व बढ़ता है और युगाराध्यों की कोटि में उनकी गणना होने लगती है । निराला का अपना विचार था : ''प्रसिद्धि से मनुष्य नहीं, मनुष्य से प्रसिद्धि है । '' (1)

1.1.1. सत्य की खोज:

निराला की तरुणावस्था में हिन्दी काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ ज़ोरों पर थीं । यद्यपि छायावादी भावबोध की लहरें हिन्दी के काव्य-तट पर बड़े ज़ोर से टकराती थीं तो भी निराला की प्रतिभा केवल उन लहरों की भंगिमा से तुष्ट न हुई, वह सत्य की खोज में उस काव्य-तट के ऐसे स्थलों पर भी जा पहुँची जहाँ हिन्दी संसार के अन्य किसी कवि-प्रतिभा का पद-चिह्न न पड़ा था । डॉ० नगेन्द्र ने निराला के इस सत्यान्वेषण की ओर संकेत करते हुए लिखा है :

---

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971, पृ० 77

''निराला - अतीत-काल से निराली के जीवन तक फैले युग-धर्म के विविध स्तरों और आयामों को मानो एक साथ ही अपनी रचना में समेट लेना चाहते हैं। ''(1)

इसका यह अर्थ नहीं कि प्रचलित काव्य-पद्धति की लीक पकड़कर वे अन्य प्रवृत्तियों के पीछे चले, किसी में अपना स्थान न बना पाये, कहीं स्थिर न रहे, आवारा बनकर भटकते रहे। समन्वयकारी होने के कारण ही युग-प्रवृत्ति के बाहर भी निराला की दृष्टि जाती थी। काव्य की सृष्टि करते समय उन्होंने इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया कि वह उन्हें किसी वाद-विशेष की सीमा में बाँध देता है या नहीं। बाहर से अनिवार्य नये-नये वादों के प्रवर्तक बनने या प्रचलित वादों के विघटन में उन्हें कोई विशेष रुचि न थी। इस स्वतंत्र तथा विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे छायावाद के अभ्युदय-काल में ही प्रगतिशील रचनाएँ कर सके, प्रगतिवाद-काल में भी उच्चकोटि की छायावादी कृतियों से साहित्य का भंडार भर सके।

परंतु सुमित्रानंदन पंत की बात भिन्न है। छायावाद के प्रमुख स्तंभों में एक रहकर भी उनके यौवन काल (सन् 1936) में ही पंत ने छायावाद के अंत की घोषणा कर दी।(2) यह देखकर ही डॉ० नगेन्द्र ने कहा था कि ''प्रगतिवाद छायावाद की भस्म से नहीं पैदा हुआ, वह उसके यौवन का महा-घोंटकर ही उठ खड़ा हुआ।''(3) प्रचलित काव्य-प्रवृत्तियों पर अनास्था दिखाने और नवागत काव्य-पद्धति को अपनाने में पंत ने जो तत्परता की, निराला ने नहीं की।

1.1.2 कर्मयोगी निराला :

निराला के लिए सभी काव्य-पद्धतियाँ समान थीं। किसी काव्य प्रवृत्ति से वे अनुरक्त न थे तो द्वेष भी न था। वे इतने बड़े सर्वांग काव्यस्रष्टा थे

---

1. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली : सं०1985, पृ०556
2. सुमित्रानंदन पंत: युगांत: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 1982, पृ०3
3. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सं०1979, पृ०97

कि विदेशी हवाएँ उन्हें विचलित नहीं कर सकीं । लोहे को भी सोना बना देने की शक्ति उनकी लेखनी में थी । उन्होंने जो छुआ आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता नज़र आया । इसी अर्थ में निराला कर्मयोगी थे । निष्काम-कर्म ही उनका परम आदर्श था ।

1.1.3. नवीनता के प्रेमी :-

पुरानी लकीरों पर चलने वाले न थे निराला । नवीनता की खोज में उन्होंने सारा जीवन ही लगा दिया । उनके अनुसार इस नवीनता की कोई सीमा न थी । उनका यह असीम नयापन किसी ससीम वाद-विशेष में संकुचित न रहा ।

1.1.4. विरोधी धाराओं का संगम:-

निराला ने जो लिखा, किसी निर्धारित पद्धति के अनुसार न हुआ । एक सच्चे कलाकार से उसकी प्रतीक्षा करना भी व्यर्थ है क्योंकि ''वह अपनी आत्मशांति को भंग करके ही लेखक बना रह सकता है ।''(1) अंतर्विरोधों के तनावों ने ही निराला के व्यक्तित्व में विरोधी तत्वों को जन्म दिया है । ये विरोधी तत्व कवि के भाव, आदर्श तथा लक्ष्य में विविधता लाये हैं । निराला की सर्जनात्मक गतिशीलता को नया विस्तार देने में उनके ये अंतर्विरोध सहायक रहे हैं ।(2) इस प्रकार कवि के व्यक्तित्व की छाप काव्य पर भी पड़ी है । निराला का काव्य विपरीत धाराओं का विचित्र संगम है । इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है ''निराला एक साथ आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ हैं, कवि एवं योगी हैं, सरल एवं जटिल हैं, कोमल एवं कठोर हैं, उग्र एवं विनम्र हैं

---

1. मुक्तिबोध: एक साहित्यिक की डायरी, 'गजानन माधव मुक्तिबोध, सं0 डॉ0 लक्ष्मणदत्त गौतम, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 1972, पृ0 245 में उद्धृत
2. डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, नयी हिं0 कविता की पहचान, वाणी प्रकाशन, 1980, प्र0सं0 पृ0 15.

अद्वैतवादी एवं ब्रह्मविरोधी हैं, रहस्यवादी एवं यथार्थवादी हैं, छायावादी एवं प्रगतिवादी हैं, परंपरावादी एवं स्वच्छन्दतावादी हैं । इस प्रकार उनका व्यक्तित्व और काव्य विपरीत धाराओं का संगम है, सम एवं विषम स्वरों की रचना है ।'' (1)

एक ही काल-परिधि में लिखी गयी निराला की कृतियों में भी प्रवृत्तिगत विविधताएँ मिलती हैं । ये विविधताएँ कवि की मौलिकता की परिचायक हैं । साहित्य-साधना में पूर्ण रूप से आजन्म नये-नये मार्गों की खोज में जीवन भर निरत ऐसे किसी साहित्यकार के दर्शन पूरे हिन्दी वाङ्मय में अन्यत्र नहीं मिलते ।

1.1.5 वादों से दूर:-

आधुनिक हिन्दी साहित्य में वादों की इतनी भरमार है कि एक ही काल-परिधि में अनेक वादों की चर्चा आवश्यक हो जाती है । डा0 जॉनसन ने एक बार कहा था कि कोई भी प्रवृत्ति लंबे अर्से तक लोगों का रंजन नहीं कर सकती क्योंकि आकस्मिक चमत्कारों का आनंद तो जल्दी ही मिटनेवाला है, केवल सत्य की दृढ़ता पर ही स्थायी रूप से मन टिक सकता है ।(2) सत्य कथन से ही साहित्यकार को संतुष्टि मिलनी चाहिए, निरर्थक - वादों में उलझने से नहीं । ''सच्ची कविता किसी वाद को लेकर नहीं चलती, जगत की अभिव्यक्ति को लेकर चलती है । वादयुक्त काव्य अधिकतर काव्याभास ही होता है ।''(3)

- -

1. इंद्रनाथ मदान (संपा0): निराला, पृ03-4

2. "Nothing can please many, and please long, but just representations of general nature....the pleasures of sudden wonder are soon exhausted, and the mind can only repose on the stabilityof truth "- Dr.Johnson, Quoted: S.H. Burton, the Criticism of poetry, p-136.

3. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (दूसरा भाग) पृ087

इस रहस्य की पुकार। निराला जानते थे और इसी कारण वे ऐसे वादों के बंधनों से मुक्त रहे ।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जैसे हिन्दी के ख्यातिप्राप्त लेखक जिज्ञासावश निराला से छायावाद, रहस्यवाद आदि पर प्रश्न किया करते थे लेकिन उत्तर दिये बिना ऐसे सवालों को वे टाल देते थे । उनकी दृष्टि हमेशा सत्य-कथन पर केन्द्रित थी । छायावादियों के संबंध में उन्होंने लिखा : ''. . .छाया उनका वाद नहीं – उनका वाद सत्य है, अतः वे सत्यवादी हैं । '' (1)

वादों से उनका कोई वास्ता न था । सत्य-कथन ही उनके लिए छायावाद था और रहस्यवाद भी । निराला के मुख से जो वादों की परिभाषा सुनने को बेचैन थे, उनको निराश होना ही पड़ा ।

वाजपेयी ने एक बार 'डिफरेंट क्लासिफिकेशन'' चाहते हुए निराला को लिखा, – ''छायावाद के संबंध में आपने जो कुछ लिखा और कहा है उसका सारांश मेरी समझ में इतना ही आया है कि आपके विचार में जो सत्य है वही कविता है, वही छायावाद या रहस्यवाद है । रहस्य वास्तव में रहस्य नहीं है, पहुँचे हुए के लिए वह साधारण सत्य है । इसी रहस्य के न समझने के कारण - सत्य की तात्त्विक व्याख्या न करने के कारण कहीं कहीं 'टैगोर' भी भ्रामक बतलाए गये हैं और इसी कारण जोशी बंधु और गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि सच्ची अनुभूति के अभाव में विपथगामी हो गये हैं । (2)

- -

1. निराला : 'साहित्यिक सन्निपात' या वर्तमान धर्म'' निराला रचनावली-6 संपा0 नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- प्र0सं0 1983 पृ0 153.

2. नंददुलारे वाजपेयी के नाम निराला का पत्र : उद्धृत, निराला की साहित्य साधना - 3, पृ0 175.

मालूम पड़ता है कि इस प्रकार के प्रश्नों में निराला की कोई दिलचस्पी नहीं थे। यही नहीं, वे वादों के पीछे पागल बन फिरनेवालों को व्यंग्य-भरी दृष्टि से देखते हैं :

''जैसे प्रोग्रेसिव का कलम लेते ही
रोका नहीं रुकता जोश का पारा
यहीं से यह कुल हुआ
जैसे अम्मा से बुआ। '' (1)

प्रयोगवादियों पर भी उन्होंने व्यंग्य कसा है:

''कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर
टी०एस०इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़नेवालों ने भी जिगर पर रखकर
हाथ कहा, लिख दिया जहाँ सारा। '' (2)

बाहर से आनेवाली आधुनिकता को सच्ची आधुनिकता समझ उसके पीछे पड़नेवाले आधुनिकतावादियों को भी निराला छोड़ते नहीं :

''चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे जैसे भुखमड़ फालोवर।
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर -
आधुनिक पोयट
पीछे बाँदी बचत की सोचती
कैपिटलिस्ट क्वेट।'' (3)

- -

1. 'कुकुरमुत्ता,' निराला रचनावली-2 संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983, पृ० 49
2. 'कुकुरमुत्ता', निराला- रचनावली-2, पृ० 49
3. 'कुकुरमुत्ता', निराला-रचनावली-2, पृ० 55

1.1.6 आधुनिक अभिमन्यु :

वाद पर होनेवाले वाद-विवादों से निराला एकदम दूर रहना चाहते थे, लेकिन उनके वैयक्तिक अनुभव ऐसे रहे कि वे जिनसे बचकर रहना चाहते थे आखिर उन्हीं के चंगुल में आ फँसते । बदरीनाथ भट्ट, बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे पुरानी पीढ़ी के रचनाकारों से ही नहीं, नई पीढ़ी के लेखकों से भी उन पर जोरदार आक्रमण हुआ तो वे भी डटकर खड़े हो गये । छायावाद पर, विशेषकर निराला पर नई पीढ़ी के जोशी बंधु- हेमचन्द्र जोशी और इलाचन्द्र जोशी- निरंतर वार कर रहे थे । 'सुधा' में प्रकाशित 'साहित्य-कला और विरह''- शीर्षक हेमचन्द्र जोशी के लेख का उत्तर ''कला के विरह में जोशी-बंधु'' नाम से लिखने को निराला मजबूर हुए । (1)

ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए अपनी सहज व्यंग्यपूर्ण शैली में उन्होंने लिखा: '' कभी सोचा था, दलबंदी के दलदल में न फँसूँगा, मार का जवाब प्यार से दूँगा, परंतु 'आपन सोची होय नहिं, हरि सोची तत्काल' की आफत का पहाड़ हरि की इच्छा से मुझ पर आ टूटा । जिस रोज़ मैं ने साहित्य के खाते में नाम लिखाया, उसी रोज़ से हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने पाठ पढ़ाना शुरू कर दिया कि जब तक जियो, अपने हाथों अपनी नाक काटकर दूसरों का शगुन बिगाड़ते रहो, बस, साहित्य-सेवा के यही मानी हैं । '' (2)

---

1. निराला रचनावली-5 , संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983, पृ० 263
2. निराला रचनावली - 5 , पृ० 263.

दूसरों का मखौल उड़ाने में निराला की कोई रुचि न थी । वे यह मानते थे कि अपनी मर्जी के अनुसार आगे बढ़ने की स्वतंत्रता प्रत्येक लेखक को है । व्यक्तिगत वादों के प्रचार में उन्होंने विशेष ज़ोर नहीं दिया । मगर समाज एवं साहित्य को साथ पहुँचानेवाली नई-नई प्रवृत्तियों के मुख में कुठाराघात होते देखा तो निराला चुप नहीं रह सके ।

हेमचन्द्र जोशी ने 'माधुरी' में यह कहकर कि 'हिन्दी के छायावादी मंडूक - कूप को सागर से बड़ा समझकर टर्रा रहे हैं' - (1) व्यंग्य किया तो निराला ने कठोर शब्द बाणों से प्रत्याख्यान किया : ''वे छायावादियों को आप समझते अवश्य हैं, उन्हें कूपमंडूक टरते हैं । निराला के लिए सत् और असत्, देवता और दैत्य दोनों आवश्यक हैं । अब वे कवि, कहो असुर बड़ा है या सुर ? माता कहती है, मेरे दोनों लड़के हैं, दोनों बराबर, दोनों हाँ हाँ, टर टर । कहो मेंढक, कौन मेंढक है, हम या तुम ? (2)

छायावाद के विरोधी चारों ओर से निराला पर टूट पड़े । छायाकवि ने अपने को अकेला पाया । फिर भी साहस न छोड़ा, सबके उत्तर स्वयं दिये । डॉ० रामविलास शर्मा ने तत्कालीन परिस्थिति का उल्लेख यों किया है : ''साहित्य-सम्मेलन के कर्णधार-विश्वविद्यालयों के अध्यापक, राष्ट्रवादी और रीतिवादी कवि, पत्रकार और संपादक छायावाद के अभिमन्यु को अपने चक्रव्यूह में घेरकर चारों ओर से उस पर टूट पड़े थे । '' (3)

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना - 1
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पुनर्मु० 1979, पृ० 175 (उद्धृत)
2. वही, पृ० 175
3. वही, पृ० 143 - 144.

छायावाद तथा निराला पर केन्द्रित इन अनुक्रमों से स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद ही उस युग की प्रधान साहित्यिक विधा थी और निराला ही उस काल के महान कलाकार हैं। यह अनुक्रम निराला पर केन्द्रित होने का एक कारण यह भी था कि छायावाद के विरोधियों के लिए सुमित्रानंदन पंत उतने घातक न थे। 'सरस्वती' में उनका प्रवेश था। जयशंकर प्रसाद विरोधियों की परवाह बहुत कम करते थे। आलोचनाओं की अनसुनी करके वे टाल देते थे। आचार्य को भी मुंहतोड़ जवाब देने की शक्ति उनमें थी। ऐसी सहिष्णुता का निराला में एकदम अभाव था। आचार्य की उपेक्षा या अनसुनी करके ठोक देना वे पाप समझते थे। इसलिए नया-काव्य-प्रवृत्ति-छायावाद पर किये गये अत्याचारों पर वे बिगड़ पड़े। महावीर प्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे हिन्दी साहित्य के [illegible] का विरोधाभास अनजान भी [illegible] की समस्त नवीन, छायावादी काव्य-विधा की परिरक्षा में वे 'अभिमन्यु' जैसे डटे रहे।

1.2.1. छायावाद का आरंभ :-

सन् 1918 और सन् 1938 के बीच के काल को छायावाद का कार्यकाल माना जाता है।(1) डॉ० कृष्णलाल भी छायावाद की शुरुआत सन् 1918 से मानते हैं।(2) आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार सुमित्रानंदन पंत की 'उच्छ्वास' के रचनाकाल से छायावाद का अभ्युदय होता है।(3) डॉ० नामवरसिंह इस नयी प्रवृत्ति का आरंभ 1920 ई० के आसपास से मानने के पक्ष में हैं।(4) उनके अनुसार 'श्री शारदा' के सन् 1920 जुलाई, सितंबर, नवंबर और दिसंबर के अंकों में ही सबसे पहले छायावाद पर श्री मुकुटधर पांडेय के चार निबंधों की एक लेखमाला धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई थी। (5)

---

1. भारतीय साहित्य कोश: सं०डॉ०नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र०सं०1981, पृ० 418
2. डॉ०कृष्णलाल: आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ037
3. नंददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य कोश, पृ0296
4. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति, 1979, पृ० 13
5. वही, पृ013

अन्य किसी प्राचीनतर सामग्री का पता न चलने के कारण डॉ०नामवरसिंह इन्हीं की छायावाद-संबंधी सर्वप्रथम प्रमाण स्वीकार करते हैं। उन निबंधों से यह पता चलता है कि उनके प्रकाशित होने के पहले ही छायावाद पर कुछ टीका-टिप्पणियाँ हो चुकी थीं।

श्री सुधाकर पाण्डेय ने छायावाद को सन् 1913 और सन् 1920 के बीच की उपज कहा है।(1) इससे भी पूर्व सन् 1911 को 'इंदु' में प्रकाशित प्रसाद जी की कुछ कविताओं में, जो बाद में 'कानन-कुसुम' में संग्रहीत की गयी, छायावादी धारा का बीज-बिंदु मिलता है। संभवतः यही कारण है, बहुत से आलोचक जयशंकर प्रसाद को छायावाद का जनक मान लेते हैं।(2) लेकिन इस नयी प्रवृत्ति का सर्वतोमुखी विकास सन् 1920 के बाद ही हुआ।

1.2.2. नामकरण:

----- नयी काव्य प्रवृत्ति को 'छायावाद' नाम देने का श्रेय श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने निराला को दिया है: 'जुही की कली' के प्रणयन के साथ-साथ इस युग का नामकरण 'छायावाद' भी निराला ने ही किया। उनके किसी समकालीन साहित्यिक मित्र ने पूछा कि उनकी यह कविता किस वाद के अंतर्गत आयेगी। निराला ने यों ही मजाक में कह दिया कि यह छायावाद है क्योंकि नायक-नायिका की छाया यहाँ पर पवन और कली की अपेक्षा में स्पष्ट हुई है।(3) तब से इस भावधारा का नाम ही छायावाद पड़ गया।'' श्री मुकुटधर पाण्डेय अपने को ही छायावाद नाम का स्रष्टा मानते हैं ''मेरी समझ में नई शैली में भाव नहीं, भावों की छाया पायी जाती थी जिन्हें पकड़कर हृदयंगम करने

----

1. श्री सुधाकर पाण्डेय : प्रसाद काव्य कोश, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, पृ० 219

2. श्री सुमित्रानंदन पंत : 'आधुनिका', काव्यविमर्श, पृ० 190

3. श्री-गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, साहित्यकार संसद, प्रयाग, संवत् 2008, पृ० 72

में पाठकों को कठिनाई होती थी । छायाचित्रता से ही मैं ने छायावाद शब्द बनाया था ।"[1] श्री जयशंकर प्रसाद ने इसका संबंध संस्कृत साहित्य से जोड़ा है ।[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसपर बंगला तथा पाश्चात्य प्रभाव देखा है ।[3] छायावाद का मूल प्रसादजी के कविता-संग्रह 'छाया' में ढूंढने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है । 'छाया' के कर्ता प्रसाद जी की नई काव्य-कृतियों पर किया गया व्यंग्य भी छायावाद शब्द के उद्भव का कारण बताया जाता है । उस काल में ऐसे भी कुछ आलोचक थे जो "छायावाद की कविता को टैगोर-स्कूल के छाया-चित्रों के साथ रखकर देखते थे । यहाँ भी अभिव्यक्ति की अस्पष्टता को ही लेकर व्यंग्य किया गया है ।"(4)

उपर्युक्त मंतव्यों के आधार पर हम किसी निर्णय पर आसानी से पहुँच नहीं सकते । गंगा प्रसाद पाण्डेय निराला को 'छायावाद' शब्द का उपज्ञाता मानते हैं; अपने मत की पुष्टि के लिए 'जुही की कली' का सहारा लेते हैं । 'जुही की कली' को यद्यपि निराला सन् 1916 में लिखी अपनी पहली रचना मानते हैं[5] तो भी उसका प्रकाशन सन् 1922 में 'आदर्श' पत्रिका में ही हुआ ।[6] अप्रकाशित रचना पर चर्चा की संभावना बहुत कम है । अगर यह चर्चा सन् 1922 के बाद हुई तो तब तक 'छायावाद' शब्द का प्रचार सर्वत्र हो चुका था । इसी प्रकार मुकुटधर पाण्डेय के दावे

- -

1. श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के नाम मुकुटधर पाण्डेय का पत्र, उद्धृत, 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', पृ० 113
2. श्री जयशंकर प्रसाद: काव्य और कला, पृ० 90
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास (सोलहवाँ संस्करण) पृ० 637
4. डॉ० नामवर सिंह: छायावाद, पृ० 15
5. (अ) निराला: 'मेरे गीत और कला', निराला रचनावली-5, पृ० 403
   (आ) निराला: 'कुल्ली भाट', निराला रचनावली-4, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, प्र०सं० 1983, पृ० 51
6. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 61, पृ० 440

का भी कोई सुपुष्ट आधार या प्रमाण नहीं मिलता । 'छायावाद' नामकरण में अंग्रेजी की ध्वनि ही अधिक मिलती है जब कि पश्चिम भी उस वाद से विरोधी है । 'छायावाद' का संस्कृत साहित्य से संबंध जोड़ने की चेष्टा भी स्पष्ट है । पाश्चात्य साहित्य का उसपर स्पष्ट प्रभाव है । ऐसी परिस्थिति में 'छायावाद' शब्द को विरोधियों द्वारा प्रदत्त नाम मानना ही तर्कसंगत है ।

1.23 छायावाद : देशी या विदेशी ?

'छायावाद' का संबंध संस्कृत-साहित्य से जोड़कर जयशंकर प्रसाद ने उसे पूर्ण रूप से देशी बताया है: ''प्राचीन (संस्कृत) साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है । हिन्दी में इस तरह के प्रयोग आरंभ हुए तो कुछ लोग चौंकते, परंतु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण करना पड़ा । कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्शी काव्य जगत के लिए अत्यंत आवश्यक थे।''(1)

पं. रामचन्द्र शुक्ल छायावाद पर विदेशी प्रभाव मानते हैं ।(2) उन्होंने 'छाया' अर्थवाले ईसाई धर्म के संबंधित शब्द 'फेंटसमेटा' से छायावाद का नाता जोड़ा और सिद्ध कर दिया कि इसके नाम तथा भाव-धारा पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट है ।(3)

सुमित्रानंदन पंत भी छायावाद पर योरोपीय प्रभाव मानने के पक्ष में हैं । उन्होंने पाश्चात्य-साहित्य के 'रोमांटिसिज्म' से 'छायावाद' का संबंध स्थापित किया है । अपने ऊपर शैली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टैनीसन का प्रभाव भी उन्होंने स्वीकार किया है । (4)

- -

1. जयशंकर प्रसाद : प्रसाद काव्य कोश, पं. सुधाकर पाण्डेय, उद्धृत, पृ० 230
2. रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास (सोलहवाँ संस्करण) पृ० 637
3. वही, पृ० 637
4. सुमित्रानंदन पंत : आधुनिक कवि-2, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृ० 13.

सर्वात्मवाद से प्रभावित श्रीमती महादेवी वर्मा इस भावधारा को मूलतः नवीन नहीं मानती क्योंकि इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप हम भारतीय साहित्य में सर्वत्र देख पाते हैं। वे यह स्वीकार करती हैं कि यह छायावादी-युग पाश्चात्य साहित्य तथा बंगाल की नवीन काव्य-धारा से सुपरिचित था। वे लिखती हैं — ''यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्य-धारा से परिचित तो था ही, साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परंपरा भी रही।'' (1)

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा की राय से बहुत कुछ सहमत हैं। वे भी इसे केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं मानते। ''छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था यद्यपि जिसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट हैं तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा शैली में अपने भावों को अभिव्यक्त किया।''(2)

श्री सुधाकर पाण्डेय छायावाद को भारतीय काव्य-प्रणाली का विकसित रूप मानते हैं। उनकी दृष्टि में यह नवीन और पुरातन का संगम है, व्यक्ति और आदर्श का समन्वय है। उनका कथन है—''छायावाद न तो नवीन का प्राचीन के प्रति विद्रोह है, न वह भारत की नई काव्य-प्रणाली है। वह नवीन और पुरातन का संगम है, व्यक्ति और आदर्श का समन्वय है, तथा है युग के अनुरूप भारतीय काव्य-प्रणाली का विकसित रूप। .... वह तो सहज, निर्मल और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होनेवाली चेतना की स्वर-धारा है।''(3)

- -

1. श्रीमती महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि-1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृ० 16
2. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० 46।
3. सुधाकर पाण्डेय: प्रसाद काव्य कोश, पृ० 23।

अज्ञेय भी 'छायावाद' को मौलिक रूप से भारत की अपनी वस्तु मानते हैं। उनका कहना है कि भारत की यह चीज़ विलायत जाकर नयी वेश-भूषा में अब लौट आयी है। (1)

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक्लजी जैसे समालोचक छायावाद के भाव तथा नाम तक में विदेशी प्रभाव देखते हैं तो प्रसाद, अज्ञेय जैसे विचारक कवि उसे अपने देश की वस्तु मानते हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने मध्यम मार्ग को अपनाया है। वे छायावाद की समीक्षा करते समय अधिक सहृदयता से काम लेते हैं। यद्यपि द्विवेदीजी ने इसे नवीन शिक्षा के फलस्वरूप जगी सांस्कृतिक चेतना कहा है तो भी इस युग-चेतना को वे केवल पाश्चात्य-प्रभाव नहीं मानते।

इस में कोई शक नहीं कि अंग्रेज़ी के 'रोमांटिक रिवाइवल' और हिन्दी के छायावादी आन्दोलन में बहुत कुछ साम्य है। दोनों की प्रवृत्तियाँ भी प्रायः समान हैं। अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों का प्रभाव अवश्य छायावादी कवियों पर पड़ा है। कुछ कवियों ने सीधे अंग्रेज़ी से प्रभाव ग्रहण कर लिया तो कुछों ने बंगला के माध्यम से। इस प्रकार के प्रभावों के कारण हमारे साहित्य में जो परिवर्तन आये हैं, हमारी संस्कृति के बिलकुल अनुकूल हैं। देश संस्कृति के मूलतत्व तो ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं, बाह्य-रूप-रेखा ही बदलती जाती है। ''यह सत्य है कि संस्कृति की बाह्यरूपरेखा बदलती रहती है, परंतु मूल-तत्वों का बदल जाना, तब तक संभव नहीं होता, जब तक उस जाति के पैरों के नीचे से वह विशेष भूखंड और उसे चारों ओर से घेरे रहनेवाला वह विशिष्ट वायुमंडल ही न हटा लिया जावे। (2)

- -

1. अज्ञेय: हिन्दी साहित्य; एक आधुनिक परिदृश्य पृ. 25

2. महादेवी वर्मा: आधुनिक कवि-1, पृ0 13

1.2.4 छायावाद का इतिहास: 'छायावाद' नामकरण के पीछे कोई बाह्य प्रभाव न था। 'छाया' अर्थ को द्योतित करनेवाले किसी वाद का नाम अन्यत्र नहीं होता। फिर भी शुक्लजी ने बंगला साहित्य में छायावाद का अस्तित्व माना और कहा कि छायावाद का आविर्भाव हिन्दी में बंगला के माध्यम से ही हुआ।(1) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस वाद की निर्मूलता सिद्ध करते हुए लिखा है कि ऐसा कोई वाद बंगला में नहीं था।(2) आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे मनीषी भी स्वयं भ्रमित हो गये और जो उनकी समझ में न आया उसकी निंदा कर बैठे: ''छायावाद और समस्या-पूर्ति से हिन्दी कविता की बड़ी हानि पहुंच रही है। छायावाद की ओर नवयुवकों का झुकाव है, और वे जहाँ कुछ गुनगुनाने लगे कि झट दो-चार पद जोड़कर कवि बनने का साहस कर बैठते हैं।''(3)

निराला को भी महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कवि बनने के आग्रही, साहसी नवयुवकों की कोटि में मान लिया था। निराला कृत 'वर्तमान धर्म' पर सम्मति माँगते हुए बनारसी दास चतुर्वेदी ने द्विवेदी को लिखा तो उन्होंने 'मूर्खस्य नास्त्यौषधम्' कहकर निराला को मूर्ख बना दिया था।(4)

द्विवेदी जी ने छायावादी कवियों पर यह आक्षेप लगाया कि ''इनकी कविता का अर्थ समझना कुछ सरल नहीं है।...खूब रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करके ही यह अत्याचार हिन्दी में हो रहा है।'' (5)

---

1. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 637
2. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य पृ० 384
3. महावीर प्रसाद द्विवेदी : आजकल के हिन्दी कवि और कविता, 'सरस्वती' मई 1927
4. डा० राम विलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना - पृ0 475
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी : आजकल के हिन्दी कवि और कविता, सरस्वती, मई 1927.

संदेह नहीं कि कुछ काल के लिए छायावाद ने रस-भावादि तक बड़े-बड़े मनीषियों को भी पहुंच नहीं दी । बाहर से आये 'मिस्टिसिज्म' 'रोमैंटिसिज्म' जैसे शब्दों ने ऐसी गड़बड़ी मचा दी कि आलोचक उलझ गये । एक ही काव्य-प्रवृत्ति के लिए 'छायावाद' तथा 'रहस्यवाद' दोनों शब्द प्रयुक्त हुए । आगे चलकर दोनों की अलग-अलग व्याख्याएं हुईं । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्द इस तर्क की पुष्टि करते हैं :-

''हिन्दी में जब नवीन युग की हवा बही तो जो क्रिया-प्रधान कवितायें भी लिखी जाने लगीं, वे सभी कवितायें एक ही श्रेणी की नहीं थीं । कुछ वाच्यार्थ-प्रधान थीं, कुछ व्यंग्यार्थ प्रधान । पर सब में प्राचीन रूढ़ियों की उपेक्षा की गयी थी । किसी ने इस प्रकार की सब कविताओं का नाम छायावाद रख दिया । बाद में व्यंग्यार्थ-प्रधान दृष्टि रखनेवाले कवियों को यह नाम उपयुक्त नहीं लगा । उन्होंने संशोधन करके 'रहस्यवाद' नाम दिया । कुछ दिन तक ये दोनों ही शब्द चलते रहे । अब तक पंडितों ने दोनों शब्दों का अलग-अलग अर्थ नियत कर दिया है । '' (1)

सन् 1927 में अवध उपाध्याय ने लिखा '' अभी तक हिन्दी में रहस्यवाद और छायावाद का प्रयोग एक ही अर्थ में होता रहा है । परंतु मैं ने इन शब्दों का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया है । इसका कारण यह है कि 'मिस्टिक' की दो प्रधान शाखाएं हैं । एक के लिए मैं ने रहस्यवाद का और दूसरी के लिए छायावाद का प्रयोग किया है । '' (2)

- -

1. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी :- साहित्य - सहचर, 1965, पृ० 67

2. उद्धृत : प्रसाद काव्य कोश, सं० सुधाकर पाण्डेय, पृ० 224

डॉ० नामवरसिंह के अनुसार जयशंकर प्रसाद ने ही रहस्यवादी विषय और लाक्षणिक शैली से युक्त काव्य-रूप को रहस्यवाद नाम दिया था और आगे चलकर नंददुलारे वाजपेयी ने उसे छायावाद की संज्ञा से अभिहित किया । (1)

मुख्य रूप से हमारे निष्कर्ष इस विषय पर ये हैं —

1. शुरू में इस काव्य-धारा को छायावाद की संज्ञा दी गयी ।
2. छायावाद नाम से असंतुष्ट होकर प्रसाद ने इसे रहस्यवाद नाम दे दिया ।
3. कुछ दिनों तक दोनों नामों का प्रयोग हिन्दी जगत में होता रहा ।
4. आखिर दोनों का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में हो गया और नंददुलारे वाजपेयी की ओर से पुनः 'छायावाद' की प्रतिष्ठा हो गयी ।

1.2.5 छायावाद और स्वच्छंदतावाद :-

स्वच्छंदतावाद हिन्दी में छायावाद का पर्याय-सा हो गया है । अंग्रेजी के 'रोमेंटिसिज्म' के लिए हिन्दी में यह स्वच्छंदतावाद शब्द चल पड़ा है । डॉ० रामधारीसिंह दिनकर, (2) डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल (3) जैसे लेखक इसे स्वच्छंदतावाद न कहकर 'रोमांसवाद' कहते हैं । जिसका अंग्रेजी के 'रोमांस' शब्द से सीधा संबंध है ।

1.2.6 'रोमांस' और 'रोमेंटिसिज्म'

अंग्रेजी में 'रोमांस' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'रोमाना'

---

(1) डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 1979, पृ० 17

(2) डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : शुद्ध कविता की खोज, प्र०सं०, पृ० 29

(3) डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य प्र०सं० पृ० 318-319

से हुई । 'रोमांस' से निसृत होकर 'रोमांटिक' शब्द का आविर्भाव हुआ ।(1) 'रोमांटिक' का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रेडरिक श्लेगल (Friedrich schlegel) ने 1789 में किया था ।(2) जिस प्रकार हिन्दी में 'छायावाद' नाम उसके विरोधियों द्वारा दिया गया था उसी प्रकार अंग्रेज़ी में भी 'रोमांटिसिज्म' रोमांटिक आंदोलन के विरोधियों द्वारा प्रदत्त नाम था । (3)

1.2.7 छायावाद-स्वच्छंदतावाद : अंतर

यद्यपि 'छायावाद' तथा 'स्वच्छंदतावाद' में बहुत कुछ साम्य है तो भी दोनों को एक ही समझ बैठने में भ्रान्ति है । विभिन्न देशों और विभिन्न परिस्थितियों में उपजी काव्य-प्रवृत्तियों में मौलिक भेदों का आ जाना स्वाभाविक है । फ्रांस की महान राज्य-क्रांति 'रोमांटिसिज्म' या 'स्वच्छंदतावाद' की मूल-प्रेरणा रही तो भारत में असफल आंदोलनों के परिपार्श्व में ही छायावादी कविता का आविर्भाव तथा विकास हुआ । इस कारण से अंग्रेज़ी स्वच्छंदतावाद में जहाँ उत्साह, आशा-वादिता और उद्दामता के दर्शन होते हैं वहाँ छायावाद में दुःख और करुणा के दर्शन होते हैं । छायावादी कवियों के अंतर्मुखी होने का एक कारण यह भी है । ऐसी अंतर्मुखता स्वच्छन्दता-वादियों में पायी नहीं जाती । छायावाद की इस विशेषता से प्रभावित होकर ही नंददुलारे वाजपेयी ने छायावाद पर 'आध्यात्मिक छाया का भान'(4) देखा था । 'छायावाद' को स्वच्छंदतावाद की एक 'विशिष्ट शैली'(5) मानने का कारण भी मुख्यतः यही बताया जाता है । यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि छायावाद की अन्तर्मुखता ने आध्यात्मिक भाव की सृष्टि की है वह मायावाद का आश्रय नहीं लेता, व्यावहारिक सिद्धांतों का समर्थन करता है ।

1. Aber Crombie Lascelles, Romanticism, P-12
2. The Encyclopaedia Americana, First published in 1829, Vol. XXIII, P -658.
3. डॉ० ब्रजसिंह: आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय-प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं०1978, पृ02
4. नंददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, पृ0 156
5. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 637

भारत में छायावाद का आविर्भाव यूरोप के रोमांटिक आंदोलन के करीब एक सौ वर्ष बाद हुआ। इसलिए एक सौ वर्ष की इस काल-परिधि में यूरोप में हुए अन्य काव्यान्दोलनों का प्रभाव भी छायावाद पर पड़ा। प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद जैसे नये-नये वादों से प्रभावित छायावाद का स्वरूप थोड़ा-बहुत परिवर्तित हो गया।

छायावादी कविता में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों के साथ साथ एक 'क्लासिकल' स्वर भी आ गया है। निराला में यह विशेषता स्पष्ट दिखाई देती है। ''इनकी कला में रोमांटिक के अतिरिक्त एक क्लासिकल संस्पर्श भी मिलता है। छन्द-बंध तोड़कर कला आदि की दृष्टि से 'निराला' ने प्राचीन काव्य-शास्त्रीय परंपरा का विद्रोह किया है, परंतु भारतीय दार्शनिक चिन्तन तथा सांस्कृतिक परंपरा की दृष्टि से वह 'प्रसाद' की तरह स्वच्छंदतावादी होते हुए भी अपने अन्तः में क्लासिकल प्रज्ञान के कलाकार हैं।'' (1) नंददुलारे वाजपेयी का यह कथन स्मरणीय है कि प्रत्येक छायावादी काव्य स्वच्छंदतावादी काव्य है, पर प्रत्येक स्वच्छंदतावादी काव्य छायावादी काव्य नहीं .. (2)

अंग्रेजी का स्वच्छंदतावाद जहाँ सामन्तविरोधी है, छायावाद सामन्तविरोधी होने के साथ साथ साम्राज्यविरोधी भी है। (3)

छायावाद में केवल सर्वात्मवाद या रहस्यवाद के दर्शन ही नहीं मिलते। ब्रह्मवाद, सांख्य दर्शन, वेदांत, अद्वैत, बौद्ध, शैव जैसे अनेक दर्शनों का व्यापक प्रभाव है। 'कामायनी', 'तुलसीदास',

- -

1. डॉ० अजबसिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० 102
2. नंददुलारे वाजपेयी : आधुनिक काव्य : रचना और विचार, साथी-प्रकाशन, सागर, चतुर्थ संस्करण, 1966, पृ० 40
3. डॉ० शंभुनाथसिंह : छायावाद-युग, पृ० 17

'राम की शक्तिपूजा' जैसी कृतियों में दर्शन तथा कविता का सुंदर समन्वय हुआ है । स्वच्छंदतावाद में दर्शन इतनी गहराई तक नहीं चलता ।

पश्चिमी स्वच्छंदतावादी कवि कालरिज (1) ने नारी के सौंदर्य को भयानक एवं घातक भी सिद्ध किया है लेकिन छायावाद में नारी का रूप कल्याणकारी है :

"तुम्हारी वाणी में कल्याणि ।
त्रिवेणी की लहरों का गान" (2)

अंग्रेज़ी में वर्ड्सवर्थ जैसे कवि जन-जीवन की भाषा की ओर आकृष्ट हुए (3) तो यहाँ के छायावादी क्लिष्ट, संस्कृतनिष्ठ और अलंकृत भाषा के प्रयोग में जुट गये ।

अंग्रेज़ी स्वच्छंदतावाद में केवल सत्य और सुंदर पर ध्यान दिया गया (4), शिव की माँग नहीं की गयी । छायावाद में सत्य, सुंदर और शिव का मणिकांचन-संयोग हुआ है ।

---

1. Her lips are red, her looks are free,
   Her locks are yellow as gold:
   Her skin is as white as leprosy,
   And she is far liker Death than he;
   Her flesh makes the still air cold.

   --Wordsworth & Coleridge: Lyrical Ballads, Ed. by Little dale, Oxford University Press, London, 1798, page 18
2. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव , पृ० 62
3. Wordsworth & Colleridge: Lyrical Ballads, Wordsworths' preface (1800), page: 223
4. Beauty is truth, truth Beauty, that's all.
   Ye know on earth and all ye need to know".

   --John Keats.

निष्कर्ष है कि जिस प्रकार रहस्यवाद छायावाद नहीं है, उसी प्रकार स्वच्छंदतावाद को भी हम छायावाद का पर्याय स्वीकार नहीं कर सकते । इन काव्य-पद्धतियों के बीच सीमा-रेखा खींचना भी आसान नहीं । रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छंदतावाद इतने अधिक घुल मिल गये हैं कि उनको अब बिलगाना असंभव है ।

1.4 छायावाद: मुख्य प्रवृत्तियाँ

अस्पष्टता का अर्थ लेकर ही छायावाद शब्द का आविर्भाव हुआ । साहित्य में अन्य जो वाद चल पड़े हैं सभी की संज्ञाओं से उनकी मुख्य प्रवृत्ति का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जाता है, लेकिन 'छायावाद' ऐसा कोई आभास नहीं देता । इस विचित्रता को देखकर ही डॉ0 नगेन्द्र ने कहा कि छायावाद के अर्थ को ठीक-ठीक समझने के लिए हमें विपरीत दिशा में चलना है ''जहाँ यथार्थवाद, प्रगतिवाद आदि काव्य-धाराओं के विवेचन में यथार्थ, प्रगति आदि के अर्थ से सहायता ली जाती है वहाँ छायावाद के अर्थ को समझने के लिए हमें विपरीत दिशा में चलना होगा । नामवाचक शब्द के अर्थ से काव्यगत विशेषताओं की ओर जाने के स्थान पर काव्य की विशेषताओं से नामवाचक शब्द के अर्थनिर्धारण का प्रयास करना होगा । '' (1)

अब छायावाद का अर्थ-निर्धारण के लिए हमें उसकी मुख्य प्रवृत्तियों

- -

1. डॉ0 नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृ0 549

से परिचित होना पड़ता है ।

1.3.1. स्थूल का विरोध :

- - - - - - - - - - -

कलाकार अपने असली रूप में सूक्ष्म स्वभाव के होते हैं । लेकिन अपने स्वभाव की सूक्ष्मता को पहचानने की क्षमता सभी कलाकारों में समान रूप से नहीं मिलती । मन की गहराइयों तक गोता लगाने तथा उन गहराइयों के अमूल्य मोतियों को प्रकाश में लाने का बहुत कम प्रयास ही खड़ीबोली-काव्य में छायावाद-काल के पूर्व हुआ था । द्विवेदी-युग के कलाकार - यद्यपि सक्षम थे । तथापि 'सरस्वती'- सेवा केलिए इतने अधिक मन की आवश्यकता महसूस नहीं करते थे । इसलिए वे बाह्यवर्णन से ही तृप्त हुए । स्थूलता पर ज़ोर देनेवाली इतिवृत्तात्मक पद्धति अपनायी गयी । स्थूल-सौंदर्य के आकर्षण में ही संकुचित न रहकर आत्मा की खोज में भी तत्कालीन कुछ तरुण कवि तल्लीन हुए । तन-मन को आत्मा से पृथक न मानकर उन्होंने अनुभूति की सार्वभौमिक अनुरूपता पर विचार किया ।[1] इस प्रकार जब कवि-कलाकार आत्मान्वेषी हो गये तब सूक्ष्मता की ओर भी उनका मोह बढ़ गया । तरुण कलाकारों के इस तीव्र मोह को डॉ० नगेन्द्र जैसे आलोचकों ने क्रांति के परिवेश में देखा और छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह'[2] कहा । छायावाद की सूक्ष्म-चित्रण-पद्धति का महत्व डॉ० नामवरसिंह ने भी स्वीकार किया है । (3)

स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ज़ोर पकड़ा तो 'बाह्य उपाधि से हटकर आंतर हेतु की ओर कवि-कर्म प्रेरित हुआ ।''[4] इसलिए 'बाह्यात्मकता से अधिक अन्तर्दर्शन की प्रवृत्ति छायावाद की मुख्य विशेषता'[5]

- -

1. जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला के पत्र, पृ० 11
2. डॉ० नगेन्द्र : सुमित्रानंदन पंत, पृ० 2
3. डॉ० नामवरसिंह: छायावाद, पृ० 17
4. उद्धृत: जयशंकर प्रसाद : प्रसाद काव्य कोश, पृ० 227
5. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल. आधुनिक काव्यधारा पृ० 170

मानी गयी । परंतु प्रतिष्ठित लेखकों की ओर से इस नई शैली का उचित स्वागत न हुआ । अप्रत्याशित विरोध भी तब के आचार्यों से हुआ तो यह नई पद्धति क्रांति का रूप धारण कर गयी । द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों की कमियों को पाटने में भी नये कलाकार उत्सुक रहे ।

1.4.2 उन्मुक्त शृंगारवर्णन :

द्विवेदी काल का अति आदर्शवाद कृत्रिम तो अवश्य था । सरस्वती के माध्यम से ही नहीं 'विशाल भारत' जैसी अन्य पत्रिकाओं के द्वारा भी आदर्शवाद का प्रचार होता रहा । अधिकतर कवि कलाकार उसके समर्थक थे । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह थोथी नैतिकता हानिकारक तथा अस्वाभाविक सिद्ध हुई । अतः उसे तोड़ना नये कलाकारों के लिए आवश्यक हो गया । उन्मुक्त शृंगार वर्णन नयी धारा की मुख्य प्रवृत्ति बन गया । लेकिन यह शृंगार - भावना रीतिकालीन शृंगारिकता से एकदम भिन्न है । यह सीमा का उल्लंघन नहीं करती, अश्लीलता का स्पर्श होने नहीं देती । इसलिए छायावादी काव्यों में शृंगार वर्णन उदात्त बन पड़ा है । उनका यह शृंगार रूढ़िवादिता से मुक्त है ।

सौंदर्य वर्णन के लिए मुख्य रूप से छायावादियों ने नारी और प्रकृति को चुन लिया है । निर्मल सौंदर्य का उद्घाटन करने के लिए उन्होंने प्रकृति का आश्रय लिया; प्रकृति में नारी की चेष्टाओं को देखने का प्रयास किया । (1) प्रणय व्यापार के लिए आवश्यक सभी साधन छायावादी कवि प्रकृति से ही चुन लेते हैं । ऐसे अवसरों पर वे प्रकृति से प्रतीक ग्रहण कर नर-नारियों के भाव उनमें भर देते हैं । इसकी सुविधा यह कि एक ओर प्रतीक - विधान से

---

1. 'संध्यासुंदरी' निराला रचनावली -1, संपा0 नंद किशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0 1983, पृ0 65

भाव अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से प्रेषित किया जाता है तो दूसरी ओर कवि अतीत - कथन से बच भी जाता है । 'जुही की कली '
दृष्टांत है : ''निर्दय उस नायक ने / निपट निठुराई की / कि झोंकों
की झड़ियों से / सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली, /
मसल दिये गोरे कपोल गोल : / चौंक पड़ी युवति - / चकित
चितवन निज . चारों ओर फेर , / हेर प्यारे को सेज-पास, /
नम्रमुखी हँसी-खिली, / खेल रंग प्यारे संग ।'' (1)

1.3. 3 राष्ट्रीय - भावना :

भारतेन्दु-युग से लेकर राष्ट्रीय-जागरण का स्वर काव्य में मुखरित होता आ रहा था, लेकिन छायावादी युग में यह स्वर अत्यधिक स्पष्ट हो गया । प्रसाद, निराला माखनलाल चतुर्वेदी आदि की कविताओं में देशप्रेम का सुंदर चित्रण हुआ है । प्रसाद के नाटकों की मूल-प्रेरणा राष्ट्र-प्रेम ही है । उनके नाटकों में जो गीत आते हैं वे अधिकतर राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत हैं । निराला राष्ट्र की सेवा करने का प्रण लेकर ही काव्य-क्षेत्र में उतरे हैं : ''वन्दूँ मैं अमल कमल, —
चिर सेवित चरण युगल —
शोभामय शान्ति निलय पाप ताप हारी,
मुक्तबंध, घनानन्द मुद मंगलकारी ।।
अधिर - निज चकित भीत सुन भैरव वाणी ।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ।। '' (2)

---

1. 'जुही की कली,' निराला रचनावली - 1, पृ० 31– 32

2. 'जन्मभूमि' (सन् 1920) निराला रचनावली -1, पृ० 29

राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता की मूल प्रेरणा देश भक्ति है, देश भक्ति में समन्वित उत्साह व्यक्ति से विस्तार पाकर समष्टि तक पहुँचता है । "देशभक्ति में 'स्व' का वृत्त समस्त देश और उसके निवासियों तक विस्तृत हो जाता है ।" (1) परंतु पूर्ववर्ती कविता की वीर-भावना में शत्रु - संहार का जो उत्साह दिखाई देता था, आधुनिक राष्ट्रीय - कविता में उसका अभाव है । इसमें आक्रमण की भावना से बढ़कर बलिदान की भावना अधिक है । शत्रु - संहार करने का नहीं, अपना शीश देने का आह्वान ही ऐसी कविताओं में मिलता है :

"रक्त है ? या है नसों में क्षुद्र पानी !
जाँच कर, तू शीश दे दे कर जवानी ।" (2)

मैथिली शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी एवं माखनलाल चतुर्वेदी के स्वर में स्वर मिलाकर गा रहे हैं । लेकिन निराला अलग दृष्टिकोण अपनाकर पश्चिम की शक्ति से मुकाबले भारतवासियों को 'गीता' की शक्ति समझा रहे हैं :

"योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं —
गीता है, गीता है —
स्मरण करो बार-बार -
जागो फिर एक बार ।" (3)

- -

1. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० 22
2. माखनलाल चतुर्वेदी : 'जवानी,' हिमकिरीटिनी, भारती भंडार, प्रयाग, तृतीय संस्करण, संवत् 2013, पृ० 113
3. "जागो फिर एक बार - 2, 'निराला रचनावली -1, पृ० 142

1.3.4 प्रकृति चित्रण :

द्विवेदी-युग में भी प्रकृति-चित्रण पर काफी ध्यान दिया जाता था। पर उनकी प्रकृति चेतनाहीन और निर्जीव है। छायावादियों के लिए प्रकृति कोई जड़ पदार्थ नहीं। वह मानव के सुख दुःख की सहभागिनी है। प्रकृति में चेतना देखने तथा प्रकृति को प्रतीक - रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति भारत में प्राचीन काल से ही चलती आ रही थी। लेकिन छायावाद युग में यह प्रवृत्ति अलौकिक क्षेत्र से हटकर लौकिक क्षेत्र में आ टिकी और साधारण स्त्री-पुरुषों, प्रेमी-प्रेमिकाओं के प्रतीकों के रूप में प्राकृतिक वस्तुएँ स्वीकृत की गयीं। ''छायावाद में प्रकृति का चित्रण नहीं, वरन् प्रकृति के स्पर्श से मन में जो छाया-चित्र उठे, उनका चित्रण है। x x x x वह मन की कुंठित वासना ही है जो अवचेतन में पहुँचकर सूक्ष्म रूप धारण कर प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा अपने को व्यक्त करती है।'' (1)

इस अवस्था में पाठक भी काफी सतर्क हो गये। उनकी दृष्टि भी अधिक पैनी हो गयी।

प्रकृति ही छायावाद का प्राण है।(2) अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों के अनुसार ईश्वर ने मानव-मन को प्रभावित करने की दृष्टि से ही प्रकृति को इतना सुंदर बना दिया था।(3) छायावादी कवियों को भी प्रकृति से ही काव्य रचने की प्रेरणा तथा सामग्रियाँ मिली हैं। 'कवि प्रकृति में मिल जाता है, प्रकृति उसमें मिल जाती है'।(4) सुमित्रानंदन पंत तो प्रकृति के सुकुमार कवि कहे गये। जयशंकर प्रसाद ने प्रकृति में विराट

- -

1. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० 17
2. गंगाप्रसाद पांडेय : छायावाद और रहस्यवाद, राम नारायण लाल, इलाहाबाद, 1950 पृ० 33
3. Nature meant to the Romantics the external phenomena of the natural world and the influence of these on the spirit of man. They saw Nature as a direct emanation from God. Its beauty was divinely intended to move mans soul, and exalt him to new heights of virtue, by bringing him into communion with God." - S. H. Burton: The criticism of poetry

चेतना का आभास पाया । निराला प्रकृति को वैसे मानव ही मान बैठे । अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए उन्होंने प्रकृति से सुंदर, - असुंदर प्रतीकों को ग्रहण किया है । डॉ० विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने 'जुही की कली' के प्रेमी पवन में निराला के प्रतिरूप को ही देखा है ।(1) महादेवी के गीतों में प्रकृति प्रियतम की ओर संकेत करती है । छायावादी-काव्य प्रकृति की आत्मा तक पहुँचता है । उसके अनंत रूपों तथा सौन्दर्य का वह उद्घाटन करता है । 'शेफालिका' की पंक्तियाँ पाठकों के हृदय में एक नई दुनिया बना लेती है :

''बंद कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन-उभार ने
पल्लव - पर्यंक पर सोती शेफालिके ।
मूक आह्वान-भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के । '' (2)

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत लिखते हैं –

''देखता हूँ जब, उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये ! भर- भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को ।

- -

1. डॉ० विश्वंभरनाथ उपाध्याय : महाकवि 'निराला' काव्यकला और कृतियाँ, पृ० 256

2. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : निराला रचनावली-1, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1983, पृ० 135.

नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर
सरकती है सत्वर,
अकेली आकुलता-सी, प्राण !
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात । '' (1)

1·3 5 मुक्ति की कामना :

छायावाद की मूल-प्रेरणा मुक्ति की कामना है । काव्य की भावभूमियों तथा रंगशिल्पों में द्विवेदी काल में जो नियंत्रण था, उससे मुक्त होने की चाह नये कलाकारों में प्रबल होती गयी । साहित्यिक रूढ़ियों और वर्णिक छंदों का बंधन असह्य मालूम पड़ा तो उनसे मुक्ति अनिवार्य प्रतीत हुई । ऐसी मुक्ति के लिए तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थिति भी साहित्यिकों को प्रेरित करती रही । एक ओर देश की स्वाधीनता के लिए आवाज़ उठायी जाती थी तो दूसरी ओर साहित्यिक रूढ़ियों तथा अन्य बंधनों से साहित्य की मुक्ति का आह्वान था । पुरोहितों तथा साहित्यिकों के बीच वैयक्तिक स्वतंत्रता का मोह भी विद्यमान था । मुक्तिकामी कवि प्रचलित साहित्यिक रूढ़ियों का विरोध करने लगा । छायावाद का वस्तुपक्ष तो प्रबल था ही उसके अनुरूप कलापक्ष में भी क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे । वर्णिक छंदों के स्थान पर मात्रिक छंदों का प्रचलन हुआ । मात्रिक छंदों में भी मात्राओं को घटा-बढ़ाकर नये-नये

---

1. सुमित्रानंदन पंत : 'आँसू', पल्लव, पृ० 64

प्रयोग किये गये । इस क्षेत्र में निराला का मुक्त छंद-विधान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । निराला ने परिमल की भूमिका में लिखा —''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति होती है । मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है ।''(1) छन्दोबद्ध कविता को उपवन की बंधी प्रकृति तथा छन्दोमुक्त कविता को निराला ने वन्य-प्रकृति कहा है ।(2)

1.3.6 वेदना और करुणा :

छायावादी काव्य वेदना और करुणा का काव्य है । प्रसाद के 'आँसू' पंत के 'आँसू', 'उच्छ्वास', 'ग्रंथि' निराला के 'सरोजस्मृति' तथा 'अणिमा' 'अर्चना', 'आराधना' के गीतों में वेदना तथा करुणा के चित्र अंकित हैं । महादेवी तो सर्वाधिक वेदना-गायिका के रूप में विख्यात हैं । नैराश्य ही उनका एकमात्र संगी है :

''दुःख मेरा जन्म था
    अवसान है सुख की सबेरा
  प्राण आकुल के लिए
    संगी मिला केवल अंधेरा ।।'' (3)

निराला की कविता में वेदना की सहज-गंभीर अभिव्यक्ति हुई है । कारण, कवि के जीवन-संघर्ष की पीड़ा ही उनके काव्य में अभिव्यक्ति पाती है । 'अणिमा' के गीतों में कवि के आत्म-पीड़न का ऐसा हृदय-विदारक चित्रण मिलता है कि वे अपनी मृत्यु का भी निकट-दर्शन करते मालूम पड़ते हैं -

---

1. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : परिमल की भूमिका, पृ० 15
2. वही, पृ० 15
3. महादेवी वर्मा : यामा, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 2018, पृ० 224.

''मैं अकेला, मैं अकेला
देखता हूँ आ रही मेरे गगन की सांध्यवेला।'' (1)

इसका तात्पर्य यह नहीं कि निराला की दृष्टि केवल अपने वैयक्तिक दुःखों पर ही केन्द्रित रही। सचमुच उनकी कवि-प्रतिभा समाज के हर पहलू को छूती थी। डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव लिखते हैं - ''उनकी दृष्टि प्रतिक्षण पर थी, समाज के हर पहलू पर थी। न केवल लाठी टेककर चलनेवाला भिक्षुक, चिलचिलाती धूप में पत्थर तोड़ती मजदूरिन और जीर्ण शरीरवाले किसान उनकी ममता के भागीदार हैं, वरन् सामाजिक तिरस्कार की पात्र विधवा, रूढ़ियों की चक्की में पिसता हुआ मध्यवर्ग और अपनी निजी सीमाओं में घिरा और पंगु बने जन-साधारण के प्रति भी वे उतने ही करुणार्द्र रहे हैं।'' (2)

आर्थिक कष्ट से आक्रांत समाज की चिंता उन्हें हमेशा सताती थी। इसी कारण पत्थर तोड़नेवाली मजदूरिन की हृत्तंत्री के तार वे सुन सके थे, लाठी टेककर चलनेवाले भिक्षुक के दर्शन मात्र से उनके 'कलेजे के दो टूक' हो गये थे, सड़क के किनारे पड़ी पगली को 'देवी' समझ उनकी सेवा में लग गये थे।

छायावादी काव्य में चित्रित वेदना और करुणा समस्त मानव जाति की मुक्ति चाहती है।

1.3.7. मानवता की प्रतिष्ठा :
मानव और मानवता पर बल देते हुए ही छायावाद

1. निराला रचनावली - 2, पृ० 42
2. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव : निराला का काव्य, पृ० 214

अपनी श्रद्धा है । पंत की दृष्टि में मानव सुंदरतम सृष्टि है । वे प्रकृति को मानव हृदय की प्रतिछाया ही मानते हैं । मानव को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए निराला ने उसे ब्रह्मत्व भी प्रदान किया : '' तुम हो महान, तुम सदा हो महान / है नश्वर यह दीन भाव / कायरता कामपरता/ब्रह्म हो तुम / पद रज भर भी है नहीं/ पूरा यह विश्व भार-/जागो फिर एक बार ।''(1)

किसी आंदोलन से प्रेरित होकर या फैशन मानकर उन्होंने मानवता का पक्ष नहीं लिया । मानवता का समर्थन उनकी अंतः प्रेरणा का परिणाम था । ''निराला के मानवतावाद को किसी आनुषंगिक विषय के रूप में न लेना चाहिए । वह किसी आंदोलन, किसी कार्यक्रम की प्रतिध्वनि नहीं है, उसकी अन्विति स्वतंत्र है, यद्यपि प्रेरणा के रूप में वह अद्वैतवादी दर्शन से संबंद्ध है । निराला के काव्य का जनवादी स्वर बिलकुल मानवतावादी है । हम जनवाद को मानववाद से पृथक करके देख भी नहीं सकते हैं । वैसे प्रसाद भी मानवतावादी दार्शनिक हैं । लेकिन उनमें जनवादी स्वर नहीं है ।''(2) डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय भी निराला को मुख्यतः

मानवतावादी कवि मानते हैं । (3)

1·3·8· 'मैं' की अभिव्यक्ति : मनोवैज्ञानिक अध्ययन के परिणामस्वरूप अन्यों को ही नहीं अपने मन की भी सूक्ष्म वृत्तियों को परखने की क्षमता नये कलाकारों को प्राप्त हुई । कवि स्वभावतः अन्तर्मुखी तथा भावनात्मक होते हैं । वे सुख-दुःख, आशा-निराशा की भावनात्मक पद्धति के अनुसार व्यक्त करने लगे तो 'स्व'

1· 'जागो फिर एक बार-2', निराला रचनावली-1, पृ0 143

2· धनंजय वर्मा : निराला काव्य पुनर्मूल्यांकन, विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1973, पृ0 54

3· डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1972, पृ0 99

अथवा आत्मनिष्ठ अभिव्यक्ति छायावाद की एक मुख्य प्रवृत्ति बन गयी । छाया-वादी 'स्व' की विशेषता इस बात में है कि इस 'स्व' के भीतर 'सर्व' निहित है और सामाजिक मंगल ही इसका ध्येय है । इस पद्धति से कलाकार दूसरों के सुख- दुःखों, हर्ष- शोकों को अपने मान लेते हैं और हृदय में बढ़नेवाली उनकी छाया को कविता का रूप प्रदान करते हैं :

''मैंने मैं शैली अपनायी
देखा एक दुःखी निज भाई ।
दुःख की छाया पड़ी हृदय में,
झट उमड़ वेदना आयी । '' (1)

1.3.9. शिल्प :

1.3.9.1. लाक्षणिकता :

शिल्पविधि की दृष्टि से छायावादी शैली की सबसे बड़ी विशेषता उसकी लाक्षणिकता है । यह लाक्षणिकता अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों से हिन्दी कवियों ने अपनायी । (2) इसी लाक्षणिक प्रयोग द्वारा द्विवेदी युग की अभिधात्मकता से बचकर छायावाद नये क्षेत्र में आ गया । छायावाद की सभी कृतियों में लाक्षणिक अभिव्यंजना मिलती है । 'कामायनी' में अप्रस्तुतों द्वारा ही प्रसाद अमूर्त सत्ता को मूर्त रूप प्रदान करते हैं ।

''कोमल किसलय के अंचल में ? नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी/ गोधूली के धूमिल पट में/ दीपक के स्वर में दिपती-सी मंजुल स्वप्नों की

---

1. 'अधिवास', निराला रचनावली - 1, पृ0 35
2. कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली -6, प्र.सं. 1963, पृ0 175

विस्मृति में/ मन का उन्माद निखरता ज्यों/ सुरभित लहरों की छाया में/ बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों/वैसी ही माया में लिपटी /अधरों पर उँगली धरे हुए/ माधव की सरस कुतूहल का/ आँखों में पानी भरे हुए । '' (1)

1.3.7.2 प्रतीक योजना :

छायावादी शिल्प का दूसरा प्रमुख तत्व उसका प्रतीक-विधान है । छायावादी कवियों ने भावों को व्यंजित करने में प्रचलित शब्दों को असमर्थ पाया । प्रतीकों तथा बिंबों को अपनाकर उन्होंने इस कमी को पाट दिया । प्रतीकों और रूपकों से समन्वित शैली अपनायी गयी । छायावाद के सभी कवियों ने प्रतीकों से काम लिया है लेकिन प्रकारान्तर तो अवश्य है । प्रसाद ने देहभोगिकवर्ग, निराला ने सांस्कृतिक वर्ग तथा पंत और महादेवी ने प्रकृत वर्ग के प्रतीकों को ही अधिक आग्रह के साथ अपनाया है । उदाहरण के लिए निराला का एक सांस्कृतिक प्रतीक है -

''देखी धंस और उभार
उसमें रुधिर धुना थी । '' (2)

1.3.7.3 बिंब-विधान :

छायावादी शैली का तीसरा प्रमुख तत्व है बिंब-योजना । शब्दों से बनाये गये चित्रों को ही बिंब कहते हैं । (3) काव्य की कलात्मकता को बढ़ाने के लिए इस काल के कवियों ने शैली में चित्रात्मकता को ग्रहण किया है । शब्दों से छोटे छोटे चित्र तैयार करके वे बिंब की सृष्टि करते हैं । छायावाद का रचना - क्षेत्र मुख्य रूप से प्रकृति होने के कारण अधिकांश बिंब

- -

1. जयशंकर प्रसाद : 'लज्जा सर्ग', कामायनी , भारती भंडार, अष्टम संस्करण सं0 2010 वि0 पृ0 97
2. 'आवाहन', निराला रचनावली-1, पृ0 73
3. C.Day Lewis: The Poetic Image, Jonathan Cape, London, Seventh Impression, 1953, page: 18

प्रकृति से गृहीत हैं । बिंब की विशेषता उसकी दृश्यात्मकता है, यह दृश्यात्मकता के वस्तुप्रधान होने पर विमूर्त बिंब, गठन पूर्ण होने पर सान्द्र बिंब और अस्पष्ट रहने पर भाव-बिंब की सृष्टि होती है । भावबिंब निराला की कविता को गंभीर तथा उदात्त बना देता है :

''तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया । '' (1)

1.3. 9.4. छंद-विधान : छायावाद-काल में छंदों के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग हुए । मात्रिक छंदों का प्रयोग करने के साथ साथ छंद-विधान में कवियों ने स्वच्छंदता का परिचय दिया । समछंद, अर्द्धसमछंद और विषमछंदों का प्रयोग हुआ । ये नये छंद लयाधार से संबंधित हैं । अतुकांत और मुक्तछंद को भी छायावादी काव्य में स्थान मिला । मुक्तछंद को कैलाश वाजपेयी विषमछंद का ही एक अंग मानते हैं । (2) मुक्तछंद का मूलाधार लय है । मुक्तछंद के आधार पर चरण-योजना की बात में कवि स्वतंत्र है । चरणों को वह इच्छानुसार घटा-बढ़ा सकता है । ''अंत्यानुप्रास का भी बंधन मुक्तछंद में नहीं होता ।'' (3) लेकिन निराला सहज रूप से आनेवाले अंत्यानुप्रासों के विरोधी नहीं है :

''आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आयी याद कांता की कम्पित कमनीय गात . . .'' (4)

- -

1. 'बादल राग-6', निराला रचनावली-1, पृ0 123
2. कैलाश वाजपेयी: आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ0 164
3. वही, पृ0 164
4. जुही की कली, निराला रचनावली-1, पृ0 31

1.3.9.5. गीति तत्व :

छायावाद युग के गीतों पर भारतीय भक्तिगीतों की अपेक्षा अंग्रेज़ी तथा बंगला के गीतों का ज्यादा प्रभाव रहता है। फिर भी भारतीय गीतों के कुछ लक्षण छायावादी गीतों में द्रष्टव्य हैं। संपूर्ण गीत के अन्तर्भाव को व्यक्त करने वाली पंक्ति से ही छायावादी गीतों का आरंभ होता है। प्रत्येक चरण के अंत में गीत की प्रारंभिक पंक्ति दोहरायी जाती है। इस प्रकार के गीत रचने में निराला अग्रणी हैं :-

''देवि, तुम्हें क्या दूँ,
क्या है, कुछ भी नहीं, हो रहा व्यर्थ —
साधना भार। (1)

प्रत्येक चरण के बाद 'मैं क्या दूँ' दोहराया गया है और पहली पंक्ति सारी कविता का अन्तर्भाव व्यक्त कर देती है।

इन गीतों का आकार छोटा भी सकता है और बड़ा भी। एक से लेकर अनेक चरणों तक इसका विस्तार हो सकता है।

गीतों तथा प्रगीतों द्वारा छायावादी कवि अपनी सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति कर सके हैं। परिवर्तनकामी निराला ने इस क्षेत्र में भी कई मौलिक प्रयोग किये। कम-से-कम शब्दों में भावाभिव्यक्ति करने में निराला सानी नहीं रखते। ध्वनिपूर्ण शब्दों के प्रयोग के कारण निराला में नाद-सौंदर्य अधिक रहता है। 'एक और

---

1. 'क्या दूँ' निराला रचनावली - पृ0 95

जहाँ वे मुक्तछंद में सभी बंधनों को तोड़ते हैं वहीं दूसरी ओर गीतिका के गीतों में छंद और ताल के बंधनों को स्वीकार कर गीतों को नया जामा पहनाते हैं ।" (1)

प्रसाद तन्मयता के कवि हैं । प्रसाद तथा पंत दोनों शब्द-पारखी हैं, शब्दों को चुन-चुनकर कविता में रखते हैं, लेकिन पंत में गीति-प्रतिभा बहुत कम है । गीतों की सृष्टि के लिए अपेक्षित वैयक्तिक तीव्रानुभूति की कमी ही इसका कारण है । महादेवी का सारा काव्य ही गीति-पद्धति पर रचा हुआ है । प्रायः पाँच या छः चरणोंवाले गीतों में सफलता पूर्वक अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को उतार सकी हैं ।

1.3. 9.1 शब्द-चयन :

शब्दों के अर्थ तथा नाद पर छायावाद-काल में विशेष ध्यान दिया गया । शब्दों के चुनाव में पंत तथा निराला सबसे आगे रहे । पंत शब्दों की ध्वनि पर अधिक आकृष्ट हुए तो निराला अर्थ गाम्भीर्य पर । नवीन शब्दों के प्रयोग और क्रियापदों की योजना में जहाँ पंत प्रचलित भाषा-संबंधी नियमों का उल्लंघन नहीं करते वहीं निराला व्याकरण की भी परवाह नहीं करते । क्रियापदों को एकदम छोड़ देते या लिंग-नियम का भंग करते वे नज़र आते हैं । पंत ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी बड़ी मात्रा में प्रयोग किया है । गुम्फित समास-प्रधान शैली के वे विरोधी मालूम पड़ते हैं ।

निराला ने भाषा के सामान्य तथा दीर्घ-संयुक्त-शब्दों का

---

1. वीणा शर्मा : निराला की काव्य-साधना, पृ० 113

प्रयोग किया है । शुरू से ही उनकी शैली दो धाराओं से होकर बह चली है । एक साधारण बोलचाल की शैली है तो दूसरी शैली प्रौढ़ गंभीर पदों तथा ध्वनियों से युक्त है । 'उनके मुक्त पद-विधान में एक ऐसा ओज है जो छायावाद के अन्य कवियों में नहीं मिलता ।'' (1) अप्रचलित शब्दों के प्रयोग में उन्हें विशेष रुचि है । क्योंकि किसी शब्द को वे हेय नहीं मानते । शब्दों में वैयक्तिक अर्थों का आरोप करने के कारण निराला की कविता कहीं कहीं अस्पष्ट और दुरूह हो गयी है ।

कोमल भावों की व्यंजना में प्रसाद ही सबसे अधिक सफल हैं । प्रसाद में अनुभूति की गहराई है । अतएव उनके शब्द-चित्र पंत से अधिक प्रभावशाली हैं ।

महादेवी ने विशिष्ट पदों का यथोचित प्रयोग करके छायावादी शैली के अनुरूप ही अपनी भाषा को गढ़ा है । गीतात्मकता पर अधिक ज़ोर देने के कारण छंदों तथा ध्वनियों का विशेष योग महादेवी की कविता में हुआ है । वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म कोमल कल्पनाओं से शब्द चित्र तैयार करती हैं ।

संक्षेप में, निराला की शैली उदात्त और क्लिष्ट, पंत की शैली मधुर और प्रसाद तथा महादेवी की शैली ललित है । (2)

---

1. कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ० 177

2. डॉ० भगीरथ मिश्र : काव्य शास्त्र, पृ० 208-209

1.4 परिभाषाओं की परख:

ऊपर जिन प्रवृत्तियों का विवेचन हुआ है उनके आधार पर ही आलोचकों ने छायावाद की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ की हैं। मुकुटधर पाण्डेय की 'श्रीशारदा' में प्रकाशित निबंधमाला ही छायावाद पर लिखी सर्वप्रथम आलोचना है। छायावाद की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा था : ''छायावाद एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असंभव है, क्योंकि ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर सांकेतिक चिह्नमात्र हुआ करते हैं।... छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं। उनकी रचना की संपूर्ण विशेषताएँ उनकी इस दृष्टि पर ही अवलंबित रहती है।...उनकी कविता देवी की आँखें सदैव ऊपर की ही ओर उठी रहती है, मर्त्य-लोक से उसका बहुत कम संबंध रहता है। वह बुद्धि और ज्ञान की सामर्थ्य-सीमा को अतिक्रमण करके मन प्राण के अतीत लोक में ही विचरण करती रहती है। यहाँ छायावादिता से आध्यात्मिकता तथा धर्म, भावुकता का मेल होता है।''(1)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार छायावाद का कलापक्ष ही प्रबल है, अर्थभूमि अनिर्दिष्ट है। अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विशृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को साध्य माननेवाली इस नयी प्रवृत्ति के आविर्भाव से हिन्दी का प्रसारोन्मुख काव्यक्षेत्र बहुत कुछ संकुचित हो गया।'(2)

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी छायावादी काव्य में समस्त मानव अनुभूतियों की व्यापकता का दावा करते हैं। ''मानव अथवा प्रकृति के

---

1. उद्धृत: प्रसाद काव्य कोश, सं0 सुधाकर पाण्डेय, पृ0 230
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, बीसवाँ संस्करण, संवत् 2019 वि0, पृ0 621.

पूर्ण किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है । '' (1) यह नवीन काव्य यानी छायावादी काव्यधारा भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार नहीं करती ।

वाजपेयी की दृष्टि में छायावाद बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक प्रगति की प्रतिक्रिया है । (2)

इस संबंध में छायावाद के प्रथम प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद का अभिमत है - ''छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं । '' (3)

महादेवी वर्मा ने सर्ववाद या सर्वात्मवाद को छायावाद का उद्गम-स्रोत माना है । (4) प्रकृति में प्राण-चेतना की भावना करना ही सर्वात्मवाद है । लेकिन डॉ० नगेन्द्र उसके विपरीत छायावाद को बौद्धिक युग की सृष्टि स्वीकार करते हैं । (5) उनका कहना है कि छायावादी कवि शुरू-शुरू में सर्वात्मवाद की आध्यात्मिक अनुभूति से प्रेरित न थे । उन्होंने अपनी वासना को सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष अवश्य बनाया है लेकिन छायावाद पर आध्यात्मिक अनुभूति का आरोप करना असंगत है । (6)

- -

1. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : आधुनिक काव्य: रचना और विचार, पृ० 187
2. उद्धृत: आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी : प्रसाद काव्य कोश, पृ० 226
3. श्री जयशंकर प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध , पृ० 128
4. श्रीमती महादेवी वर्मा : साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966, पृ० 83, 92, 105
5. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, 1979, पृ०20

छायावादी कवियों में आरंभ से ही जिस शालीनता और संयम का दर्शन होता है वह उनके नैतिक परिष्कार का द्योतक है । इसी प्रकार डॉ० नगेन्द्र छायावाद को केवल बाह्य साम्य के आधार पर योरोप की रोमांटिक-काव्य-प्रवृत्ति से अभिन्न मानने के पक्ष में भी नहीं है । सर्वथा भिन्न परिस्थिति में, भिन्न देश और काल में जन्मी हिन्दी की नयी प्रवृत्ति को उन्होंने योरोप के रोमांटिक संप्रदाय से अधिक अन्तर्मुखी पाया: ''वहां के रोमांटिक काव्य का आधार अपेक्षाकृत अधिक निश्चित और ठोस था, उसकी दुनिया अधिक मूर्त थी उसकी आशा और स्वप्न अधिक निश्चित और स्पष्ट थे, उसकी अनुभूति अधिक तीक्ष्ण थी । छायावादी की अपेक्षा वह निश्चय ही कम अन्तर्मुखी एवं वायवी था । '' (1)

डॉ० नामवरसिंह के अनुसार पुरानी रूढ़ियों तथा विदेशी पराधीनता से मुक्ति चाहनेवाली राष्ट्रीय-जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही छायावाद है : ''. . छायावाद उस राष्ट्रीय-जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से । इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गयी और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ-विस्तार होता गया '' । (2)

डॉ० रामविलास शर्मा भी बहुत कुछ डॉ० नामवरसिंह की परिभाषा से सहमत हैं : 'छायावाद भारत में अपूर्ण सामाजिक क्रांति की आकांक्षा का साहित्य है । वह वर्णगत उत्पीड़न का विरोधी, पुरुष और नारी की समानता का समर्थक, धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का

- -

1. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, 1979, पृ०20
2. डॉ० नामवरसिंह: छायावाद, पृ० 19

विध्वंसक साहित्य है । स्वभावतः वह जीवन की स्वीकृति का साहित्य है :'' (1)

छायावादी, संसार को दुःख का कारण नहीं मानते, संसार को मिथ्या भी नहीं कहते । वे दुःखों की करुणा का समर्थन करते हैं, उनके दुःखवाद का नहीं । ''वह व्यावहारिक वेदान्त के समर्थक हैं, मायावाद के नहीं ।'' (2)

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों से स्पष्ट है कि 'छायावाद' निरी कल्पना पर आधारित साहित्य नहीं है । वह भौतिकता की उपेक्षा कर नहीं सकता । अवसाद तो उसमें आ गया है लेकिन छायावादी कवि उस अवसाद से होकर उससे पार होना चाहता है ।

शान्तिप्रिय द्विवेदी की दृष्टि अधिक भावनापरक है: ''इतिहास के संतप्त वातावरण में मलयानिल की शीतल सुगंधित सांस-छायावाद ।'' (3)

छायावाद की ऐसी कई परिभाषाएं मिलती हैं ; लेकिन इनमें से कोई भी सर्वमान्य नहीं । छायावाद को मायामय सूक्ष्म वस्तु मानकर मुकुटधर पाण्डेय ने उसकी अस्पष्टता की ओर इशारा किया है । छायावाद की कल्पनाशीलता का परिचय उनकी व्याख्या में मिलता है । परंतु यह परामर्श कि 'मर्त्यलोक से इसका बहुत कम संबंध रहता है' अयुक्तिपूर्ण है । छायावाद की स्वच्छंद प्रवृत्ति का उल्लेख करते समय

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्यसाधना-2, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1972, पृ० 560-561.
2. वही
3. शान्तिप्रिय द्विवेदी : वृन्त और विकास, पृ० 38

उनका ध्यान आध्यात्मिकता पर टिक गया है, व्यापक परिप्रेक्ष्य में वे उसका निरूपण नहीं करते । इस कमी की पूर्ति डॉ० नामवरसिंह की व्याख्या में हुई है । वे राष्ट्रीय-जागरण से छायावाद का संबंध जोड़कर उसे वास्तविक दुनिया की वस्तु सिद्ध करते हैं । उसमें वे विदेशी पराधीनता तथा सामन्ती रूढ़ियों में मुक्ति पाने का आग्रह देखते हैं । डॉ० रामविलास-शर्मा इससे भी आगे बढ़कर छायावाद को 'जीवन की स्वीकृति का साहित्य' मानते हैं । लेकिन उनकी दृष्टि मुख्यतः से निराला तथा प्रसाद के साहित्य पर अड़ी हुई है । वाजपेयी की व्याख्या भी छायावाद का पूरा-पूरा चित्र सामने नहीं लाती । मानव तथा प्रकृति में आध्यात्मिक छाया देखने की प्रवृत्ति छायावाद से बढ़कर रहस्यवाद के अनुकूल है । शांतिप्रिय द्विवेदी की भावनात्मक परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है । विचार-शृंखला को परिभाषित करने में भावनात्मक उक्तियाँ असमर्थ हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद की ये व्याख्याएँ स्वयंपूर्ण नहीं हैं । संभवतः इसी कारण डॉ० नामवरसिंह लिखते हैं- ''छायावाद की मनमानी परिभाषा करने की अपेक्षा उसके ऐतिहासिक और व्यावहारिक अर्थ को स्वीकार करना अधिक वैज्ञानिक है । '' (1)

उपर्युक्त विवेचन से छायावाद की निम्न लिखित विशेषताएँ सामने आती हैं :

1. छायावादी काव्यधारा की अंतश्चेतना भारतीय है ।
2. अंग्रेज़ी साहित्य की रोमांटिक काव्यधारा का उभरा प्रभाव भी उस पर है ।

---

1. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद , पृ० 19

3. छायावाद स्वच्छंद प्रवृत्ति का है। परंतु पश्चिम की रोमैंटिक काव्यधारा से यह अधिक अंतर्मुखी एवं वायवी है।

4. छायावादी कवि अपने देश के चिंतन से जुड़े हुए हैं। देश की पराधीनता तथा सामाजिक रूढ़ियों का वे विरोध करते हैं।

5. 'यह जीवन की स्वीकृति का साहित्य है। भौतिकता से इसका कोई विरोध नहीं।

6. कल्पनाशीलता भी इसकी एक विशेषता है।

7. छायावाद स्थूल से सूक्ष्म -सौंदर्य की छाया प्रस्तुत करता है।

8. छाया शैली के कारण अस्पष्टता भी रहती है। यह अस्पष्टता छायावादी कविता का एक अनिवार्य तत्व है।

9. छायावाद का दृष्टिकोण एकांगी नहीं, वह राग-विराग, सुख-दुःख, अमृत-विष सब का महत्व स्वीकार करता है।

1.5 छायावाद पर आक्षेप :

1.5.1 कल्पना की अधिकता :

छायावादी काव्य कल्पना-प्रधान तो है ही। इस कारण उस पर आक्षेप लगाया गया कि वह वास्तविकता से मुँह मोड़कर वायवी कल्पना में डूबा हुआ है। राजनैतिक दृष्टि से छायावाद-काल संग्राम का काल था। भारत की आत्मचेतना अभी-अभी जगी थी। मोर्चों और स्वप्नों के उन दिनों कवि-कलाकारों को राजनैतिक बंधन का दबाव वर्तमान

में जीने नहीं देता था । स्वर्णिम अतीत के स्मरण तथा उज्ज्वल भविष्य की कल्पना में चैन पाने को वे विवश थे । असंतोष और विद्रोही भावनाओं को बहिःस्फूर्ति के लिए अवसर न मिला तो भावुक कवि अधिक अन्तर्मुखी और कल्पनाशील बन गये । वास्तविक जीवन में जो कार्य असंभव-सा लगा वह स्वप्न या कल्पना में अधिक आग्रह के साथ अपनाया गया, लेकिन छायावादियों की इस कल्पना प्रियता से काव्य, समाज या देश की कोई हानि न हुई, मंगल ही हुआ । इच्छा को मंगलकारिणी सिद्ध करते हुए 'कामायनी' की श्रद्धा मनु को समझाती है :

''काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम । '' (1)

वस्तुतः कल्पना के पुट से ही काव्य का आकर्षण बढ़ता है । कल्पना में यथार्थ वस्तु के सौंदर्य को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने की शक्ति निहित है । यही कला, सृष्टि से भी श्रेष्ठ सिद्ध होती है । निराला की पंक्तियों को ही देखिए । उनकी कल्पना-लता में खिले पुष्पों का सा सौंदर्य वास्तविक पुष्पों में भी नहीं —

''देखता हूँ,
फूलते नहीं हैं फूल वैसे वसंत में
जैसे सब कल्पना की डालों पर खिलते हैं । '' (2)

- -

1. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ0 53
2. 'कवि', निराला रचनावली-1, संपा0 नंदकिशोर नवल, राजकमल, 1983, पृ0 197

''...कल्पना भी 'प्रत्यक्ष' और 'स्मृति' की भांति ज्ञान का अलग क्षेत्र है, यद्यपि वह संभावनाओं के क्षेत्र को अधिक उजागर करती है, वास्तविकता की भूमि को कम । यों कहें, जो वास्तविकता में दुर्लभ है, उसे ही वह संभावनाओं में सर्व-सुलभ बनाती है । '' (1)

गजानन माधव मुक्तिबोध ने 'कामायनी जीवन की पुनर्रचना है', कहकर उस कल्पनाप्रधान काव्य में जीवन का स्पंदन सुना है । (2)

1.5.2 पलायनवादिता :

छायावाद पर एक आरोप यह भी लगाया गया कि यथार्थ की कठोर-भूमि का स्पर्श करने तथा संघर्षमय जीवन का सामना करने की क्षमता के अभाव में कवियों ने पलायनवादिता का आश्रय लिया ।

पलायनवादिता पर विचार करते समय हमारे मन में स्वाभाविक रूप से यह शंका उठ खड़ी होती है कि मनुष्य को अमृत-पुत्र साबित करनेवाले छायावादी कवि कैसे पलायनवादी हो सकते हैं । मृत्यु की विभीषिका को आमने-सामने अनुभव करके ही निराला का स्वर गूंज उठा था -

''मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में
आई हुई, न डरो । '' (3)

---

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र : भूमिका, पृ० 9-10
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : कामायनी : एक पुनर्विचार, पृ० 14
3. 'मरणदृश्य' (1938 ई०) निराला रचनावली-1, पृ० 340

''निराला के संपूर्ण काव्य का प्रमुख स्वर नैराश्यजनक नहीं है। उनका व्यक्तिगत जीवन चाहे व कितना बड़ा दुःखान्त हो उनका काव्य किंचित आशापूर्ण और कुछ कुछ चमत्कारिक ढंग से इस दुःखान्त से लगभग मुक्त है। '' (1)

प्रसाद की 'कामायनी' मानव की निष्क्रियता को या मानव के जड़त्व को प्रोत्साहन नहीं देती ।   संघर्षों से निर्भीक होकर जूझने तथा निष्क्रियता छोड़ कर्मोन्मुख होने की प्रेरणा ही उस विशिष्ट कृति से हमें मिलती है ।

जिस श्रद्धा को अभी अभी हमने इड़ा की महिमा गाते देखा था वही श्रद्धा कुमार और इड़ा को अधिकार सौंपकर अवकाश-ग्रहण के लिए मनु को प्रेरित भी करती है । मनु इसके लिए जल्दी ही तैयार नहीं होते । लेकिन अधिकार-त्याग से रंक हो जाने की आशंका श्रद्धा को जरा भी नहीं : ''प्रिय! अब तक हो इतने शंकित –

देकर कुछ कोई नहीं रंक।(2)

इस अधिकार-त्याग या अवकाश-ग्रहण में संन्यास का भाव देखने की चेष्टा आलोचकों ने की है । परंतु यह असल में मानवीय संस्कृति के विकास को सूचित करता है । ''मनुष्य जीवन में स्वेच्छा से अधिकार-त्याग की भावना विकसित हो जाना मानवीय संस्कृति के विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है । '' (3)

- -

1. दूधनाथसिंह : निराला आत्महन्ता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद 1972, पृ० 33
2. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, दर्शनसर्ग, पृ० 249
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी : कामायनी का पुनर्मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1970, पृ० 39

हिन्दी के छायावाद पर पलायनवादिता का आरोप बहुतकुछ अंग्रेज़ी-रोमांटिक-साहित्य की परिस्थितियों को देखकर ही किया गया है । सी0एम0बोवरा ने रोमांटिक कविता में इस प्रकार के तत्वों का उल्लेख किया था । (1) यहीं से आलोचक भी तदनुरूप छायावाद तथा पलायनवाद के बीच घनिष्टता स्थापित करने की कोशिश करते रहे : ''अध्यात्म की ओर आरंभ से ही छायावादी कवि का झुकाव था और पलायनवाद अध्यात्मवाद की ही एक शाखा है । '' (2)

अध्यात्म का सर्वाधिक आरोप महादेवी की कविता में ही किया जाता है । लेकिन महादेवी भी अध्यात्म की आड़ में अपने वैयक्तिक भावों को ही व्यक्त करती है । इसी कारण डॉ0 शिवकुमार मिश्र ने महादेवी के काव्य को वैयक्तिकता के चरम और एकान्त रूप का प्रतीक माना है । (3)

वस्तुतः छायावादी कवि ऐहिक-जीवन के सुख दुःखों से विमुख नहीं है । नरजीवन से ऊबकर प्रकृति की गोद में जा बैठने का कारण यही कि इस स्वार्थपूर्ण संसार से वांछित स्नेह उन्हें नहीं मिला । प्रकृति उसे परम उदार और सुंदर दिखाई दी :

''नील नभ में शोभन विस्तार
प्रकृति है सुंदर, परम उदार ।
नर हृदय, परिमित, पूरित स्वार्थ,
बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ ।
जहाँ सुख मिला न उससे तृप्ति,
स्वप्न-सी आशा मिली सुषुप्ति । '' (4)

---

1. C.M.Bowra, The Romantic Imagination-P-249
2. डॉ0 हरनारायण सिंह : छायावाद काव्य तथा दर्शन, ग्रंथम, कानपुर, 1964, पृ0 405
3. डॉ0 शिवकुमार मिश्र: नया हिन्दी काव्य, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, 1962, पृ0 71

सुमित्रानंदन पंत ने जग की डाली-डाली पर उगनेवाली कलियों में नवजीवन का दर्शन किया है :

''हाँ, जग की डाली-डाली पर/ जागीं नवजीवन की कलियाँ/मिट्टी में जड़ निद्रा तजकर / खोलीं स्वप्निल पलकावलियाँ। ''(1)

यदि विश्व में नवजीवन की लहरें उठानेवाले इन छायावादी कवियों को पलायनवादी कहना संगत नहीं लगता।

1.5.3 अतिवैयक्तिकता : छायावाद पर तीसरा आरोप यह है कि इस में व्यष्टि की चिंता अधिक है, समष्टि को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। ऐसी कुतर्कीपूर्ण करनेवाले शायद यह सोचते नहीं कि यह व्यष्टि समष्टि की ही छोटी इकाई है और व्यष्टि से ही समष्टि का विकास संभव है। इस आरोप का मुख्य कारण यही है कि छायावादी कवि अपने आग्रह तथा आदर्शों के अनुकूल समाज को नहीं पाता। अपने आग्रह-आदर्शों को समाज के अनुकूल ढालने के बजाय वह समाज से विमुख होकर अपने में ही सिमटने में सुख का अनुभव करने लगता है।(2)

परंतु यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस वैयक्तिकता द्वारा कवि की सामाजिक परिस्थिति का भी बहुत कुछ आभास पाठकों को मिलता है। डॉ० नामवरसिंह ने निराला की वैयक्तिकता में सामाजिक तत्वों को देखकर उसका समर्थन किया है। 'सरोजस्मृति' का अनुशीलन करते हुए उन्होंने लिखा : 'यही केवल आत्मकथा नहीं

- -

1. सुमित्रानंदन पंत :

2. When the romantic discovers that his ideal of happiness works out into actual unhappiness he does not blame his ideal. He simply assumes that the world is unworthy of a being exquisitely organised as himself.

—Will Durant, The history of philosophy p- 345.

है, बल्कि अपनी कहानी के माध्यम से एक-एक कर पुरानी सामाजिक रूढ़ियों और आधुनिक अर्थ-नीतियों पर प्रहार किया गया है।'' (1)

निराला की वैयक्तिकता सामाजिकता के खिलाफ नहीं है। छायावाद के प्रमुख स्तंभों में महादेवी की कविता में ही वैयक्तिकता सीमाओं को छूती है। (2)

वस्तुतः प्राचीन मर्यादा के रक्षकों द्वारा ही छायावादी कविता पर 'अति वैयक्तिकता' का आरोप किया गया था। नैतिक और कम वैयक्तिकता उन्हें अखरने लगी तो उनकी दृष्टि में वह 'अति' हो गयी। परंतु छायावाद की वैयक्तिकता समाज या काव्य के लिए हानिकारक सिद्ध न हुई। तभी तो प्रयोगवादकाल में यह वैयक्तिकता अधिक आग्रह के साथ अपनायी गयी।

1.5.4. अस्पष्टता :

एक ओर अस्पष्टता छायावाद का दोष मानी गयी है तो दूसरी ओर यह, छायावादी-काव्य का अनिवार्य तत्व भी स्वीकार की गयी है। कविता में अस्पष्टता का यह आग्रह द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक स्पष्टता की प्रतिक्रिया था। इस अस्पष्टता को लेकर ही 'छायावाद' शब्द भी चलाया गया था। (3) तब उसे दोष के रूप में नहीं, एक नई काव्य-

---

1. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, पृ० 22
2. ''महादेवी का काव्य वैयक्तिकता के चरम और एकान्त रूप का प्रतीक है।''– डॉ० शिवकुमार मिश्र: नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962, पृ० 71
3. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, पृ० 17

प्रवृत्ति की विभिन्नता मानकर स्वीकार करना ही समीचीन है ।

छायावाद की प्रवृत्तियों तथा उस वाद पर किये गये आक्षेपों का अनुशीलन यह स्पष्ट कर देता है कि खड़ीबोली का यह आंदोलन जितना तीव्र था उतना ही उसका विरोध भी प्रबल था । इसने शुरू में ही देख लिया था कि विरोधी परिस्थितियों से होकर ही यह छायावाद गुजरा था, वस्तु तथा शिल्प के क्षेत्रों में नये-नये प्रयोग करनेवालों को कई मुसीबतें झेलनी पड़ीं ।

1.6 छायावाद के प्रमुख स्तंभ :

- - - - - - - - - - - - प्रसाद, निराला, पंत और महादेवीजी छायावाद के प्रमुख चार स्तंभों के रूप में मान्यता मिली है । इनके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ० रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, शंभुनाथसिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री, बालकृष्ण शर्मा नवीन, बच्चन आदि की कविताओं में भी छायावाद के तत्व मिलते हैं । प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद के प्रायः सभी ख्यातिप्राप्त कवि मूलतः छायावादी हैं । अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर धर्मवीर भारती, शमशेर, शिवमंगल सिंह सुमन, भवानी प्रसाद मिश्र आदि इस कोटि में आते हैं । परंतु छायावाद के प्रतिनिधिकवियों के रूप में प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी ही स्वीकृत किये गये । युगादर्श को समुचित रूप से स्थापित करने में इस चतुष्टय का योगदान महत्वपूर्ण है । फिर भी रचनात्मक स्तर पर इनकी अलग-अलग विशिष्टताएँ हैं जो छायावाद को समृद्ध करने में काम आयी हैं । छायावाद की समृद्धि को देख भक्ति आंदोलन के समानांतर रखकर उसे 'स्वर्णयुग' की संज्ञा भी दी गयी है :

- -

''ऐसे स्वर्ण-युग शताब्दियों में कभी-कभी आते हैं। इस युग में प्रसाद की महाकाव्यत्व की गरिमा, पंत की प्रकृतिचित्रण, महादेवी की रहस्यवाद के आत्मनिवेदन और निराला की मुक्त-छंद को हम केलिए सदैव स्मरण किया जायेगा। खड़ी बोली काव्य के ये चार स्तंभ हैं जिन पर छायावाद का सुदृढ़ भवन खड़ा हुआ है।'' (1)

यद्यपि निराला की लेखनी से किसी महाकाव्य की सृष्टि नहीं हुई है तो भी प्रतिभा के क्षेत्र में अन्य छायावादी कवियों के आगे ही उनका स्थान है। छायावाद के मैदान में प्रसाद और पंत ही पहले आये थे लेकिन निराला अंत में आकर सबसे आगे निकल गये। (2) सुमित्रानंदन पंत ने भारतीय दार्शनिक परंपरा के एकमात्र सफल कवि घोषित कर निराला का समुचित आदर किया है: '' भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में कालिदास से कवि हुए हैं, पर भारतीय दार्शनिक परंपरा में ऐसा सौंदर्य-मंडित, ज्योति-संवृत कवि अभी तक एकमात्र निराला ही मिले हैं-।''(3)

निराला-काव्य में जो विविधता और विस्तार पाये जाते हैं वे आधुनिक स्वभाव के हैं। उनकी कला विभिन्न रूपात्मक कृतियों से समृद्ध है। ''...निराला की कलात्मक, रूपात्मक कृतियों की कल्पना, भाषा और छंदों की योजना, दार्शनिक समाधार आदि प्रसाद की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध है। भाषा के क्षेत्र में निराला एकदम निराले हैं। उनकी सी भाषा प्रयोग की अबाध गति अन्यत्र दिखाई नहीं देती। (4)

- -

1. विश्वंभर मानव: काव्य का देवता-निराला, पृ0 228
2. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ0483
3. सुमित्रानंदन पंत : छायावाद: एक पुनर्मूल्यांकन, पृ070
4. नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ0 180-181

लेकिन निराला-काव्य में अन्तः संगठन का अभाव है । उनके व्यक्तित्व का बिखराव ही इसका मुख्य कारण है । इस बिखराव के कारण वे प्रसाद की 'कामायनी' जैसी गठित-कृति को जन्म दे न सके । डॉ० नामवर सिंह ने 'परंपरा के जीवित बोध' का अभाव इसका मूल कारण बताया है : '' इसी के अभाव में निराला 'यमुना के प्रति,' 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज-स्मृति' और 'तुलसीदास' जैसी बिखरी प्रयत्नों को एक में न गूंथ सके । फिर भी यदि निराला की इन चारों कृतियों को एकत्र कर दिया जाये तो वे 'कामायनी' से श्रेष्ठ सिद्ध होंगी । '' (1)

इसलिए निराला को छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार करने में दुबारा सोचने की जरूरत नहीं पड़ती ।

1.7 निष्कर्ष :

छायावाद पर किये गये मुख्य आक्षेपों का विवेचन तथा उस वाद के प्रमुख स्तंभों पर विचार करने के फलस्वरूप प्रकाश में आये हुए तथ्य निम्नलिखित हैं :-

1. छायावाद पर स्वप्नशीलता की प्रधानता, पलायनवादिता, अतिवैयक्तिकता, अस्पष्टता आदि के आरोप बहुत कुछ अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की प्रवृत्तियों को देखकर किये गये हैं । निराला जैसे कवियों पर इस प्रकार के दोषों का आरोप अन्याय है ।
2. छायावादी कवि स्वार्थमय दुनिया से मुंह मोड़कर प्रकृति के सौंदर्य

---

1. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, पृ० 157

की ओर उन्मुख हुए । लेकिन जहाँ स्वार्थमूलक पीड़ित मानवता का दर्शन हुआ वहीं छायावादियों ने ईश्वर की चिंता भी छोड़ दी । ऐसे मानव-सेवी पलायनवादी नहीं हो सकते ।

3. प्रकृति से अधिक संबंध रखनेवाले कवियों में कल्पनाशीलता का आना स्वाभाविक है । इससे काव्य-सौंदर्य बढ़ता है, घटता नहीं ।

4. 'अस्पष्टता' को छायावाद की एक विशेषता मानना ही अधिक संगत है, क्योंकि द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक-स्पष्टता की प्रतिक्रिया-स्वरूप यह अस्पष्टता काव्य में आयी है ।

5. वैयक्तिकता सभी छायावादी कवियों में पायी जाती है । लेकिन अतिवैयक्तिकता का आरोप केवल महादेवी की कविता में ही की जा सकती है ।

6. छायावाद-युग के प्रतिनिधि कवियों ने कविता-कामिनी की उपासना दिलखोलकर की है, उसके हृदय को पहचाना है, उसके सभी अंगों को अमूल्य आभूषणों से सजाकर अत्यधिक आकर्षक बना दिया है ।

7. भाव तथा भाषा का इतना सुंदर-समन्वय अन्यत्र दिखाई नहीं देता । छायावाद-युग खड़ीबोली काव्य का कृतिकाल है ।

8. मध्यकालीन भक्ति आंदोलन ही छायावाद की समृद्धि की समता कर सकती है ।

9. मुक्तछंद के प्रवर्तन के साथ-साथ छायावादी काव्यधारा को सर्वाधिक समृद्ध करने का श्रेय निराला को है ।

. . . . .

दूसरा अध्याय

निराला और रहस्यवाद

दूसरा अध्याय

2. निराला और रहस्यवाद

2.1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सन् 1910 में प्रकाशित 'गीतांजलि' को सन् 1913 में विश्व-सम्मान मिला तो उसकी भाव-शिल्प-पद्धति का हिन्दी में धड़ाधड़ अनुकरण होने लगा । 'गीतांजलि' में प्रतिपादित परोक्ष सत्ता की खोज में कवि एक साथ चल पड़े । परोक्ष सत्ता की खोज पर आधारित स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति हम भारतीयों के लिए नयी वस्तु नहीं थी । रहस्य-भावना का दर्शन वेद-वेदांतों तथा पुराणों में भी मिलता है । कबीर, जायसी, मीरा जैसे प्राचीन कवियों की रचनाओं में इसका सुंदर प्रयोग हुआ है । परंतु आधुनिक रहस्य-भावना पुरानी अध्यात्मवादी परंपरा से एकदम भिन्न प्रकृति की है ।

आधुनिक रहस्यवाद का भी मूलाधार पुराना अध्यात्मवाद ही है । प्रियरंजन सेन ने लिखा है कि पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आने से बहुत पहले ही बंगला-साहित्य में रहस्यवाद की एक मज़बूत धारा वर्तमान थी और उपनिषद्, वैष्णव-संप्रदाय, सहजियां, सूफीमत आदि ने इस काव्य-प्रवृत्ति को परिपुष्ट किया था। (1)

हिन्दी में भी रहस्यवादी साहित्य की एक समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है । लेकिन आधुनिक रहस्यवाद के शिल्प-विधान पर

---

1. Priya Ranjan Sen: Western Influence in Bengali Literature, Page:362-363
2. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महीयसी महादेवी, साहित्यभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1969, पृ० 212

परिचय से आयी आधुनिकता का ही अधिक प्रभाव है । पाश्चात्य-साहित्य के संपर्क में आकर हमारी पुरानी रहस्यवादी काव्य-धारा अधिक विकसित हो गयी है ।

2.2 नामकरण :

''यह स्मरण रखना होगा कि यह 'रहस्यवाद' नाम बहुत पुराना नहीं, यद्यपि अभिव्यक्ति की यह प्रथा बहुत पुरानी है तथापि इसे इस नाम से आधुनिक युग ही ने अभिहित किया है, संभवतः गीतांजली के बाद-''(1) कह कर गंगाप्रसाद पाण्डेय ने रहस्यवाद नाम को एकदम आधुनिक ठहराया है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस नाम को भ्रामक माना है । उनके अनुसार भगवान के साथ होनेवाला प्रणय-व्यापार कभी भी रहस्य नहीं हो सकता । ''यह नाम भ्रामक है, क्योंकि 'लीला' कोई रहस्य नहीं है । रहस्य छिपा का नाम है, लीला प्रकाशन का ।''(2) चिन्तन-मनन द्वारा परमसत्ता से प्रणय-संपर्क-स्थापन की प्रवृत्ति को सामान्यतः रहस्यवाद कहा जाता है ।

पिछले अध्याय में इसका उल्लेख हो चुका है कि हिन्दी में रहस्यवाद शब्द का प्रयोग 'छायावाद' के लिए भी किया जाता था । छायावादी कविता के कुछ विलक्षण स्वभाव को देखकर 'छायावाद' नाम से असंतुष्ट साहित्यिकों ने ही उसके स्थान पर 'रहस्यवाद' को प्रतिष्ठित करने का यत्न किया था । श्री मुकुटधर पाण्डेय इसे अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का दिया हुआ नाम मानते हैं ।(3) डॉ० नामवरसिंह इसका

- -

1. गंगाप्रसाद पाण्डेय: महीयसी महादेवी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1969, पृ० 212
2. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : साहित्य-सहचर, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1968, पृ० 68-69
3. नंदकिशोर तिवारी : मुकुटधर पाण्डेय, पृ० 43

भेद स्पष्ट कर प्रसाद भी देते हैं।[1]

आत्मा-परमात्मा के पारस्परिक संबंध की रहस्यमय-मान्यता में असंगति सी लगती है, पर है वह इन्द्रियों के लिए अगोचर। यही उसकी रहस्यात्मकता का हेतु है। मिस्टिक अनुभूति अतीन्द्रिय या ट्रैंसैंडेंटल है। यही कारण है कि रहस्यवाद मिस्टिसिज्म का समानार्थक शब्द स्वीकार किया जाता है।

2.3. रहस्यवाद - छायावाद : अंतर

संदेह नहीं कि प्रथम चरण के छायावादी कवियों ने अपनी कविता पर आध्यात्मिक आवरण चढ़ाना चाहा। आध्यात्मिकता का यह आवरण परंपरावादियों के आक्रमणों से छायावादियों की रक्षा भी था।[2] आध्यात्मिक आवरण से लौकिकता को छिपाने की यह प्रवृत्ति प्रसाद तथा महादेवी की कृतियों में प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है। प्रसाद के 'प्रेमपथिक', 'आँसू', जैसे काव्यों के प्रथम संस्करण में लौकिक-प्रेम की ही व्यंजना मिलती है, दूसरे संस्करण में आकर अलौकिक रूप धारण कर लेती है। महादेवी की आरंभिक कृतियों में भी यह कृत्रिम आवरण दिखाई देता है।[3] इसे हम शुद्ध रहस्यवाद स्वीकार नहीं कर सकते। ''रहस्यवाद यह शैली नहीं है। यह केवल कवि के रहस्यवादी होने की संभावना का संकेत करता है। जिस कवि की रचना में इस प्रकार का अवगुंठन हो, भविष्य में उसके रहस्यवादी हो जाने की संभावना रहती है।''[4] मात्र संभावना को देख किसी को रहस्यवादी कहना समीचीन नहीं लगता।

- -

1. डॉ० नामवरसिंह: छायावाद, पृ० 17
2. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य, पृ०472
3. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० 473
4. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० 473-474

स्पष्ट है कि युग में संकोच के कारण ही छायावादी कवियों को आध्यात्मिकता का आवरण ओढ़ना पड़ा और उस आध्यात्मिकता से शुद्ध रहस्यवाद का कोई संबंध नहीं है। लौकिक प्रेम-वर्णन के संदर्भ में उत्पन्न आध्यात्मिकता का यह आभास काल्पनिक था।

हिन्दी में 'रोमांटिसिज्म' शब्द के आने के बहुत पहले ही उसकी विशेषताओं से युक्त कविताएँ रची गयी थीं और ऐसी रचनाओं के लिए छायावाद या रहस्यवाद शब्द प्रयुक्त भी होता था। परंतु जब 'रोमांटिसिज्म' 'मिस्टिसिज्म' आदि शब्दों से हमारे आलोचक काफी परिचित हो गये तब छायावाद-रहस्यवाद के बीच सीमा-रेखाएँ खींची गयीं। 'रहस्यवाद-' 'मिस्टिसिज्म' का पर्याय-सा स्वीकार किया गया। रोमांटिसिज्म के लिए छायावाद के साथ-साथ शुक्लजी का गढ़ा हुआ 'स्वच्छन्दतावाद' नाम भी चल पड़ा। (1) रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छंदतावाद में थोड़ा-थोड़ा अंतर मानते हुए, डॉ० नामवरसिंह ने लिखा है: ''रहस्यवाद अज्ञात की जिज्ञासा है, तो छायावाद विश्व की मुग्धता और स्वच्छन्दतावाद प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा। '' (2)

छायावाद को अलौकिकता से हटाकर शुद्ध लौकिक धरातल पर उतारते हैं डॉ० नगेन्द्र। उनकी स्थापना है,' छायावाद के कवि की प्रेरणा उसकी कुंठित वासनाओं से ही आयी है, सर्वात्मवाद की रहस्यानुभूति से नहीं। '' (3)

- -

1. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, पृ० 18
2. डॉ० नामवरसिंह : छायावाद, पृ० 18
3. डॉ० नगेन्द्र : विचार और अनुभूति, पृ० 58

डॉ० देवराज भी छायावाद को रहस्यवाद से पृथक् मानते हैं । ''उसकी अभिरुचि का केन्द्र मनुष्य है, ईश्वर नहीं, यह लोक है, परलोक नहीं । छायावाद आधुनिक, पौराणिक, धार्मिक चेतना के विरुद्ध लौकिक चेतना का विद्रोह था '' । (1)

2.4. रहस्यवाद - छायावाद : साम्य

रहस्यवाद-छायावाद के बीच स्पष्ट अंतर होते हुए भी दोनों की आधार-भूमि एक ही है । स्थूल से हटकर सूक्ष्म की ओर जाने की प्रवृत्ति दोनों में है । दोनों के बीच की सीमारेखा इतनी सूक्ष्म है कि कभी-कभी सीमा-निर्धारण भी असंभव-सा हो जाता है । (2) दोनों की आधारशिला एक होने के कारण ही प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी और रामकुमार वर्मा छायावादी होने के साथ-साथ रहस्यवादी भी बन सके हैं । इसी प्रकार अंग्रेज़ी के ब्लेक, वर्ड्सवर्थ, शेली जैसे कवि रोमांटिक होने के साथ-साथ मिस्टिक भी हैं ।

2.5. रहस्यवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ :

रहस्यवाद की सात मुख्य प्रवृत्तियाँ मानी गयी हैं :

1. प्रेमतत्व की व्यंजना
2. आध्यात्मिक तत्वों की प्रधानता
3. परोक्ष सत्ता के प्रति आकर्षण
4. आत्मसमर्पण की भावना
5. तन्मयता

---

1. डॉ० देवराज : छायावाद का पतन, पृ० 9
2. गुलाबराय : काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 1964, पृ० 128

6. रूपकों तथा प्रतीकों की योजना

7. मुक्तक गीतिशैली

2.5.1. प्रेमतत्व की व्यंजना :

रहस्यवादी काव्य में प्रेमतत्व का प्राधान्य रहता है । आत्मा-परमात्मा की प्रणयकेलि ही रहस्यवाद का प्राण है ।[1] डॉ० नामवर सिंह ने इस रहस्य भावना को 'प्रतिभा की जिज्ञासा' कहा है ।[2] भारतीय परंपरा के अनुसार रहस्यवादी आत्मा को पत्नी और परमात्मा को पतिरूप का रूप देकर परमात्मा से मिलने की आतुरता प्रकट करता है । सूफी रहस्यवाद में आत्मा ने स्वयं पुरुष का स्थान ग्रहण किया है और स्त्री को परमात्मा का अलौकिक रूप दे दिया है । पाश्चात्य-रहस्यवाद में आध्यात्मिक प्रेम और विवाह की चर्चा भी होती है । सभी संप्रदायों में परम-साक्षात्कार से आत्मा को अलौकिक आनंद प्राप्त होता है । यह परमानंद ही रहस्य-वादियों का अंतिम ध्येय है ।

2.5.2 आध्यात्मिक तत्वों की प्रधानता :

आत्मा की अमरता, आत्मा का परमात्मा के प्रति आकर्षण, आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता आदि पर रहस्यवाद ने विशेष ज़ोर दिया है । इसके साथ-साथ जगत की नश्वरता सांसारिक जीवन की व्यर्थता आदि का उद्घाटन भी इसमें होता है । इस पर सांख्य, योग, न्याय, वेदांत आदि

---

1. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य-सहचर, पृ० 86
2. डॉ० नामवरसिंह : हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 52

दर्शनों का भी प्रभाव है । निराला की प्रारंभिक कृतियों में दार्शनिक तत्वों का प्रचुर प्रयोग मिलता है :

> ''व्यष्टि और समष्टि में नहीं है भेद —
> भेद उपजाता भ्रम —
> माया जिसे कहते हैं । '' (1)

यह तो स्पष्टत : वेदांत का सिद्धांत है ।

2.5.3. परोक्ष-सत्ता के प्रति आकर्षण :

डॉ0 रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद की तीन स्थितियाँ मानी हैं । (2) पहली स्थिति में आत्मा अपनी अनश्वरता पर विश्वास करने लगती है और सारी प्रकृति को एक अनंत शक्ति में लीन देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है । धीरे-धीरे साधक या कवि भावुकता से परे हो जाते हैं । दूसरी स्थिति में आत्मा को परमात्मा के सहवास की अनुभूति होने लगती है । ऐसी स्थिति में अंतर्जगत और बाह्य जगत में कोई अंतर नहीं रहता । प्रेम की एकाग्रता पर ही मन टिका रहता है । अंतिम स्थिति में भिन्नता का भाव पूर्ण रूप से मिट जाता है, आत्मा-परमात्मा में ऐक्य स्थापित हो जाता है ।

रहस्यवादी मूलतः भक्त ही है । ''यद्यपि रहस्यवादी भक्तों की भाँति पद-पद पर भगवान का नाम लेकर भाव-विह्वल नहीं हो

---

1. 'पंचवटी-प्रसंग-4' निराला रचनावली-1, संपा0 नंदकिशोर नवल, राजकमल, प्र0सं0 1983, पृ0 46
2. डॉ0 रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ0 7

जाता, परंतु वह मूलतः है भक्त ही । उसका भगवान पर अविचलित विश्वास होता है । ''(1) उसका 'अहं' भक्ति के ताप में जल जल कर भस्म हो जाता है और मुक्ति को प्राप्त करता है । (2) अज्ञात प्रियतम की अद्भुत शक्ति का अनुभव करके उस पर रहस्यवादी मुग्ध एवं चकित हो जाते हैं और उसकी अद्भुत आभा से विविध आकर्षण में पड़कर उसकी ओर अग्रसर होते हैं :

> ''ले चल वहाँ भुलावा देकर
> मेरे नाविक धीरे-धीरे । '' (3)

इस संसार का कोई भी मनुष्य उस परम-ज्योति की आभा से वंचित नहीं है: ''जिस प्रकाश के बल से / सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो/उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई। / व्यष्टि और समष्टि में समाया वही एक रूप, / चिद्घन आनन्द-रूप । '' (4)

2.9.4. आत्मसमर्पण की भावना :

आत्म-समर्पण की भावना रहस्यवाद का एक प्रमुख तत्व है । इस ऐहिक अहं का नाश करके साधक के रूप में कवि साहित्य-साधना में लीन हो जाता है । वह अपनी हीनता तथा दीनता का अनुभव करने लगता है और उस परम सत्ता के सामने आत्म-समर्पण करके उसी में लीन हो जाता है ।

---

1. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य-सहचर-पृ० 68
2. Bhakti at its highest point is mukti (release) The fire of devotion (as Shandilya says burns up the sense of me and mine, purges the soul of egoism and brings about release: Sydney Spencer: Mysticism in world religion, Pelican books, Great Britan,1963, p-62-63.
3. जयशंकर प्रसाद : लहर, पृ० 10
4. निराला: पंचवटी-प्रसंग-4' निराला रचनावली-1, पृ046

निराला जैसे प्रौढ़, पुष्ट, आक्रामक व्यक्तित्व रखनेवाले कवि भी परम सत्ता के द्वार पर दीन-हीन भक्त बने हैं :

''भरी सभा के बीच बैठकर जब मैं विक्षुब्ध. उबाला,
करके दुःख से मस्तक नीचा हूँ, मलिन बन जाता,
निद्रा की अधरों पर आती है जब पूर्ण पिपासा,
देखि ! कौन वह बन जाती जो भावुक मन की भाषा ? ''(1)

महादेवी की कविताओं में आत्मसमर्पण की भावना अधिक निखर उठती है । मधुर मिलन हेतु अहं का नाश वे अनिवार्य समझती हैं -

''तू जल जल होता जितना क्षय
वह समीप आता छलनामय
मधुर मिलन में मिट जाता तू
उसकी उज्ज्वल स्मिति में घुल-मिल'' । (2)

2.5.3 मानवता :

रहस्यवाद समस्त मानवता का प्रतिनिधित्व करता है । इसकी अनुभूति देश या काल की सीमा में आबद्ध नहीं रहती । रहस्यवाद के मूल में असीम के प्रति जो मोह है वह जन्म से ही मानव में वर्तमान है। रहस्यवादी के चित्त में यह मोह विश्वास का रूप धारण करता है और वह किसी परमप्रेममय, लीला-निकेत से चिरंतन संबंध स्थापित कर लेता है । (3)

---

1. 'देखि ! कौन वह ?', निराला रचनावली-1, पृ0 62
2. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि-1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नवीं आवृत्ति, सन् 1965, पृ0 59
3. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ0 472

मानव को उच्च भाव-भूमि प्रदान करने में भी इस काव्य-धारा का महत्व है । ''जीवन की कुरूपताओं से मनुष्य को ऊपर उठाकर उसे उच्च भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय रहस्यवाद को ही है । '' (1) मानव का मानसिक परिष्कार करके स्वस्थ समाज की सृष्टि करने में यह सहायक रहता है । प्रकृति पर हाथ उठाना भी रहस्यवादी पाप समझता है :

''जो मुझे सुनाती/जीवन के विह्वल सुख-क्षण का गीत- / खोलती रूप-जगत के द्वार जहाँ/तेरी करुणा/ बुनती रहती है / भव के सपनों, क्षण के आनंदों के/ रह:सूत्र अविराम - / उस भोली मुग्धा को / कँपती डाली से बिलगा न सकी | '' (2)

2.5.6 रूपकों तथा प्रतीकों की योजना :

रहस्यवादी कविता में रूपकों तथा प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है । इसका मुख्य कारण अर्थ-संप्रेषण में शब्दों की असमर्थता है । रहस्यवादी कवि की विलक्षण-अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की शक्ति साधारण भाषा में नहीं होती । रूपकों तथा प्रतीक-योजनाओं से भाषा की इस कमी का परिहार किया जाता है । अभिव्यक्ति सक्षम बनाई जाती है ।

2.5.7 मुक्तक गीति शैली :

हिन्दी के रहस्यवादी कवियों ने भाव-प्रकाशन के लिए मुक्तक गीतिशैली का ही अधिक सहारा लिया है । यद्यपि प्रसाद और

1. डॉ. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 69
2. 'प्राणों का नैवेद्य-दान', आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय' सं0 विद्यानिवास मिश्र, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, पृ0 64

निराला की प्रबंधात्मक कृतियों में भी रहस्य-भावना का चित्रण मिलता है तो भी उनके मुक्तक गीतों में ही रहस्यवादी चेतना का पूर्ण विकास संभव हुआ है । 'रहस्यवाद की एकमात्र सफल गायिका महादेवी' (1) की कविताएँ प्रायः छोटी परंतु मार्मिक रहती हैं :

'' क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे ।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे ।'' (2)

2.6 रहस्यवाद की परिभाषा :

विद्वानों ने अनेक प्रकार से रहस्यवाद को परिभाषित किया है । डॉ० श्यामसुंदर दास के अनुसार ''चिंतन के क्षेत्र में ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है ।''(3) अनंत और अज्ञात की आकांक्षा अनाकार अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अभिव्यंजना करना ही शुक्लजी की दृष्टि में रहस्यवाद है ।(4) आत्मा-परमात्मा के पवित्र संबंध को डॉ० रामकुमार वर्मा रहस्यवाद मानते हैं : ''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता ।''(5) महादेवी की निश्चित धारणा है कि मनुष्य के हृदय का अभाव तब तक दूर नहीं होता जब तक सीमाहीन के

---

1. गंगाप्रसाद पाण्डेय: महीयसी महादेवी, पृ० 225
2. 'क्या पूजा क्या अर्चन रे', सुश्री महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि-1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नवीं आवृत्ति, सन् 1963, पृ० 73
3. कबीर ग्रंथावली, भूमिका, पृ० 56
4. रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, चौदहवाँ संस्करण, पृ० 621
5. डॉ० रामकुमार वर्मा: कबीर का रहस्यवाद, पृ० 7

प्रति रागात्मक संबंध न हो । (1) व्यक्त या अव्यक्त के साथ रागात्मक संबंध की बात गुलाबराय ने भी की है । (2)

पश्चिम के आलोचक 'मिस्टिसिज्म' के अंतर्गत परब्रह्म-साक्षात्कार से कम किसी वर्ग की परम चीज नहीं मानते । (3) परब्रह्म-साक्षात्कार से तात्पर्य आत्मा का स्वर्ग तक पहुँचना नहीं है, स्वर्ग को आत्मा में प्रतिष्ठित करना है । (4) परमात्मा से आत्मा का चिरंतन संबंध ही रहस्यवाद का मूल-विषय है । हिन्दी का आधुनिक रहस्यवाद धार्मिक अभिव्यक्ति तथा दार्शनिक आधार में भिन्न एवं विशिष्ट है । (5)

2.7. रहस्यवाद का दार्शनिक आधार :

भारतीय संस्कृति अध्यात्मवादी है । अध्यात्मवाद का संबंध आत्मानुभूतियों से है । आत्मानुभूतियों के उद्गम-स्थान का कोई निश्चित पता ही नहीं । वह अज्ञात और अनंत है । साधक को उसका आभासमात्र होता है । (6) अज्ञात के प्रति जिज्ञासा ही रहस्यवाद की मूल-प्रेरणा है ।

---

1. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि-1, पृ0 23, 28
2. गुलाबराय : रहस्यवाद और हिन्दी कविता, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा प्रथम संस्करण 2013, पृ0 1
3. ". . . . . the mystic seeks union with God alone and is not satisfied with anything short of his sublime goal."--- Jacques De Marquette : Introduction to comparative Mysticism, Page : 20
4. "The aim of mysticism is not to take man in to heaven but bring heaven into man."--Patanjali : Thoughts on Indian Mysticism, Introduction, Page VI.
5. डॉ0 नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 69
6. रामचन्द्र देव, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य के धार्मिक-दार्शनिक प्रेरणा स्रोत.., अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृ0 39

विविध दार्शनिक पद्धतियों ने इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए अपना-अपना मार्ग ढूंढ लिया है । इन में उपनिषदों, वेदांत आदि का सर्वाधिक उपयोग रहा । जिन दर्शनों से रहस्यवाद प्रभावित हुआ है उनका संक्षिप्त अध्ययन भी यहाँ अपेक्षित है :

2.7.1. उपनिषद :

उपनिषद शब्द के अर्थ में रहस्यमयता का भाव होता है । (1) आंतरिक रहस्यानुभूतियों से उपनिषदों का संबंध माना गया है । ''भारतीय रहस्यवादी काव्य का मूलस्रोत उपनिषद साहित्य है । '' (2) उपनिषदों के अनुसार आत्मा परमात्मा का ही अंश है । दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं । आत्मा के बाहर जो कुछ हैं, परमात्मा के अंतर्गत आ ही जाते हैं । शारीरिक सीमा स्थायी नहीं । आत्मा शारीरिक सीमा से मुक्त होकर परमात्मा में विलीन हो जाती है । मध्यकालीन कवियों में कबीर में वेदांत-दर्शन का बहुत अधिक प्रभाव है:

''जल में कुंभ, कुंभ में जल, बाहर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कह्यौ गियानी ।''(3)

नवरहस्यवाद में भी इस दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है :

---

1. गंगाप्रसाद पांडेय, महीयसी महादेवी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1969, पृ० 210
2. गुलाबराय: रहस्यवाद और हिन्दी कविता, पृ० 14
3. कबीर ग्रंथावली: डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1973, पृ० 293.

''पिता कहलाते हो तो
जीवन के तत्त्व पाँच
यदि तेरे पुञ्जभूत हुए हों
मैं तो तुम्हीं को दूँगा ।'' (1)

पंचभूतों के पुंजीभूत रूप से कवि प्राणों का उद्भव मानते हैं और प्रकृति के उन पंचतत्वों को ही वे मातापिता समझते हैं । इसलिए इहलोक को त्याग देने में भी उन्हें विशेष दुःख नहीं :

''पाँचों प्राण पुंज में बिखर-
मैं भी जाता हूँ —
विसर्ग नवप्राण के
मैं भरूँगा पुष्टि ।'' (2)

आत्मा-परमात्मा संबंध के अतिरिक्त उपनिषदों में नीति, ज्ञान, कर्म, क्रिया और घटना का भी विवेचन किया गया है । कर्म केलिए 'अविद्या' और ज्ञान केलिए 'विद्या' का प्रयोग भी उपनिषदों में मिलता है । 'अविद्यामाया' और 'विद्या माया' के नाम से भी कर्म और ज्ञान जाने-जाते हैं । प्रत्यक्ष में दोनों भिन्न हैं, लेकिन सूक्ष्म-सूत्र से दोनों संबद्ध हैं ।

2.7.2 सांख्य दर्शन :

कपिल मुनि के सांख्य-दर्शन में पुरुष-प्रकृति के पारस्परिक

- -

1. अज्ञेय: जन्मदिवस', आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय', संपा0 विद्यानिवास मिश्र, पृ0 73

2. वही, पृ0 74

संबंध पर विस्तार से विचार किया गया है । सृष्टि के मूल-भूत आधारों का गंभीर अध्ययन भी इसमें हुआ है । सांख्यदर्शन के तत्वों पर द्वैत-भावना का आरोप भी पुरुष और प्रकृति को लेकर किया जाता है, लेकिन कपिल मुनि ने वस्तुतः पुरुष में प्रकृति का विलय दिखाकर अद्वैत की ही स्थापना की है । स्पष्ट है कि रहस्यवादियों ने आत्माभिव्यक्ति के लिए इस दर्शन से भी प्रेरणा ग्रहण की है । निराला की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

''तुम प्राण और मैं काया

तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म मैं मनोमोहिनी माया ।'' (1)

महादेवी रहस्य भावना के लिए द्वैत और अद्वैत की स्थिति को आवश्यक मानती हैं : ''रहस्य भावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असंभव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार ही देती है ।''(2)

2.7.3. योगदर्शन :
- - - - -
यह पतंजलि का दार्शनिक सिद्धांत है । चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है । योगदर्शन में चित्त, वृत्ति और निरोध का विस्तृत विवेचन मिलता है ।(3) शरीर तथा मन को पवित्र रखने, तथा ईश्वर में विलीन होने लायक बनाने में योग-साधना का बड़ा योग है । योग-सिद्ध पुरुष भूत और वर्तमान को ही नहीं भविष्य को भी जानकर त्रिकाल-दर्शी हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में कर्म, क्लेश और वासनाओं से साधक की पूर्ण-मुक्ति संभव हो जाती है और उसकी आत्मा परमात्मा में विलीन होकर

- -

1. 'तुम और मैं,-1, 'निराला रचनावली-1, पृ0 37
2. महादेवी: साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1966, पृ0 108
3. रामचंद्र देव, मध्यकालीन सगुण हिन्दी काव्य के बौद्धिक-दार्शनिक प्रेरणा स्रोत, 'अप्रकाशित शोध प्रबंध-पृ0 112

अभिन्नता का अनुभव करने लगती है । प्रयोगवादी तथा नये कवि तक योग-दर्शन से प्रभावित होते हैं । कुंडलिनी, सहस्रार आदि का उल्लेख निराला,[1] मुक्तिबोध[2], अज्ञेय[3] की कविता में मिलता है ।[4] मुक्तिबोध की विवेक की अग्नि ज्वलंत साक्षित है ।

2.7.4. न्याय दर्शन :

न्याय दर्शन आत्मा को शाश्वत मानता है । यह पूर्वजन्म व पुनर्जन्म पर विश्वास करता है । न्यायदर्शन[5] ने नीति या तत्व ज्ञान से बढ़कर मनोविज्ञान का सहारा लिया है । दुःख को सत्य मानकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने का संदेश भी न्याय-दर्शन से मिलता है, जो अब अस्तित्ववादियों का नारा-सा हो गया है । मुक्तिबोध व्यथा को मूल्यवान ही समझते हैं :

''मेरा उसी से उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य उसकी महत्ता ।''[6]

2.8. रहस्यवाद के प्रमुख कवि:

आधुनिक हिन्दी कविता में रहस्यभावना का विकास महादेवी तथा प्रसाद की कविता में ही देखते हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, तो भी

---

1. 'जागो फिर एक बार :' निराला रचनावली-1, पृ० 142
2. मुक्तिबोध: चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 128-129
3. अज्ञेय : 'सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान' आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय'- पृ० 65
4. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 128-129
5. डॉ० दीवानचन्द : दर्शन संग्रह, पृ० 135
6. मुक्तिबोध: चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 16

निराला तथा पंत को इस क्षेत्र से हम बाहर रख नहीं सकते । निराला की 'तुम और मैं'-1 (1), 'मौन तम के पार' (2), 'भर देते हो' (3), 'वन' (4), 'प्याला' (5), 'प्यार करती हूँ अलि' (6) जैसी कविताओं में शुद्ध रहस्यवाद का सुंदर परिपाक हुआ है ।

रहस्यवाद की प्रवृत्ति (7) के अनुकूल निराला की अध्यात्म यात्रा भी जिज्ञासा की बिंदु से शुरू हुई थी । उनकी जिज्ञासा में शंका की गंध अधिक थी । 'अधिवास' (सन् 1923) से लेकर अंतिम कविता 'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है' (सन् 1961) तक उनके शंकाकुल मन की झाँकी मिलती रहती है ।

शंकाकुलता आधुनिक युग की एक मुख्य प्रवृत्ति है । 'राम की शक्ति-पूजा' (सन् 1936) में स्वयं राम बनकर निराला महाशक्ति को शत्रु-पक्ष में देख रहे हैं । महाशक्ति की विनाशात्मक शक्तियों के पक्ष में दिखाकर छायावाद काल में ही कवि ने आधुनिकता का परिचय दिया था :

'' मित्रवर, विजय होगी न समर
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण,
अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति । '' (8)

---

1. 'निराला रचनावली-1, पृ० 37
2. वही, पृ० 240
3. वही, पृ० 100
4. वही, पृ० 101
5. वही, पृ० 126
6. वही, पृ० 203
7. 'अधूरी ब्रह्म जिज्ञासा'
8. 'राम की शक्ति पूजा', निराला रचनावली-1, पृ० 315

कवि की यह शंका कभी कभी विश्वास का रूप भी धारण करती है । 'सेवा' कविता में ब्रह्म को ही अपनी जीवन-नौका के कर्णधार मानकर कवि कहते हैं :

> ''डोलती नाव, प्रखर है धार
> संभालो जीवन-खेवनहार ।'' (1)

यह विश्वास कवि के जीवन में अंत तक टूटता बनता रहा । लेकिन उनका अवचेतन मन पराजय स्वीकार करनेवाला न था । इसलिए चेतन मन के हताश होने पर भी अवचेतन मन कर्मपथ से विचलित न हुआ ।

प्रारंभिक रचनाओं में परमात्मा के प्रति उन्मुखता निराला काव्य में क्षीण सी तो भी 'आराधना', 'अर्चना', और 'सांध्यकाकली' की रचनाओं में आध्यात्मिकता का भाव प्रबल बन जाता है ।

2.9. रहस्यवाद-नवरहस्यवाद

'नवरहस्यवाद' अत्याधुनिकों का भी प्रिय विषय है । 'रहस्यवाद' और नवरहस्यवाद में अंतर यही है कि 'रहस्यवाद' में परमात्मा को जो स्थान प्राप्त है, वह नवरहस्यवाद में प्रकृति ने ले लिया है । अज्ञेय के नवरहस्यवाद पर निराला के रहस्यवाद का प्रभाव स्पष्ट है । 'असाध्यवीणा'(2) 'जन्म दिवस',(3) 'यात्री का नैवेद्यदान'(4) जैसी कविताओं में रहस्यवाद के जिस मुक्त-दर्शन का विकास हुआ है, वह निराला के रहस्यवाद से फूट निकला है । 'गीतिका' में निराला ने गाया था :

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 188
2. आज के लोकप्रिय कवि 'अज्ञेय', संपा0 विद्यानिवास मिश्र, राजपाल एण्ड सन्ज़, पृ0 113
3. वही, पृ0 73
4. वही, पृ0 64

''तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान।'' (1)

'असाध्यवीणा' का सारतत्व भी यही है :

''श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में —
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था —
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी —
महाशून्य
वही महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।'' (2)

सुमित्रानंदन पंत ने भी रहस्यवादी कृतियों से आधुनिक हिन्दी कविता को समृद्ध बनाया है। पंतजी की रहस्य-भावना पर शैली, वर्ड्सवर्थ आदि वैदेशिक कवियों का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। बाह्यसत्ता को अत्यधिक महत्व देकर उसमें रहस्य देखने की प्रवृत्ति केवल उनमें ही पायी जाती है।(3) उनकी 'काला बादल,' 'आकांक्षा' जैसी कविताओं में निर्जन बालक के पथिक

- -

1. निराला-रचनावली-1, पृ0 247
2. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय', सं0 विद्यानिवासमिश्र, पृ0 128
3. डॉ0 रवीन्द्रसहाय वर्मा: हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ0 189

उज्ज्वल हृदय का परिचय मिलता है । आत्मा-परमात्मा के संबंध की कथा उनकी 'छाया' कविता में मिलती है । 'छाया' में पंतजी की आत्मा, परमात्मा की अनुगामिनी बनती है । वे अरविंद दर्शन से काफी प्रभावित हैं ।

अनंत की खोज की अजस्र राही हैं महादेवी । वेदांत तथा उपनिषद का उनपर गहरा प्रभाव है । (1) साहित्य-साधना के लिए उन्होंने छायावाद-रहस्यवाद का जो मार्ग अपनाया, उससे कभी विचलित न हुई । शायद इसी कारण गंगाप्रसाद पाण्डेय ने उन्हें रहस्यवाद की एकमात्र अमर गायिका कहा है । (2)

प्रसाद जी आधुनिक रहस्यवाद के प्रवर्तक ही माने जाते हैं । उनकी रहस्यवादी कविताओं पर उपनिषद, शैवदर्शन तथा बौद्ध-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है । (3) निराला रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के दर्शनों से प्रेरित हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद के चार स्तंभ ही रहस्यवादी धारा को भी संपुष्ट बनाने में सहायक रहे हैं ।

2.10. रहस्यवाद पर आक्षेप :

एक ओर रहस्यवाद साहित्य तथा समाज की उन्नति में सहायक सिद्ध किया गया है तो दूसरी ओर उसकी कमियों की ओर भी विद्वानों ने इशारा किया है । इस पर मुख्य रूप से दो आक्षेप लगाये गये हैं :

1. पलायनवादिता
2. अलौकिकता की आड़ में लौकिकता का आग्रह

---

1. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य-सहचर, पृ० 68
2. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महीयसी महादेवी, पृ० 217, 225
3. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य - सहचर, पृ० 68

2·10·1· पलायनवादिता :

प्रायः बड़ा आक्षेप रहस्यवाद पर यह लगाया जाता है कि जीवन की यथार्थ तथा कठोर समस्याओं से इसका कोई संबंध नहीं है। अतएव इसमें पलायन की प्रवृत्ति स्पष्ट है। रहस्यवादी कवियों ने यथार्थ को भी रहस्य मान लिया है। वे चरम सत्य की ओर उन्मुख हैं, लेकिन उस सत्य का स्पष्ट उद्घाटन उन्हें अभीष्ट नहीं। अज्ञेयता में ही उनका आनंद है।

यह तथ्य तो नकारा नहीं जा सकता कि रहस्यवादी दृष्टिकोण से जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान संभव नहीं। '' रहस्यवादी दृष्टिकोण से जीवन और जगत की समस्याओं को हल करना तो दूर, उन्हें ठीक से समझना भी असंभव है। ''(1) परंतु इस पलायन-वृत्ति को महादेवी ने परिभाषातीत मन की एक व्यापक प्रेरणा ही माना है।(2)

2·10·2· अलौकिकता की आड़ में लौकिकता का आग्रह :

छायावादी कवियों में लौकिकता के आग्रह का आक्षेप सर्वाधिक प्रसाद तथा महादेवी पर किया जाता है। प्रसाद के 'प्रेमपथिक', 'आँसू' जैसी काव्य-कृतियों के प्रथम संस्करणों में लौकिक-प्रेम ही व्यंजित किया गया था, लेकिन बाद में उनपर अलौकिकता का आवरण भी चढ़ाया गया। अलौकिकता का यह कृत्रिम आवरण महादेवी की प्रारंभिक कृतियों में अत्यंत स्पष्ट है। (3) महादेवी की कविता के इस विलक्षण स्वभाव को देखकर ही

1·डॉ0 नामवरसिंह: आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 69

2· महादेवी वर्मा: आधुनिक कवि-1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965, पृ0 26

3· डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ0 473

डॉ० शिवकुमार मिश्र ने उसे 'वैयक्तिकता के चरम और एकान्त रूप का प्रतीक'[1] कहा है ।

प्रसाद-महादेवी के काव्यों में अतिमात्र अलौकिकता के आने का कारण यही कि वे दोनों शुद्ध रहस्यवादी कवि न थे । वे मूलतः छायावादी थे । छायावाद की पुष्टि के लिए उन्होंने जिस आध्यात्मिकता को अपनाया था, उसका थोड़ा-सा विकास ही उनकी रहस्यवादी कृतियों में हो पाया है । उनका सूक्ष्म भी स्थूल के बहुत निकट ही है । स्वयं महादेवी ने लिखा है :
''जीवन की समष्टि में सूक्ष्म से इतने भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है : क्योंकि वह तो स्थूल से बाहर कहीं अस्तित्व ही नहीं रखता । अपने व्यक्त-सत्य के साथ मनुष्य जो है और अपने अव्यक्त-सत्य के साथ वह जो कुछ होने की भावना कर सकता है, वही उसका स्थूल और सूक्ष्म है और यदि उनका ठीक सन्तुलन हो सके, तो हमें एक परिपूर्ण मानव ही मिलेगा ।''[2]

2.11. निष्कर्ष :

अज्ञेय में रहस्यवाद से संबंधित मान्यताएँ ये हैं :

1. पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आने से
पूर्व ही बंगला तथा हिन्दी में रहस्यवाद

---

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ० 7।
2. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि- 1, पृ० 2।

की एक संपन्न परंपरा वर्तमान थी ।
लेकिन आधुनिक रहस्यवाद पर पाश्चात्य
रहस्यवाद का भी प्रभाव दिखाई देता है ।

2. रहस्यवाद की अनुभूति देश काल की सीमा
में संकुचित नहीं रहती ।

3. आत्मा-परमात्मा की प्रणय-केलि ही रहस्यवाद
का प्राण है ।

4. इसके प्रमुख तत्व हैं आध्यात्मिक अनुभूति,
परोक्ष-सत्ता के प्रति आकर्षण तथा आत्म-समर्पण ।

5. अभिव्यक्ति के लिए रहस्यवादी कवि मुख्यतः
रूपकों प्रतीकों का माध्यम ग्रहण करते हैं ।
मुक्तक गीतिशैली की इसमें प्रचुरता है ।

6. आधुनिक रहस्यवाद मध्यकालीन साम्प्रदायिकताओं
से पूर्ण रूप से मुक्त है ।

7. आधुनिक रहस्यवादी कवि भी मूलतः भक्त ही हैं
लेकिन साधारण भक्तों की भांति पद-पद पर
भगवान का नाम न रटते ।

8. मनुष्य को जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठाकर
उसका मानसिक परिष्कार करने में रहस्यवाद का
बड़ा हाथ है ।

9. छायावाद के प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी रहस्यवाद
के भी कवि हैं । लेकिन उनकी मुख्य रहस्यवादी कविता

संगत नहीं है; वे मूलतः छायावादी हैं। अत्याधुनिकों में 'अज्ञेय' रहस्य-भावना से प्रेरित हैं।

10. रहस्यवादी कवियों में निराला का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। अज्ञेय के नवरहस्यवाद का स्रोत निराला का रहस्यवाद ही है।

. . . . . .

तीसरा अध्याय :

निराला और प्रगतिवाद

3. निराला और प्रगतिवाद

3.1. नामकरण :-

'प्रगति' का शाब्दिक अर्थ है अग्रसर होना या उन्नति करना । इस अर्थ में प्रत्येक युग का साहित्य प्रगतिशील है ।(1) जब 'प्रगतिशील लेखक संघ' का अधिवेशन लखनऊ में हुआ था तब प्रेमचंद ने अपने भाषण में संघ के नामकरण पर संदेह प्रकट किया था । उनका अभिमत था कि साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होते हैं ।(2) शिवदान सिंह चौहान भी प्रगतिशील साहित्य तथा प्रगतिवाद को एकार्थक स्वीकार नहीं करते । उन्होंने मार्क्सवाद से प्रेरित साहित्य-प्रवृत्ति को प्रगतिवाद तथा अन्य आधुनिक भविष्योन्मुखी साहित्य को प्रगतिशील कहा है ।(3) परंतु डॉ० नामवरसिंह इस प्रकार के वर्गीकरण को निरर्थक मानते हैं ।(4) कुछ भी हो, आज प्रगतिवाद शब्द से समस्त उन्नतिशील साहित्य का संपूर्ण ज्ञान नहीं होता । मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्य के लिए यह नाम रूढ़ हो गया है ।

3.2. प्रगतिवादी दर्शन :

'प्रगतिवाद' को समझने के लिए पहले मार्क्सवाद के दार्शनिक आधार का विवेचन आवश्यक है । मार्क्स की दृष्टि में 'पदार्थ' या 'वस्तु' (मैटर) ही परम-सत्य है । उस सत्य के प्रकाश में उन्होंने व्यक्ति और समाज को देखा-परखा है, इतिहास और संस्कृति की व्याख्या की है ।

---

1. शिवकुमार मिश्र : प्रगतिवाद, पृ० 23
2. हंसराज रहबर : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 27
3. शिवदानसिंह चौहान : साहित्य की समस्याएँ : पृ० 51
4. डॉ० नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 80

मार्क्सवाद का दार्शनिक सिद्धांत द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद है । इस सिद्धांत के अनुसार जीवन में दो तत्वों की प्रधानता है - 1. स्वीकारात्मक (पॉज़िटिव) २. नकारात्मक (नैगेटिव) । इन विरोधी तत्वों के संघर्ष से ही जीवन का विकास संभव है । (1) यह संघर्ष चेतना को जन्म देता है । 'द्वंद्व' विरोधी तत्वों का द्वंद्व है और 'भौतिक' का संबंध 'भूत' या 'वस्तु' (मैटर) से है ।

मार्क्स सृष्टि को उसके आविर्भाव-काल से विकासशील मानते हैं । इस विकास के मूल में दो विरोधी शक्तियाँ संघर्षरत रहती हैं - 1. प्रगतिवादी और २. प्रतिक्रियावादी । इन में प्रगतिवादी तत्वों की आखिर विजय होती है और इनसे अनुरूप संसार भी विकसित होता जाता है ।

मार्क्स जीवन और संसार की व्याख्या मात्र से तृप्त न हुए । उन्होंने वर्तमान शोषण, असंतोष और सामाजिक वैषम्य के मूलकारणों का उन्मूलन कर समस्त विश्व का पुनर्निर्माण करना चाहा । इस उद्देश्य से ही मार्क्स ने पूंजीवाद के विरुद्ध अपने राजनैतिक सिद्धान्तों का - साम्यवाद का - प्रचार किया था । उन्होंने देखा कि समाज का उत्कर्षापकर्ष उसकी आर्थिक-व्यवस्था पर निर्भर है । एक वर्गहीन समाज की स्थापना करने को वे प्रयत्नशील हुए ।

३.३. प्रगतिवाद का इतिहास :

मार्क्स के राजनैतिक सिद्धान्तों से प्रेरित साम्यवादी आंदोलनों ने ही प्रगतिवाद को जन्म दिया था । सर्वप्रथम प्रगतिवादी साहित्यकार के रूप में इटली के 'मारीनेति' की गणना की जाती है, जिन्होंने 'भविष्यवाद' नामक विचार धारा को जन्म दिया था । (२)

- -

1. "Development is the struggle of opposites" - V.I.Lenin : Collected works, Vol.38, P.360

२. डा0 भक्तराम शर्मा : मार्क्सवाद और हिन्दी कविता, वाणी प्रकाशन,

अंग्रेज़ी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवेश सन् 1930 के बाद हुआ ।(1) गाल्सवर्दी, बर्नार्ड शा, स्टीफन स्पेंडर की कृतियों में मजदूरों के प्रति सहानुभूति तथा उनकी प्रगति को रोकनेवाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रति विद्रोहात्मक भावनाएं व्यक्त की गयी हैं ।

यद्यपि राजनैतिक दल के रूप में भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना सन् 1924 में ही हो गयी थी (2) तो भी 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' (इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन) की स्थापना 1935 ई० में ही लंदन में हुई । मुल्क राज आनंद, सज्जाद जहीर आदि के प्रयत्न से ही इस संस्था का जन्म हुआ था । इस की प्रेरणा उन्हें 'सोवियत लेखक संघ' से मिली । अगस्त 1934 में 'सोवियत लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन मैक्सिम गोर्की के सभापतित्व में हो चुका था । इसमें रूस के ख्याति प्राप्त लेखकों के अतिरिक्त 40 विदेशी लेखकों ने भी भाग लिया था । रूस के बाहर भी इस लेखक संघ का प्रभाव पड़ा । 'प्रगतिशील लेखक संघ' नाम से एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का आयोजन हुआ । इसका प्रथम अधिवेशन अंग्रेज़ी उपन्यासकार ई०एम०फार्स्टर के सभापतित्व में सन् 1935 में हुआ । भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का आयोजन भी इसी साल हुआ । मुल्कराज आनंद इसका प्रथम अध्यक्ष चुना गया ।

भारतीय प्रगतिशील लेखक 'संघ' का प्रथम अधिवेशन सन् 1936 को प्रेमचंद के सभापतित्व में लखनऊ में हुआ । इस सम्मेलन में सुमित्रानंदन पंत, यशपाल आदि साहित्यिकों ने भाग लिया । इससे पहले ही जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, डॉ० राधाकृष्णन, सुभाष चन्द्र बोस,

---

(1)डॉ० भगतराम शर्मा : मार्क्सवाद और हिन्दी कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, फर्स्ट 1980, पृ० 12

2. वही पृ० 13

भगतसिंह जैसे नेता भी समाजवादी विचार-धारा से काफी प्रभावित थे । 1936 ई0 के लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष पद से नेहरू ने कहा था : ''समाजवाद वर्तमान में वह प्रकाश है, जो हमारे पथ को आलोकित करता है ।'' (1)

3.4. <u>हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद :</u> हिन्दी के कवियों में नयी हवा का प्रथम प्रभाव सुमित्रानंदन पंत पर पड़ा । (2) नयी हवा के लगते ही वे छायावाद-युग के अंत की घोषणा कर बैठे । 'युगांत' का काल छायावाद का यौवन-काल ही था, उसका उतार पाकर प्रगतिवाद उठ खड़ा हुआ । (3) इसे प्रोत्साहित करने को पंत के ही नेतृत्व में 'रूपाभ' का प्रकाशन शुरू हुआ । 'हंस' 'जागरण', 'जनशक्ति', 'नया साहित्य', 'विप्लव', 'प्रगति' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का दल प्रगतिवादी आंदोलन में संलग्न रहा । इन प्रकाशनों के माध्यम से डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगलसिंह सुमन, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव जैसे कवि प्रकाश में आये ।

पंत अपने को प्रगतिवाद के प्रवर्तक मानकर 'युगांत' के बाद 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि में प्रगतिवादी विचारधारा की पुष्टि करते रहे । लेकिन उनकी प्रवृत्ति प्रगतिवाद की स्थूलता से मेल खानेवाली न थी । इसके स्थूल भौतिक दर्शन से असंतुष्ट होकर आखिर वे अरविंद दर्शन की ओर आकृष्ट हो गये ।

- -

1. जवाहरलाल नेहरू : भारत में अठारह महीने, पृ0 41
2. डॉ0 नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ0 96
3. वही, पृ0 97

परंतु निराला ने इस नयी हवा को स्वीकार करने में जल्दबाजी नहीं की । ''. . .पंत जी की तरह निराला ने इस विषय में जल्दबाजी इसलिए नहीं दिखलायी कि वे बहुत पहले से ही कविता को 'बहु-जीवन की छवि' मानकर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते आ रहे थे और इसलिए भी कि पंत जी की अपेक्षा उनमें वैयक्तिकता तथा अहंवाद अधिक था । '' (1)

प्रगतिशील प्रवृत्तियों की ओर निराला की आस्था प्रगतिवाद के आगमन के बहुत पहले ही व्यक्त हो चुकी थी । निर्धनों और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए उन्हें किसी विदेशी वाद-विशेष की सहायता आवश्यक नहीं थी । ऐसी परिस्थिति में यह संदेह का उठना स्वाभाविक है कि निराला की ऐसी कृतियों को किस कोटि में रखा जाय ? उन्हें प्रगतिवादी कहना कहाँ तक संगत है ?

निराला की गणना हिन्दी में प्रगतिवादी कवि के रूप में भी की जाती है, परंतु प्रगतिवाद के हिन्दी में आने के बहुत पहले ही उनकी लेखनी से जो कविताएं निर्धनों-पीड़ितों की समस्यायें लेकर उतर पड़ीं, वे मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवाद के अन्तर्गत नहीं आतीं । ऐसी रचनाएं प्रगतिशील ही कही जायेंगी क्योंकि प्रगतिशील साहित्य की परिधि प्रगतिवाद की भांति संकुचित नहीं रहती । ''. . .प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिवाद ये दोनों एकार्थक नहीं हैं, और न प्रगतिशील लेखक का प्रगतिवादी होना ही जरूरी है । पक्ष और विपक्ष से दिये गये तर्कों में अंत तक इसको

- -

1. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, पृ० 8।

आकार रूप ही समझने की प्रवृत्ति रही है ।''(1) गंगाप्रसाद पाण्डेय भी 'प्रगतिशील' शब्द से असंतुष्ट दिखाई देते हैं ।(2) लेकिन डॉ० नामवरसिंह, डॉ० रामविलास शर्मा जैसे आलोचक प्रगतिवादी कृतियों को प्रगतिशील कहने में कोई आपत्ति नहीं देखते ''जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है ।''(3) पर इनके बीच भेद मानना ही सुविधाजनक प्रतीत होता है । प्रगतिशील साहित्य प्रगतिवादी साहित्य की अपेक्षा अधिक व्यापक है । श्री शिवदानसिंह चौहान का कहना है कि इन आलोचकों ने ''प्रगतिशील साहित्य का अर्थ अपनी नयी परिभाषा में संकुचित करके उसे हमारे देश काल की विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों से ही नहीं, बल्कि एक विशेष राजनीतिक पार्टी और प्रोग्राम के साथ भी बाँध दिया है ।''(4)

प्रगतिवाद का प्रभाव केवल काव्य-क्षेत्र में ही सीमित न रहा । इस के संघर्ष से पद्य की अपेक्षा गद्य का काफी विस्तार हुआ । मुल्कराज आनंद, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव जैसे कलाकारों ने अपनी अमूल्य गद्य कृतियों से इस धारा की श्रीवृद्धि की । तब तक अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यों में प्रगतिवाद का प्रचार हो चुका था और सारे देश में इसकी लहर दौड़ पड़ी थी । यह आन्दोलन इतना व्यापक था कि आलोचक कहने लगे कि ''भक्ति-आंदोलन के बाद अखिल भारतीय साहित्य केवल प्रगतिवाद के ही युग में संभव हो सका । '' (5)

- -

1. शिवदानसिंह चौहान: साहित्य की समस्याएँ, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र०सं० 1959, पृ०5।
2. गंगाप्रसाद पाण्डेय, त्रिवेणी, पृ०156-157
3. डॉ०नामवरसिंह: आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ०80
4. शिवदानसिंह चौहान: साहित्य की समस्याएँ , पृ० 5।
5. डॉ० नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 96

3.5 प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ :

प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों में यथार्थ का आग्रह, रूढ़ियों का विरोध, शोषकों के प्रति आक्रोश, शोषितों के प्रति सहानुभूति, क्रांति की भावना, रूस का गुणगान और शिल्पसंबंधी नवीनता मुख्य हैं।

3.5.1 यथार्थ का आग्रह :

छायावाद की कल्पनाशीलता की प्रतिक्रिया रूप में ही प्रगतिवाद का आरंभ हिन्दी में हुआ। ''(1) सौंदर्य, दुःख, कष्ट, त्याग, आदर्श, क्रोध, क्षोभ का चित्रण भी छायावाद में हुआ पर वास्तविक अनुभूतियों का नहीं बल्कि कल्पित दुःख कष्ट, क्रोध, क्षोभ आदि का है। ''(2) जीवन के कटु-यथार्थ को मान्यता न देने के कारण ही छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई थी और ऐसी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक भी था क्योंकि 'विकासोन्मुख मानव-बुद्धि अपनी गतिशीलता में ही शाश्वत एवं महान है। '' (3)

लेकिन निराला की कविता में छायावाद के अभ्युदय-काल से लेकर यथार्थ का आग्रह दृष्टिगोचर है। सन् 1923 में वे लिख रहे हैं : ''भूख से सूख ओंठ जब जाते/दाता-भाग्य-विधाता से क्या पाते ? -/घूंट आँसुओं के पीकर रह जाते।/चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,/और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए। '' (4)

प्रगतिवाद बाहर प्रकृति में नहीं, जन-जीवन में ही सौंदर्य खोजता है। मनुष्य के व्यक्तिगत अस्तित्व से बढ़कर सामाजिक अस्तित्व की चिंता ही इसमें अंकित की गयी है। वैयक्तिकता छायावादी काव्य

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य-शास्त्र, पृ0 32
2. वही, पृ0 32
3. डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल : हिन्दी साहित्य में विविध वाद, पृ0 27।
4. 'भिक्षुक' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 65

में प्रधान थी तो प्रगतिवाद में सामाजिकता की प्रधानता है । नरेन्द्र शर्मा[1] बालकृष्ण शर्मा नवीन[2] और शिवमंगलसिंह सुमन[3] की कविताओं में व्यक्ति से बढ़कर समाज का स्वर मुखर है ।

3.5.2 रूढ़ियों का विरोध :

प्रगतिवाद मनुष्य को सर्वशक्तिमान मानता है । रूसी साहित्यकार गोर्की ने मानव को ही सभी वस्तुओं तथा विचारों का स्रष्टा माना है ।[4] मार्क्सवादी दर्शन के बड़े ज्ञाता अफनास्येव भी यूनानी दार्शनिक प्रोटागोरस का पक्ष लेते हुए मनुष्य को सभी चीजों का मानदंड मानते हैं ।[5] प्रतिक्रियावादियों से ऐसे श्रेष्ठ मानव की निंदा देखकर प्रगतिवादी कलाकार का हृदय चूर-चूर हो जाता है और वह मानव की प्रगति में रोड़े अटकानेवाली अंधरूढ़ियों तथा धार्मिक परंपराओं पर कुठाराघात कर बैठता है । सुमन जब भी पूजा की दृष्टि से देखने में वह हिचकता नहीं -

''आज भी जन-जन जिसे करबद्ध होकर याद करते,
नाम ले जिनका भुजाएँ टेक फरियाद करते,
किन्तु मैं उनका पूजा की धूलि से सत्कार करता ।''

---

1. नरेन्द्र शर्मा : लाल निशान, पृ० 39
2. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : नवीन का काव्य, पृ० 258
3. शिवमंगलसिंह सुमन : प्रलय सृजन, पृ० 43
4. For me there are no ideas beyond man; for me man is the creator of all things and all ideas, he is the miracle wo[rker] and the future master of all the forces of nature; Gorkey, Literature & Life : P.56
5. वि० अफनास्येव, मार्क्सवादी दर्शन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सी०सं० 1977, पृ० 169

मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार ईश्वर शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक मिथ्यासंकल्प है। शोषितों को दासता की जंजीरों में जकड़ने में यह काल्पनिक ईश्वर काम आता है। इसलिए प्रगतिवादी कवियों से परमसत्ता की निंदा ही अधिक हुई। पंतजी ने 'ग्राम्या' में 'कुछ रुढ़ि रीति को था अफीम सी चिर विराम' (1) कहकर ग्राम देवता की निंदा की है। लेकिन निराला में ईश्वर के प्रति इस प्रकार का निंदा-भाव दिखाई नहीं देता। अद्वैतवादी निराला उन्नतपथी हो सकते हैं, क्रांतिकारी भी लेकिन अनीश्वरवाद से वे कोसों दूर रहे। यह निराला की अपनी विशिष्टता थी। युग-भावना का प्रतिनिधित्व करते हुए भी वे अपने आदर्शों पर अटल रहे।

3.5.3. शोषकों के प्रति आक्रोश

प्रगतिवादियों के अनुसार समस्त मानव-जाति दो भागों में विभक्त है - 1. शोषक वर्ग और 2. शोषित वर्ग।

शोषक वर्ग पूंजीवाद के समर्थक हैं। शोषित वर्ग शोषकों के गुलाम बनकर रहते हैं। प्रगतिवादी कवि मानवता की स्थापना करने को इस सामाजिक वैषम्य का विनाश अनिवार्य समझते हैं। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़नेवाली निराला की नायिका चुपचाप अपने काम में लीन है, लेकिन उसके हाथ के गुरु-हथौड़े से आक्रोश का स्वर ही सुनाई देता है। स्वयं कवि ने इस ओर संकेत भी किया है कि हथौड़े की चोट अट्टालिका पर पड़ती है। (2)

---

1. सुमित्रानंदन पंत : ग्राम्या- 'ग्राम देवता', सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली-2, राजकमल, प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि0सं0 1980, पृ0 155
2. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, राजकमल, दिल्ली, प्र0सं0 1971 पृ0 [illegible]

''कोई न छायादार /पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार; / श्याम तन, भर बंधा यौवन, /नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन, / गुरु हथौड़ा हाथ, /करती बार-बार प्रहार:-/ सामने तरु - मालिका अट्टालिका, प्राकार।'' (1)

'कुकुरमुत्ता' में यह चोट सीधी हो जाती है । छायावादी प्रतीक-कल्पना के विरुद्ध इस कविता में गुलाब पूंजीपतिवर्ग का प्रतीक बनकर आया है: '' खून चूसा खाद का तु ने अशिष्ट डाल पर इतरा रहे कैपिटलिस्ट''(2)

3.5.4 शोषितों के प्रति सहानुभूति :

- - - - - - - - - - - - - - प्रगतिवादी लेखकों ने शोषितों में श्रमिक, कृषक और नारी को स्थान दिया है । इन पीड़ितों पर होने वाले अत्याचारों का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रगतिवादी रचनाओं में मिलता है । इस शोषण का केन्द्रबिंदु भारतीय ग्राम है । 'ग्राम्या' में पंत ने गाँव की शोषित नारी का करुण चित्र प्रस्तुत किया है । नारी की मुक्ति के लिए कवि बार-बार आवाज़ उठाते हैं : ''योनि नहीं है रे नारी, / वह भी मानवी प्रतिष्ठित/ उसे पूर्ण स्वाधीन करो, / वह रहे न नर पर अवसित । '' (3)

शोषितों के दीन-भाव पर शमशेर का हृदय भी द्रवित हो उठा है: ''वाम वाम वाम दिशा, / समय साम्यवादी, / पृष्ठभूमि का विरोध अंधकार-लीन।/ व्यक्ति-कुहा स्पष्ट हृदय-भार, आज हीन ।/हीन भाव, हीन भाव/ मध्यवर्ग का समाज, दीन । '' (4)

- -

1. 'तोड़ती पत्थर (सन् 1937) निराला रचनावली-1, पृ0 323
2. 'कुकुरमुत्ता' (1941 ई०) निराला रचनावली-2, पृ045
3. सुमित्रानंदन पंत : ग्राम्या 'नारी', सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली-2, पृ। 67
4. शमशेर बहादुरसिंह: कुछ और कविताएँ , पृ0 8

विवेकानंद के गुरुभाई अखंडानंद जी से शिकायत करनेवाली बुढ़िया का कितना करुणाजनक चित्र निराला ने खींचा है: '' हे महाराज, /संसार की गाज/ यही है गिरि, है विपत बड़ी, /पड़ा है अकाल, /लोग पेट भरते हैं झाड़-झंखार-पेड़ों की छाल। /कोई देता नहीं सहारा/रहता घर एक यही प्यारा, /मदद नहीं करती सरकार/ क्या कहूँ संसार में हो ही है मार/ तो कौन कहाँ हो ?'' (1)

लेकिन यही निराला की सहानुभूति मार्क्सवाद के प्रभाव का परिणाम नहीं थी, इसका प्रेरणास्रोत विवेकानंद-दर्शन था।

५. ५. क्रांति की भावना :

प्रगतिवादी केवल शोषकों से विरोध प्रकट करने से या शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाने से संतुष्ट नहीं होते। वे आज की विषम-परिस्थिति का निराकरण करना भी अपना धर्म समझते हैं। इस के लिए एक मात्र मार्ग उनके लिए क्रांति है। मेहनतकशों के हाथ व्यक्तिगत की पूंजी लाने के लिए ही वे प्रयत्नवान हैं :

> ''जो न हिलाते हाथ, उन्हीं के हाथ लगी जीवन की पूंजी।
> टकरा जाते हैं मेहनतकश। हार जाते हैं मुंजी।'' (2)

---

1. 'सेवा प्रारंभ' (सन् 1937) निराला- रचनावली-1, पृ0 338
2. नरेन्द्र शर्मा: प्यासा निर्झर, पृ0 74

निराला भी क्रांतिद्वारा जनवादी संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं । उनकी कामना है कि मिल में होनेवाली पूंजी सारे देश में समान रूप से वितरित हो जाय । अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला बना दी जाय :

''सारी संपत्ति देश की हो, / सारी आपत्ति देश की बने, / जनता जातीय वेश की हो, / वाद से विवाद यह ठने, /कांटा कांटे से कढ़ाओ । '' (1)

निराला के अतिरिक्त बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर, रामविलास शर्मा आदि की कविताओं में भी क्रांति के स्वर सुनाई देते हैं । परंतु इनकी क्रांति-भावना निराला की क्रांति-भावना से एकदम भिन्न है । यद्यपि निराला ने कांटे से कांटे को कढ़ाने की बात कही है तो भी उनका मार्ग हिंसात्मक नहीं है ।

अमीरों की हवेली को सभा करके जल्द-जल्द पैर बढ़ाने का साहस तो उनमें अवश्य था, आगे आगे वे चलते भी थे, लेकिन उनकी आदत यह थी कि मार का जवाब वे कभी भी मार से देना नहीं चाहते थे । यह उनकी शक्तिहीनता या कायरता का लक्षण नहीं था, मन की शक्ति का परिचायक था । शारीरिक दृष्टि से हृष्टपुष्ट एवं तन्दुरुस्त होकर भी शत्रुओं की कमजोरियों को निराला सहिष्णुता से देखते थे । (2) जनवाद के विरोधी 'केपिटलिस्ट' के लिए भी उन्होंने केवल 'अशिष्ट' शब्द का ही प्रयोग किया है, वे उस पर हाथ नहीं चलाते । शक नहीं कि वे संपन्न वर्गों का क्षय अवश्य देखना चाहते हैं । लेकिन इसलिए उन्हें शासकों की

---

1. 'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ', निराला रचनावली-2, पृ० 163
2. निराला रचनावली-2, पृ० 45

मदद चाहिए । आखिर बगीचे के मालिक नवाब के मन में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति जगा देने में वे सफल तो हुए, पर यह हिंसात्मक-मार्ग से नहीं कुकुरमुत्ता के महत्व को भली-भांति समझा-बुझाकर ही कवि ने मालिक का मन जीत लिया था ।

[illegible]रों पर बिजली गिराने की कवि बादलों की उम्मीद जरूर करते हैं,(1) किन्तु सन् 1924 में लिखी गयी कविता पर मार्क्सवाद का या उसके हिंसात्मक स्वभाव का आरोप व्यर्थ है । तब तक सुचारु रूप से साम्यवादी दलों का संगठन भी भारत में संभव न हुआ था ।

भारत में क्रांति मचाने के लिए निराला मार्क्स को आमंत्रित नहीं करते । पंत की भांति उन्हें साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग के आने की प्रतीक्षा भी नहीं । मार्क्स को त्रिनेत्र के ज्ञानचक्षु से उत्पन्न भी वे नहीं मानते । पंत ने लिखा था:

> ''धन्य मार्क्स चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर ।
> तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर ।।''(2)

परन्तु निराला ने मार्क्स को अपनी श्यामा के निकट आने नहीं दिया है । शोषकों तथा व्यापारियों को दंड देने तथा उनकी संपत्ति छीनकर जनता में समान रूप से बांटने का भार कवि श्यामा पर सौंपते हैं : ''सामान सभी तैयार/कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझको हार ?/कर-मेखला मुंड-मालाओं से बन मन-अभिरामा/एक बार बस और नाच तू श्यामा।''(3)

सुर-असुर के इस संघर्ष को कवि ने अपने व्यक्तिगत-साहित्यिक जीवन से जोड़ा है । साधक निराला अनुभव करते हैं कि देवी का ध्यान

- -

1. निराला: निराला रचनावली -I पृ॰ 123
2. सुमित्रानंदन पंत: 'मार्क्स के प्रति' युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली-3 पृ०92
3. निराला: 'आवाहन' निराला रचनावली-1, पृ० 73

रंग धीरे धीरे विलुप्त हो जाता है और वे गौरवर्णवाली सरस्वती का रूप धारण करती हैं । सरस्वती-पुत्र निराला साहित्य-क्षेत्र के प्रतियोगियों को पराजित करके देवी को प्रसन्न करने के क्रम में डूबे हुए अपने को पाते हैं । इसीलिए तो उन्होंने एक बार अपने अनन्य मित्र पंत जी से कहा था :
''मैं समर में तुम्हारा खून पी जाऊँगा ।'' (1)

3.3.6 रूस का गुणगान :

मार्क्स जर्मनी के थे, लेकिन मार्क्सवाद का जन्म रूस में हुआ । प्रगतिवाद मार्क्सवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति होने के कारण इस में जगह-जगह पर रूस, मार्क्स, लाल-सेना आदि का गुणगान मिलता है । प्रगतिवाद की मान्यताओं को आत्मसात् किये बिना इसका गुणगान करनेवालों की कमी भी नहीं है । इस आरोप से पंत जी भी बच नहीं पाते । 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद का 'मानिफेस्टो' प्रस्तुत करनेवाले पंत जी उसकी जवानी में ही उसे त्याग प्रगतिवाद के समर्थक निकले । उनके अनुसार साम्यवाद के साथ पदार्पण करनेवाला प्रगतिवाद स्वर्णयुग का प्रतिनिधित्व करता है :

'' साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिनंदन ।'' (2)

नरेन्द्र शर्मा की कविता में रूस गरीबी, बेकारी जैसी जटिल समस्याओं से मुक्त एक स्वप्न-लोक-सा चित्रित हुआ है । लाल-रूस का वे हार्दिक स्वागत यों करते हैं :

---

1. उद्धृत : डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना - पृ० 50।
2. सुमित्रानंदन पंत : युगवाणी , पृ० 39

''यही राज है पंचायत का, यहाँ नहीं है बेकारी
यहाँ न उठती दाढ़ी - चोटी यहाँ नहीं चाटुकारी
मीलें यहाँ मजदूरों की हैं, धरती यहाँ किसानों की ।'' (1)

दिनकर ने अपनी 'दिल्ली और मास्को' शीर्षक कविता में मास्को की स्तुति भक्ति के स्तोत्रों की शैली में की है । (2)

मुक्तिबोध भी लाल सोवियत की नूतन मानवता पर मुग्ध दीखते हैं :

''लाल सोवियत देश कि नूतन मानवता की आस
दुनिया के मजदूरों का वह जलता एक विश्वास ।'' (3)

भारत भूषण अग्रवाल, शिवमंगलसिंह, 'नवीन ' और रामविलास शर्मा की कविताओं में भी रूस के प्रति श्रद्धा-भाव दिखाई देता है ।

3.5.7. शिल्प संबंधी नवीनता :

प्रगतिवादी युग में यद्यपि काव्य के शिल्प-तत्व के प्रति उपेक्षा-भाव दिखाया गया तो भी प्रतीक विधान, बिंबयोजना और छंद-प्रयोग में नवीनता के लक्षण दृष्टव्य हैं ।

3.5.7.1. प्रतीक - विधान :

शोषण के विरुद्ध विद्रोह कर नयी व्यवस्था स्थापित करने में कुछ सांस्कृतिक प्रतीक काम आये हैं । रामधारी सिंह दिनकर,

---

1. नरेन्द्र शर्मा : लाल निशान , पृ० 39
2. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : सामधेनी , पृ० 59
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : उद्धृत: डॉ. भक्तराम शर्मा, मार्क्सवाद- और हिन्दी कविता. पृ. ४४

सोहनलाल द्विवेदी और रांगेय राघव ने ऐसे प्रतीकों का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है :

''मैं वही शम्बूक हूँ।/ तू ने दिया था रोक उस दिन/स्वर्गपथ पर मुझे जाते देख/ मैं वही एकलव्य हूँ/कि धनुर्धारी वीर अर्जुन/डर गया था/ और तू ने ले लिया था अंगूठा।'' (1)

यहाँ 'शम्बूक' 'एकलव्य' जैसे शब्दों से पौराणिकता का बोध होता है। ऐसा लगता है कि कवि नये परिवेश में पुराणों तथा इतिहासों की घटनाओं पर पुनर्विचार करना चाहते हैं।

सांस्कृतिक प्रतीकों के अतिरिक्त प्रकृत प्रतीकों तथा ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रयोग प्रगतिवादी काल में हुआ है।

3.5.7.2 बिंब-योजना :

बिंब-योजना प्रगतिवादी युग के रचनाशिल्प का महत्वपूर्ण अंग है। इस युग में कल्पना और भावुकता का स्थान यथार्थ और बौद्धिकता ने ले लिया था। इसलिए इस काल की कविता में भाव-बिंबों तथा शब्द-बिंबों का दर्शन बहुत कम होता है। यथार्थ पर अधिक ज़ोर देने के कारण इस काल की कविता में मूर्त और प्रतिबिंबात्मक बिंबों का बाहुल्य है। यथार्थ तथा स्थूल वर्णनों के अवसर पर प्रतिबिंबात्मक बिंब अधिक सफल बन पड़ा है। कुछ कलाकारों के साथ ऐसा वर्णन शुष्कता से बच भी जाता है:

---

1. डॉ० रांगेय राघव : पिघलते पत्थर, पृ० 115

''जहाँ मेरे झाड़, काँटे, कड़ था,
जहाँ मेरा बदन अकड़ी गाँठ का ।
रस-ही-रस मैं ही रहा
सफेदी को जहन्नुम रोकर रहा ।
दुनिया में सबने मुझी से रस चुराया,
रस में मैं डूबा - उतराया । '' (1)

3.3.7.3 छंद - प्रयोग : छंदों के प्रयोग में छायावादी परंपरा से बढ़कर या हटकर इस काल के कवि चल न सके । इसका कारण यह था कि एक-न-एक प्रकार से सभी प्रगतिवादी कवि छायावाद की शिल्पविधि से प्रभावित थे । इसलिए वस्तु तत्व की तुलना में प्रगतिवादी काव्य में शिल्पतत्व का विकास संभव न हो सका । किन्तु अकेले राही निराला तब भी नयी छवि और नये छंद की तलाश में लीन थे :

''और और छवि है यह ।
नूतन भी छवि, है यह
और और छवि ।'' (2)

मुक्तिबोध ने मुक्तछंद को उसकी संगीतात्मकता से मुक्त कर दिया :

''गई सांझ/कदम्ब-वृक्ष पास
मंदिर - चबूतरे पर बैठकर
जब कभी देखता हूँ तुमको / मुझे याद आते हैं - /
भयभीत आँखों के हंस/ व पाँख भरे कबूतर ।'' (3)

---

1. निराला : 'कुकुरमुत्ता', निराला रचनावली -2, पृ0 49
2. निराला : निराला रचनावली-1, पृ0 346
3. मुक्तिबोध : 'एक अरूप शून्य के प्रति', नया खतरा, पृ0 98

3.5.7.4. शब्द - चयन :

प्रगतिवादी कलाकारों ने छायावाद के काल्पनिक सौंदर्यवादी दृष्टिकोण को छोड़कर विषयवस्तु के अनुरूप भाषा शैली को सरल तथा प्रभावात्मक बना दिया। साधारण बोलचाल की भाषा को भी काव्य में स्थान दिया गया। प्रगतिवादी मुख्यतः ही किसानों और मजदूरों केलिए लिखते थे इसलिए छायावाद के अभिजात संस्कारवाली शब्दों तथा प्रयोगों से वे बचते रहे।

भावानुकूल भाषा को परिवर्तित करने में निराला निपुण थे। ''निराला इस बात को समझते थे कि लोक-जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य, व्यापार में ही नहीं लिया जा सकता उसकेलिए उसकी भाषा भी आवश्यक होती है, पंत इस बात को समझते हुए भी चरितार्थ नहीं कर सके (1)।''

पंतजी की प्रगतिवादी कविता की भाषा छायावाद की आभिजात्य से मुक्त नहीं हो पायी, इसलिए उनके प्रगतिवादी भावों के अनुकूल भाषा में परिवर्तन न हुआ। '' प्रगतियुग के सभी कवियों की भाषा शैली-गत वैभिन्य के साथ लगभग समान स्तर की है। केवल पंतजी ही एक ऐसे कवि हैं, जिनकी भाषा उनकी प्रगतिशील रचनाओं में भी जनसाधारण की भाषा के निकट नहीं आ सकी ''.. (2)

निराला की 'प्रगतिशील' कविताएँ भी आभिजात - शब्दावली से पूर्णरूप से मुक्त नहीं है, लेकिन उनकी 'प्रगतिवादी' कविताएँ केवल भाव की दृष्टि से ही नहीं, भाषा की दृष्टि से भी लोक-भावना के बिलकुल अनुकूल है। निराला ने उठे हुए, सुंदर अभिजात शब्दों का प्रयोग ही 'अभिमान', 'विधवा' जैसी अपनी प्रगतिशील कृतियों में किया था,

- -

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : तीन दशक, पृ० 3।
2. कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ० 25।

परंतु समाजवाद से प्रभावित होने पर उन्होंने प्रगतिवादी कृतियों के लिए साधारण लोक-भाषा का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त समझा । ''निराला के अनुभव की वाटिका में कुकुरमुत्ता अपने आप उगा है– उगाया नहीं गया है। यही वे पौध से अलग होती हैं । x x x इन कविताओं की भाषा लोक की है, मुहावरे लोक के हैं, शैली लोक की है ।'' (1)

लोकोक्तियों तथा मुहावरों का ज्यों-का-त्यों प्रयोग निराला के साथ-साथ दिनकर, रांगेय राघव और शिवमंगल सिंह सुमन की कविताओं में मिलता है ।

मुख्य रूप से उद्बोधनात्मक, वर्णनात्मक और विचारात्मक शैलियों का इस काल में प्रयोग हुआ । काव्य को कृत्रिमता से दूर रखने के उद्देश्य से व्यंग्यात्मक शैली भी अपनायी गयी । प्रगतिवादी युग में व्यंग्यात्मक शैली को लेकर काव्य रचनाओं में निराला का स्थान सर्वोपरि है । ''प्रेम संगीत,'' 'कुकुरमुत्ता', 'गरम पकौड़ी', 'खजोहरा', 'रानी और कानी', 'मास्को-डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' जैसी कृतियों में निराला के व्यंग्य की विभिन्न झाँकियाँ प्रस्तुत हैं ।

3.6 प्रगतिवाद की परिभाषा :

.... 'समाज को समझने और बदलने तथा शोषणहीन समाज-व्यवस्था का निर्माण करने के विज्ञान का नाम मार्क्सवाद है । '' (2) डॉ० नगेन्द्र ने मार्क्सवाद या साम्यवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति को ही प्रगतिवाद कहा है । (3) किन्तु रामधारी सिंह दिनकर प्रगतिवाद को

....

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : तीन दशक, पृ० 31
2. डॉ० रामविलास शर्मा : साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1968, पृ० 21
3. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० 90

नवीनता का पर्याय ही मानते हैं : '' प्रगतिवाद का जो अर्थ मैं समझ सका हूँ वह साम्यवाद नहीं बल्कि नवीनता का पर्याय है और उसके दायरे में उन सभी लेखकों का स्थान है जो वर्जित वर्जन पुरातन विकृपन और गतानुगतिकता के खिलाफ हैं। वे सभी लेखक प्रगतिशील हैं जो किसी प्रकार भी अनुकरणशील नहीं कहे जा सकते। '' (1) दिनकर की व्याख्या प्रगतिवाद के स्वरूप को साफ साफ प्रस्तुत करने में असमर्थ है उसमें अतिव्याप्ति दोष है।

यद्यपि वे इस पर साम्यवाद के प्रभाव को स्वीकार नहीं करते तो भी हिन्दी का प्रगतिवाद पूर्ण रूप से बाहर के आंदोलन की देन है।

प्रगतिवाद वैयक्तिक अनुभूतियों से हटकर सामाजिक समस्याओं पर केंद्रित है। प्रगतिवादी सिद्धांतों के अनुसार मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, उल्टे उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है। (2)

इसलिए व्यक्ति की उन भावनाओं का चित्रण ही प्रगतिवाद में मिलता है जिनका मूल सामाजिक व्यवस्था में है। '' प्रगतिवाद का अनुरोध है कि साहित्य की विषय सामग्री सामाजिक जीवन होना चाहिए, वैयक्तिक नहीं, उसमें सामाजिक जीवन का चित्र होना चाहिए, अर्थात व्यक्ति के सुख-दुःख एवं उन भावनाओं का जिनका मूल सामाजिक व्यवस्था में है।'' (3)

प्रगतिवादियों को वर्तमान 'आज' से हटकर अनागत 'कल' पर

- -

1. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : मिट्टी की ओर, पृ. 105

2. "It is not the consciousness of men that determines their being, but, on the contrary, their social being that determines their consciousness." Marx -Engels: on Literature and Art, Progress publisher, Moscow, 1976, p-41

3. डॉ० देवराज : प्रतिक्रियाएँ, राजकमल, 1966, पृ० 37

धार्मिक विश्वास है । आज का तिरस्कार करके स्वर्णिम भविष्य की कल्पना में वे अधिक संलिप्त रहते हैं । प्रगतिवादियों के इस दृष्टिकोण को अलबर्ट-कामू ने धार्मिक ही बताया है : '' They reject the man of today in the name of the man of the future. That claim is religious in nature." (1)

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी प्रगतिशील साहित्य के समर्थक थे । उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के दूसरे अधिवेशन (1938 ई०) में इसे वर्तमान दलित अवस्था में समुचित परिवर्तन लाकर सारे समाज को समुन्नत बनाने योग्य नयी धारा घोषित किया था : ''. . . जो भी हमें आलोचनात्मक प्रवृत्ति बनाता है, बुद्धि और तर्क के प्रकाश में संस्थाओं और परंपराओं की समीक्षा करता है, जो भी हमें सक्रिय बनाता है, परस्पर संगठित करता है, हमें बदलकर समुन्नत करता है, उस सबको हम प्रगतिशील मानते हैं'' (2)

सामाजिक प्रगति में बाधा उपस्थित करनेवाली पूंजीवादियों, सामन्तों तथा शासनकारक शक्तियों का दमन करके मानव को पूर्ण रूप से मुक्त करने का स्वप्न ही प्रगतिवाद देखता है । ''वह सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण करता है कि शोषक, शासक, सड़ी-गली मिथ्यानिष्ठाओं शक्तियों का पर्दाफाश हो और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षों युयुत्सा और आस्था को बल मिले ।'' (3)

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार युग की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं

- -

1. Albert Camus: The myth of Sisyphus, trans. Justin O' Brain, Penguin Books, Great Britain, 1979, P-189
2. उद्धृत : डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ० 148
3. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : तीन दशक, पृ० 31

63487
COCHIN ... LIBRARY

का प्रतिनिधित्व करनेवाला यह काव्य साहित्यिक रंगमंच पर युग की ऐतिहासिक आवश्यकता की अनिवार्य परिणति के रूप में अवतीर्ण हुआ और इसने छायावादोत्तर काव्य को एक नयी दिशा दी । [1]

यद्यपि प्रगतिवादी प्रवृत्ति को व्यक्ति केन्द्रित रोमानी अभिव्यक्ति के विरोध में उभरी एक नयी प्रवृत्ति कहा गया है [2] तो भी व्यक्ति - मानव का कल्याण ही इसका मुख्य ध्येय है । इसलिए मानवतावाद को प्रगतिशील चिंतन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो गया है । भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के छठे अधिवेशन में यह घोषणा की गयी थी कि ''हम मानवतावाद के महान आदर्शों के अनुकूल विचारों और अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं और उसका समर्थन करते हैं । '' [3]

पुरुषार्थों में से केवल 'अर्थ' की महत्ता को ही प्रगतिवादी स्वीकार करता है । [4] 'काम' और 'धर्म' 'अर्थ' के आश्रित मूल्यों के रूप में ही ग्रहण किये गये हैं 'मोक्ष' के अस्तित्व तक को प्रगतिवादी अस्वीकार कर देता है क्योंकि 'अर्थ' पर आधारित भौतिक-जीवन पर ही प्रगतिवादी का विश्वास है । पूर्णतः बोधगम्य भौतिक सत्ता को ही वह एकमात्र सत्य मानता है । उसके अनुसार संसार में कोई अज्ञेय वस्तु नहीं है । अब भी जो अज्ञात वस्तुएँ संसार में छिपी हैं विज्ञान और अभ्यास द्वारा जल्दी ही प्रकाश में आ जाएँगी । [5]

- -

1. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक: विमर्श के क्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र०सं० 1979, पृ० 128
2. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : विमर्श के क्षण, पृ० 107
3. उद्धृत: विमर्श के क्षण, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० 118
4. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ- 90
5. स्तालिन : सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास, पृ० 123

मानव की भौतिक शक्ति को सर्वोपरि मानने के कारण इसमें विद्रोह का स्वर भी मुखर है । प्राचीन और जर्जर व्यवस्थाओं पर यह चोट करता है । सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद जैसी ह्रासोन्मुखी व्यवस्थाओं का यह विनाश चाहता है और नयी मानवता के विकास में विश्वास करता है । (1)

देश की दुःस्थिति ही प्रगतिवादियों को इस प्रकार के विद्रोहों के लिए प्रेरित करती है । ''प्रगतिवाद उस व्यवस्था पर आघात करने निकला है जिसके कारण देश भूखा है । वह आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दासता की श्रृंखलाओं पर प्रहार करने निकला है, क्योंकि वह उनका ध्वंस चाहता है और उनके ध्वंस पर हर दृष्टि से स्वतंत्र भारत का निर्माण करना चाहता है, जिसमें भारत का जन-जन स्वतंत्र और सुखी होगा । ''(2)

प्रगतिवाद की जो परिभाषाएं मिलती हैं, सभी ने भौतिक जीवन के महत्व को स्वीकार कर लिया है । भौतिक जीवन की प्रमुख कथा समाज है, व्यक्ति जिसकी एक इकाई मात्र है। जीवन की वास्तविकता को स्वीकार करने और उसे उसकी संपूर्णता में ग्रहण करने के कारण प्रकृति से बढ़कर मानव को ही इसमें स्थान मिल गया है । ''. . हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य में कल्पना की छायावादी उड़ान और अलंकारों की रीतिवादी चकाचौंध नहीं है।''(3)

लेकिन इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि प्रगतिवाद में सौंदर्य की अवहेलना हुई है । सैद्धांतिक दृष्टि से प्रगतिवादी कला छायावादी - कला

. . . .

1. सुमित्रानंदन पंत : युगपथ, पृ0 21
2. अमृतराय : नयी समीक्षा, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, प्र0सं0 1950, पृ0 206
3. डॉ0 भक्तराम शर्मा: मार्क्सवाद और हिन्दी कविता वाणीप्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 1980, पृ0 121

से बड़ी भिन्नता रखते हैं । परंतु पंत की दृष्टि में अंतर यही कि कला के कल्पित मान - 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्', जन जीवन की स्थूलता में घुल-मिल गये : ''सुंदर, शिव, सत्य, कला के कल्पित माप-मान बन गये स्थूल ; जग-जीवन से हो एक प्राण । '' (1) सूक्ष्म, कोमल और काल्पनिक बातों पर उनका विश्वास पूर्ण रूप से मिट गया । सन् 1938 में वे कह रहे थे कि ''यदि हम में सत्य के प्रति वास्तविक उत्साह है, तो हम अपने महान् उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं कर सकते । '' (2)

प्रगतिवादी यद्यपि वर्तमान जीवन को उसकी पूर्णता में ग्रहण करता है तो भी उसे वर्तमान से बढ़कर भविष्य पर ही अधिक आस्था है । ''भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ'' का घोषणा - पत्र ही इसका प्रमाण है । उसमें साफ-साफ कह दिया गया है कि ''हम लोग जन-साधारण के जीवन से हर प्रकार की कला का मिलाप चाहते हैं, हम चाहते हैं कि साहित्य हर रीति से जीवन के चित्रों को अंकित करे और भविष्य की जो परिकल्पना हम कर रहे हैं, उसको पूरा करने में सहायता प्रदान करें । '' (3)

लेकिन हर प्रकार की कला का मिलाप चाहनेवाले प्रगतिवादी छायावाद की काल्पनिकता उसकी अस्पष्टता, रीतियुग की आलंकारिता आदि को प्रश्रय नहीं दे सके ।

संक्षेप में मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित, मानवता

- -

1. सुमित्रानंदन पंत : युगवाणी, पृ0 3
2. सुमित्रानंदन पंत : 'रूपाभ', संपादकीय, वर्ष-1, अंक 1, जुलाई 1938
3. उद्धृत : डॉ0 शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य - चिन्तन : इतिहास तथा सिद्धांत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्र0सं0 1973, पृ0 493

पर बल देनेवाली, सभी प्रकार के बंधनों और रूढ़ियों के विरुद्ध क्रांति का आह्वान करनेवाली, छायावाद - युगीन अहंवादिता, काल्पनिकता तथा रीतिकालीन आलंकारिकता का निरास करनेवाली एक अत्यन्त साहित्यिक प्रवृत्ति थी हिन्दी का प्रगतिवाद ।

5.7. आक्षेप :

5.7.1. राजनीतिक विचारधारा का उभार :

साहित्य के सोद्देश्य होने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है । लेकिन सोद्देश्यता से हटकर जब साहित्य प्रचार का काम करने लगता है तब उसका मूल्य भी गिरने लगता है ।

किसी विशेष दृष्टि से साहित्य का निर्माण होता है तो वह सोद्देश्य कहा जाता है । 'प्रचार' किसी सिद्धांत या दर्शन या दृष्टिकोण की घोषणा करते फिरता है । 'प्रचार' साहित्य को कमज़ोर बना देता है, जब कि सोद्देश्यता कृति को उत्कृष्ट बना देने में सहायक रहती है । साहित्य के लिए अनिवार्य समझी जानेवाली यह सोद्देश्यता प्रगतिवाद में आकर 'प्रचार' का रूप धारण कर गयी और अधिकांश प्रगतिवादी रचनाएँ फलत: कमज़ोर पड़ गयीं । प्रगतिवादी की दृष्टि में साहित्य मार्क्सवादी दर्शन के 'प्रचार' का साधन मात्र है । इस सिद्धांत - प्रचार के सिलसिले में हिन्दी के प्रगतिवादी भारतीयता को बिलकुल भूल गये और अपनी मिट्टी की गंध की पहचान बिना लाल-सेना लाल-रूस और लाल-चीन के गीत गाने में ही चैन पाने लगे । सुमित्रानंदन पंत भी इस दलदल में फँस गये थे । (1) केवल एक ही व्यक्ति इससे बाहर रहे : कवि निराला ।

---

1. ''धन्य मार्क्स चिरतमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर/तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर ।'' - सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली-2.

3·7·2 अहं की निंदा :

प्रगतिवादी एकदम यह निश्चित करता है कि 'मनुष्य पहले व्यक्ति है और पीछे समाज की इकाई।' (1) स्वयं प्रेमचंद भी 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' के दूसरे अधिवेशन में (1936 ई0) अध्यक्ष पद से सलाह दे रहे थे कि ''हमारे पथ में अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है और ऐसी कला की आवश्यकता हमारे लिए न व्यक्ति-रूप में उपयोगी है, न समुदाय रूप में।'' (2)

वैयक्तिकता की यह उपेक्षा ग्राह्य नहीं कही जा सकती। वस्तुतः अहंवाद जड़ता या पतन का लक्षण नहीं है। अपनी वैयक्तिकता में सारे विश्व को समाहित करने की शक्ति सफल साहित्यकार रखता है। निराला इसका उत्तम दृष्टांत है। आधुनिक हिन्दी में निराला ही ऐसे एक कवि हुए हैं जो अपनी वैयक्तिकता में सामाजिकता को सफलतापूर्वक समेट सके हैं। इस बात में निराला और पंत की तुलना करते हुए डॉ0 नामवरसिंह ने लिखा है : ''पंत जी की आभासित होनेवाली सामाजिकता में उतनी सामाजिकता नहीं है, जितनी निराला की आभासित होनेवाली वैयक्तिकता में है।'' (3)

3·7·3 अभारतीयता

एक ओर से इस पर अभारतीयता का आक्षेप लगाया गया है तो

---

1. डॉ0 नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ0 93
2. प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य, पृ0 10-11
3. डॉ0 नामवरसिंह: आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 95

दूसरी ओर से इसको भारतीय ठहराने की कोशिश भी की गयी है । स्पष्ट है कि यह बाहर से आयी हुई साहित्यिक प्रवृत्ति है । यह भी स्पष्ट है कि इस पर यूरोप के मार्क्सवाद, समाजवाद आदि का प्रभाव है । फिर भी भारतीय परिवेश के अनुकूल ही इसका यहाँ आविर्भाव तथा विकास हुआ है । यही नहीं अनादि काल से जो मानववादी भावना भारतीय दर्शन तथा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती रही है उससे प्रेरित होकर निराला जैसे क्रान्तिकारी कवि शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति क्रोध प्रकट कर चुके थे । यद्यपि ऐसी कृतियों को हम मार्क्सवाद से प्रेरित प्रगतिवाद में स्थान नहीं दे सकते तो भी अभारतीयता या अजनबीपन की समस्या से प्रगतिवाद को बचाने में ये बहुत कुछ सहायक रहीं । इस तथ्य को समझकर ही डॉ० शिवकुमार मिश्र ने लिखा ''भारत की सभी भाषाओं के लेखकों, कवियों एवं विद्वानों द्वारा इतने व्यापक पैमाने पर कदाचित् किसी अन्य साहित्यिक प्रवृत्ति का स्वागत कभी न हुआ था । अतएव प्रगतिवाद को बाहर से ढोयी गयी वस्तु नहीं माना जा सकता मार्क्सवाद - समाजवाद से प्रभावित होने के बावजूद भी यह भारतीय मिट्टी की ही उपज है, हिन्दी की गौरवशाली और प्रगतिशील साहित्यिक परंपरा का प्रारंभ से ही चला आता हुआ क्रम विकास है । (1)

3.7.4. बौद्धिकता की अति

स्थूल भौतिक दर्शन आत्मतोष प्रदान करने में असमर्थ रहता है । प्रगतिवाद के मूलसिद्धांत मूलतः वैज्ञानिक होने के कारण बौद्धिकता की अति उसमें सर्वत्र दिखाई देती है । साहित्यिक प्रवृत्ति के बौद्धिक एवं आलोचनात्मक

---

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ० 132

कम जाने से उसकी तन्मयता जाती रहेगी, आत्म-विसर्जन की भावना जो काव्य के लिए अनिवार्य समझी जाती है, वह भी नष्ट हो जायेगी । शायद बौद्धिकता की इस अति से या स्थूल दर्शन की ऊब से तंग आकर ही प्रगतिवाद के अग्रदूत पंत भी आखिर सूक्ष्म-आध्यात्मिकता की दुनिया में लौट आये । डॉ० नगेन्द्र के अनुसार जीवन में स्थिरता आने के साथ-साथ सूक्ष्म पर कवि का विश्वास भी बढ़ जाता है । (1)

प्रगतिवादी दर्शन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को पूर्ण रूप से आत्मसात् करने को हिन्दी के कवि - मन अभी तक तैयार न हुए हैं क्योंकि उनका दृष्टिकोण अब भी बहुत कुछ भाव-प्रधान है। आत्मा के मोह से उनकी मुक्ति अब तक संभव नहीं हुई है ।

3.8 निष्कर्ष :

प्रगतिवाद पर समग्रतः दृष्टि-निक्षेप करने के पश्चात् हम निम्न-लिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :

1. प्रगतिवाद मार्क्सवाद से प्रभावित एक साहित्यिक प्रवृत्ति है जिसका दार्शनिक आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है । इस ने समाज के उत्कर्षापकर्ष को उसकी आर्थिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में देखा और वर्गहीन समाज की कल्पना कर ली ।

2. प्रगतिवादी विचारधारा को प्रोत्साहित करने में 'सोवियत लेखक संघ' (1934 ई०) 'प्रगतिशील लेखक संघ' (1935 ई०) 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' (1935 ई०) आदि का सहयोग रहा । रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, पंत, प्र

---

1. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० 96

यशपाल जैसे साहित्यिक तथा महात्मागांधी, पं० जवाहरलाल, डॉ० राधाकृष्णन, जयप्रकाश नारायण, भगतसिंह जैसे राजनैतिक नेता प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित हुए थे ।

3. हिन्दी-काव्य में मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिचेतना के अग्रदूत सुमित्रानंदन पंत माने जाते हैं । 'युगांत' 'युगवाणी' और ग्राम्या लिखकर उन्होंने इस विचार-धारा की पुष्टि की ।

4. परंतु सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति निराला की कविता में 'युगांत' से बहुत पहले से ही, 'अधिवास'-काल से ही होती आ रही थी । पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए निराला को किसी विदेशी वाद विशेष की आवश्यकता न पड़ी । मानवतावाद की भूमिका में लिखी गयी निराला की ऐसी कृतियों को प्रगतिवादी न कहकर प्रगतिशील कहना ही अधिक युक्ति-संगत है ।

5. यद्यपि 'बादल राग' (1924 ई०) जैसी कविताओं में धनियों पर बिजली गिराने का आह्वान मिलता है तो भी मार्क्सवाद या उसके हिंसात्मक स्वभाव का प्रभाव उन पर बिल्कुल नहीं है क्योंकि तब तक भारत में साम्यवादी दलों का संगठन सुचारु रूप से संभव न हुआ था ।

6. भारत में प्रलय की सृष्टि करने को निराला मार्क्स के स्थान पर श्यामा को न्योता देते हैं ।

7. कुछ विद्वान प्रगतिवाद को साम्यवाद का साहित्यिक मोर्चा समझते हैं तो कुछ इसे केवल नवीनता का पर्याय मानते हैं।

8. प्रगतिवाद व्यक्ति से बढ़कर समाज पर बल देता है ।

9. प्रगतिवादी वर्तमान से अधिक भविष्य पर आस्था रखता है ।

10. मानवतावाद प्रगतिवाद का एक मुख्य प्रेरक तत्व है ।

11. काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष में से केवल अर्थ की महत्ता ही प्रगतिवाद स्वीकार करता है । 'मोक्ष' पर उसका ज़रा भी विश्वास नहीं क्योंकि दृश्यमान भौतिक सत्ता को ही वह एक मात्र सत्य मानता है ।

12. सामंतवाद, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद से इसकी घोर शत्रुता है ।

13. जीवन संबंधी सभी वैषम्यों को हटाकर स्वतंत्र भारत के निर्माण में सहयोग देना ही प्रगतिवादियों का ध्येय है ।

14. राजनीतिक विचारधारा का प्रचार, अर्थ की निंदा, अभारतीयता, बौद्धिकता की अति जैसे कई आरोप इस पर लगाये गये हैं । इस प्रकार की कमियों के बावजूद भी भारत की सभी भाषाओं में यह प्रगतिवाद बड़े आग्रह के साथ अपनाया गया ।

15. भक्ति-आंदोलन के पश्चात् प्रगतिवाद ही सबसे सशक्त साहित्यिक आंदोलन सिद्ध हुआ है ।

. . .0. . .

चौथा अध्याय :

निराला : प्रयोगवाद के प्रवर्तक

4. निराला : प्रयोगवाद के प्रवर्तक

'प्रयोगवाद' के प्रवर्तन का श्रेय 'तारसप्तक' के संपादक 'अज्ञेय' को दिया जाता है। परंतु निराला-काव्य में कहीं पहले ही 'आधुनिकता'(1) के रंग में रंगे अनेकों प्रयोगों का आविर्भाव हो चुका था। मौलिक रूप से इस प्रवृत्ति की प्रथम झाँकी निराला की कविता में मिलती है।(2) अपने नये प्रयोगों के नाम पर 'वाद' चलाने का आग्रह उन्हें न था क्योंकि नयी साहित्यिक प्रवृत्तियों को घेरों में बाँध देना वे चाहते न थे। काव्य की मुक्ति(3) तथा उसके सर्वांगीण विकास पर ही निराला का ध्यान केन्द्रित रहा।

'तारसप्तक' के प्रकाशन से प्रयोगों का एक अलग 'वाद' ही चल पड़ा जिस पर स्वयं अज्ञेय भी संतुष्ट न थे। निराला की तरह उनका व्यक्तित्व भी वादमुक्त धरातल की खोज में था। 'वाद' के आग्रही न रहकर अज्ञेय प्रयोगशीलता के समर्थक बन गये।(4) अपने को 'प्रयोगशील' कहना ही उन्होंने अधिक संगत समझा। 'वाद' का कड़ा विरोध करने पर भी अज्ञेय 'वादी' ही कहलाये और 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन काल तक के सभी आधुनिक काव्य-प्रयोग 'प्रयोगवाद' के ही अंतर्गत माने गये।

---

1. ''इसके व्यंग्य और इसकी भाषा आधुनिक है''—निराला : कुकुरमुत्ता, निवेदन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पंचम संस्करण 1975
2. शमशेर बहादुर सिंह : नया साहित्य, अंक-1, 1946
3. निराला : परिमल की भूमिका, निराला रचनावली - 1, पृ0 401
4. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली - 1951, पृ0 6

4.1. प्रयोगवाद : नामकरण :

हिन्दी काव्य में 'प्रयोगवाद' की चर्चा 'तारसप्तक' के प्रकाशन (1943 ई0) से शुरू होती है । 'प्रयोगवाद' संज्ञा का बीज उस काव्य-संकलन के संपादकीय से ही फूटा था । अपने संकलन की सबसे बड़ी विशिष्टता के तौर पर संपादक 'अज्ञेय' ने प्रयोगशीलता को ग्रहण किया और उस एकमात्र समानता के आधार पर सात कवियों को एक साथ प्रस्तुत किया ।(1) संग्रहीत कवियों के वक्तव्यों से भी पता चलता है कि विभिन्न प्रकार के प्रयोगों की ओर वे विशेष रूप से आकृष्ट हैं ।(2) इस प्रयोग-धर्मिता को देख आलोचकों ने 'तारसप्तक' के कवियों को प्रयोगवादी कहा,(3) यद्यपि वे एक ही स्कूल के न थे । (4)

जिस प्रकार हिन्दी की स्वच्छंदतावादी धारा को व्यंग्य-रूप में छायावाद की संज्ञा दी गयी थी उसी प्रकार 'प्रयोगवाद' नाम भी इसके विरोधियों द्वारा व्यंग्य-रूप में दिया गया था । डॉ0 रामशंकर तिवारी 'प्रयोगवाद' छायावादी आलोचकों द्वारा दिया हुआ नाम मानते हैं(5) तो गिरिजाकुमार माथुर, जो 'तारसप्तक' के कवियों में से एक हैं, इसे प्रगतिवादी आलोचकों द्वारा प्रदत्त संज्ञा स्वीकार करते हैं ।(6) जो हो, 'तारसप्तक' के प्रायः सभी कवि इस 'प्रयोगवाद' नाम से असंतुष्ट हैं । मुक्तिबोध ने लिखा है — " वस्तुतः ये कविताएँ प्रयोग न होकर, यथार्थ कविताएँ थीं । नयी कविता के विरोधियों

- -

1. अज्ञेय : तारसप्तक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली4 सं0 1981, प्र0सं0 की भूमिका, पृ0 12
2. (अ) गजानन माधव मुक्तिबोध : वक्तव्य, तारसप्तक, पृ0 8

   (आ) प्रभाकर माचवे : वक्तव्य, तारसप्तक, पृ0 126
3. नंददुलारे वाजपेयी : आधुनिक काव्य रचना और विचार, पृ0 68
4. अज्ञेय : तारसप्तक, 'विवृति और पुरावृत्ति', पृ0 11
5. डॉ0 रामशंकर तिवारी: प्रयोगवादी काव्य-धारा, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी-1, [illegible] 2021, 1964, पृ0 115

ने निंदा के तुच्छ भाव से, प्रयोगवाद शब्द चला दिया। '' (1)

माथुर 'प्रयोगवाद' शब्द को ही गलत साबित करते हैं। '' ''असलियत में प्रयोग-'वाद' शब्द ही गलत है, क्योंकि एक तो किसी भी सम्प्रदाय के 'वाद' के पीछे एक समूचा दर्शन होता है, दूसरे प्रयोग समाजोन्मुख और आत्मघातक दोनों ही पक्षों में किये जा सकते हैं, इसलिए एक ही प्रकार के प्रयोगों को 'प्रयोग' मानकर उन्हें प्रयोगवाद कहना फिजूल की बात है। ''(2) स्वयं अज्ञेय ने भी इस नाम का कड़ा विरोध किया है। (3) उनकी दृष्टि में प्रयोग का कोई वाद ही नहीं है। (4)

लेकिन यह नामकरण रूढ़िगत हो गया है और अब इसकी सार्थकता पर संदेह करना व्यर्थ है। ''नामकरण प्रायः इसी तरह औचित्य-अनौचित्य का ध्यान रखे बिना ही हो जाता है इसलिए 'प्रयोगवाद' नाम की सार्थकता निरर्थकता को लेकर बहस करना बेकार है। 'प्रयोगवाद' नाम निरर्थक और अव्याप्त होते हुए भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में अब स्थापित तथ्य है। '' (5)

4.2. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :-

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के अंत में छायावादी कविता के रूप-भावादि के प्रति असंतोष प्रकट होने लगा था। 'भाव-वस्तु में छायावाद

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य-शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-6, 1971, पृ0 34
2. गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता: सीमाएं और संभावनाएं, पृ0 84
3. अज्ञेय : दूसरा सप्तक : भूमिका, पृ0 6
4. वही, पृ0 6
5. डॉ. नामवर सिंह: आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 129

की सूक्ष्म-अमूर्त अनुभूतियों के स्थान पर एक ओर व्यावहारिक सामाजिक जीवन की मूर्त अनुभूतियों की माँग हुई, तो दूसरी ओर सुनिश्चित बौद्धिक धारणाओं का ज़ोर बढ़ा, और शैली-शिल्प में छायावाद की वायवी और अत्यंत सूक्ष्म कोमल काव्य-सामग्री के स्थान पर विस्तृत जीवन की मूर्त-सघन और नानारूपिणी काव्य-सामग्री को आग्रह के साथ ग्रहण किया गया।''(1) शुरू में इस परिवर्तन का एक समवेत स्वर ही सुनाई पड़ा था, लेकिन कुछ काल के अंदर यह स्वर दो भिन्न रागों को अलापने लगा। एक राग समाजवादी दर्शन पर आधारित था तो दूसरे ने सामाजिकता से ऊपर उठकर व्यक्तित्व पर भी ध्यान रखा। पहला वर्ग प्रगतिवादी कहलाया और दूसरा वर्ग प्रयोगवादी। प्रयोगवादियों ने आज के प्रयोगशील जीवन के अनुकूल ही काव्य की वस्तु तथा शिल्प को गढ़ लिया और काव्य के मुख्य साधन के रूप में नवीन प्रयोगों को ही स्वीकार किया। अछूते क्षेत्रों के अन्वेषी कलाकारों को लक्ष्य करते हुए अज्ञेय ने कहा था : ''. कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उन से आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया, या जिन को अभेद्य मान लिया गया है।'' (2)

परिणाम यह हुआ कि 'तारसप्तक' के कवि प्रयोगवादी कहलाये।

हिन्दी की प्रचलित या परंपरागत काव्य-पद्धति से इस नयी काव्य-पद्धति का इतना बड़ा विलगाव था कि आलोचक इसे शंका की दृष्टि से देखने लगे। उनके अनुसार ये नयी कृतियाँ हिन्दी की प्रौढ़-काव्य-धारा के अंतर्गत भी नहीं आतीं और सामान्य पाठकों के काम की भी नहीं रहतीं। (3)

- -

1. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ० 99
2. अज्ञेय : तारसप्तक, वक्तव्य, पृ० 270
3. नंददुलारे वाजपेयी : आधुनिक काव्य : रचना और विचार, पृ० 68

प्रयोगवाद के क्षेत्र को उन्होंने अत्यंत सीमित परिवेश में देखा । (1)

परंतु अज्ञेय तथा उनके साथियों ने आधुनिक काव्य को किसी संकीर्ण दायरे में संकुचित रखना पसंद नहीं किया । अपने क्षेत्र की विशालता स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि वे प्रयोग के वादी कभी नहीं रहे और नहीं हैं । (2) साधन के रूप में ही उन्होंने प्रयोगों को ग्रहण किया है, साध्य मानकर नहीं । (3) किसी वाद के घेरे में आ जाने से अपनी स्वतंत्रता के नष्ट होने का भय उन्हें ज़रूर था । इसलिए उन्होंने वादों के घेरे से बाहर रहना चाहा ।

'दूसरा सप्तक' की भूमिका में 'अज्ञेय' प्रयोगवाद नाम पर असंतोष प्रकट कर रहे थे, परंतु तब तक प्रचलित नवीन काव्य-प्रवृत्ति के लिए प्रयोगवाद नाम सुस्थिर हो चुका था । ऐसी स्थिति में यह प्रयोग-विरोध देखकर कुछ प्रयोग-प्रेमी भी आगे आये, जो प्रयोग को केवल 'साधन' ही नहीं, साध्य मानने को भी तैयार थे । उन्होंने पहली बार 'प्रयोगवाद' और 'प्रयोगशीलता' में अंतर कर दिया । (4) और अपने को असली प्रयोगवादी घोषित किया । लेकिन उन्होंने अपनी नयी काव्य-प्रवृत्ति के लिए 'प्रयोगवाद' नाम स्वीकार नहीं किया क्योंकि अज्ञेय द्वारा प्रवर्तित काव्य विधा के लिए यह नाम रूढ़-सा हो गया था । इसलिए अपने पद्य को विशिष्ट पद्य का अर्थ देने की दृष्टि से उन्होंने 'प्रपद्यवाद' नाम स्वीकार किया ।

- -

1. नंददुलारे वाजपेयी : आधुनिक काव्य : रचना और विचार, पृ0 68
2. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ0 6
3. वही, पृ0 6
4. डॉ0 रामशंकर तिवारी : प्रयोगवादी काव्यधारा, चौखम्भा विद्या-भवन, वाराणसी-1, 1964, पृ0 116

'प्रपद्यवाद' के मुख्य समर्थक तीन थे – नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश। प्रपद्यवादियों के अनुसार 'प्रयोगवाद' के प्रवर्तक नलिन विलोचन शर्मा हैं। (1) तीनों कवियों के नामों के प्रथमाक्षरों के योग से 'प्रपद्यवाद' का एक दूसरा नाम भी बन पड़ा है 'न - के - न वाद'।

नरेश द्वारा संपादित 'प्र-कथा' नामक पत्रिका में 'प्रपद्यवाद' या 'नकेनवाद' का घोषणापत्र (प्रयोगदशसूत्री) सन् 1952 में प्रकाशित हुआ। (2) दस सूत्र हैं: (3)

1. प्रयोगवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।
2. प्रयोगवाद सर्वतंत्र स्वतंत्र है उसके लिए शास्त्र तथा दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।
3. प्रयोगवाद महान पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को भी निष्प्राण मानता है।
4. प्रयोगवाद दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है।
5. प्रयोगवाद को मुक्तकाव्य को नहीं अपितु स्वच्छंद काव्य की स्थिति अभीष्ट है।
6. प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवादी साध्य।
7. प्रयोगवाद की दृष्ट-श्राव्य पदीय प्रणाली है।

- -

1. केसरी कुमार : प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, अवन्तिका, जनवरी 1954
2. डॉ० रमाशंकर तिवारी : प्रयोगवादी काव्यधारा, पृ० 116
3. उद्धृत: डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970, पृ० 219

8. प्रयोगवाद दैहिक जीवन और बोध उसकी मात्रा की जान हैं ।

9. प्रयोगवादी प्रयुक्त शब्द और छंद का स्वतः निर्माता है ।
(जैसे चित्रकार वर्ण-योजना का और मूर्तिकार प्रस्तर खंड का ।)

10. प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है ।

दो वर्ष बाद इन दस सूत्रों के साथ और दो सूत्र मिलाये गये ।[1]

1. प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट गुंफन होता है यही गद्य और पद्य में अंतर है ।
2. प्रपद्यवाद मानता है कि चीजों का एकमात्र सही नाम होता है ।

'प्रपद्यवाद' या 'नकेनवाद' का महत्व इस बात में है कि 'नयी कविता' के काल में भी इसका विश्वास प्रयोगों पर से उठ नहीं गया ।

4.3. प्रयोगवाद - प्रपद्यवाद : साम्य

यद्यपि प्रयोगवाद - प्रपद्यवाद में अंतर माना गया है, तो भी कई बातों में साम्य है । इन दोनों के बीच का अंतर बहुत कुछ बाह्य है । डॉ० शिवकुमार मिश्र ने इसी कारण प्रपद्यवाद को प्रयोगवाद की एक शाखा माना है : '' वस्तुत : यह प्रयोगवाद की ही एक शाखा है जो परंपरा से बिलकुल ही कट जाने के कारण अधिक अंधेरे में भटक गयी है । नकेनवादियों द्वारा प्रयोगवादियों का विरोध भी बहुत बाह्य है जिसे आचार्य वाजपेयी ने

---

1. नकेन : पद्यशास्त्र, पृ० 113 - 114

उचित ही उनका पारस्परिक 'गुडबाइ' कहा है और जिस पर विशेष कुछ कहना भी आवश्यक नहीं है । '' (1)

अज्ञेय के शब्द संबंधी विचारों से प्रपद्यवादी - धारणा मेल खाती है । इन दोनों वादों में अधिकांश ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो गंवारू तथा प्रादेशिक हों । लेकिन इन प्रादेशिक प्रयोगों को समझने के लिए बड़ा प्रयास करना पड़ता है । ऐसे शब्दों के अर्थ निकालने में कोश भी काम न आते ।

काव्य में जो दुरूहता अपरिचित प्रयोगों के कारण आती है, उससे बचने का आग्रह दोनों वादों में दिखाई नहीं देता । दोनों इस दुरूहता को आधुनिक काव्य केलिए अनिवार्य समझते हैं ; क्योंकि साधारण पाठक किसी कवि के उच्च भाव-स्तर तक आसानी से पहुंच नहीं सकता ।

विषय-वस्तु की अपेक्षा प्रयोगवाद - प्रपद्यवाद ने शैली - शिल्प के क्षेत्र में ही ध्यान केन्द्रित रखा है । शैली और शिल्प की दृष्टि से प्रयोग-वादी- प्रपद्यवादी कविताएं उच्चकोटि की कही जा सकती हैं ।

4.4. प्रयोगवाद - प्रपद्यवाद : अंतर

प्रयोगवादी , अज्ञेय को सन् 1943 से एक शैलीगत नयी काव्य-पद्धति के प्रवर्तक मानते हैं (2) तो प्रपद्यवादी , नलिन विलोचन शर्मा को इसके अधिकारी घोषित करते हैं । (3)

1. डॉ0 शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य , पृ0 259
2. रामकमल राय : अज्ञेय सृजन और संघर्ष , लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद , प्र0सं0 1970, पृ0 25
3. केसरी कुमार : प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि , अवन्तिका , जनवरी 1954.

प्रपद्यवादी अपने प्रयोग संबंधी बारह सूत्रों के ज़रिए यह स्थापित करना चाहते हैं कि वे ही प्रयोगवाद के वास्तविक अनुयायी हैं क्योंकि वे प्रयोग को साध्य मानकर चले हैं। जो उसे साधन के रूप में ग्रहण करते हैं, अपने को प्रयोगवादी कहने के अधिकारी नहीं बनते। प्रपद्यवादी प्रयोगवादी कविता में कई असंगतियाँ देखते हैं और अपनी कविता को ऐसी असंगतियों से मुक्त पाते हैं। (1)

प्रयोगवादी परंपरा के विरोधी नहीं हैं। ''परंपरा में विगत कुछ नहीं अनागत कुछ नहीं, जो कुछ है वह प्रत्यक्ष है, सत् है, वर्तमान से प्रमाणित है।''(2) टी०एस० इलियट की भाँति अज्ञेय भी अतीत के महत्वपूर्ण अंशों को ग्रहण करने में किसी प्रकार की हानि नहीं देखते। लेकिन प्रपद्यवादी के लिए अतीत केवल बाध है, साध्य नहीं। (3)

जहाँ प्रयोगवादी, भावों, विचारों, दर्शनों, अलंकारों तथा विलक्षण शब्द प्रयोगों से काम लेते हैं वहाँ प्रपद्यवादी केवल शब्दों की शक्ति पर ही विश्वास रखते हैं। ज़रूरत पड़ने पर नये - नये शब्दों की सृष्टि भी मनमाने तौर पर कर डालते हैं।

प्रयोगवादी कविता कई प्रकार की विकृतियाँ लेकर चलती है, लेकिन काव्यात्मकता से एकदम दूर नहीं है। प्रपद्यवादी - कृतियों में काव्यात्मकता बहुत कम देखने को मिलती है। ''प्रयोगवादियों में अनेक विकृतियों के बावजूद भी काव्य का अंश है जबकि नकेनवादी - काव्य अपने रचयिताओं में

- -

1. केसरी कुमार : प्रपद्यवादी की दार्शनिक पृष्ठभूमि, अवन्तिका, जनवरी 1954
2. पं० विद्यानिवास मिश्र : साहित्य की चेतना, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर, प्र०सं० 1967, पृ० 96
3. डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ० 254

रचनात्मक शक्ति के ह्रास की भी घोषणा करता है । '' (1)

बौद्धिकता का आग्रह प्रयोगवादी कवियों ने भी किया है लेकिन प्रपद्यवादियों केलिए बौद्धिकता कथ्य का प्राण है । वे सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं, कथ्य संबंधी नियमों का पालन नहीं करते । (2) इस प्रकार के अतिवाद और अराजकता पूर्ण विचारों से ग्रस्त होने के कारण प्रपद्यवाद कविता से ऊपरी लहरों को ही छूता है अगाध लहरों तक उसकी पहुँच नहीं । गंभीर रुचि के पाठकों को प्रभावित करने में नकेनवादियों को बहुत कम सफलता ही मिली है ।

4.5.प्रयोगवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ :

4.5.1. अतियथार्थ का आग्रह :

छायावाद - काल कल्पना शीलता का प्राधान्य लेकर आया था । प्रगतिवादी - युग में सामाजिक यथार्थ या वास्तविक यथार्थ की प्रवृत्ति कायम हुई । प्रयोगवाद ने वास्तविक यथार्थ के स्थान पर एक नये यथार्थ को अपनाया, जिसे वाजपेयी ने 'नवीन यथार्थ' की संज्ञा दी । (3) यह 'अन्तश्चेतनावाद' भी कहा गया : ''मार्क्सवाद जहाँ सामाजिक विकास को आधार बनाकर चलता है, अन्तश्चेतनावाद व्यक्ति के अंतर्मुखी यथार्थ को साहित्य का प्रेरक ठहराता है । दोनों धाराओं में दार्शनिक और विचार

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962, पृ० 258
2. प्रयोगदशसूत्री, सूत्र संख्या -2
3. नंद दुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, विद्या मंदिर, वाराणसी, तृतीयावृत्ति, 1963, पृ02

संबंधी विरोध होते हुए भी यथार्थवाद का आधार अपनाया गया है। ''(1)

प्रयोगवादियों का यथार्थ एकदम वैयक्तिक है। यह नग्न-यथार्थवाद, अति यथार्थवाद, कठोर यथार्थवाद आदि नामों से भी जाना गया। वैयक्तिक यथार्थवाद फ्रायडियन मनोविश्लेषण से बहुत अधिक प्रभावित है। कवि को कुछ भी छिपाने को न रहा, ईमानदारी से वे काम लेने लगे।

पनहारिन को चाहनेवाला बम्हन का लड़का अपने मन की बातें साफ-साफ प्रकट करने में ही संतोष का अनुभव करता है :

''बम्हन का लड़का
मैं उसको प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन वह,
मेरे घर की पनहारिन वह,
आती है होते तड़का,
उसके पीछे मैं मरता हूँ।'' (2)

नग्न यथार्थ की कठोर-भूमि पर जिस विषय-वस्तु को ही निराला ने अपनी प्रगतिवादी रचनाओं के लिए स्वीकार किया था और प्रयोगवादी भी इस आधारभूमि को छोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। अर्थात् विनोद, विडे- हास करुणा भी जिसकी नयी है, का मेल प्रयोगवादियों में निरंतर पाया जाता है :-

''बेवकूफ बनने के खातिर ही
सब तरफ अपने को लिये-लिये फिरता हूँ;
और यह देख-देख बड़ा मजा आता है
कि मैं ठगा जाता हूँ....

1. नंददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, विद्या मंदिर, वाराणसी, तृतीयावृत्ति, 1963, पृ0 2
2. निराला : 'प्रेम-संगीत', निराला रचनावली -2, पृ0 29

हृदय में मेरे ही,
प्रसन्न चित्त एक मूर्ख बैठा है
हँस हँसकर - अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
कि जगत् • • • स्वायत्त हुआ जाता है। '' (1)

सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण प्रयोगवाद में मिलता है। कठोर सत्य की खोज के सिलसिले में अपने जीवन के साथ प्रयोग करने को भी ये कवि तैयार हैं। ''विज्ञान में जिसे 'ट्रायल एण्ड एरर' पद्धति कहते हैं, जीवन तथा साहित्य में प्रयोगशील कवि उसी को आदर्श मानते हैं — कोशिश करना और गलती होने पर उससे सबक लेकर फिर कोशिश करना यही है जीवन के साथ प्रयोग। '' (2)

''कोशिश करो
कोशिश करो
कोशिश करो
जीने की - जमीन में गड़कर भी। '' (3)

प्राण को हथेली पर रखकर भी जीवन में अथक कोशिश करने का प्रण लेकर ही प्रयोगवादी अखाड़े में उतरते हैं। प्रयोगवादियों की कोशिश निरी कोशिश नहीं रहती। उसके साथ सफलता भी लगी हुई है। तभी वह प्रयोग माना जाएगा। नहीं तो वह केवल प्रयास ही रह जायेगा।

4·3·2 सामाजिकता का अभाव :
• • • • • • • • • • • • • • •

प्रयोगवादी - काव्य में समाज-कल्याण की भावना बहुत कम है।

• •

1• गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0 74
2• डॉ0 नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 132
3• गजानन माधव मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है। पृ0 64

वैयक्तिकता पर बल देने की जो प्रवृत्ति प्रयोगवादी कविता में पायी जाती है, वह प्रगतिवादी अति सामाजिकता की प्रतिक्रिया कही जा सकती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति की आंतरिक दुर्बलताओं को छिपाकर व्यक्ति तथा समाज के बीच स्वस्थ संबंध की आवश्यकता पर बल देनेवाले भी प्रयोगवादियों में हैं। भारत भूषण अग्रवाल ने अपने वक्तव्य में इस ओर संकेत किया है: ''कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की उस शोषक सत्ता से लड़ना होगा जिसने उसको कोरा आत्माभिमानी और कल्पनाविलासी बना छोड़ा है, और जिसने उसको अपनी कविता को ही स्वमात्र सम्पत्ति समझने के भ्रम में डाला है।'' (1)

इसलिए प्रयोगवादी समाज छोड़कर भागते नहीं, समाज की शोषक सत्ता से लड़ने को खड़े होते हैं।

यौन वर्जनाओं एवं कुंठित वासनाओं का चित्रण करते समय प्रयोगवादियों की ईमानदारी अश्लीलता की हद को छूने लगती है और ऐसे प्रसंगों में 'अहं' की अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है :

''निरंतर - पिघलती हुई हम, आड़ में निर्वेद
मूक सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव
धैर्य - धन गदहा....।'' (2)

4.5.5. बौद्धिकता की प्रतिष्ठा :

प्रयोगवाद में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता अधिक आग्रह के साथ अपनायी गयी। आधुनिक युग के हर मानवीय व्यापार पर विज्ञान

---

1. तारसप्तक : वक्तव्य, पृ0 97
2. अज्ञेय : 'शिशिर की राका - निशा', तारसप्तक, पृ0 280

का प्रभाव लक्षित है । वैज्ञानिक दृष्टि से ही प्रत्येक वस्तु देखी-परखी जाती है । भाषा भी इसके अनुकूल साधारण अनिवार्य प्रधान बोलचाल की हो गयी है । विज्ञान के इस प्रभाव से ही काव्य में गद्यात्मकता का प्रवेश हुआ था । वैज्ञानिक शब्दों से युक्त साधारण भाषा का प्रयोग वर्तमान अंग्रेज़ी काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है :

" I've found it again
the micro-lens a twig
flicked away in a blizzard
twenty years ago,
one of a billion crystals,
by the school-gates
and its almost identical twin
lost on a
road when I raised a spy-glass
to stare at vega :
they lie in this snow-bank together
waiting for me,
the trustful, transparent gaze of a
child " (1)

---

1. D.M.Thomas : 'Little Eyes', London Magazine, New Series April/ May 1979, Vol.19/Numbers 1&2, Ed.by Alan Ross, Page- 61

यह वैज्ञानिक प्रभाव निराला की कविता में सन् 1941 में ही प्रकट हो चुका था :

''मैं कुकुरमुत्ता हूँ, /पर बेन्ज़ोइन (Benzoin) वैसे/ बने दर्शनशास्त्र वैसे/ ओम्फलस (Omphalos) और ब्रह्मावर्त/वैसे ही दुनिया के गोले और पर्त . . .'' (1)

ज्ञान-विज्ञान संबंधी बातों से परिचित होने के कारण आधुनिक कवियों का बौद्धिक-स्तर अधिक उन्नत रहता है। सृजन के क्षणों में उन्हें जन-साधारण का ध्यान बिलकुल नहीं रहता। कुछ कवि तो ऐसी आशा रखना भी व्यर्थ है :

"Fine Poets do not write for the average reader, and never will." (2)

इससे पाठक अधिक सतर्क हो जाते हैं और अपनी परीक्षा के प्रति प्रतिक्रियाशील बनते हैं। युगानुरूप पाठकों का सौंदर्य-बोध भी सूक्ष्म, संकुल तथा आधुनिक हो जाता है।

4.5.4. लघुता के प्रति आकर्षण :-

काव्य में लघुता का आग्रह प्रगतिवाद-काल से माना जाता है। लेकिन पंत और निराला ने छायावाद-काल में ही ध्यान दिया था। 'कण' को लेकर भी उन्होंने कविता लिख डाली। (3) प्रगतिवाद-युग में यह लघुता का मोह बढ़ गया और आगे चलकर यह प्रयोगवादी कविता की एक मुख्य विशेषता स्वीकार की गयी। प्रयोगवादी अपनी यथार्थवादिता का परिचय

---

1. निराला : कुकुरमुत्ता, निराला रचनावली - 2-पृ0 47
2. Elizabeth Drew: Discovering poetry, P-20
3. 'कण' (1924 ई0) निराला रचनावली-1, पृ0 101

प्राकृतिक वस्तुओं की कुरूपता का उद्घाटन करते देते हैं। उन्होंने प्रकृति के वस्तु-अंशों को अत्यधिक यथार्थ ढंग से प्रस्तुत करके यह दिखा दिया है कि तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु भी कविता का विषय बनने योग्य है। 'चूड़ी का टुकड़ा' भी कविता में स्थान पा सका।

''घूँघट से उस टुकड़े पर
सिमटी लगीं तुम्हारी जब अनियारी कोरें,
सेज सुनहली,
कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना,
निकल गईं सपने जैसी वे मीठी रातें,
याद दिलाने रहा
यही छोटा सा टुकड़ा।'' (1)

4.5.5. प्रेम का स्वरूप

प्रयोगवाद का प्रेम फ्रायडीयन मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित है। छायावाद की आध्यात्मिकता से हटकर हाड़-मांस के बने मानव के मांसल-प्रेम पर उसका ध्यान केन्द्रित है। प्रयोगवादी कवि मानव की दमित वासनाओं की समस्याओं से आक्रांत दीखते हैं।

''मेरे मन की अँधियारी कोठरी में
अतृप्त आकांक्षा की वेश्या बुरी
तरह काँप रही है'' (2)

इसलिए यौनवर्जनाओं की समस्याओं से उसकी सौंदर्य भावना भी पीड़ित है। (3) इन दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति प्रयोगवादी कविता में

1. गिरिजाकुमार माथुर : 'चूड़ी का टुकड़ा', नया संकलन-पृ0 109
2. 'अनुलकुमार पाण्डे: नयी कविता, अंक-2, पृ0 63
3. अज्ञेय : आत्मनेपद, संस्करण, पृ0 272

प्रचुर मात्रा में मिलती है –

''आज मेरा स्वप्न है उज्ज्वल
धमनियों में उमड़ आती है लहू की धार
प्यार है, अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि ? ' (1)

4.5.6 वैचित्र्य प्रदर्शन :

वैचित्र्य-प्रदर्शन के लिए प्रायः सभी कवि एक समान प्रयत्न करते हैं । इसका उद्देश्य विस्मय या अपरिचित प्रयोगों से नूतनता की सृष्टि करना है । इससे एक ओर तो पाठक चौंकता रह जाता है, दूसरी ओर दुरूहता का सामना भी करता है –

''आँगन
के
पार से
आँगन
पक्षों पर
देवी
टो
ग
ते
हुए
चिलकतीं
झनकार करती
हुई
बोलों
दी
दीवारों में

---

1. अज्ञेय : 'सागर मेघ,' नारायण , पृ0 276

बोट
जाएगी
पार
नहीं
था
सूने
अंधेरा में
प्रतिध्वनियाँ
है
मुझे
वे
ध
का
ते
हुए । '' (1)

अंग्रेजी साहित्य में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है । फिलिप टॉयन्बी ने लिखा था -
A book which is printed upside-down or in a particular print can still be acclaimed in some parts of Europe as a bold and interesting experiment even if its matter in the most hackneyed imitation. "(2)

इस प्रकार का चमत्कारप्रधान अधिकतर हास्यास्पद बन गये हैं । बहुत कम कवि ही चमत्कार के साथ-साथ भावों को भी पकड़ सके हैं । शमशेर विचित्र प्रयोगों पर विश्वास रखते हैं, किंतु अपनी कविता को भावविहीन नहीं होने दिया है :

- -

1. उदय भान मिश्र : 'आभास', कविताएँ - 1965, संपादन : संपादक - अजितकुमार तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-7, 1966, पृ० 17

2. Philip Toynbee, London Magazine, Experiment and the future of the Novel, May 1956.

''खामोश
हो,
रोश...न हो,
हो, मगर - हो ।
जिन्दगी संसार की आखिर
तू ही । '' (1)

चमत्कार पूर्ण प्रयोगों से व्यंग्य-परिहास का काम आसानी से हो जाता है । आज भी ऐसे प्रयोगों की कमी नहीं —

देखा
नींद
मक्खन
और -
ज - पुष्प
(मायक से आचार्य तक)
और -
एक डाक्टरेट की उपाधि '' (2)

4.5.7. शिल्पसंबंधी नवीनताएँ :-

प्रयोगवाद के मूल में नवीन शैली-शिल्प का आग्रह स्पष्ट है । यह आग्रह दूसरे महायुद्ध से पहले ही प्रकट होने लगा था (3) और 'निराला,' 'पंत' जैसे कवि उसके अनुरूप कुछ प्रयोग भी कर चुके थे । इनके सार्थक प्रयोगों से भाषा, प्रतीक, बिंब- छंद तथा अलंकार में युगान्तरकारी परिवर्तन आ गया ।

---

1. शमशेर बहादुरसिंह : उद्धृत, डॉ नामवरसिंह ; आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 164
2. जगदीशचन्द्र जैन : कटघरे भाव : उभरते स्वर, श्रीकिशुंव प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण, 1980, पृ० 31
3. डॉ० जयसिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० 181

4.5.7.1 भाषा

'तारसप्तक' के कवियों ने अपनी कविताओं में भाषा की शक्ति तथा विकास पर जोर दिया है। इन कवियों की भाषा-संबंधी मान्यताएँ प्रायः समान रहती हैं। ये जनजीवन की भाषा को काव्य में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। सहज और व्यावहारिक भाषा की खोज में ये लगे हुए हैं।(1) प्रयोगवादियों की यह [illegible] बोलचाल की भाषा अपने व्याकरण वैचारिकता का भार भी वहन करनेवाली सिद्ध हुई। काव्य-शिल्प केवल व्यक्त करने का ही नहीं, जानने का भी माध्यम माना गया।

मुक्तिबोध, अज्ञेय जैसे कवियों ने प्रयोगवादी कविता के शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिये। अलंकृत शब्दों को चुनचुन लेने की पद्धति को छोड़कर इन कवियों ने पुराने शब्दों को नये-नये भावों से विभूषित करके भाषा की सम्प्रेषण शक्ति बढ़ायी। बोलचाल की शब्दावली का, जो प्रगतिवाद-काल तक कविता के लिए अनुचित समझी जाती थी, अब कविता में प्रवेश हो गया।

छायावादी - दृष्टि से जो शब्द 'वर्जित', 'अदेय', 'काव्यगुणविपन्न', 'परदेसी', थे, सर्वप्रथम उनका प्रयोग करके रूढ़िवादियों को निराला ने चुनौती दी थी। 'प्रेम संगीत' 'कुकुरमुत्ता', 'रानी और कानी', 'मास्को डायलाग्स', 'महगू महगा न रहा' जैसी कविताओं में इस प्रकार के शब्दों की भरमार है। 'नाक सिटी', 'फूटती', 'पोसती' 'फाड़ती', मीसती' गेवा-वार 'झटका पटका', 'पकौड़ी', 'कचौड़ी', 'मशालों', आदि शब्दों का प्रयोग निराला के पहले हिन्दी-कविता में नहीं के बराबर था।

निराला की भाषा की ताकत उनके अनोखे सिरे-सिरे संघटन अंतर तक चीरनेवाले व्यंग्य आदि पर दृष्टव्य है,(2)

- -

1. अज्ञेय : आत्मनेपद, पृ0 165
2. दूधनाथ सिंह : कुकुरमुत्ता, भूमिका, पंचम संस्करण, पृ0 11.

शमशेरबहादुरसिंह,[1] डॉ० रामविलास शर्मा[2] जैसे अत्याधुनिक भी आकृष्ट हो गये हैं। भाषा के बाह्य तथा आंतरिक पक्षों को समान रूप से अपने प्रयोगों द्वारा समृद्ध करने में निराला को बड़ी सफलता मिली है। ''

''उन्होंने भाषा की सतह पर भी लगातार प्रयोग किए हैं और गहराई में भी। अपनी भाषा के प्रति वह आविष्ट औत्सुक्य और जिज्ञासा, जो कवि से कवि होने की सबसे बुनियादी पहचान है, निराला में जितने स्तरों पर और जिस निरंतरता के साथ सक्रिय देखी जाती है, उतनी किसी और कवि में नहीं। xx x वे भाषा के किसान हैं। उनकेलिए कोई धरती परती नहीं। '' (3)

निराला के बाद भाषा पर सर्वाधिक ध्यान देनेवाले कवि अज्ञेय रहे हैं। उनकी उक्ति है कि ''मैं उन व्यक्तियों में से हूं – जो भाषा का सम्मान करते हैं और अपनी भाषा को अपने आप में एक सिद्धि मानते हैं। '' (4)

अज्ञेय के अनुसार सभी पूर्व संभावनाओं से परे तक शब्द का विस्तार करना ही कवि कर्म है।[4] निराला ने बहुत पहले (1933 ई० में) ही शब्द संबंधी अनंत संभावनाओं की ओर सहृदयों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था : ''शब्दों का दर्शन जाननेवाले भारतीय जानते होंगे कि प्रत्येक शब्द की परिणति अनादि ब्रह्म में होती है। फिर किसी शब्द के प्रति घृणा क्यों?''[5]

आधुनिकों पर इस प्रश्न का इतना प्रभाव पड़ा कि उनके लिए कोई भी शब्द अग्राह्य न रहा। टी०एस० इलियट के शब्द - संबंधी विचारों से भी

- -

1. शमशेर बहादुरसिंह : निकष - 3-4, संपा० धर्मवीर भारती तथा लक्ष्मीकांत वर्मा, जनवरी-1956, पृ० 349
2. डॉ०रामविलासशर्मा : [illegible], [illegible], पृ० 224 और पुनश्च, पृ० 261
3. रमेशचन्द्रशाह : छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973, पृ० 68
4. अज्ञेय : आत्मनेपद, पृ० 242
5. अज्ञेय : आलवाल, पृ० 11

से प्रभावित थे । उन्होंने पुराने शब्दों को मैला समझकर, घिसे सिक्के या बासन की भांति निर्मूल घोषित किया -

''ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से
मुलम्मा छूट जाता है । '' (1)

इसलिए प्रयोगवादी नये शब्दों को गढ़ते हैं और पुराने शब्दों में नया अर्थ भर देते हैं ।

पुराने शब्दों में नये अर्थ का आरोप प्रयोगवादी अपने अनुभवों तथा परिस्थितियों के अनुरूप करते हैं जिनसे पाठकों को कोई निकटता नहीं । इससे भाषा एक हद तक दुर्बोध रह जाती है और साधारणीकरण की समस्या उठ खड़ी होती है इस परिस्थिति ने अज्ञेय को महामौन में डूबने को बाध्य किया है क्योंकि अर्थगर्भ मौन भी संप्रेषण का काम सफलतापूर्वक कर सकता है :

''पर सबसे अधिक मैं
वन के सन्नाटे के साथ मौन हूँ, मौन हूँ -
क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ । '' (2)

4.5.7.2. प्रतीक विधान :

सृष्टि के आरंभ से लेकर धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतीकों का प्रयोग होता आ रहा है । प्रतीक का प्रयोग किसी मूर्त, अमूर्त और गोचर अथवा इंद्रियातीत विषय का किसी अन्य मूर्त एवं दृष्टिगोचर वस्तु द्वारा प्रतिविधान किए जाने के अर्थ में होता है । '' (3)

---

1. अज्ञेय : हरीघास पर क्षण भर, पृ0 57
2. अज्ञेय : आंगन के पार द्वार, पृ0 38
3. डॉ0 नगेन्द्र : भारतीय साहित्य कोश, पृ0 751

'' 'तारसप्तक' के आगमन से हिन्दी कविता में जिन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ उनमें प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति सर्वोपरि है । '' (1) 'तारसप्तक' के कवियों का विश्वास है कि पुराने प्रतीक आज के संकीर्ण जीवन की उलझी हुई जटिलताओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हैं । ऐसी संवेदनाएँ सीधे सीधे अभिधा में नहीं बंधतीं । इसलिए प्रयोगवादी नये-नये प्रतीकों द्वारा अपनी अनुभूतियों को प्रेषित करते हैं – ''जो सीधे-सीधे अभिधा में नहीं बंधता, उसे आत्मसात् करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं । ''(2)

प्रतीक के इस महत्त्व को तारसप्तक के सभी कवियों ने समझ लिया था और अभिव्यक्ति की तीव्रता के लिए इसे एक अनिवार्य तत्व के रूप में ग्रहण भी किया था । प्रतीक इन के लिए प्रयोगशीलता का प्रमुख साधन है । काव्य की वर्णनात्मकता से बचकर भावनात्मक बनने के लिए प्रतीक का आश्रय लेना पड़ता है । किन्तु कवियों को इस बात में सतर्कता बरतनी चाहिए कि ये प्रतीक नितांत निजी न रहे, दुरूह और अस्पष्ट न बनें । मुक्तिबोध की कविता कहीं - कहीं अस्पष्ट और दुरूह इसलिए लगती है कि उनके प्रतीक वस्तुगत आधारों से छिटककर कवि के अंदर की ओर झांकते हैं :-

> ''. . .ये गरजती, गूँजती, आन्दोलिता
> गहराइयों से उठ रहीं ध्वनियाँ, अतः
> हर शब्द निज प्रतिशब्द को भी काटता,
> वह रूप अपने बिम्ब से भी जूझ
> विकृताकार-कृति
> है बन रहा
> ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ ।'' (3)

- -

1. कृष्णलाल : तारसप्तक के कवि : काव्यशिल्प के आयाम, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1979, पृ० 145
2. अज्ञेय : आत्मनेपद, पृ० 47
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : ब्रह्मराक्षस, नया सप्तक, पृ० 88

ऐसे प्रतीकों में छिपे हुए सत्य को ढूंढ निकालने में पाठक को थोड़ा श्रम करना पड़ता है, काव्य की शक्ति शनैः शनैः उद्घाटित होती है । 'तारसप्तक' के सभी कवियों ने युग-सत्य का सही रूप पहचानने के लिए प्रतीकों को माध्यम बनाया है ।

4.5.7.3 बिंबयोजना :

बिंब की रचना ''कवि अपने मानस में स्मृति, विगत अनुभव, निरुद्देश्य कल्पना अथवा संकुल रूप से स्मृति और कल्पना के आधार पर करता है । काव्य में जब यह मानस-प्रतिमा कवि की अनुभूति के संप्रेषण का शब्दार्थमय माध्यम बनती है तो उसे काव्य-बिंब कहा जाता है ।'' (1)

'तारसप्तक' के कवियों ने बिंब-योजना में पर्याप्त ध्यान दिया है । नूतन बिंबों की सृष्टि के लिए उन्होंने भौतिक जगत का विश्लेषण नये सिरे से किया और परंपरागत निर्जीव बिंबों को एकदम छोड़ दिया ।

प्रयोगवादियों के बिंब काव्य की वस्तु तथा शिल्प से संबंध रखते हैं । वस्तु में संश्लिष्टता तथा शिल्प में मूर्तता लाने में बिंब सहायक रहते हैं । चेतन, उपचेतन या अवचेतन मन की गूढ़ताओं को स्पष्ट करने में ही बिंब को सर्वाधिक सफलता मिली है । मन की गहराइयों में डुबकियाँ लगानेवाले मुक्तिबोध को इसलिए बिम्ब विशेष प्रिय हैं :

''इसीलिए मेरी ये कविताएँ
भयानक हिडिम्बा हैं,
वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएँ
विकृताकृति बिम्बा हैं ।'' (2)

---

1. डॉ० नगेन्द्र (सं०) भारतीय साहित्य कोश, पृ० 819
2. उद्धृत: तारसप्तक के कवि: काव्य-शिल्प के आयाम, कृष्णलाल, पृ० 155

उपचेतन या अवचेतन की क्रियाओं को काव्यात्मक अर्थ देकर उन्हें बिंबों में बाँधने का सर्वप्रथम प्रयास निराला ने ही किया था।[1] 'राम की शक्ति पूजा' में चेतन मन की उपचेतन-अवचेतन क्रियाओं की स्पष्ट झाँकियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। निराला का निराशाग्रस्त अवचेतन मन अपने को रण में पराजित मानता है –

''हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में हार गया।''[2]

'रण' शब्द का प्रयोग करके कवि ने अपने संघर्षमय जीवन का जीवन्त चित्र उपस्थित किया है।

फ्रायड के स्वप्न सिद्धांत से प्रभावित होकर स्वप्न बिंबों का प्रयोग भी निराला ने किया है। ''स्वप्न-बिंबों के प्रथम प्रयोक्ता भी निराला ही ठहरते हैं।''[3] इस दृष्टि से उनकी 'स्वप्न स्मृति' ऐतिहासिक महत्व रखती है।[4]

डॉ० रामविलास शर्मा[5] बिंब-विधान को तभी सार्थक समझते हैं जब वह भावों से अनुप्राणित हो। प्रयोगवादी बिंबों को केवल शाब्दिक या परंपरागत रहने नहीं देते।

बिंबों के प्रति प्रयोगवादियों में व्यापक मोह दिखाई देता है। परंतु वे बिंब को सर्वोपरि नहीं मानते हैं। प्रभाकर माचवे[6], नेमिचन्द्र जैन[7] जैसे प्रयोगवादी यद्यपि बिंबवाद को भी कविता मानते हैं तो भी उसे कविता

- -

1. डॉ० केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971, पृ० 219
2. निराला : वनबेला, निराला रचनावली-1 पृ० 327
3. डॉ० केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान, पृ० 219
4. वही, पृ० 219
5. तारसप्तक, पुनश्च, पृ० 262
6. प्रभाकर माचवे : वक्तव्य, तारसप्तक, पृ० 126
7. नेमिचन्द्र जैन: काव्य बिंब: एक समीक्षा, कल्पना, फरवरी 1968, पृ० 49

का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते । ''उनकी सार्थकता और अस्तित्व वहीं तक उचित है जहाँ तक वह भावों में लिपटकर उन्हें उनके सही रंगों और सही आकृतियों में व्यक्त कर सके ।'' (1)

4.5.7.4. मुक्त छंद

छायावाद-काल में ही छंदों के रीतिकालीन स्वरूप को निराला ने तोड़ डाला था । लेकिन अपने मुक्तछंद में भी उन्होंने एक आंतरिक प्रवाह का अनुभव किया था और उस प्रवाह में अपनी आत्मा को निमज्जित कर दिया था । ''मुक्त काव्य में बाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को सुख-प्रवाह-सिक्त निर्मित किया करती है, वही इसका प्रमाण है । जो लोग उसके प्रवाह में अपनी आत्मा को निमज्जित नहीं कर सकते, उसकी विषमता की छोटी-बड़ी तरंगों को देखकर ही डर जाते हैं, हृदय खोलकर उससे अपने प्राणों को मिला नहीं सकते, मेरे विचार से यह उन्हीं के हृदय की दुर्बलता है ।'' (2)

निराला के इस मुक्त छंद को अपनाकर प्रयोगवादियों ने अपने को सफल साबित कर दिया । अज्ञेय ने निराला की छंद संबंधी धारणाओं की पुष्टि कविता में यों की है :

''छन्द है यह फूल, पत्ती प्रास ।

---

1. कृष्णलाल : तारसप्तक के कवि : : काव्य शिल्प के मान, पृ0 156
2. 'निराला': पंतजी और पल्लव, निराला रचनावली - 5, पृ0 182

सभी कुछ में है नियम की सांस ।
कौन सा वह अर्थ जिसकी अलंकृति कर नहीं सकती,
यही पैरों तले की घास ?
समर्पण लय कर्म, है संगीत
टेक करुणा सजग मानव-प्रीति ।
यति न खोजो अर्थ ही यति है। स्वयं
रणरणित होते
रहो, मेरे गीत । '' (1)

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर छंदों में एक प्रकार का नियम, एक प्रकार का प्रवाह रहता है, मुक्त छंद में भी स्वतंत्र और प्राकृतिक संतुलन रहता है । इस प्राकृतिक संतुलन का मोह इसलिए आया है कि गद्य-पद्य के बीच अंतर रहे । लय या प्रवाह के अभाव में पद्य-गद्य का रूप धारण कर लेता है । (2) काव्य में मुक्तछंद का भी प्रयोग 'तारसप्तक' के कवियों को अभीष्ट है ।

मुक्तिबोध के मुक्तछंद में संगीत तत्व का अभाव होने के कारण उनकी भाषा गद्य के अधिक निकट है । लेकिन प्रभाकर माचवे काव्य तथा संगीत के बीच अंतरंग संबंध मानते हैं । और संगीत को काव्य के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में ग्रहण करते हैं । (3) गिरिजाकुमार माथुर ने भी नाद-सौंदर्य पर बड़ा जोर दिया है ।

प्रयोगवादियों ने मुक्तछंद का प्रयोग केवल फैशन के लिए नहीं किया है । मुक्तछंद को वे कविता की विषय-वस्तु से जोड़ते हैं । उनके अनुसार अभिव्यक्ति का निर्णायक आग्रह ही हो सकता है । (4)

- -

1- अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर, पृ0 67
2- अज्ञेय : तारसप्तक, वक्तव्य, पृ0 169
3- प्रभाकर माचवे : संतुलन, पृ0 120
4- वही, पृ0 122

कृत्रिम तथा अस्वाभाविक बंधनों से कविता को मुक्त करके खुली हवा में ले आने के साथ साथ तारसप्तक के कवियों ने कविता को गद्य बनने से भी बचा लिया है ।

4.5.7.5. अलंकार :

सुमित्रानंदन पंत ने अलंकारों को भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार कहा है ।(1) अन्य क्षेत्रों की भांति अलंकारों के क्षेत्र में भी प्रयोगवादियों ने नवीनता का आग्रह किया है । बदलती परिवेश में पुराने उपमानों रूपकों और उत्प्रेक्षाओं को वे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं -

''ये उपमान मैले हो गये हैं ।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच ,
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा
छूट जाता है । '' (2)

अलंकारों को अधिक वैज्ञानिक और आधुनिक रखने की आवश्यकता पर 'तारसप्तक' के कवि जोर देते हैं । इन कवियों ने यद्यपि महत्तार्थ से अलंकारों के विषय में विचार नहीं किया है तो भी भावानुकूल अलंकारों का प्रयोग करने में ये सक्षम निकले हैं । अज्ञेय ने भोर और अहेरी का कितना सुंदर रूपक बांधा है :-

'भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बांध लेता है सभी को साथ

---

1. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव , प्रवेश, पृ0 8
2. अज्ञेय : 'कलगी बाजरे की', हरी घास पर क्षण भर , प्रगति प्रकाशन , नई दिल्ली , फरवरी 1949 , पृ0 57

''छोटी - छोटी चिड़ियाँ
मंझोले परेवे
बड़े बड़े पंखी
डैनों वाले डील वाले
डौल के बेडौल
उड़ने जहाज '' (1)

उपमान भी नये लाये गये हैं –

''आज उन्मुक्तिकरण को छूती वेला में कि जब
दो आत्माएं
बालकों - सी नग्न होकर खड़ी रहतीं । '' (2)

युगानुरूप अलंकारों के स्वरूप को परिवर्तित करके भावों का उत्कर्ष दिखाने में 'तारसप्तक' के कवि सफल हुए हैं । स्वच्छ छंद-विधान में ही नहीं अलंकारों के प्रयोग में भी प्रयोगवादियों ने स्वतंत्रता से काम लिया है । इसलिए प्रयोगवादी कविता कृत्रिमता से बहुत कुछ मुक्त है ।

अंत में कहा जा सकता है कि ''शिल्पविधि की दृष्टि से प्रयोगवादी काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में अधिक समृद्ध है । ''(3)

4.6 प्रयोगवाद की परिभाषा

आलोचकों से बढ़कर कवियों ने ही प्रयोगवादी कविता का मूल्यांकन सही मायने में किया है । इससे नयी प्रवृत्ति की विशिष्टताओं के साथ साथ कवियों के जीवन-दर्शन से भी परिचित होने का मौका पाठकों को मिलता है । प्रयोगवादी कवियों का जीवनदर्शन बहुत कुछ आंतरिक है और उस सत्य को ढूंढ निकालने में

- -

1. अज्ञेय : 'बावरा अहेरी', आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय'-10, पृ0 77
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : तारसप्तक , पंचम संस्करण, 1981, पृ0 10
3. कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प , पृ0 273

केवल बुद्धि का ही नहीं अनुभव का भी सहारा लिया जाता है । ''प्रयोग-शीलता नितान्त अनुभव-परक जीवन-दृष्टि है ।'' (1)

प्रयोगशीलता को अनुभव-परक जीवन-दृष्टि के रूप में स्वीकार करने के कारण इसमें वैयक्तिकता को बहुत अधिक स्थान मिला है । '' इस व्यक्तिवाद और उसकी चरम परिणति 'अहंवाद' को यदि प्रयोगवादी काव्य का केन्द्रबिंदु कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । '' (2)

प्रयोगवाद का मूलतत्त्व काव्य विषयक प्रयोग अथवा अन्वेषण है । ''इस वर्ग के कवियों का विश्वास है कि जीवन की ही तरह काव्य भी एक निरन्तर विकासशील सत्य है जिसकी वास्तविक साधना शोध, अन्वेषण एवं प्रयोग है ।''(3)

लेकिन ये प्रयोग प्रयोगवादियों के लिए साध्य नहीं, साधन हैं । प्रयोग करने के लिए ये अछूते तथा अपरिचित क्षेत्रों की खोज में हैं : '' . . जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया, या जिनको अभेद्य मान लिया गया है । '' (4)

प्रयोगवादी पाठकों के प्रति उपेक्षा रखते हैं । इस कारण उनका शिल्पिक स्तर उन्नत रहता है और वे ऐसे शब्दों तथा प्रयोगों का उपयोग करते हैं जो साधारण जन के लिए अपरिचित हैं । ऐसे प्रयोगों की व्याख्या देना भी वे आवश्यक नहीं समझते । ऐसी अवस्था में सम्प्रेषण की समस्या सबसे बड़ी समस्या बनकर सामने उपस्थित होती है । '' जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी संपूर्णता में पहुँचाया जाए - यही पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता

. . . .

1. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 132
2. डॉ० शिवकुमार मिश्र: नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962, पृ० 222
3. डॉ० नगेन्द्र : विचार और विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तीसरी संस्करण, 1974, पृ० 126
4. अज्ञेय : वक्तव्य, तारसप्तक, पृ० 270

को ललकारती है । ..(1) इससे मुक्ति का कोई मार्ग भी दिखाई नहीं देता, इसलिए दुरूहता तथा दुर्बोधता प्रयोगवादी कविता के लिए अनिवार्य सी हो गयी है ।

परंपरा को सभी प्रयोगवादी समान रूप में स्वीकार नहीं करते । अतीत को कुछ उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं तो कुछ उसमें महत्वपूर्ण अंशों का दर्शन भी करते हैं । निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि के लिए परंपरा, रूढ़ि नहीं है इसलिए परंपरा से वे एकदम अलग भी नहीं हो पाते । वे भूत को वर्तमान के आलोक में देखते हैं और भूत द्वारा वर्तमान का पथप्रदर्शन करा देते हैं । वर्तमान और भविष्य की चिंता इन में ज्यादा है । – (2)

प्रयोगवादी आधुनिक-मनोविज्ञान की सहायता से उपचेतन की उलझी हुई संवेदनाओं का चित्रण करना चाहते हैं । पुराने कवि उन्हें व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करते थे, परंतु आधुनिक कवि उनका यथावत् चित्रण ही अधिक स्वाभाविक मानते हैं ।

प्रयोगवादी बौद्धिकता को काव्य का प्राण मानकर चलते हैं । (3) सौंदर्यबोध, चाहे वह कला के क्षेत्र में हो या काव्य के, अन्ततः संवेदना के धरातल पर क्रियाशील बौद्धिक प्रक्रिया ही सिद्ध होती है क्योंकि वह एक प्रकार की बोधवृत्ति से संबंध रखता है । (4)

प्रयोगवादियों के इस दावे को डॉ० नगेन्द्र यों ही स्वीकार नहीं करते । इनके अनुसार राग का स्थान किसी भी परिस्थिति में बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती । (5) लेकिन प्रयोगवादी सीमित बुद्धि और रागतत्व या भावना को

- -

1. अज्ञेय : आत्मनेपद, वक्तव्य, पृ० 27।
2. अज्ञेय : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, संपा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० 79
3. डॉ० शिवकुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ० 255
4. जगदीश गुप्त : कवितान्तर, ग्रंथम्, प्रथम संस्करण 1973, पृ० 22
5. डॉ० नगेन्द्र: विचार और विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1974, पृ० 132

परस्पर विरोधयुक्त देखते हैं और उनके बीच वास्तविक रूप से विद्रोह का प्रतिपादन करते हैं। (1) उनके लिए बुद्धि ही कल्पना का आधार है।

प्रयोगवादियों का दृष्टिकोण भी कुछ वस्तुओं की ओर विशेष झुकाव है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण ही उनको सब कुछ ग्राह्य हो गया था। गिरिजाकुमार को छोड़कर 'तारसप्तक' के सभी कवि किसी न किसी प्रकार मार्क्सवादी विचारधारा से संबद्ध थे। इसलिए उनकी निश्चित धारणा थी कि कलाकार या वैज्ञानिक के लिए कुछ भी अग्राह्य नहीं है। (2)

वस्तुपरक दृष्टि का आग्रह, मूल्य की अराजकता की स्वीकृति अवचेतन की उलझी हुई संवेदनाएँ जैसी प्रयोगवादी की भावगत नवीनताओं ने शिल्प-संबंधी प्रयोगों की भी अनिवार्यता कर दिया। प्रयोगवादी शब्दों के प्रचलित अर्थ को अस्वीकार करके वैयक्तिक अर्थों से मर्मित-शब्दों के अप्रचलित प्रयोगों पर विश्वास करते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों से भी आत्माभिव्यक्ति पूरी नहीं हुई तो वे विराम-चिह्नों, अंकों, रेखाओं, सीधे उल्टे अक्षरों, छोटे-बड़े टाइपों और सीधी तिरछी लकीरों से काम लेने लगे। (3) शिल्प की ऐसी चमत्कारपूर्ण नवीनता पर बल देने की प्रवृत्ति अंग्रेजी साहित्य में भी थी। (4)

प्रयोगवादियों ने छंदों के क्षेत्र में भी नवीन प्रयोग किये। निराला के मुक्तछंद को ही उन्होंने प्रयोगों के लिए आदर्श मान लिया। पुराने वर्णिक तथा मात्रिक छंदों में उनकी आस्था नहीं रही।

- -

1. नरेन्द्रदेव वर्मा: प्रयोगवाद, पृ० 98
2. कुंवर नारायण: तीसरा सप्तक, संपा० अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1967, पृ० 148
3. अज्ञेय: तारसप्तक, वक्तव्य, पृ० 270
4. Philip Toynbee, London Magazine, Experiment and the future of the novel, May 1956.

यद्यपि सिद्धांत रूप में प्रयोगवाद अछूते तथा अभिव्यक्त क्षेत्रों का अन्वेषण करता है तो भी वह छायावाद की वायवी सौंदर्य चेतना के विरुद्ध एक वस्तुगत पूर्ण और ऐन्द्रिय चेतना का विकास तथा सौंदर्य की परिधि में केवल मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, अनगढ़, भदेस का समावेश है । (1)

प्रयोगवाद की उक्त परिभाषाओं के बल पर हम इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुँच सकते हैं कि प्रयोगवाद ने भाव तथा शिल्प के धरातल पर नवीनता तथा आधुनिकता का आग्रह किया है और कविता को युगानुकूल रखा है ।

4.7. प्रयोगवाद के कवि :

यह हम देख चुके हैं कि 'तारसप्तक' काव्य और शिल्प के क्षेत्र में उसके प्रकाशनकाल (1943ई0) से पाँच-छः साल पूर्व से प्रचलित सभी आधुनिक प्रवृत्तियों को सुस्थापित तथा संपुष्ट करने का सफल प्रयास है । 'तारसप्तक' में संकलित कविताओं की अपेक्षा उसकी भूमिका तथा संग्रहीत कवियों के वक्तव्य अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

हिन्दी कविता के सौंदर्य शास्त्र को 'तारसप्तक' की भूमिका तथा वक्तव्यों से एक निश्चित गतिशीलता मिली, काव्यालोचना को नये प्रतिमान मिले। कवि की काव्य संबंधी धारणाओं को समझने के लिए कविताओं से बढ़कर ये वक्तव्य अधिक उपयोगी हैं ।

'' 'तारसप्तक' के कवियों में मुक्तिबोध की काव्य संबंधी व्याख्याएं अधिक मौलिक तथा सारग्राही हैं ।'' (2) मुक्तिबोध ने 'तारसप्तक' की अपनी कविताओं को अलग पथ को ढूँढनेवाले मन की बेचैनी के रूप में स्वीकार किया है । उनका मन एक ओर सौंदर्य का भूखा था तो दूसरी ओर संसार के सुख दुःख के प्रति प्रतिक्रियाशील भी । इसलिए उनकी वैयक्तिक तथा सामाजिक द्वन्द्वों से भी

- -

1. डॉ0नगेन्द्र (संपा) भारतीय साहित्य कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र0सं0 1981, पृ0 757
2. कृष्णदत्त: तारसप्तक के कवि: काव्य शिल्प के मान, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 [illegible]

कभी भी मुक्ति न मिली । दूसरे शब्दों में, मुक्तिबोध हमेशा आंतरिक तथा बाह्य संघर्षों के शिकार बने रहे । बाह्य संघर्ष से मुक्त होने के लिए उन्होंने यद्यपि मार्क्सवादी दर्शन को अपनाया तथापि उससे भी पूर्ण रूप से मुक्ति संभव न हुई ।

मुक्तिबोध को इस बात का पता चल गया था कि कवि-कलाकार का आत्म-संघर्ष कभी भी मिटनेवाला नहीं है । यह जानकर भी आत्म-मुक्ति के इच्छुक वे आग्रही रहे कि व्यक्ति को सभी जीवन-समुद्र की थाह लेने का अधिकार मिलेगा जब उसका व्यक्तित्व आत्मसीमित न रहकर दिशाव्यापी हो । ''कला का केन्द्र व्यक्ति है, पर उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है । (1)

गिरिजाकुमार माथुर काव्य में शिल्प की स्वतंत्रता तथा मौलिक सत्ता पर विश्वास करते हैं और टेक्नीक के अभाव में किसी कविता को अधूरी समझते हैं : '' मैं ने कविता में विषय से अधिक टेक्नीक पर ध्यान दिया है । विषय की मौलिकता का पक्षपाती होने पर भी मेरा विश्वास है कि टेक्नीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाएगी ।'' (2)

कलागत वैविध्यों के साथ-साथ मानवता के विभिन्न आयामों पर भी उनका ध्यान केन्द्रित हो 'नये युग का गीत' में वे यों गाते हैं —

''इस नयी ज्योति से, धरे में
कलियों का सारा कुल नया,
हर वाणी की है ताल नयी
हर मंजिल का संगीत नया

- -

1. मुक्तिबोध, वक्तव्य, तारसप्तक, पृ० 7
2. गिरिजाकुमार: तारसप्तक, वक्तव्य, पृ० 124

x x x x

दलितह्रास तिमिर पीड़ि हरेस ,

निकली जग की जनता महान । '' (1)

डॉ० रामविलास शर्मा वस्तु और शिल्प को अन्योन्याश्रित तथा अभिन्न मानते हैं । साहित्य रूपों में इन दोनों तत्वों से एक का त्याग करके भी नहीं चलता । ''साहित्य में रूप और विषय का संबंध अभिन्न और अन्योन्याश्रित है । प्रगतिशील साहित्य रूप-सौष्ठव का तिरस्कार कर, दो कदम भी नहीं चल सकता ।''(2)

नेमिचन्द्र जैन शिल्प की दृष्टि से अनुकूल शब्दों के पक्षपाती हैं । (3) शिल्प-विधान के संदर्भ में कवि-कलाकारों के सतर्क रहने की आवश्यकता पर भी वे ज़ोर देते हैं क्योंकि चमत्कार के लिए जब रूप-विधान का उपयोग किया जाता है तब उसमें दुरूहता जटिलता रीतिकालीन चमत्कारवादिता आदि के आने की संभावना रहती है । (4)

भारतभूषण अग्रवाल ने कविता को सामाजिक परिवर्तन के अस्त्र के रूप में स्वीकार किया है । (5) उनके अनुसार आधुनिक कविता का शिल्प यथार्थ के अनुरूप होना चाहिए । (6)

प्रभाकर माचवे विषयों की विविधता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने के पक्ष में हैं, साथ ही जन-जीवन की भाषा तथा शैली के आग्रही भी हैं, ''जन जीवन के निकट जाकर ग्राम-गीत, लोक-गाथा और बाजारू कहावतें जाकर

- -

1. गिरिजाकुमार माथुर : 'नये युग का गीत,' नया साहित्य-3, जनप्रकाशनगृह, बंबई, 1949-46, पृ० 71
2. डॉ० रामविलास शर्मा: प्रगति और परंपरा, पृ० 56
3. नेमिचन्द्र जैन : 'आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन की समस्याएँ, आलोचना, अप्रैल 1952, पृ० 22-23
4. वही, पृ० 27
5. भारत भूषण अग्रवाल, तारसप्तक, वक्तव्य, पृ० 87
6. वही, पृ० 87

इस भाषी अभिव्यक्ति बहुत साफ़ और मुहावरेदार जबान से नए-नए शब्दों-अर्थों और उपमान-बिंबों को ग्रहण करना और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति जागरूक होना चाहिए।" (1) शिल्प उनकी दृष्टि में कम महत्वपूर्ण नहीं है।

वस्तु तथा रूप पर 'तारसप्तक' के अंतिम कवि अज्ञेय का भी विश्वास है लेकिन शिल्प संबंधी पुरानी मान्यताओं को वे स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार परंपरागत बिंबों प्रतीकों के स्थान पर नवीन शिल्प साधनों का प्रयोग स्वस्थ काव्य की सृष्टि के लिए अनिवार्य है। एक ओर वे साधारणीकरण की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं तो दूसरी ओर दुरूहता को आधुनिक काव्य का एक अनिवार्य तत्व भी स्वीकार करते हैं।

अज्ञेय की साहित्यिक धारणाएँ पाश्चात्य साहित्य से ज़्यादा प्रभावित होने के कारण हिन्दी कविता के संदर्भ में पूर्णतः सधी नहीं लगती। प्रयोग, शिल्प, चमत्कार आदि के इर्द-गिर्द वे चक्कर काटती रहती हैं, फिर भी सात कवियों को केवल प्रयोगों की समानता के आधार पर एक साथ लेकर उनकी नवीनता का जो उद्घाटन अज्ञेय ने किया है, कम महत्व का नहीं है। यद्यपि यह काव्य-संकलन 'नदी का बिखर द्वीप नहीं, प्रवाह की एक लहर मात्र है'(2) तो भी यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति है।

4.8 निराला : प्रयोगवाद के प्रवर्तक :

प्रयोग सभी कालों में हुए हैं। परंतु 'तारसप्तकीय' प्रयोगों की विशेषता यह है कि उन्हें पुराने कार्य क्षेत्र से आगे बढ़कर अछूते और अपेक्षित

---

1. प्रभाकर माचवे: तारसप्तक, वक्तव्य, पृ0 125
2. डॉ0 रामविलास शर्मा: नई कविता और अस्तित्ववाद, पृ0 17

क्षेत्रों पर अधिकार करने की ललक है:- '' प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता जाता है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया, या जिनको अभेद्य मान लिया गया है। '' (1)

स्पष्ट है कि पुराने तथा नये प्रयोगों में विशेष अंतर नहीं, आधुनिकों ने प्रयोग के लिए जो क्षेत्र चुन लिये हैं, वे ही अंतर रखते हैं।

अछूते और अभेद्य क्षेत्रों का अन्वेषण 'तारसप्तक' में यद्यपि संगठित तौर पर हुआ है तो भी 'तारसप्तक' के पांच-छः वर्ष पूर्व ही कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नये-नये प्रयोग प्रकाश में आ चुके थे। नरेन्द्रशर्मा, नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे तारसप्तकेतर सफल कवियों का पथ प्रशस्त करते हुए पुराने में से निराला तथा पंत इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे।

निराला शुरू से ही प्रयोगधर्मा थे — भाव तथा शिल्प दोनों दृष्टियों से। 'अधिवास' (सन् 1923) संसार को अद्वैत की दृष्टि से देखनेवाली आधुनिक विचारों से प्रेरित नया भाव लेकर सन् 1921 में ही अवतरित हुई थी। भावानुरूप शिल्प को ढालने का सफल प्रयास भिक्षुक (1923 ई0) 'तोड़ती पत्थर' (सन् 1937) जैसी कृतियों में हुआ है। 1938 तक आते आते निराला की इन प्रयोगशील कविताओं का कलेवर इतना भिन्न हो गया कि पुराने महारथी भौंहें चढ़ाने लगे। सन् 1928 में गुलाबी पर लिखी व्यंग्य-कविता भी नया और अनूठा प्रयोग है :

- -

1. अज्ञेय : वक्तव्य, तारसप्तक, पृ0 270-271

''जब से एफ० ए० फेल हुआ
हमारा कालिज का बचुआ ।

× × ×

हिन्दी का लिक्खाड़ बड़ा वह,
जब देखो तब अड़ा पड़ा वह ,
छायावाद रहस्यवाद के
भावों का बटुआ । '' (1)

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने जिस आधुनिक युग बोध का परामर्श 'कुकुरमुत्ता' के संदर्भ में किया था (2) उसका प्रथम दर्शन निराला की सन् 1939 में लिखी 'प्रेमसंगीत' में मिलता है । धर्म तथा समाज की परवाह किये बिना यौन वर्जनाओं से मुक्त होने का तथा उस मुक्ति के आग्रह को ईमानदारी से व्यक्त करने का साहस हिन्दी के किसी दूसरे कवि ने इससे पूर्व नहीं किया था ।

'रूपाभ', 'उच्छृंखल', ऐसी जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से भी नये-नये प्रयोगों को पुष्टि मिलती रही । हिन्दी कविता के इस आधुनिक स्वभाव को समझकर इसे प्रोत्साहित करने का श्रेय अज्ञेय तथा उनके 'तारसप्तक' को है लेकिन इसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति निराला के कई गीतों में पहले ही हो चुकी थी । (3) इसलिए प्रयोगशील प्रवृत्ति का आरंभ 'तारसप्तक' से न मानकर उसे तत्कालीन जीवन परिवेश की एक उपज और अभिव्यक्ति मात्र समझना ही उचित है। (4) तब 'तारसप्तक' के संपादक अज्ञेय को इस अभिव्यक्ति के उद्गाता मानना निरर्थक सिद्ध होता है ।

---

1. 'कालिज का बचुआ' निराला रचनावली-1, पृ० 356-357
2. डॉ० इन्द्रनाथमदान : समकालीन साहित्य; एक नई दृष्टि, लिपि प्रकाशन, दिल्ली- प्र०सं० 1977
3. लक्ष्मीकांत वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद सं० 2014, पृ० 24-25
4. डॉ० नामवरसिंह: कविता के नये प्रतिमान, पृ० 87-88

हिन्दी कविता में प्रयोगशीलता के प्रवर्तन का श्रेय निराला को ही दिया जाना चाहिए। क्योंकि उनका समस्त काव्य प्रयोग का आख्यान है। (1) वहीं यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं कि निराला द्वारा प्रवर्तित यह नयी काव्याभिव्यक्ति अज्ञेय के नेतृत्व में अधिक विस्तार को पा गयी।

निराला-काव्य-की-सी विशिष्टताएँ आगे चलकर मुक्तिबोध जैसे नये कवियों की कृतियों में भी विकास को प्राप्त करती गयीं और शायद इस तथ्य पर दृष्टिपात करते हुए ही शमशेर बहादुर सिंह लिखते हैं :- ''मुक्तिबोध ने छायावाद की समृद्धि लेकर, प्रगतिवाद से मार्क्सवादी दर्शन ले, प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार संभाल, और उनकी स्वतंत्रता मजबूत कर, स्वतंत्र कवि रह के, सब वादों और पार्टियों से ऊपर उठकर, निराला की सुधरी और खुली मानवतावादी परंपरा को बहुत आगे बढ़ाया।''(2) शमशेर ने मुक्तिबोध के मुक्तछंद, उनकी सीधी अभिव्यक्ति, सरल मानवीय व्यंजना आदि पर भी निराला का स्पष्ट प्रभाव देखा है। (3)

प्रगतिवाद की आदर्श कृति 'कुकुरमुत्ता' प्रयोगवाद की भी अमर कृति है। कथ्य और शिल्प को लेकर इस व्यंग्य-कृति में जो प्रयोग किये गये हैं, सानी नहीं रखते। 'कुकुरमुत्ता' केवल 'सर्वहारा वर्ग' का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता उसका संबंध कतिपय प्रवृत्तियों से भी घनिष्ट है। पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा सामंती व्यवस्था के साथ-साथ प्रगतिवादी-कुकुरमुत्ता की आधारित समाजिकता और अवसरवादी-कुकुरमुत्ता की धूर्तता भी निराला के व्यंग्य का शिकार बनती हैं। उनकी यह विशिष्ट कला कथ्य-वस्तु तथा अभिव्यक्ति के नई मुतनातर

- -

1. डॉ० बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1978, पृ० 298
2. शमशेर बहादुर सिंह : चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूमिका, पृ० 26
3. वही पृ० 26

आयाम प्रस्तुत करती है-'' अपनी काव्य यात्रा में निराला न केवल प्रयोगवाद से जुड़े रहे हैं, वरन् उसके प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हीं को दिया जाना चाहिए। 'प्रयोग' के व्यापक अर्थ को लें, तो उनकी काव्य-प्रतिभा आरंभ से ही कथ्य और अभिव्यक्ति के नूतनतर आयाम प्रस्तुत करती रही है। प्रयोगधर्मी रचनाशीलता उनकी निजी प्रवृत्ति कही जा सकती है, जिस पर वे अन्त तक कायम रहे हैं।''(1)

काव्य-क्षेत्र में निराला के विभिन्न प्रयोग हमेशा नव्यता-बोध को लिये हुए थे और आधुनिकता की कसौटी पर खरे उतरे थे। मार्क्सवादी से बढ़कर सामाजिक यथार्थ के साथ व्यक्ति के आंतरिक यथार्थ को भी मुखरित करने में निराला सिद्धहस्त थे। प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि मुक्तिबोध का आधुनिकता बोध भी निराला के समकक्ष नहीं टिकता। मुक्तिबोध की ओजस्वी स्वस्थ कविताओं का परामर्श करते समय शमशेर बहादुरसिंह निराला को ही अधिक याद करते हैं। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में,' ''ब्रह्म' 'एक कथा' आदि कविताओं का गुणगान वे करते हैं: ''इतना गहरा असर डालनेवाली आधुनिक दृष्टि से इतनी पुष्ट और स्वस्थ कविताएँ और इतनी ओजस्वी, मैंने निराला के बाद नहीं पढ़ीं या सुनीं।'' (2)

यहाँ पर विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि शमशेर बहादुरसिंह मुक्तिबोध की कविता को निराला की कविता से श्रेष्ठ नहीं मानते। समकक्ष भी मानते हों, इसमें संदेह है। यही नहीं कहीं कहीं उनके विचारानुसार मुक्तिबोध का कार्य-क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित भी है। यथार्थ, मिथ, कल्पना आदि के स्वप्न बिंबों से भरे मुक्तिबोध के काव्य-संसार की परिधि तो निश्चित है, वे कुछ अपनी परिधि से परिचित भी थे। शायद इसी कारण से वे बेचैन-कोशिश-से, अपने में

---

1. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव : निराला का काव्य, पृ० 226
2. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है (भूमिका) पृ० 19

अक्षमता का अनुभव करते हुए दीखते हैं । ''दूसरे शब्दों में इसे मुक्तिबोध का कन्फेशन - उनकी अपनी सीमित अभिव्यक्ति क्षमता का एहसास - कह सकते हैं । ''(1) मुक्तिबोध 'अंधेरे में' में अपनी ही परम अभिव्यक्ति की तलाश में हैं —

''इतने में अँधियारी भूमि में कोई चीख गया है
रात का पक्षी
कहता है —
''वह चला गया है
वह नहीं आयेगा, आयेगा ही नहीं —
अब तेरे द्वार पर ।
वह निकल गया है गाँव में शहर में ।
उसको तू खोज अब
उसका तू शोध कर ।
वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति,
उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक . . .)
वह तेरा गुरु है,
गुरु है . . . '' (2)

निराला की अभिव्यक्ति का क्षेत्र अधिक व्यापक है । मुक्तिबोध के संपूर्ण काव्य को फैन्टसी का जो पर्यावरण हमेशा आच्छादित रखता है वह निराला के काव्य में अपना एकाधिकार स्थापित नहीं करता । फैन्टसी उस काव्य-वृक्ष की एक डाली मात्र है । इससे उनकी समग्रता का ह्रास नहीं होता ।

- -

1. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव : निराला का काव्य, पृ० 229
2. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 268

लेकिन निराला की बात बिल्कुल भिन्न है । ''अभिव्यक्ति को सीमित करनेवाले किसी दबाव का अहसास उन्हें कभी अनुभव ही नहीं हुआ अथवा यों कह लें कि हर शृंखला को झटककर तोड़ देने की अदम्य मनःशक्ति के कारण वे किसी भी स्तर पर प्रतिबद्ध नहीं रह सके ।—अभिव्यक्ति जिनका एक वस्तु मात्र है । '' (1)

निराला के भावों और विचारों में भी बड़ा आवेग है । उनके भाव-विचार भाषा से इतने घुलमिल गये हैं कि उन्हें अलग करके देखना भी असंभव सा हो जाता है । ''निराला का आवेग जितना उनके भावों-विचारों के साथ घनिष्ट है उतना ही भाषा-शब्द भाषा के साथ भी । इस निरन्तर विस्फोट की, इस तोड़-फोड़ की आग उतनी ही निरन्तर आँखों से देखिए, तमाम पूर्वग्रहों को दूर झटककर - शब्दों के वैचित्र्य से, तुकों की अन्धाधुन्धी से बिना चिढ़े - तो आपको वह दृश्य, वह अंतरंग दिखाई दे जायगा – जो 'आत्मा' का यथार्थ है और जिसे खोजने में प्रयोगवादियों का शिल्प-कौशल भी काम नहीं दे सका ।''(2)

निराला के 'प्रयोग-' केवल पद्य क्षेत्र में ही सीमित नहीं रहे । पद्य को गद्य के निकट लाने के साथ-साथ गद्य को पद्यात्मक बनाने के प्रयत्न भी उनके उपन्यासों में दिखाई देते हैं :-

> ''साधु ने पूछा, ''फिर ?''
> चन्द्रिका रुकी, और फिर सोचकर कहा'', फिर चली गयी'' ।
> साधु जी ने पूछा ''वही सफेदीवाला मकान देखा था ?''
> चन्द्रिका ने कहा, ''हाँ''
> साधु जी ने पूछा ''वही एक बहुत बड़ा ताल है,
> वहीं गयी थी ?''

---

1. दूधनाथसिंह : कुकुरमुत्ता की भूमिका, पृ0 19
2. रमेशचन्द्र शाह: 'पहला प्रयोगवादी' (निबंध), छायावाद की प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 1973, पृ0 69

चन्द्रिका ने कहा, " हाँ । "

बाबू जी ने पूछा, "किसी पर जब पैदा बाण है, देखा था "

चन्द्रिका ने कहा "हाँ, बहुत देर तक सब लोग देखते रहे "।(1)

निराला के इन बाह्य शिल्पिक प्रयोगों पर ही प्रयोगवादी अधिकार कर सके उनकी कविता के आंतरिक भाव-प्रयोगों से वंचित रहे । इसलिए वास्तव में निराला का सीधा संबंध प्रयोगवादियों से न होकर नये कवियों से है क्योंकि कविता के पूरे संरचनात्मक तंत्र पर निराला की भाँति ध्यान देने में प्रयोगवादियों से बढ़कर नये कवि ही सफल हुए हैं ।

4.9. निष्कर्ष :

1. प्रयोगवाद छायावाद की भाँति विरोधियों द्वारा व्यंग्य-रूप में दिया गया नाम है ।

2. छायावाद से भिन्न काव्य की जो नयी धारा सन् 1935 के आसपास से होकर एक समवेत स्वर में बह चली थी, आगे चलकर दो विभिन्न शाखाओं में परिणत हो गयी । एक सामाजिकता पर बल देनेवाली प्रगतिवादी शाखा बनी तो दूसरी वैयक्तिकता को प्रोत्साहन देनेवाली प्रयोगवादी शाखा हुई ।

3. प्रयोगवादियों के लिए काव्य के कुछ साधन प्रयोग ही हैं । लेकिन इस आधार पर वे अपने को प्रयोगवादी कहना नहीं चाहते हैं ।

---

1. 'कुल्लीभाट', (1939 ई०) निराला रचनावली-4, पृ० 69

4. प्रयोगों की यह निंदा देख उन्हें सफल ही नहीं साध्य के रूप में भी प्रतिष्ठित करने को 'नकेन' ने 'प्रपद्यवाद' का प्रवर्तन किया। नकेनवादियों ने 'प्रयोगशीलता' और 'प्रयोगवाद' में अंतर कर दिया और 'तारसप्तक' के कवि को प्रयोगशील तथा अपने को असली प्रयोगवादी घोषित किया।

5. 'प्रपद्यवाद' का पर्यायनाम 'प्रयोगदशसूत्री' कहा जाता है। बाद में दस के साथ दो और सूत्र जोड़े गए।

6. 'प्रपद्यवाद' का महत्व इस बात में है कि वह 'नई कविता' के काल में भी 'प्रयोग' का पक्ष लेकर विरोधियों से लड़ता रहा।

7. प्रयोगवाद - प्रपद्यवाद में कुछ बातों में अंतर है तो कई बातों में साम्य भी।

8. अतियथार्थ का आग्रह, सामाजिकता का अभाव, बौद्धिकता की प्रतिष्ठा, लघुता के प्रति आकर्षण, प्रेम का नया स्वरूप, वैचित्र्य-प्रदर्शन, शब्द, प्रतीक, बिंब, छंद और अलंकार संबंधी नवीनताएँ प्रयोगवाद की मुख्य विशेषताएँ हैं।

9. 'व्यक्तिवाद' या 'अहंवाद' प्रयोगवादी कविता का केन्द्र बिंदु है। काव्य को चिर-गतिशील सत्य मानकर भाव-शिल्प संबंधी प्रयोगों से प्रयोगवादी काम लेते हैं। इनके प्रयोग अछूते और अभिनव क्षेत्रों की तलाश में हैं।

10. एक ओर प्रयोगवादी व्यक्ति-सत्य को व्यापक-सत्य तक पहुँचाने की समस्या से-साधारणीकरण की समस्या से - उलझे हुए हैं

तो दूसरी ओर आधुनिक काव्य में दुरूहता या दुर्बोधता की अनिवार्यता को भी स्वीकार करते हैं ।

11. परंपरा के महत्वपूर्ण अंशों को कुछ प्रयोगवादी आदर की दृष्टि से देखते हैं तो कुछ परंपरा की एकदम उपेक्षा करते हैं ।

12. प्रयोगवादी बौद्धिकता को काव्य का प्राण मानकर चलते हैं ।

13. आधुनिक मनोविज्ञान से सहायता लेकर मनुष्य मन की उलझी हुई संवेदनाओं का यथावत् चित्रण इन्हें विशेष प्रिय है ।

14. अनवादी प्रयोग प्रेमियों ने प्राणि जगत की क्षुद्र-वस्तुओं को विशेष आग्रह के साथ अपनाया है ।

15. 'तारसप्तक' के सात कवि गजानन माधव, मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा और सच्चिदानंद हीरानंद-वात्स्यायन 'अज्ञेय' हैं । माथुर को छोड़कर शेष सब प्रगतिवाद से प्रभावित हैं ।

16. प्रयोगवाद के उद्गाता अवश्य निराला हैं । छंदों के क्षेत्र में प्रयोगवादी निराला के दिखाये मार्ग से आगे बढ़े हैं। विषय वस्तु के संबंध में भी वे उन्हीं के ऋणी हैं । मुक्तछंद में ही अधिकांश प्रयोगवादी कविताएं लिखी गयीं ।

17. 'तारसप्तक' के तथा उसके बाहर के प्रयोगवादी कवियों का प्रमुख पथ प्रदर्शक निराला ही है । निराला की 'कथ' जैसी

प्रातिक कविता भी प्रयोग का उत्तम नमूना है । इसलिए प्रयोगशीलता के प्रवर्तन का श्रेय निराला को ही दिया जाना चाहिए ।

10. निराला के भाव और शिल्प इतने घुल-मिल गये हैं कि उन्हें अलग करके देखना असंभव है । परंतु प्रयोग-वादियों का ध्यान निराला-काव्य के शिल्पपक्ष पर ही टिका रहा, फलस्वरूप प्रयोगों की विविधताओं को अपनाने में वे पूर्णरूप से सफल न हुए ।

. . -0- . .

पाँचवाँ अध्याय

नई कविता

5. नयी कविता

5.1. नामकरण :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसी कोई काव्य-प्रवृत्ति नहीं जिसके नामकरण पर आपत्ति नहीं उठायी गयी हो । ''तार सप्तक'' के कवि गिरिजा कुमार माथुर ''प्रयोगवाद'', ''नयी कविता'' जैसे नामों से आधुनिक काव्य का वर्गीकरण करना संगत नहीं समझते (1) तो डॉ० शम्भुनाथ सिंह की दृष्टि में ''नयी कविता'' सार्थक नाम है । (2) ''प्रयोग'' को साध्य माननेवाले नकेनवादी ''प्रयोगवाद'' नाम पर संतुष्ट हैं (3) तो ''अज्ञेय'' (4) तथा मुक्तिबोध (5) ''नयी कविता'' के पक्षधर हैं ।

कोई भी नामकरण अव्याप्ति अथवा अतिव्याप्ति दोषों से सर्वथा मुक्त नहीं । वास्तव में ''नयी कविता '' नाम कहने से उस काव्य-प्रवृत्ति का स्पष्ट बोध नहीं होता । उसकी परिधि का निर्धारण असंभव-सा लगता है । अतिव्याप्तिदोष से ग्रस्त यह नाम अर्थ की दृष्टि से नयी कविता के क्षेत्र को संकुचित भी कर देता है ।

वही कविता नई कही जाएगी जो नये विकास की सूचना देती है । इस दृष्टि से प्रत्येक युग की कविता नयी कही जा सकती है । ऐसी परिस्थिति में इस शंका का उठना भी स्वाभाविक है कि क्या आज की

---

1. गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ, पृ०8, 9
2. डॉ०शम्भुनाथसिंह : प्रयोगवाद और नयी कविता, पृ०37
3. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ०219
4. अज्ञेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, द्वि.सं. पृ० 227
5. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, 1971, पृ०34

नयी कविता कब तक नयी रह पाएगी ? यद्यपि ''नयी कविता'' नाम दोषयुक्त ही सिद्ध हुआ है तथापि आज वह हिन्दी की एक नवीन काव्य-प्रवृत्ति के लिए रूढ़-सा हो गया है जिसका निराकरण असंभव है ।

9.2 प्रयोगवाद-नयी कविता : अंतर

''प्रयोगवाद'' तथा ''नयी कविता'' के बीच की विभाजन-रेखा धूमिल है । कुछ आलोचक दोनों के बीच स्पष्ट अंतर मानते हैं तो कुछ इन दोनों को अभिन्न मानने के पक्ष में हैं ।

विष्णुकान्त शास्त्री ''प्रयोगवाद'' और ''नयी कविता'' को एक ही काव्य-प्रवृत्ति के लिए प्रयुक्त दो नामों के रूप में ही ग्रहण करते हैं ।(1) उनकी दृष्टि में ''आधुनिक हिन्दी काव्य की विशिष्ट मान्यता प्राप्त काव्यधारा ''प्रयोगवाद'' या ''नयी कविता'' है । डॉ० कुन्दनलाल कथूरिया भी प्रयोगवाद-नयी कविता में कोई तात्विक अंतर नहीं मानते – ''प्रयोगवाद और नयी कविता का अंतर शाब्दिक है, तात्विक नहीं । नयी कविता में वे सभी विशेषताएँ प्रायः ज्यों-की-त्यों विद्यमान हैं जो प्रयोगवाद में थीं ।(2)''

''तारसप्तक'' से ही ''नयी कविता'' का विकास मानते हैं विद्यानिवास मिश्र । ''मैं नयी कविता के इतिहास की दृष्टि से ''तारसप्तक'' को अभियान की तैयारी मानता हूँ ।'' (3)

विनय मोहन शर्मा ''नयी कविता'' को ''प्रयोगवादी काव्य का ही संस्कारी नामकरण'' समझते हैं । (4)

1. विष्णुकान्त शास्त्री : कुछ चंदन की कुछ कपूर की, हिन्दी प्रचारक-संस्थान, वाराणसी, 1971, पृ० 257
2. डॉ० कुन्दनलाल कथूरिया: नई कविता और रससिद्धांत, पृ० 17
3. विद्यानिवास मिश्र : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि ''अज्ञेय''-10, परिचय, पृ० 15
4. विनय मोहन शर्मा : साहित्य : नया और पुराना, पृ० 30

परंतु डॉ० शंभुनाथ सिंह दोनों के आंतरिक तत्वों में अंतर देखते हैं । ''नई कविता नाम प्रचलित हो जाने के बावजूद बहुत से लोग ''प्रयोगवाद'' और ''नयी कविता'' में कोई भेद नहीं मानते क्योंकि बाह्य आकार की दृष्टि से दोनों में विशेष अंतर नहीं है । किंतु आंतरिक तत्वों पर अभिव्यंजना पद्धति का विवेचन करने पर दोनों में बहुत अधिक अंतर दिखाई पड़ता है ।''(1)

मुक्तिबोध का कथन है कि ''तारसप्तक'' तथा ''दूसरा सप्तक'' की काव्य-प्रवृत्तियों में स्पष्ट अंतर है ।(2) उनके अनुसार ''तारसप्तक'' में सामाजिक क्रांति के प्रति निष्ठा का भाव, राजनैतिक विरोध, सामाजिक व्यंग्य आदि के जो दर्शन होते हैं उनका नितांत अभाव ही ''दूसरा सप्तक'' की विशेषता है । उनकी स्थापना है कि प्रयोगवाद और नयी कविता भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के द्योतक हैं ।

''दूसरा सप्तक'' से लेकर नयी कविता का जो स्वरूप हमारे सामने आ गया वह पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों से एकदम भिन्न है । यह भिन्नता नयी कविता के स्वतंत्र अस्तित्व की सूचक है ।

निष्कर्ष है कि हिन्दी काव्य में आधुनिकता की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने का कार्य एक संगठित-क्रम के रूप में प्रयोगवादी कविता से शुरू हुआ । लेकिन आधुनिकता की अनेकरूपा अभिव्यक्ति तथा उसका प्रचुर प्रसार ''दूसरा-सप्तक'' के प्रकाशन से ही संभव हुआ । इसलिए ''नयी कविता'' का वास्तविक प्रारंभ सन् 1951 से माना जाना चाहिए । इसकी काव्य-स्थिति प्रयोगवाद के आगे की है । (3)

- -

1. डॉ० शंभुनाथ सिंह : प्रयोगवाद और नयी कविता, पृ0 146
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण-प्रकाशन, दिल्ली-6, 1971, पृ0 34
3. नरेन्द्र मोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ : आदर्श-साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं0 1973, पृ0 35

5.3. नयी कविता का स्वरूप :

नवलेखन की पद्धति को अपनाकर जब हिन्दी-काव्य में अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर जैसे कलाकार अवतरित हुए तब अपनी कृतियों की आलोचना करने का दायित्व भी उन्हें स्वयं संभालना पड़ा। इसका एक कारण यह था कि इस नये प्रयास का स्वागत अभिजात वर्ग के आलोचकों ने सहानुभूति के साथ नहीं किया। पेशेवर आलोचकों की योग्यता पर इन नये कवियों का उतना विश्वास भी न था। (1) वस्तुत: नये कवि के निजी अनुभवों, उनकी संवेदनाओं और अवचेतनगत भावों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने में छायावादी संस्कार के ये आलोचक असफल हो रहे। (2) इनकी तर्क-पद्धति पर अविश्वास प्रकट किया गया। प्रभाकर माचवे ने लिखा : "मैं मानता हूँ कि प्रयोगवाद और नई कविता के नाम पर बहुत बकवास छपती रहती है, और उस पर अक्सर प्रचलित चर्चा (विशेषतया विश्वविद्यालयों में) अज्ञान और पूर्वाग्रह से दूषित होती है, ये दोनों असंगत और बेमानी साबित होते हैं।" (3)

अपनी तथा सहकर्मियों की रचनाओं की विवेचना करना नये कवि का दायित्व हो गया। शेक्सपीयर के समकालीन बेन-जॉनसन ने कवि के सर्वोत्तम पारखी के रूप में कवि को ही चुन लिया था। आलोचकों से वांछित सहानुभूति न मिलने पर अमेरिका के वाल्ट व्हिटमैन ने भी अपनी कविता की आलोचना छद्म नाम से स्वयं की थी। (4)

---

1. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ० 8
2. वही, पृ० 8
3. प्रभाकर माचवे : तारसप्तक, वक्तव्य - पुनश्च, पृ० 219
4. Walt Whitman: The Critical Heritage, Ed. Milton Hindus, Routledge & Kegan Paul, London, 1971, P. 36-37

हिन्दी में आलोचना की यह नयी पद्धति निराला जैसे कवियों ने छायावादकाल में ही शुरू की थी, लेकिन नयी कविता में यह प्रायः एक नियम-सी हो गयी। इसीलिए ''नयी कविता'' अर्द्धवार्षिक संकलन भी निकाला गया जिसमें नयी कविता के स्वरूप को स्पष्ट करने की कोशिश की जाने लगी। लेकिन यह सब होते हुए भी नयी कविता का स्पष्ट रूप सामने नहीं आया। 'नयी कविता' पत्रिका प्रथम अंक में प्रकाशित कृतियों पर एक नये कवि ने टिप्पणी की — ''इसमें नाना रुचियों की रचनाएँ मिलेंगी और यह जानने में कठिनाई नहीं होगी कि यह कौन अतुल्य संग्रहीत कविताओं की शैली अथवा भावभूमि में है जिसने इन सबका यहाँ एकत्र किया जाना सार्थक बनाया है। यहाँ प्रयोगवादी रचनाओं का बाहुल्य मिलेगा, ब्रजभाषा और अन्य प्रादेशिक बोलियों का अभाव मिलेगा, शुद्ध छायावादी रचनाएँ न मिलेंगी, बहुत कुछ ऐसी चीजें मिलेंगी जो प्रथम पाठ में ही ग्राह्य नहीं तो ग्राह्यप्राय लगेंगी। कुछ दुरूह, कुछ वृत्तगंधी गद्य, कुछ गद्याकार कविता - कहीं की ईंट मिलेगी तो कहीं का रोड़ा, पर भानमती से भेंट न होगी जो उसे जानने का अवसर मिलता कि यह कुनबा क्यों और कैसे जोड़ा गया ?''(1)

''नयी कविता'' के संपादक डॉ0 जगदीश गुप्त के वक्तव्य से भी इस नयी धारा की पूरी पूरी पहचान नहीं होती। उनके अनुसार रूढ़ियों(2) से मुक्त सारी आधुनिक कविताएँ नयी कविता की सीमा में आ जाती हैं वे नयी अभिव्यक्ति पर बल देते हैं परंतु पुरानी अभिव्यक्तियों का पूर्णतया नाश नहीं चाहते। (3)

- -

1. बालकृष्ण राव : आलोचना - 14, पृ0 78
2. जगदीश गुप्त : नयी कविता, संपा0 डॉ0जगदीशगुप्त तथा रामस्वरूप-चतुर्वेदी, अंक-1, 1954, पृ06
3. वही - पृ0 7

कुछ अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं —

"नयी कविता परिस्थितियों की उपज है।" (1)

"नयी कविता परिस्थितियों की देन है।" (2)

"नयी कविता सबसे पहले एक नई मनःस्थिति का प्रतिबिंब है — एक नये मूड का — एक नये रागसंबंध का।" (3)

"नयी कविता आज की कविता की विशिष्ट वस्तु तथा शिल्पयुक्त रचना का नाम है।" (4)

"नयी कविता समग्र-दृष्टि और संश्लिष्ट चेतना की अभिव्यक्ति है।" (5)

"नयी कविता परस्पर विरोधी या विरोधी जान पड़नेवाले गुणों और विशेषताओं का एक अनोखा संगम है।" (6)

"नयी कविता का क्षेत्र प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक व्यापक और उदार है। (7)

"ऊषा देवता से लेकर गधे तक : नग्न यौन-भावना से लेकर सामाजिक क्रांति तक, देहाती अमराई से लेकर कल-पुर्जों तक, अन्वेषण से लेकर स्थूल के अनुशासित चित्रण तक इतना व्यापक विस्तार शायद पहले किसी "वाद" की कविता का न हुआ।" (8)

- -

1. विश्वंभर मानव : नयी कविता, नये कवि, पृ० 16
2. डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया : हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ, पृ० 131
3. अज्ञेय : हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, पृ० 141
4. विनय मोहन शर्मा : साहित्य नया और नयी पुरानी, पृ० 29
5. शंभुनाथसिंह : प्रयोगवाद और नयी कविता, पृ० 146
6. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक, वक्तव्य, पृ० 33
7. रवीन्द्र भ्रमर : अत्याधुनिक साहित्य, संपा० कुमार विमल, पृ० 55
8. मदन वात्स्यायन, तीसरा सप्तक, वक्तव्य, पृ० 69

नयी कविता के संबंध में धर्मवीर भारती की वाणी अधिक स्पष्ट है : ''नई कविता न तो परंपरा की अंधपूजा करती है और न उसके विरुद्ध हीन-ग्रन्थि युक्त निरर्थक विद्रोह । वह परंपरा को आत्मसात् कर नये स्तर पर प्रतिष्ठित करती है, नयी दिशा में मोड़ती है, नये रस-बोध लेकर हिन्दी की कविता अग्रसर हो रही है । मानवी सत्य को अतीत, वर्तमान और भविष्य में नहीं बांटा जा सकता । वह अविभाज्य होता है । ''(1)

भारती के इस कथन से प्रयोगवाद से भिन्न नयी कविता का स्वतंत्र रूप अधिक विशदता से सामने आता है । प्रयोगवादियों का परंपरा-विरोध, नये कवियों को निरर्थक विद्रोह ही प्रतीत हुआ । नये की प्रोत्साहन न देनेवाली परंपरा से ही नये कवियों की चिढ़ है, ऐसी परंपरा उनकी दृष्टि में रूढ़ि है और उस रूढ़ि से अपनी कविता की मुक्ति ही उन्हें अभीष्ट है ।

मुक्तिबोध छायावाद के रंगीले मनोभावों की प्रतिक्रिया के रूप में नयी कविता को स्वीकार करते हैं । (2) उनके अनुसार इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बौद्धिकता काव्य-रचना का एक प्रमुख तत्व बन कर सामने आयी है । ''. . . नई कविता में कोई भी विषय नहीं छूटता । ध्यान में रखने की बात सिर्फ इतनी है कि नई कविता भाव या अनुभूति की, स्थिति या दृश्य की उसके मूर्त स्वरूप या सत्ता में पकड़ती है । कल्पना उसके लिए सिर्फ एक वैज्ञानिक अस्त्र है, जिसके ज़रिए अंकन किया जाता है । '' (3)

''नयी कविता'' का ध्यान पूर्ववर्ती काल के चमत्कार प्रधान काव्य से हटकर यथार्थ-बोध पर आ टिका । पाश्चात्य देशों में ''न्यू पोएट्री'' का विकास भी इसी दिशा में हुआ था । (4)

- -

1. धर्मवीर भारती : उद्धृतः साहित्य नया और पुराना, विनयमोहनशर्मा
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य- पृ0 38
शास्त्र, पृ0 33
3. वही, पृ0 33

4. Aldous Huxley : Literature and Science,
Chatto & Windus, London, 1963, P-50

'' 'नयी कविता' हमारे दिल को छूती है अवश्य, लेकिन वह रिझाती कम है, सताती अधिक है '' (1), कहकर जगदीश गुप्त ने उसका संबंध अस्तित्ववाद से जोड़ा है। अस्तित्ववादियों के जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर वे नये कवि दुःख को सनातन मानते हैं। (2) इसलिए इनकी कविताओं में कुंठा, निराशा और क्षोभ का चित्रण मिलता है। यद्यपि भविष्य के प्रति नयी कविता का स्वर नितांत आस्थाहीन नहीं है। ''चौथा सप्तक'' के कवि अवधेशकुमार ने स्वीकार किया है कि ''जीवन के प्रति मेरा गहरा लगाव व आस्था रही है, जिसे मैं अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करता हूँ। '' (3) इसलिए स्वर्णिम भविष्य की आशा भी नयी कविता में यत्र-तत्र देखने को मिलती है।

''आज सब कुछ कविता में कहा जा सकता है; किसी बात का निषेध नहीं है, सब मूल्यों पर प्रश्न-चिह्न लगाने में रोक नहीं है। संभोग की भी मनाही नहीं है '', (4) कहकर इन्द्रनाथ मदान ने ''नयी कविता'' की नयी नैतिकता की ओर संकेत किया है।

नये कवि व्यक्तिपूजा के विरोधी हैं। लघुमानव पर ही इनका विश्वास है। लेकिन इनमें ऐसे भी कवि हैं जो मानव को महान मानने में गौरव का अनुभव करते हैं : ''महानता अथवा वीरपूजा का विरोध करना और लघुता को एक प्रतिमान बनाकर मानव व्यक्तित्व पर उसे आरोपित करने का यत्न निरर्थक और परस्पर विरोधी है। मनुष्य को उसके सहज रूप में लघु मानने की कोई आवश्यकता नहीं। '' (5)

- -

1. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता: स्वरूप और समस्याएँ, पृ०103
2. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृ०40
3. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक, संपा-अज्ञेय, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, प्र०सं०1979, वक्तव्य, पृ०28
4. इन्द्रनाथ मदान : आलोचना और आलोचना, पृ०81
5. डॉ० जगदीश गुप्त : कवितांतर, प्रबंध, कानपुर, प्र०सं०1973, पृ० 48

विशिष्ट अनुभूत क्षणों पर नयी कवियों की अमिट आस्था है । सभी क्षणों को वे समान नहीं मानते । वे ऐसे कुछ अनुभूतिपरक क्षणों की प्रतीक्षा में हैं जिनमें वृहत्तर सत्य का साक्षात्कार हो । इसीलिए अपने प्रति सच्चा रहने की आवश्यकता है : ''केवल अपने प्रति सच्चा रहकर ही संभव है कि किसी क्षण में वह किसी वृहत्तर सत्य से साक्षात्कार करके उसका प्रवक्ता भी बन सके । '' (1)

मतलब यही कि नया कवि बनने के लिए कठोर साधना अपेक्षित है । ''कवि को अपने सिवाय किसी का प्रवक्ता नहीं होना चाहिए । '' (2)

5.4. आक्षेप –

नयी कविता पर कई आक्षेप लगाये गये हैं । इनमें विदेशी प्रभाव, दुरूहता और दुर्बोधता, अहं की अतिशयता आदि मुख्य हैं ।

5.4.1. विदेशी प्रभाव :

पहला आक्षेप यही कि हिन्दी की नयी कविता हमारे देश और काल के अनुकूल नहीं है, उसका सीधा संबंध पाश्चात्य-जगत से है । (3) इलियट, एजरा पाउंड आदि के अनुकरण में ही यह अनर्थ हिन्दी में हो रहा है । निराशा, कुंठा आदि इस अनुकरण का परिणाम है । नहीं तो आशा और मुक्त चेतना के उद्गार ही ''नयी कविता'' से उभरते ।

डॉ0 नामवरसिंह भी ''नयी कविता'' पर अंग्रेज़ी की युद्धोत्तर कविता का बहुत बड़ा प्रभाव देखते हैं । (4) लेकिन यह पाश्चात्य प्रभाव

---

1. नेमिचन्द्र जैन : तारसप्तक, द्वितीय संस्करण, 1966, वक्तव्य (पुनश्च), पृ034
2. नेमिचन्द्र जैन : तार सप्तक, वक्तव्य, पुनश्च, पृ0 34
3. देवराज : उद्धृत : साहित्य नया और पुराना, विनयमोहन शर्मा, पृ0 39
4. डॉ0 नामवर सिंह : इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1978, पृ055

उनकी दृष्टि में हिन्दी-काव्य को स्वस्थ बनानेवाला हितकारी कदम है । ५६ प्राचीनता की जड़-रूढ़ियों से कविता को मुक्त करने में बहुत कुछ सहायक रहा है ।

विदेशों से आये निराशा-दर्शन ''नयी कविता पर पूर्ण अधिकार कर न सके । उसका कुछ अंश ही इस प्रवृत्ति का शिकार बना है । (1)

5.4.2 दुरूहता तथा दुर्बोधता :

नयी कविता की दुरूहता तथा दुर्बोधगम्यता पर भी आपत्ति उठायी गयी है । (2) ये आक्षेप निराधार नहीं है । आज का कवि वर्तमान ज्ञान-विज्ञान की प्रगति से पूर्णत: प्रभावित है । यह संभव है कि वह जो कुछ कहता है उसे साधारण व्यक्ति भली-भाँति नहीं समझता हो । इसीलिए नये कवि को दोषी ठहराना उचित नहीं है । सहानुभूति तथा सहिष्णुता के साथ उसका कथन समझ लेना ही आवश्यक है । वस्तुत: आज का कवि दुरूहता का पक्षधर नहीं है । "अर्थ को व्यर्थ के भाषा-संकट में फँसाना महत्वपूर्ण व्यवहार नहीं है । यह बात दीगर है कि कुछ अर्थ सीधे-सीधे जाहिर नहीं होते वे ओर और भीतर जाने पर ही हाथ आ पाते हैं : किन्तु यह सब कविता की गुणात्मकता पर निर्भर करता है । '' (3)

5.4.3 अहंवाद की अतिशयता :

व्यक्तिवाद या अहंवाद की अतिशयता जो स्वच्छंदतावादी कविता की कमज़ोरी मानी जाती है, उससे नये कवि भी बच न पाये । ''व्यक्तिवाद की अतिशयता रोमांटिक कविता की कमज़ोरी है । वह कमज़ोरी इन कवियों में दिखाई देती हैं । '' (4) व्यक्ति मूलत: अहंवादी या आत्मसंगी रहता है ।

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ04।
2. डॉ0 नगेन्द्र : विचार और विवेचन, पृ0 133
3. रामकुमार कृषक : चौथा सप्तक, वक्तव्य, पृ069
4. डॉ0 रामविलास शर्मा : भाषा युगबोध और कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1981, पृ. 147

यह आत्मसंगिता ही उसे सृजन के लिए प्रेरित करती है । इसलिए अर्थ की उपेक्षा कवि के लिए असंभव बनी रहती है । लेकिन आज की कविता में अर्थवादिता की अतिशयता इतनी अधिक बढ़ गयी है कि स्वयं अज्ञेय भी इस पर अप्रसन्न हो गये । (1) मुक्तिबोध भी व्यक्तिवाद की अतिशयता पर असंतुष्ट है, परंतु नयी कविता के संपूर्ण क्षेत्र को इस दोष से वे आच्छादित नहीं पाते । (2)

5.4.4. भदेसपन

परंपरावादी नयी कविता की भाषा पर भदेसपन का आक्षेप करते हैं । ''नयी कविता'' में प्रयुक्त शब्दों को बाजारू और गंवारू कहकर वे उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं । लेकिन प्रयोगवादी तथा नये कवि अपने ऐसे प्रयोगों पर गर्व करते हैं । उन्हें अब देववाणी की ज़रूरत नहीं —

''हम को न ज़रूरत अब देववाणी की, हम खुद ढालेंगे ।
जीवन की भट्टी में भाषा, जो-चाहा रूप बना लेंगे । '' (3)

डॉ० नामवर सिंह जैसे समीक्षक इन गंवारू शब्दों के पीछे ठीक जीवन की धड़कन सुनते हैं । (4) उनके अनुसार ये बदलनेवाले इतिहास की नवीन जीवनी-शक्ति के प्रतीक हैं । (5)

नयी कविता के समर्थक भी उस पर कई आक्षेप लगाते हैं । ''नयी कविता'' के संपादक डॉ०जगदीशगुप्त लघु मानव की कल्पना पर

---

1. अज्ञेय : तीसरा सप्तक, भूमिका, पृ० 14
2. मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृ०41
3. भारत भूषण अग्रवाल : [illegible], ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वि०सं० 1966 पृ० 91
4. डॉ० नामवरसिंह : इतिहास और आलोचना, पृ०87
5. वही, पृ०87

असंतुष्ट हैं । उनके अनुसार एक ओर महानता अथवा वीरपूजा का विरोध और दूसरी ओर लघुता को एक प्रतिमान बनाकर मानव व्यक्तित्व पर उसका आरोप परस्पर विरोधी और निरर्थक हैं । (1)

इसी प्रकार मुक्तिबोध नयी कविता के क्षण चित्रों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं । ''क्षण चित्र अपने आप में अपूर्ण है । जीवन समग्र है, किन्तु वह अपनी समष्टि में उलझा हुआ है । अतएव कोई भी क्षण-चित्र, उस समग्र की, उसकी सारी पेचीदगियों में प्रतिबिंबित नहीं कर पाता ।''(2) जीवन के विस्तृत चित्र नयी कविता में देखने को न मिलते ।

डॉ० ओम प्रकाश अवस्थी लिखते हैं —'' नयी कविता में प्रतीकों की सृष्टि हुई जिनमें अधिकांश वात्स्यायन - कामसूत्र के उपग्रह हैं । बिंब विज्ञानोन्मुख हुए, तथा इनके यहाँ भी रंग मात्र का विधान बने तथा शब्दों का आयतन निकाला गया, उपमान मैले हुए तो मैले से उपमान देने की प्रथा चल पड़ी, छंद की पंक्तियाँ रही नहीं, भाषा नये अर्थ भरने की लालसा में पुराना अर्थ भी खो बैठी ।'' (3)

अवस्थी की टिप्पणी एकांगी है । वस्तुत: नये कवियों की भाषा में नये अर्थ के संवहन और सम्प्रेषण की शक्ति है ।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि नयी कविता स्वर्णपूर्ण है । कमियों के बावजूद भी वह अपार जीवन-शक्ति ली हुई है । इस पर किये गये आक्षेपों तथा विरोधों से ''इस काव्य प्रवृत्ति की सफलता बढ़ी और इसका स्वरूप स्पष्ट हुआ ।'' (4)

- -

1. डॉ० जगदीश गुप्त : कवितांतर, प्रबंध, कानपुर, प्र०सं० 1973, पृ०46
2. गजानन माधव मुक्ति बोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली -6, 1971, पृ०43
3. डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी, नयी कविता के बाद, पुस्तक संस्थान, कानपुर 1974, पृ० 20-21
4. नरेन्द्र मोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, पृ० 35

नयी कविता के निजी स्वरूप पर विचार करने पर ये मान्यताएँ स्थिर की जाती हैं :-

1. छायावादी संस्कार के आलोचकों से नये कवियों को न्याय मिलने की आशा न थी। इसलिए उन्होंने अपनी कविताओं की आलोचना स्वयं की।

2. कविता की आलोचना स्वयं करने की प्रवृत्ति हिन्दी में निराला से शुरू होती है।

3. ''नयी कविता'' का कार्य-क्षेत्र पूर्ववर्ती काव्य से काफी विस्तृत है।

4. ''नई कविता'' परंपरा की अंधपूजा या उसके विरुद्ध निरर्थक विद्रोह नहीं करती। नये को प्रोत्साहन न देनेवाली परंपरा नये कवियों की दृष्टि में रूढ़ि है, और उस रूढ़ि से कविता की परिरक्षा उनका लक्ष्य है।

5. छायावाद के रंगीन मनोभावों की प्रतिक्रिया के रूप में नयी कविता में बौद्धिकता एक प्रमुख तत्व बनकर आ गयी है।

6. नयी कविता भाव या अनुभूति को, स्थिति या दृश्य को उसके मूर्त स्वरूप या सत्ता में पकड़ती है।

7. नयी कविता में अस्तित्ववाद का बहुत अधिक प्रभाव है। पर यह नितांत आत्मलीन काव्य नहीं।

8. हर मूल्य पर क्षण-विशेष जीने की प्रवृत्ति नयी कविता में सामान्यतया पायी जाती है ।

9. उनमें कुछ वीरपूजा के विरोधी और कुछ मानव के पुजारी हैं जो कुछ मनुष्य को उसके सहज रूप में लघु मानने के लिए भी तैयार नहीं हैं ।

10. विशिष्ट अनुभूत क्षणों का इनका विश्वास है, उनके द्वारा ही पूर्णतर सत्य का साक्षात्कार संभव है । मुक्तिबोध इन-स्थितियों पर असंतुष्ट हैं ।

11. सत्य का साक्षात्कार करने के लिए ईमानदारी आवश्यक है निर्लिप्त भाव तथा कठोर साधना से ही यह संभव है । नयी कवि अपने विश्वास और किसी का झुठलाना नहीं करते ।

12. कुछ आलोचक नयी कविता को विदेशी प्रभाव का परिणाम कहते हैं, इसकी निराशा और कुंठा का कारण भी वे यही बताते हैं । यह धारणा गलत है ।

13. दुरूहता और दुर्बोधता का आरोप भी लगाया जाता है । पाठकों के चिन्तन-स्तर को ऊपर उठने पर दुरूहता मिट सकती है ।

5.5 अन्य नई काव्य-विधाएँ :

5.5.1. क- गीत :

"गीत मानव-जाति का आदिम काव्य-रूप है । x x x क्रमशः गीत से ही काव्य की अन्य विधाएँ भी विकसित होती गयीं ।"(1) "सामवेद", "मेघदूत", "शतक स्तोत्र", "गीत गोविंद" आदि गीतितत्व पर बल देने वाली प्रसिद्ध प्राचीन कृतियाँ हैं । गीतकार विशेषकर कोमल भावनाओं से जुड़े रहते हैं, और करुण, शृंगार आदि रसों को बड़े आग्रह से अपनाते हैं । संगीत, भावना की सर्वग्राहिकता , लयात्मकता और गंभीर स्वाभाविकता इसके नियामक हैं । (2)

गीत की जो धारा आदिम काल से लेकर चलती आ रही है उसमें अक्षुण्ण जीवनी शक्ति निहित है । साहित्य की किसी भी अन्य विधा में गीति विधा के समान अक्षुण्ण जीवनी शक्ति का परिचय नहीं मिलता । (3)

गीतों का संबंध पहले आध्यात्मिक जगत से या शृंगारिक भावों से था लेकिन आधुनिक काल में आकर वह राष्ट्रीय भावनाओं से जुड़ गया । देश में नई स्फूर्ति जगाने में गीत अत्यधिक सफल रहे । निराला की पहली पद्य कृति "मातृभूमि" राष्ट्रगीत के रूप में ही सामने आयी । नाटकों में भी गीत गाये जाते थे । छायावादियों में प्रसाद के गीत राष्ट्रीयता, करुणा तथा प्रेम की भावनाओं से परिपूर्ण थे । निराला के गीत भी उनकी अन्य कविताओं की भाँति विरोधी भावनाएँ लेकर चलते हैं । उनके गीतों में एक ओर कोमलता है तो दूसरी ओर कड़ा, अनगढ़, भदेसपन के पुट

---

1. शंभुनाथ सिंह (संपा) नवगीत दशक-2, पराग प्रकाशन, दिल्ली-32 प्र०सं० 1983, पृ05
2. डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी : नई कविता के बाद - पृ038
3. शंभुनाथसिंह (संपा०) नवगीत दशक-2, पराग प्रकाशन, दिल्ली-32, प्र०सं० 1983, पृ05

मिलते हैं । कोमल शब्दों का मोह उन्होंने 1952 ई0 में भी नहीं छोड़ा

''आज मन पावन हुआ है ,
जेठ में सावन हुआ है ।
अभी तक दृग बन्द थे वे ,
खुले उर के छन्द थे ये ....'' ।

लेकिन उसी वर्ष लिखे गये 'राम के हुए तो बने काम ' में कोमल शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है :-

''राम के हुए तो बने काम ,
संवरे सारे धन, धान, धाम ।
पूछा जग ने , वह राम कौन ?
बोली निरुद्दिष्ट जो रही मौन ,
वह जिसके द्रुम , न शाखि-पीन
जो वेदों में है सत्य , साम । '' (2)

एक अन्य गीत में निराला के लघु होने का आग्रह भी दिखाई देता है:

''तू छोटा बन , जग छोटा बन ,
गागर में आयेगा सागर । '' (3)

सुमित्रानंदन पंत के गीतों में प्रकृति खिल उठी तो महादेवी रहस्यवादी और विरहवेदना की गीतात्मिका बनी । छायावादोत्तर गीतकार भी छायावाद की रूमानियत से मुक्त न हो सके । जानकी वल्लभशास्त्री , बच्चन , नरेन्द्र आदि आंचलिक शब्दों के अनुरागी बन सके ।

- -

1. निराला : निराला रचनावली-2, पृ0 405
2. वही , पृ0 410
3. वही , पृ0 409

प्रगतिवादी गीतों में लोक गीतों की धुन स्पष्ट थी । किसानों मजदूरों के यथार्थ जीवन से प्रगतिवादी गीतों का निकट संपर्क हो गया । लेकिन गड़बड़ी यह थी कि इस काल के गीत भी रोटियों के संघर्ष में आदि, अधिकांश गीतकार उनसे एकदम दूर थे । (1) इसलिए स्वाभाविकता जो गीत की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है तत्कालीन गीतों में कम हो गयी । नागार्जुन , त्रिलोचन आदि के गीत इसके अपवाद हैं ।

''तारसप्तक '' काल से लेकर गीतों की भाषा में परिवर्तन विशेष आग्रह के साथ अपनाया गया । अज्ञेय , गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास-शर्मा को लोकधुन विशेष प्रिय थी । नये कवियों में धर्मवीर भारती , कुँवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल , केदारनाथ अग्रवाल, शमशेरबहादुर सिंह , नागार्जुन, रामदरशमिश्र आदि यद्यपि सफल गीतकार माने जाते हैं तो भी कवि कहलाना ही वे अधिक पसंद करते हैं । नीरज , शंभुनाथसिंह , रामनाथ अवस्थी , श्यामसुंदर घोष , चन्द्र कुँवर जैसे गीतकारों ने गीत के क्षेत्र को प्राधान्य अपनाया है ।

''नयी कविता'' के काल तक आकर गीत की विधा बहुत कुछ क्षीण हो गयी , क्योंकि अधिकतर प्रगतिवादी-गीत राजनैतिक नारों के परिवर्तित रूप थे । बदली परिस्थिति को आत्मसात करने में ''तारसप्तक'' के गीत भी असफल रहे । इस असफलता से बचने के परिश्रम का परिणाम था —'' नवगीत'' । ''गीत की पुनः प्रतिष्ठा के लिए पहला प्रयत्न तो यह हुआ कि उसे परंपरा से हटाकर ''नयी कविता'' के साम्य पर ''नवगीत'' से व्यवहृत किया गया । '' (2)

नवगीत के प्रणेता अपनी इस विधा को मूल्यवान मानते हैं तो नयी कविता के कुछ कवि आज की उलझी हुई मनस्थिति का अंकन करने में इसे

- -

1. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : चिंतन के क्षण, पृ०97
2. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : चिंतन के क्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-7, प्र०सं० 1966, पृ०96

असमर्थ पाते हैं । लेकिन ये नवगीत पुराने छायावादी गीतों की कोटि में न आते । ये आधुनिक भावबोध में उगे और पले हैं ।

नवगीतों के शिल्प में भी लोकगीतों का प्रभाव है । लोकगीतों की धुन को अपनाने का क्रम हरिऔध-युग से लेकर हिन्दी में चलता आ रहा है । छायावादियों ने भी लोकगीतों की धुन को अपनाया था । लेकिन छायावादी गीतों में जो सुस्पष्टता थी , वह नवगीतों में आकर दुरूहतम हो गयी । आधुनिक युग बोध का एक विशिष्ट गुण - अस्पष्टता - नवगीतों में भी प्रतिबिम्बित हुआ ।

नवगीतकारों ने अपने वैयक्तिक बोध से ऊपर उठकर सामाजिकता के क्षेत्र में उतरने का साहसपूर्ण कार्य किया है और यह दिखा दिया है कि जीवन के अनगढ़ सौंदर्य को भी गीतों में सुरक्षित किया जा सकता है । (1) ''युग के विघटनकारी तत्वों को वह जीवन मूल्य से अलग नहीं करता उन्हें समाहित करता है । लाक्षणिक भाषा , विशिष्ट विशेष्य धर्मा भाषा , उपमान, बिंब , प्रतीक की नवीनता , भाषा का बदलता मुहावरा उसके गुण हैं । (2)

लेकिन नवगीतकार भी भावों को पूर्णरूप से व्यक्त करने में अपनी वाणी को असमर्थ पाते हैं : -

''वाणी की दीनता ,
अपनी मैं चीन्हता ,
कहने में अर्थ नहीं
कहना पर व्यर्थ नहीं
मिलती है कहने में
एक तल्लीनता . . .'' (3)

धर्मवीर भारती ने अपनी लंबी-लंबी पंक्तियों में पाप-पुण्य को आधुनिक युग बोध के अनुकूल देखा है :-

- -

1. डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी : नई कविता के बाद , पृ० 64-65
2. वही , पृ० 64
3. भवानी प्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक , पृ० 25

''अगर मैंने किसी के होंठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो।
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो। ''(1)

आगे चलकर ''नवगीत'' में आधुनिकता का और अधिक पुट होता गया और ''अकविता'' (एन्टी पोएट्री) के समानान्तर ''नवगीत'' को ''अ-गीत'' कहा गया। ''अगीत'' नवगीत का विकसित रूप है। (2)

नीरज के अगीतों में चुनिन्दा शब्दों और आलंकारिक उक्तियों की बहुलता है। कवि स्थापित करना चाहता है कि केवल सत्य का ही नहीं मिथ्या का भी अपना महत्व है, कभी कभी सत्य से भी बढ़कर –

''मृग - जल भी भ्रम है
वह जीवन है, गति है
जल भी सत्य है
वह अगति है
मरण की स्वीकृति है। '' (3)

- -

1. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक, पृ0174
2. विश्वमोहन शर्मा : साहित्य नया और पुराना, पृ0 32
3. नीरज : गीत भी अगीत भी, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्र0सं0 1963, पृ056

5.5.2 अस्वीकृत कविता :

गुटबन्दियों और दलबन्दियों में पड़े बिना कविता कामिनी की सेवा करना ही यद्यपि ''तार सप्तक'' और दूसरा सप्तक '' की भूमिकाओं में उनके संपादक ''अज्ञेय'' ने अपना लक्ष्य बनाया था तो भी ये भूमिकाएँ साहित्यिकों को विभिन्न दलों में बाँटने में ही अधिक सहायक सिद्ध हुई। इस प्रकार पुरानी रूढ़ियों से लड़ने तथा नयी राह खोजने का आग्रह ''तार सप्तक'' में प्रकट किया गया (1) तो ''दूसरा सप्तक'' में प्रयोगों की संकुचित भूमि से हटने का क्रम भी संगठित और पार किया गया (2)। यह सप्तकों के बाहर के कवियों को नये-नये वादों का निर्माण करने तथा नये-नये आंदोलन चलाने का प्रेरक तत्व रहा। प्रत्येक दल का घोषणा पत्र भी निकाला गया। ''न - के - न वाद'' ''अस्वीकृत कविता'', ''अकविता'', ''सहकारी कविता'' आदि इस प्रेरणा के परिणाम हैं।

अस्वीकृत कविता का प्रथम उद्घोष 'रिजेक्टेड राइटिंग' के अर्थ में घनश्याम रंजन ने ''कैक्टस'' पत्रिका में सन् 1966 में किया। (3) रंजन ने कई बातों में बूढ़ी - पीढ़ी-कविता से इसका साम्य देखा। (4) डॉ0जगदीश गुप्त इसे 'अस्वीकृत तथ्यों या सत्यों की कविता कहते हैं। (5) वे उसमें अस्वीकृत बने रहने का भाव नहीं देखते। डॉ0 वीरेन्द्रसिंह नयी पीढ़ी के कवियों की ओर से, स्थापित मूल्यों के अस्वीकार पर बल देते हैं। (6) लेकिन डॉ0 ओमप्रकाश अवस्थी के अनुसार अस्वीकार ''नयी कविता'' के समर्थकों

- -

1. अज्ञेय : तारसप्तक, वक्तव्य, पृ0 270
2. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ06
3. घनश्याम रंजन : अस्वीकृत कविता: प्रश्न और समाधान, कैक्टस, कलकत्ता, दिसंबर 1966
4. वही
5. डॉ0 जगदीशगुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, प्र.सं-1969, पृ0258
6. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, आधुनिक कविता: नये संदर्भ, पृ03।

की ओर से युवापीढ़ियों (साठ के बाद के कवियों) का हुआ। (1) अवस्थी का अभिमत है कि सन् 1960 तक आते आते नयी कविता का स्वर बहुत कुछ बदल चुका था। युवापीढ़ी की कविता तथा 'नयी कविता' में स्पर्धा छिड़ी और ''नयी कविता'' ने युवापीढ़ी की कविता को निरर्थक अकविता कहकर अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार 60 के आसपास की कविता अस्वीकृत कविता जानी गयी। (2)

नयी कविता की अतिशय व्यक्ति-वादिता पर अस्वीकृत कविता असंतुष्ट थी। कविता में सामाजिक मूल्य गलित हो रहे थे और जीवन में मानव मूल्यों पर आस्था मिटती जा रही थी। भारत पर किया गया चीनी ''धार्ड'' का आक्रमण भी मूल्यों के विघटन में प्रमुख कारण बना। आपसी विश्वास खत्म हो गया। युवा पीढ़ियों को लगा कि गलित समाज का नग्न चित्रण नयी कविता में पूरा-पूरा उतरता नहीं है। इसलिए उन्होंने आक्रोश भरी वाणी में कटु-सत्यों का यथातथ्य चित्रण किया। ''नयी कविता'' की संकुचित दृष्टि का त्याग करकर उन्होंने आदर्शवादियों तथा देश के नेताओं के खोखलेपन का अनावरण किया।

नये कवियों में गिरिजाकुमार माथुर इसका समर्थन करते हैं। उन्होंने इसमें भविष्य की आशंका, मशीनी-युग की यातनाएं, कुंठा, त्रासपूर्ण स्थितियाँ, अकेलेपन आदि की भावनाएं देखी हैं। अस्वीकृत कविता पूर्णतः अश्लीलता का समर्थन नहीं करती। कुमार विमल इसे बीट पीढ़ी से संबद्ध मानते हैं।(3) लेकिन यह बीट कविता से एकदम भिन्न है। बीटनिकों की कामुकता इसमें पायी नहीं जाती। निराला की भाँति कभी कभी अपने को असफल पाकर अपने ऊपर तथा परिस्थितियों पर ये कवि हँसते हैं, व्यंग्य करते हैं।

- -

1. डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी : नयी कविता के बाद, पृ०19
2. वही, पृ०19
3. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ०235

पुरानी पीढ़ी के कवियों में अस्वीकार का स्वर केवल निराला की कविता में गूंजता है । स्थापित मूल्यों के नकारने के क्रम में उन्होंने राम के चरित्र तक को मानवीय भूमिका में प्रस्तुत किया । ''तुलसी ने और हमारी धर्म परंपरा ने ''राम'' को जो अतिमानवीय स्वरूप प्रदान किया था, निराला ने उसे खंडित कर दिया और -''राम की शक्ति-पूजा'' में राम के व्यक्तित्व को एक मानवीय संदर्भ देते हुए उनके सहज मानवीय राग-विरागों, मानसिक संघर्षों तथा तनावों का जो चित्र उपस्थित किया है, वह स्थापित मूल्यों के नकारने का ही क्रम है । '' (1)

नयी पीढ़ी के शरद, नीलम, राजीव सक्सेना, विमल पाण्डेय, मुद्राराक्षस आदि ने इस दिशा की पुष्टि की ।

3.3.3. अकविता :

''अकविता'' और अस्वीकृत कविता'' को गिरिजाकुमार माथुर एक ही भावबोध के दो नाम मानते हैं ।(2) लेकिन मुद्राराक्षस अकविता को हेय सिद्ध करके अस्वीकृत कविता का पक्ष लेते हैं ।(3) श्याम परमार के अनुसार साठ के बाद की समग्र प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व ''अकविता'' करती है । (4)

''नयी कविता'' ''अकविता'' को भी अपने में आत्मसात् करने को तैयार है जब कि ''अकविता'' अपने स्वतंत्र अस्तित्व पर विश्वास करती है । 'अकविता'' के कवि अपने को नये कवियों से बढ़कर क्रांतिकारी मानते हैं । अपने दोषों के लिए ''नयी कविता'' को वे कोसते हैं ।

---

1. डॉ० वीरेन्द्रसिंह : आधुनिक कविता : नेय संदर्भ, पंचशील प््रकाशन, जयपुर, 1975, पृ०29-30
2. गिरिजाकुमार माथुर : नई कविता: सीमायें और संभावनायें. पृ० 10
3. मुद्राराक्षस : कवितायें 1962, पृ०22
4. श्याम परमार : अकविता और कलासंदर्भ, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, 1968, पृ015

इनके अनुसार ''अकविता'' में प्रकट मौन कुंठा, दिगंबरता अराजकता आदि का मुख्य कारण नयी कविता की निषेधात्मक प्रवृत्ति है। वस्तुतः इस बात में ''नयी कविता'' दोषी नहीं। क्योंकि उसके यहाँ किसी प्रकार का निषेध नहीं था। अछूते और अभिव्यक्त क्षेत्रों का चित्रण ही उसका लक्ष्य था। (1)

अकवितावादियों का कहना है कि नयी कविता की अनुभूतियाँ सतही हैं। ''स्पॉन्टेनिटी'' जीवन तथा साहित्य का स्वाभाविक तत्व है, ''बौद्धिक नियमों से बद्ध व्यक्ति-व्यवस्था''(2) जीवन की स्वाभाविकता के विरुद्ध है।

श्याम परमार ''अकविता'' को 'एन्टी पोएट्री' या 'नान पोएट्री' कहने के पक्ष में नहीं हैं। वे उसे पूर्ण रूप से विरोध काव्य भी नहीं मानते। 'अकविता असंतोषियों की अनिकेत कविता है। इसे पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों से अलग संदर्भ में समझना होगा, क्योंकि यह विद्रोह की स्वाभाविक प्रक्रिया है। विद्रोह अपनी औपचारिकता से, उन सतत मान्यताओं से जिनका संदर्भ अब व्यर्थ होता जा रहा है।'' (3)

अस्तित्ववादी दर्शन पर अकवितावादियों का बड़ा विश्वास है। किर्केगार्द की भाँति ये भी मनुष्य-जन्म को नियति-प्रदत्त-दंड मानते हैं। सामूहिक बंधनों की ये परवाह नहीं करते। इनमें मौन, कुंठा, जुगुप्सा, दिगंबरता आदि को प्रश्रय मिला है। ''अकविता में यथार्थ का आग्रह केवल यौनकुंठा और नग्नता के संदर्भ में बढ़ा और स्वकेन्द्रित भूख, मक्खी, कछुवे उनके प्रतीकात्मक सहायक बने।'' (4)

---

1. अज्ञेय : तारसप्तक, वक्तव्य, पृ0270-271।
2. श्याम परमार : अकविता और कला-संदर्भ, पृ03
3. श्याम परमार : अकविता और कला-संदर्भ, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, 1968, पृ0 ।
4. डॉ0 ओमप्रकाश अवस्थी, नई कविता के बाद, पृ0 29

शायद उक्त प्रवृत्तियों को समाज विरोधी घातक समझकर कुछ आलोचकों ने अकविता का विरोध किया है। ''अकविता ने अब तक जो कुछ भी किया है उसे कितना ही तटस्थ रहकर मूल्यांकित करें यही कहना पड़ेगा कि दरअसल 'अकविता' कुकविता है, धोखा है षड्यंत्र है, विज्ञापन है, प्रतिष्ठित बनने हेतु बनाया गया एक खोखला नारा है और समाज को पतित-भ्रष्ट करने का घृणित प्रयास है। (1)

लेकिन अकवि अपने को रोमैंटिक कविता के विरोधी बताते हैं। आत्मसम्मोह-मोह, निजी संवेग आदि इनकी दृष्टि में हेय है। (2) प्रयोगवादियों की भाँति ये भी नये क्षेत्रों की तलाश में हैं। (3)

विश्वंभरनाथ उपाध्याय कहते हैं कि 'अकविता' सामूहिक विध्वंस की शक्ति का माध्यम बनती जा रही है। (4) उन्होंने गिरिजाकुमार की अकविता को नई कविता की, बिंब प्रियता, बिम्ब तथा किताबी शब्दों का प्रयोग, रसवादिता, व्यक्तिवादिता आदि रूढ़ियों की प्रतिक्रिया माना है। (5) स्थापित व्यवस्था के विरोधी कवियों की कोटि में अकवितावादियों को मानकर उपाध्याय मदनलाल शरण्या, कबीर जैसे प्राचीन कवियों में भी अकविता के तत्त्व ढूंढ लेते हैं। (6)

वर्तमान से कटकर अकवितावादी भविष्य पर विश्वास करते हैं। मानवता में जीनेवाले ये ''नयों के सिलसिले में आगामी ''नये'' के लिए कटना मानव की नियति (7) मानते हैं। 'अकविता तमाम ''नयेपन'' के बाद आगामी विलयन की भूमिका है। उसका प्रयत्न ''कविता जो हो सकती है'' उसके लिए है।'' (8)

---

1. गजेन्द्र तिवारी : 'अ र अ' (त्रैमासिक पत्रिका) जनवरी 69
2. श्याम परमार : अकविता और कला-संदर्भ, पृ06
3. वही, पृ09
4. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया, दिल्ली, 1976, पृ165
5. वही, पृ0144
6. वही, पृ0 146
7. श्याम परमार : अकविता और कला-संदर्भ, पृ07

श्याम परमार, कुमार विमल, जगदीश चतुर्वेदी, राजीव-सक्सेना, विष्णुचन्द्र शर्मा, चन्द्रकान्त देवताले, बलराज पंडित, मिथलेश शर्मा, राजकमल चौधरी, दूधनाथसिंह, मलयराज चौधरी, सौमित्र मोहन, चन्द्रमौलि आदि प्रमुख अकवितावादी कवि हैं।

यद्यपि ''अकविता'' में स्वस्थ - काव्य के लिए अपेक्षित सभी गुणों का समावेश नहीं हो पाया है तो भी हिन्दी काव्य-परिवेश में थोड़ा-बहुत परिवर्तन लाने में यह सक्षम है। ये स्वस्थ दृष्टि से भविष्य को देखते हैं, सामाजिक - समता का आग्रह करते हैं :-

''इतिहास के अनुभव से गुज़र कर मैंने देख लिया
अभी समता के उपवन हैं। '' (1)

इससे प्रमाणित यह होता है कि अकविता कविता और जीवन से दूर नहीं। पर कुछ लोग इसका विरोध इसलिए करते हैं कि उसमें संवेदना तथा विचार कहीं भी कम प्राप्त होता है वह परंपरा से प्राप्त प्रतिमानों तथा मानदंडों से अलग पड़ता है। (2)

'एकरसपन' अकविता का एक मुख्य दोष है। एक-सा भाव लेकर कई रचनाएँ एक साथ उपस्थित हुई हैं। यह देखकर विश्वंभर नाथ-उपाध्याय ने अकवियों को यह चेतावनी दी है कि 'अकविता को कुकविता से बचाये रखने के लिए अनेक रचनाओं के 'एकरसपन' से निरन्तर विरोध करना होगा। (3)

5.5.4. साठोत्तरी कविता :

साठोत्तरी कविता के जन्म का कारण भी नयी कविता की व्यक्तिवादी संकीर्णता तथा शिल्प की अधिकता कहा गया है। (4) साठोत्तरी कवितावादियों

---

1. राजीव सक्सेना : आत्म निर्वासन, पृ0 96
2. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह : आधुनिक कविता: नये संदर्भ, पृ0 45
3. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ0 145
4. डॉ0 ओमप्रकाश अवस्थी : नई कविता के बाद, पृ0 47

का कहना है कि जीवन के भौतिक पक्ष से नयी कविता का संबंध टूट गया था लेकिन साठोत्तरी कविता में वह फिर से जुड़ गया । यह भौतिकता व्यक्ति को पाखंडी बना देने में सहायक रहती है । जिन शक्तियों और व्यक्तियों के कारण मानव अपने ही अंदर अंधेरे का अनुभव कर रहा है, घुटता जा रहा है, उनके सामने 'स्थिर स्थाणु' या खड़े हो जाने की ताकत इस भौतिकता से मिलती है । यह विद्रोही कलाकार आदर्शवादियों के गलत चेहरे को उघाड़ देता है । ''साठोत्तरी-कविता'' का विद्रोह प्रगतिवादी-विद्रोह से भिन्न है क्योंकि इसकी किसी राजनैतिक विचारधारा की पुष्टि नहीं करनी है । (1)

'साठोत्तरी कविता' के तत्व पूर्ववर्ती धारा के भवानी प्रसाद, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना , दुष्यंतकुमार , भारतभूषण अग्रवाल आदि में भी मिलते हैं । समाज तथा राजनीति के प्रति इनका व्यंग्य अधिक तीखा है, इनकी भाषा भी अधिक कड़ुवी है ।

स्वार्थ प्रेरित समाज के सभी विद्रूप अंगों पर साठोत्तरी कविता की दृष्टि पड़ती है । हर क्षेत्र में मुखौटा धारण करनेवाले अत्याचारियों से इनका संघर्ष है ।

सुरेश सलिल , मणिक गुप्त , जगदीश गुप्त , वैद्यनाथ गुप्त , ललित शुक्ल , अजय द्विवेदी , सव्यसाची , प्रेमलता वर्मा , आनंद - सीमन्तकर , नरेन्द्र पंडित , विश्वनाथ प्रसाद तिवारी आदि ने कविता को व्यक्तिवादी तत्वों से स्वतंत्र करने का प्रयास किया है । प्रेमलता वर्मा का प्रश्न है :-

''सुख को गिरवी रखकर
बात करने लगा है इंसान
तब कोई
किस भरोसे पर जियेगा ?'' (2)

- -

1. डॉ0 ओमप्रकाश अवस्थी : नई कविता के बाद , पृ047

इस प्रकार से साठोत्तरी कविता स्वप्न-भंग से उत्पन्न कविता है । देश के भविष्य पर इन कवियों को बड़ा विश्वास था । आज़ादी के बीस वर्ष बीतने पर भी देश की स्थिति न बदली, अधिक संकीर्ण होती रही । इसका दुःख और आक्रोश कविता में गूंज उठा ।

साठोत्तरी कविता के सिद्धान्त-पक्ष का सूत्रपात 69 में प्रकाशित "उन्मेष" पत्रिका में मिलता है । कलकत्ते की भांति ललित गुप्त के संपादकत्व में एक काव्यसंकलन निकाला गया जिसमें छः कवि संगृहीत हुए । वे हैं – सुरेश ललित, चन्द्र गुप्त, वैद्यनाथ गुप्त, ललित शुक्ल, जीवन शुक्ल और ललित गुप्त । अकवितावादियों का अनुकरण करके इन्होंने अपना ग्यारह सूत्रीय घोषणा पत्र भी निकाला –

1. 'साठोत्तरी कविता' का कवि भीड़ या वस्तु में खोकर कविता नहीं लिखता और न कविता का उद्देश्य वादों या नारों को जन्म देना समझता है ।
2. साठोत्तरी कविता का कवि अभिव्यक्ति के ढंग पर नहीं बल्कि कथ्य की अधिकाधिक सम्प्रेषणीयता पर विश्वास करता है ।
3. साठोत्तरी कविता के कवि का व्यक्तित्व अंतर्राष्ट्रीय होकर भी राष्ट्र के अस्तित्व को स्वीकार करता है । उसकी चेतना मानव-वाद और समाजवाद की पोषक है । और उसकी भावना राष्ट्रीयता और देशप्रेम से ओतप्रोत है ।
4. साठोत्तरी कविता का कवि कल्पना के नाम पर शब्दों का जाल नहीं बुनता और न प्रयोग के नाम पर प्रयोग करता है । नवजीवन का संकेत ही उसका प्रयोग है । उसकी कविता जन-सामान्य की कविता है ।

5. साठोत्तरी कविता का लक्ष्य पलायन अथवा आत्म-स्थापना नहीं है वरन् क्रान्ति के द्वारा नये मूल्यों की स्थापना ही उसका प्रयोजन है ।

6. साठोत्तरी कविता का कथ्य आत्म विस्फोट है । यह विस्फोट उपेक्षा दमन और अवमानना का परिणाम है ।

7. साठोत्तरी कविता का ''मैं'' वैयक्तिक न होकर सामूहिक है ।

8. साठोत्तरी कविता घुटन और संघर्ष में जन्मी है । यह मरी हुई परंपराओं विचारों और प्रणालियों के विरुद्ध क्रान्ति का आह्वान करती है ।

9. साठोत्तरी कविता यथार्थ को संगठित कर नये मूल्यों को स्थापित करती है ।

10. साठोत्तरी कविता वैज्ञानिक विकास के साथ मानवीय मूल्यों के विकास पर अधिक विश्वास करती है ।

11. साठोत्तरी कविता आत्मोन्मुखी न होकर बहिर्मुखी है और उसका नया धरातल है और नयी पृष्ठ भूमि निर्धारित नहीं है ।

कहना पड़ता है कि साठोत्तरी कविता के प्रवर्तक, सूत्रों को गढ़ने तथा वक्तव्य देने में काफी श्रम और समय व्यतीत करते हैं, लेकिन काव्य-सृजन के विशिष्ट क्षणों में अपेक्षित सतर्कता नहीं बरतते ।

5.5.5. बीट पीढ़ी :

अमरीका की बीट पीढ़ी के प्रभाव से हिन्दी में भी कुछ नयी पीढ़ियों का जन्म हुआ है । इन में मुख्य हैं – भूखी पीढ़ी , बीमारी पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी , विद्रोही पीढ़ी आदि । अमरीकी बीटनिक कवि एलन गिंसबर्ग ने ही भारत में इन पीढ़ियों का सूत्रपात किया ।

बीट-पीढ़ी के वास्तविक प्रवर्तक गिंसबर्ग के साथी जैक केरुआक हैं । केरुआक ने 1952 ई0 में 'बीट जनरेशन' शब्द का आविष्कार किया और 1955 में अपने 'रोड'(उपन्यास) के कुछ अंशों को 'जाज़ आफ दि बीट जनरेशन' नाम से प्रकाशित कराया । (1) तब से इसका प्रचुर प्रचार हुआ । बीटनिक, 'बीट' , 'बामनिक' , 'आधुनिक' जैसी कई नामों से बीट-पीढ़ी की चर्चा होने लगी ।

बीट-पीढ़ी का प्रचार करने हेतु गिंसबर्ग कलकत्ता आये और भारत के प्रसिद्ध शहरों में घूमते-घामते भूखे, बीमार, क्रुद्ध नवयुवकों को कविता के नाम पर एकत्रित करते रहे । देश के विभिन्न कोनों में छोटे-मोटे कविदल संगठित हुए । बाहर से इन पीढ़ियों में भले ही कुछ अंतर दिखे , भीतर से सबकी प्रवृत्तियाँ प्रायः एक सी थीं ।

ये सभी पीढ़ियाँ यौवन-ज्वार से प्रेरित हैं , (2) जिन्दगी का मकसद तात्कालिक शारीरिक आनंद में पाती हैं । नारी इनकेलिए केवल भोग की सामग्री है । नशीले पदार्थों का सेवन , सेक्स व्यापार में नाही खाना , समलिंगी मैथुन को ऐन्द्रिय-भटकाव न मानकर क्रांतिकारी चिंतन तथा शांति की भूमिका में देखना आदि इन पीढ़ियों की आदत-सी हो गयी है । (3)

- -

1. ललित शुक्ल : नया काव्य नये मूल्य, मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया - लिमिटेड, दिल्ली , द्वि.सं. 1979, पृ0258
2. डॉ0शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती , प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970, पृ0244
3. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य: पृ0 233

प्रवृत्ति-तत्वों से विद्रोह करना ही इनका परम ध्येय है । अपनी असलियत की पिपासा इनके अनुसार पाप है ।

अपनी असुविधाओं के प्रति ये तरुण-कवि असामान्य रूप से क्षुब्ध हैं । अपने व्यक्तित्व पर समाज से लगी चोटों के कारण उनका आत्मविश्वास ही नष्ट हो चुका है, अपने आत्मविश्वास की पुनः स्थापना करने की निर्मम-से-निर्मम मार्ग भी ये अपनाते जाते हैं । (1) इन तरुणों के व्यक्तिगत स्वभाव का सही विश्लेषण डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने प्रस्तुत किया है – ''जहाँ ये निरीह सीमाओं को तोड़ नहीं पाते, निराश या बीमार लगते हैं; जहाँ निराशा बहुत घनी नहीं होती, क्षुब्ध या क्रुद्ध । जहाँ ये क्षुब्ध क्रुद्ध हैं, इनमें ज्वार फेन हैं । ये अपने को अनिवार्य रूप से बदलनीय मानते हैं ।'' (2)

ये चारों ओर मूल्य-पतन ही देखते हैं, हर तरफ धुआँ-ही-धुआँ नजर आता है । ये बेहद परेशान हैं, क्षत-विक्षत हैं साथ-साथ विद्रोही भी । आपत्ति यह है कि इनका विद्रोह अधिकतर नारी-शरीर से ही जुड़ा है । (3)

स्वस्थ और सुव्यवस्थित समाज हेतु ये पीढ़ियाँ हानिकारक है । किन्तु अमानवीय स्थितियों के प्रति जनता को सचेत करने में एक हद तक ये सफल हुई हैं । फिर भी भारत के परिवेश को पूर्ण रूप से पहचानने में ये असमर्थ रह गयी हैं । इस असमर्थता के कारण ही अमरीका जैसे सुसंपन्न

- -

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 234-35
2. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती, इलाहाबाद 1970, पृ० 245
3. रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : तीन दशक, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1969, पृ0203

राष्ट्रों की मौलिक भिन्नता पर आधारित काव्य-प्रवृत्तियों को ये तरुण कवि यहाँ उगाना और बढ़ाना चाहते हैं ।

भूख की समस्या संपन्न देशों में विद्रोह से हल की जा सकती है, परंतु भारत में साधारण आन्दोलन से नहीं, क्रांति - आन्दोलन से ही यह संभव है ।

5.5.6 श्मशानी पीढ़ी :

श्मशानी पीढ़ी के कवियों ने अपने काव्य तथा काव्य-सिद्धांतों का प्रचार करने केलिए 'श्मशानी पीढ़ी' नाम से एक पत्रिका चलायी । दो : अंकों के निकलने के पश्चात् इसका नाम 'विभक्ति' बना दिया गया । 'श्मशानी पीढ़ी' पत्रिका के छठे अंक के समर्पण वाक्य से ही इस पीढ़ी का तत्वबोध बहुत कुछ सामने आ जाता है । समर्पण वाक्य था : -
'देवेन्द्र की सुनीता को जो अपने पति के दोस्त के लिए कुतिया से नंगी हो जाती है ।' (1)

श्मशानी पीढ़ी भी निषेधात्मक बोध के आधार पर चलती है । अजनबियत और कुंठा से ये पीड़ित हैं । इनका दावा है कि ये अपने परिवेश को ही सभी रूप में साहित्य में उतारते हैं । (2) ये चारों ओर मुखौटावाली संस्कृति ही देखते हैं । यौन-वर्जना, मृत्युबोध आदि इन्हें बार-बार सताते हैं । ऐसे संदर्भों में इनका वर्णन जुगुप्सामय ही अवश्य है, लेकिन सत्य से मुँह से परे हटने में भी यह सहायक हुआ है —

- -

1. श्मशानी पीढ़ी -6, पृ0।
2. सकलदीप सिंह : विभक्ति-7, पृ030

''मुझे दोस्तो
मरने के बाद
मेरी लाश पर वीर्यपात कर मूत देना
और किसी रखैल औरत
कपड़े में लपेट कर
पार्लियामेंट के घर में फेंक देना
वहाँ मिलेगी उनकी बड़ी मुर्दों की भीड़
और उनकी बड़ी कब्रगाह हिन्दुस्तान में'' (1)

निर्भय मल्लिक की वाणी में कटु व्यंग्य के साथ-साथ वर्तमान शासकों के प्रति आक्रोश भी है। मरने के पश्चात् राजनैतिक नेताओं की झंडों में लपेटना, उनकी चिता-भस्म लेकर जगह-जगह फिरना जैसी धारणाओं के थोथे धर्म विचारों पर कवि क्रुद्ध हो जाते हैं और उसी से बाहर होकर तीखे व्यंग्य से कड़ा आघात कर देते हैं। कवि की वाणी में यौन वर्जनाओं की प्रतिक्रिया-स्वरूप उभरनेवाली निरंकुशता भी है।

निर्भय मल्लिक, [illegible], विश्वंभरनाथ उपाध्याय, जगदीप-सिंह आदि इस नयी पीढ़ी के मुख्य स्तंभ हैं।

भूखी पीढ़ी का दोष तो यही कि इसके कवि सिर्फ 'काम' पर आधारित एक अलग समाज की सृष्टि करना चाहते हैं, लेकिन उस समाज की स्पष्ट रूप-रेखा उनकी कविता में नहीं उभरती। इसीलिए भूख उतनी बड़ी चीज नहीं, काम पर ही उनका ध्यान केन्द्रित है। 'सेक्स के

---

1. निर्भय मल्लिक : भूखी पीढ़ी-5, पृ027

माध्यम से क्रांति यही उनका नारा है । किन्तु पहले और क्रांति बाद में । वे 'क्रम' से हटकर 'अक्रमुकता' को अपनाते चलते हैं ।

इनमें समाज बोध तो अवश्य है, पर सबों का नियम इन्हें मंजूर नहीं । 'श्मशानी पीढ़ी' के संचालक निर्मल मल्लिक को अपनी पीढ़ी में सदस्यों के बढ़ने की प्रतीक्षा इसलिए नहीं कि वे समाजवादी तत्वों को गले से चिपकाते रहते हैं । आत्मविश्वास की यह कमी क्रांति के मार्ग में रोड़ा अटकायेगी ।

आधुनिक कविता की इन नयी पीढ़ियों में थोड़ी-थोड़ी भिन्नता तो अवश्य रहती है, लेकिन भाव एक-सा रहता है । ये सारी पीढ़ियाँ नयी कविता को विरोध की आँखों से देखती हैं । इस विरोध से ''नयी कविता'' का कोई ह्रास या नयी पीढ़ियों का स्वाभाविक विकास संभव नहीं हुआ है । इन नयी पीढ़ियों की प्रवृत्तियाँ 'नयी कविता' की सबों को आत्मसात् करनेवाली प्रवृत्ति में समाहित हो जाती हैं । इसलिए इन्हें नयी कविता के अंग स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी ।

5.6 नयी कविता : मुख्य प्रवृत्तियाँ :

5.6.1 मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा :

''. . . नई कविता में समाज की सजीव एवं समर्थ इकाई के रूप में व्यक्ति की प्रधानता है । व्यक्ति ही अपनी भूमिका इस प्रकार निभाता है कि वह लोककल्याणकारी समाज की स्थापना कर सके । '' (1)

---

1. डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया : हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ, पृ० 13।

नयी कवियों के अनुसार समाज को बरकरार रखकर, लेकिन व्यक्तिवादी समाज की स्थापना करने पर भी व्यक्ति को पूर्णरूप से समाज में खपने का अधिकार नहीं है। उसका अस्तित्व और व्यक्तित्व स्वतंत्र होना चाहिए, जैसा कि कवि का है। 'पंक' में 'पंकज-सा', 'कंटक-वन' में 'शक्ति-सा' वह हमेशा जीवन बचाता' ही रहता है, 'असंपृक्त' रहता है।

'यहाँ न जाना कहीं
जीवन बचाना यहाँ,
दामन हमेशा पाक रखना,
पंकज-सा पंक में
कंटक-वन में शक्ति-सा
तुहिन की बूंद में प्रत्येक हिम-हीरा-सा
असंपृक्त रखना।
पाक रखना
साफ रखना पाक रखना
पाक रखना '(1)

नयी कविता में व्यक्ति का स्वर ही मुखरित होता है, समूह का कोलाहल नहीं, लेकिन यह समूह व्यक्ति के स्वर में ही मुखरित हो उठा है। (2) जीवन की नवीन परिस्थिति तथा उसके नवीन स्तरों एवं धाराओं को व्यक्ति-सत्य की दृष्टि से अभिव्यक्ति देना ही नयी कविता का उद्देश्य है। (3)

- -

1. 'अज्ञेय': आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, संपा० विद्या निवास मिश्र, पृ016
2. बालकृष्णराव : 'कल्पना', नवंबर 1956, पृ01
3. शम्भुनाथ मदान : आलोचना तथा काव्य, राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, पृ-सं पृ066

5.6.1.1 : लघु मानव - व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा :

महानता के प्रति नये कवि का ज़रा भी मोह नहीं, वीर-पूजा का वह विरोधी है, इसलिए उसे लघुमानव बनकर रहना ही अधिक पसंद है। ''छायावाद में महामानव की उपासना थी तो नयी कविता में लघु-मानव की।''(1) आधुनिक परिवेश में रहता यह लघुमानव ही आज की नियामक शक्ति है। अभावग्रस्त मानव का व्यक्तित्व लघुता से कुंठित रहता है लेकिन उसका आत्मसम्मान कभी मरता नहीं।(2) लघुमानव का प्रतिनिधि बनकर कवि कहते हैं कि वे भी नेता बन सकते थे, महापुरुष बन सकते थे। लेकिन ऐसे वैभवों में उनकी रुचि नहीं :-

''हम भी हो सकते थे
नेता, विश्व निर्माता
देश के विधाता
महापुरुष, कलाकार
अलौकिक
धन, यश, सम्मान
अधिकारों के दाता
वैभव, विभूति के [illegible]ता '' (3)

मुक्तिबोध को भी ऊँचाइयों से डर लगता है, अकिंचनता ही उन्हें प्रिय है -

''नहीं भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा
मुझे डर लगता है ऊँचाइयों से
बजने दो साँकल।'' (4)

---

1. इन्द्रनाथ मदान : आधुनिकता और हिन्दी आलोचना, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1975, पृ035
2. गिरिजाकुमार माथुर : सीमाएँ और सम्भावनाएँ पृ0134
3. गिरिजाकुमार माथुर : शिलापंख चमकीले, पृ049

नये कवियों का यह दावा है कि उन्हीं की लेखनी से कुछ मानव के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। पहले तो काव्य में मानव के व्यक्तित्व का स्वरूप वायवी था, उसका यथार्थ रूप कभी भी सामने नहीं आया था।(1)

माथुर का यह अभिमत है कि नये कवियों ने ही मानव-व्यक्तित्व की वास्तविकता को पहचाना है, उसके मन में छिपी पाशविकता का पता लगाया है। मुक्तिबोध भी इसका समर्थन करते हैं –

'और मैं सोचता हूँ ....
कैसे सत्य हैं ....
ढाँक रखना चाहते हैं बड़े-बड़े
नाखून ! !
    किसके लिए हैं वे बाघनख ! !
कौन अभागा वह ! ! ''(1)

अहंवादी होकर भी 'भीड़' के लिए आत्म-समर्पण करनेवाले हैं नये कवि –

''मैं हूँ नदी तट की रेत
अर्पित हूँ
लेकिन किसी भी क्षण पानी तले से बह जाऊँगा। '' (2)

आज के मानव को अपने पैरों के उखड़ने का भय है, उसके कंधों पर संघर्षों का बोझ है, पांव भी फटे हैं, निराला की तरह – (3)

- -

1. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1964, पृ० 17
2. धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ष : पृ० 123
3. डॉ० रामविलास शर्मा: तारसप्तक, पृ० 233

—''भीड़ में लहूलुहान पांव
कंधों पर संबंधों का बोझ लादे
पथहीन
भटक रहे हैं हम
नई पीढ़ी के लोग ।'' (1)

मानव-कल्याण ही नये कवियों का अंतिम लक्ष्य है । धर्मवीर भारती का यह कथन उसका पुष्ट प्रमाण है : ''मानव हमारा देवता है । मानव से बड़ा कोई सत्य नहीं ।'' (2)

मध्ययुग के वैष्णव कवि चण्डीदास ने भी यही कहा था : ''सबके ऊपर मनुष्य है, उससे ऊपर कुछ नहीं ।'' (3)

5.6.2 आधुनिक युगबोध :

''नयी कविता की आत्मा है आधुनिक भावबोध । आज का शिक्षित मनुष्य अपने परिवेश - परिस्थितियों से जो संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करता है, वे संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ या उनका सामान्यीकरण नयी कविता में प्रकट होता है ।''(4) आधुनिक संवेदना पूर्वतर युगों की भावदृष्टियों से बिलकुल भिन्न है । शिक्षित मध्यवर्ग अपने चारों ओर विरोधी तत्व पाता है, भ्रष्टाचार, आपसी फूट, जाति-पाँति आदि पर असंतुष्ट रहता है । इस परिस्थिति में वर्तमान के प्रति असंतोष और अनास्था होना स्वाभाविक है । मुक्तिबोध की कविता में यह असंतोष स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है —

---

1. स्वदेश भारती : [illegible] सप्तक, संपा-अज्ञेय, सरस्वती विहार, नई दिल्ली प्र॰सं॰ 1979, पृ0 116
2. धर्मवीर भारती : प्रगतिवाद एक समीक्षा, भूमिका, पृ0 3-4
3. उद्धृत: अज्ञेय: ''भारतीय संस्कृति और विश्व संस्कृति' नया साहित्य, संपा॰ विश्वनाथ, भारतीय संस्कृति विशेषांक, अक्टूबर 1983 पृ0 5
4. मुक्तिबोध : नई कविता का आत्म संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृ0 119

''मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी सुंदर व शोषणमुक्त
कब होंगे ?'' (1)

इसीलिए कठोर प्रयत्न की सख्त ज़रूरत है। निराशा में पड़े रहना या उदासीन होना इसका उत्तर नहीं :

''तुम आशा का दीप जलाओ
अंधकार की जड़ें खोद दो,
लौ का यह छोटा-सा घेरा
नई किरण का बने पालना।'' (2)

आधुनिक भावबोध वर्तमान की गतिशील शक्ति पर विश्वास रखता है और रूढ़ियों का तिरस्कार करता है। वह तर्क के आधार पर ही वस्तुओं तथा स्थितियों को ग्रहण करता है। अंध-श्रद्धा उसके अनुकूल नहीं पड़ती। मध्यकालीन कवि वेदांत लेकर चलता है, परंतु आधुनिक कवि को मोक्ष की चिंता नहीं। मात्र भौतिकता में विश्वास रखने के कारण, इस जीवन का प्रत्येक क्षण उसकी पूर्णता में भोगने की अदम्य लालसा उसमें रहती है। सब काँटों भरे रास्ते भी पार किये जाते हैं। आवश्यक है तो जूता पहन लो। कुंभज की पंक्तियों में व्यंग्य भी है और तथ्य भी—

''और काँटों से भरे रास्ते को
जूते पहनकर पार करो।'' (3)

- -

1. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 162
2. भारत भूषण अग्रवाल : 'ओ अप्रस्तुत मन', पृ० 129
3. राजकुमार कुंभज, [illegible], पृ० 86

5.6.2.1. क्षण का महत्व :

नयी कविता में प्रत्येक क्षण का अपना महत्व है । नये कवियों के अनुसार 'क्षण' भूत से प्रभावित होकर भविष्य की संभावनाओं को सूचित करता है । (1) यह क्षणानुभूति अस्तित्ववादी दर्शन का आधार है । 'क्षण' के प्रति विशेष मोह प्रायः सभी नये कवियों में पाया जाता है । 'क्षण' को 'अज्ञेय' ने उस महाम्बुधि से भी महान मान लिया है जिसका पान अगस्त्य ने किया था —

"एक क्षण : क्षण में प्रवहमान
व्याप्त संपूर्णता
इससे कदापि बड़ा नहीं था, महाम्बुधि जो
पिया था अगस्त्य ने ।" (2)

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ऐसे क्षणों की खोज में हैं जो सत्य का उद्घाटन कर सकें —

"एक क्षण को ही सही
सत्य जो समझूँ
उसे देखूँ, सुनूँ कह सकूँ" (3)

अपने जीवन के हर 'क्षण' को अमर बनाना ही नये कवियों का ध्येय है क्योंकि 'क्षण' समय की ऐसी एक इकाई है जो अपनी व्यापकता में अनंत का आभास देता है । 'क्षण' की महत्ता इस बात में है कि वह

---

1. डॉ० वीरेन्द्रसिंह : आधुनिक कविता नये संदर्भ, पृ०5।
2. अज्ञेय : इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ०44
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : '[illegible]', [illegible] पृ० 43

वर्तमान की वह आधार-भूमि है जहाँ से हम भूत को देख सकते हैं और भविष्य का अनुमान भी कर सकते हैं । 'क्षणों को सम्मान देने का अर्थ होता है जीवन की एक-एक अनुभूति को, एक-एक व्यथा को, एक-एक सुख को सत्य मानकर जीवन को सघन रूप में स्वीकार करना । '' (1)

३·७·२·२ आधुनिक भावबोध और अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद ने आधुनिक भावबोध पर गहरा प्रभाव डाला है । 'आत्मजयी' के नचिकेता का विवाद असल में कवि का ही विवाद है । (2) सबों की अवमानिता, सबों से अनमेलता कवि आखिर अपने को समझने में असमर्थ-सा रहता है –

'' वे जिनको प्यार दिया जीवन को खाली कर,
उन्होंने दया की,
मुझ पर उपकार किया
वे सब कृतज्ञ रहे अपने में
लेकिन मैं रीत गया आत्मा को व्यय करके,
बदले में केवल एक कुंठा संचय करके
सम्बोधनों में 'स्वयं' की उपलब्धि के रूप में लिया गया है ।
वह जिज्ञासु हो उठता है - धरा, धाम, सखा, बंधु
पिता, माँ, वर्तमान
मुझ में है - मुझ से हैं - मेरे हैं -
अनजाने, पहचाने नाते, प्रेमाने
सब मेरे हैं - मैं सब का हूँ -
लेकिन मैं क्या हूँ ?
मैं क्या हूँ ?
मैं क्या हूँ ? '' (3)

---

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता- तीन दशक, पृ० 99
2. कुँवर नारायण : आत्मजयी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1965 पृ० 18
3. वही, पृ० 18

मतभेदों से शक्ति-संचय करनेवाले अज्ञेय भी अस्तित्ववाद से प्रभावित हैं। आखिर असाध्य कार्य भी साध्य हो गया –

"अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय" (1)

५.७.५. नयी नैतिकता की स्थापना:

नैतिकता का कोई निश्चित मान तो संभव नहीं। आज की अनैतिकता कल की नैतिकता हो सकती है क्योंकि जीवन के सभी क्षेत्र तीव्रगति से परिवर्तित हो रहे हैं। बाहर से आयी आधुनिकता, पश्चिमी सभ्यता, विज्ञान की प्रगति, शिक्षा का प्रचार वगैरह नैतिक-मानों में परिवर्तन लानेवाले घटक होते हैं।

इस नये परिवेश में मानव-जीवन भी यांत्रिक हो गया है। आज का जीवन इतना व्यस्त और संकीर्ण है कि आचरण की पवित्रता पर कोई ध्यान नहीं देता। वैज्ञानिक साधनों के उपलब्ध हो जाने से प्रेम, वात्सल्य जैसे मधुर भावों का महत्व घट गया। शिक्षित नारियाँ आत्मनिर्भर तथा स्वतंत्र हो गयीं। गर्भनिरोधक साधनों के प्रचार से आधुनिकाएँ व्यभिचार स्वीकार करने लगीं।(2) पुरानी नैतिकता के स्थान पर एक नई नैतिकता

---

1. अज्ञेय : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय', पृ0123
2. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0229

की स्थापना हुई जिसका प्रभाव कला और साहित्य पर भी पड़ गया । आज की इस युग नैतिकता पर अज्ञेय भी असंतुष्ट है —'' आज काव्य-कथेतर साहित्य और कला जगत में यौन-परिकल्पनाओं के एक से एक विलक्षण घोड़े छोड़े जा रहे हैं । पता नहीं, आज की मनुष्यता किस दोनिमेष की तैयारी में है । एक ओर सन्तति-निग्रह का सामाजिक पैमाने पर व्यापक प्रचार और दूसरी ओर यौन परिकल्पनाओं की यह उपासना।शायद ही किसी पूर्ववर्ती युग ने नर्मालाप का मुख अंदकार यौनाह्य का प्रचार इस तरह उन्मुक्त किया होगा । '' (1)

आज का वातावरण संचालित युद्ध की विभीषिका से इतना संत्रस्त है कि मानव-जाति से भविष्य की आशा ही मिट गयी । ईश्वर और धर्म पर जो विश्वास था, पूर्णतया से उड़ गया । अमेरिका के 'बीट जनरेशन' 'जाजुमेनिया' आदि इसी आस्था-हीनता की अनिवार्य परिणति है । इसका प्रभाव आधुनिक समाज तथा साहित्य पर गहरा पड़ा है । ऐसी परिस्थिति में यौन-परिकल्पनाओं में परिवर्तन स्वाभाविक ही था ।

विश्व का समस्त साहित्य यौनाचार और काम-भावना के लिए फ्रायड का ऋणी है । अनेक कवियों और कलाकारों ने फ्रायड के सिद्धांतों का अपनी रचनाओं में समावेश किया । समरसेट माम, डी०एच०लारेंस जैसे उपन्यासकारों पर फ्रायड का प्रभाव स्पष्ट है । हिन्दी के नये साहित्यकार उससे अप्रभावित नहीं रह सकते थे । 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' 'शेखर-एक जीवनी' जैसे उपन्यास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । 'अज्ञेय की दृष्टि में 'आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं दमित हैं, कुंठित हैं । '' (2)

- -

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ023।
2. अज्ञेय : तारसप्तक द्वितीय वक्तव्य, पृ0278

दमित वासनाओं को बाहर बहा देना ही कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है —

'निकट घर फैली हुई छत, बांह में निर्बंध
सुवासित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव
धैर्य धन गदहा। '' (1)

यौन-प्रतीकों की बहुलता धर्मवीर भारती की कृतियों में भी है —

''प्रात धूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी अभी जागी
खुमार से भरी
निर्वसन कुमारी घाटी
एक कामातुर मेघपुंज के
मांसल आलिंगन में सिमटकर
रति-श्रान्ता-सी मलिन हो गई। '' (2)

अनैतिक को नैतिक घोषित करने का आग्रह कुंवर नारायण के चक्रव्यूह में भी पाया जाता है। चुंबन, आलिंगन आदि का खुला वर्णन उसमें हुआ है। नग्नता तथा अश्लीलता का प्रदर्शन भी नये कवि हेय नहीं समझते। शान्ता सिन्हा की कविता तो सभी हदों को पार कर गयी है —

'' आज मुझे मेहमान तुम
रात के ''फ्लोर शो'' में
एक बार बस एक बार
अपने तन की लाज छोड़ नाची
मुझ पर। '' (3)

---

1. अज्ञेय : शिशिर की राका-निशा, तारसप्तक, पृ0 280
2. धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ष, पृ0 137
3. शान्ता सिन्हा : उद्धृत : नया उपक्रम, संपा0 राजेश गुप्त, प्रकाशि0

5.6.4. नवीन सौंदर्य बोध :

नयी कविता का सौन्दर्य-बोध यथार्थ पर आधारित है । उसमें सुंदर-असुंदर सबकेलिए स्थान प्राप्त है । अनुभूत सत्य ही नये कवियों की दृष्टि में मूल्यवान हैं । नयी कविता में छायावाद के कल्पना-प्रसूत चित्र ही नहीं मिलते, जो जैसा है उसी रूप में चित्रित किया जाता है । सुख-दुःख, सुन्दर-असुन्दर, प्रकाश-अंधकार को समान महत्व देकर नये कवियों ने नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है । वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आधार सत्य ही है चाहे वह कितना भी कटु क्यों न हो । इसलिए नये कवियों की कृतियों में प्रेम, आस्था, संतोष के साथ दुःख, दर्द, कुंठा, निराशा को भी स्थान मिला है । जीवन के धूमिल-पक्ष इनके काव्य में प्रकट हैं । भूख, बीमारी, गंदगी के कारण इनका वातावरण ज्यादा भद्दा है । नये कवि सामाजिक वैषम्य पर भी क्षुब्ध हो उठते हैं, सामाजिक असंगतियों पर कड़ा आघात कर बैठते हैं । मृत्यु से भारी ज़िन्दगी लेकर रेंगनेवालों पर सहानुभूति भी वे प्रकट करते हैं :-

'' जन्म दिन की क्या खुशी होगी उन्हें
ज़िन्दगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गंदगी
कोठियों के पास सिकती ज़िन्दगी । '' (1)

''जो कुछ भी यथार्थ है, सच्चा है ईमानदारी की उपज है'' (2) अज्ञेय केलिए विशेष महत्वपूर्ण है, नयी कविता की संपत्ति है । उल्लास-अवसाद, सुख-दुख आदि का चित्रण स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक ढंग से

---

1. गिरिजाकुमार माथुर : धूप के धान, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, काशी, प्रथम 1955, पृ०92
2. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ०11।

G3487

प्रस्तुत करने वैविध्य जीवन-सत्यों को पूर्ण रूप से भोगने की कुशलता पर भी बल देते हैं । स्वानुभूत सत्य के चित्रण में ही वे यथार्थ और ईमानदारी का दावा करते हैं ।

नये कवियों को छायावादियों की भाँति स्वप्न-प्रतीकों का मोह नहीं, प्रगतिवादियों की तरह किसी राजनैतिक सिद्धांत का मोह नहीं । अनुभूति अपनी यथार्थ में अमूल्य अपार है और 'नयी कविता' से पहले कभी अनुभूति-सत्य को अभिव्यक्त करने की संगठित कोशिश इतनी ईमानदारी से न हुई । अपनी अनुभूति को पूरी ईमानदारी और तीव्रता के साथ वाणी देना ही नये कवि का धर्म है ।

नयी कविता की बौद्धिकता, जो हमारे प्राचीन साहित्य की बौद्धिकता से भिन्न है, वैज्ञानिक प्रगति से प्रभावित है । नया कवि रसानुभूति पर उतना ध्यान नहीं देता जितना कि बौद्धिकता पर । आज के मानव के सौंदर्य - बोध में आये हुए परिवर्तन की ओर संकेत करते हुए जगदीश गुप्त लिखते हैं —'' उसे अब ऐसे सौंदर्यबोध की अपेक्षा होने लगी है जिसमें उसकी भावात्मक सत्ता के साथ-साथ उसके बौद्धिक व्यक्तित्व का भी सन्तुलित समन्वित हो । . . . इसी रूप दृष्टि से नए स्तर पर रसास्वादन की प्रतिष्ठा कहा जा सकता है । '' (1)

नया कवि मनोविज्ञान से फायदा उठाता है । मनोविज्ञान की मान्यताओं से हमारे व्यक्ति-मन की अंधकारमय ''बावड़ी'' में भी वह प्रवेश करता है और अवचेतन के असंगत विचारों को प्रवाहित कर देता है, तर्कशास्त्र की परवाह भी नहीं करता । इन भाव-खंडों का आपस में संबंध न रहने

- -

1. जगदीश गुप्त : नई कविता, अंक-3, पृ04

के कारण साधारणीकरण में बाधा पड़ती है, काव्य में दुरूहता आ जाती है। ''विज्ञान और अंग्रेज़ी कविता'' पर विचार करते हुए, वैज्ञानिक प्रगति की तीव्रता से साधारणीकरण में होनेवाली बाधाओं पर, पाश्चात्य आलोचक बुश ने ज़ोरदार भाषा में विश्लेषण की है। (1) अपनी उलझी संवेदनाओं को पाठकों तक पहुँचाना आज के कवि की एक समस्या हो गया है।

प्राचीन काल से ही भारत के आचार्य बौद्धिक विकास पर बल देते आये हैं। कवि का दार्शनिक होना वहाँ अनिवार्य माना गया था। परंतु नये कवियों की बौद्धिकता इन्द्रियबोध/अनुशासित नहीं रहती। वे दार्शनिक विचार को भी अंतिम नहीं मानते। डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है – '' नई कविता की बौद्धिक चेतना का दोष यह है कि वह इन्द्रियबोध से संपुक्त करने, भावना से अनुशासित करने, मार्मिक और प्रभावशाली बनाने के बदले उन्हें केवल मात्र रहने देती है। '' (2)

5.6.5 वैयक्तिकता :

सांख्य दर्शन और अद्वैत दर्शन में जिस 'अहं' का प्रतिपादन हुआ है, आधुनिक धारणा से भिन्न है। यह 'अहं' बुद्धितत्व से उद्भूत है। आधुनिक युग में, फ्रायड ने जिस 'अहं' का विवेचन किया है उसका आधार आत्मविश्वास है। (3) नये कवि इसी 'अहं' को स्वीकार करते हैं।

---

1. Bush : Science and English Poetry, P-140-141

2. डॉ० रामविलास शर्मा : मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य : पृ० 288

3. Nicholas. S. Di Caprio, personality Theories: guides to living, W.B. Saunders Company, Philadelphia, 1974, P-46-47

'अहं' के विकास में 'इड', 'ईगो', 'सुपर ईगो' की स्थितियों से मान लेते हैं। (1)

कवि का 'अहं' ऊर्ध्वोन्मुखी होकर चमत्कारी बनाना चाहता है, उसे थोड़ी बहुत सफलता मिल भी जाती है। उसके भीतर का 'ब्रह्मराक्षस' 'बुरा' से 'अच्छा' की स्थिति में पहुँच जाता है। अब उसका मन 'अच्छा' से ''उससे भी अच्छा' बनने का है। (2) सीढ़ियाली बावड़ी के जीने से वह ऊपर भी चढ़ता है लेकिन फिसलकर लुढ़कता है, फिर भी ऊर्ध्वगमन या मन छोड़ता नहीं। सिसिफस की भाँति नये सिरे से वह क्रम शुरू करता है - --

''एक चढ़ना और लुढ़कना/पुनः चढ़ना और उतरना/मोच
पैरों में / व छाती पर अनेकों घाव/बुरे-अच्छे-बीच के
संघर्ष / से भी उग्रतर/ अच्छे व उससे अधिक अच्छे-बीच
का संगर. . .'' (3)

अहं की ऊपर की जाने की यह छटपटाहट शक्ति-कामना के अनुकूल है। शून्य बावड़ी में पड़े हुए 'ब्रह्मराक्षस' की आँखें गगन पर नहीं हैं। पेड़-पौधों की डालियों के बीच से चमत्कार अनिवार्यतः सूर्य या चन्द्र की किरणें (ज्ञान की रश्मियाँ) बावड़ी की दीवारों पर पड़ती हैं तो बेवकूफ, ब्रह्मराक्षस समझ बैठता है कि प्रकृति उसके आगे झुक गयी है। यही ब्रह्मराक्षस का 'अहं' है; पूर्वी-पश्चिमी दर्शन विचारों से समान रूप से प्रभावित मुक्तिबोध का 'अहं' है।

. . . .

1. Ibid पृ0 288
2. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0 12-13
3. मुक्तिबोध : 'ब्रह्मराक्षस,' चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम 1964, पृ0 12

मनुष्य अपने व्यक्तित्व की स्थापना 'अहं' के माध्यम से करता है। अपने आत्मविश्वास पर जब क्षति पहुंचती है तब वह विद्रोही का रूप धारण कर लेता है। बीट जनरेशन, भूखी पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी आदि के दर्शन इसी सिद्धांत पर आधारित हैं।

5.6.5.1. अलग वैयक्तिकता :

नयी कविता की वैयक्तिकता छायावादी वैयक्तिकता से भिन्न है। छायावाद की वैयक्तिकता अन्तर्मुखी होकर भी केवल आत्म-केन्द्रित नहीं रहती, वह आत्म-विस्तार पर भी ध्यान देती है। नये कवि आत्म विस्तार पर बहुत कम ही ध्यान देते हैं। यही नहीं, उनके व्यक्तित्व के खंडित अंशों में निरंतर संघर्ष भी चलता रहता है। यह संघर्ष खंडित आत्मा को बाहर अपने खोये हुए अंशों की खोज करने के लिए प्रेरित करता है। लेकिन बाहर से भी तृप्ति का साधन उसे नहीं मिलता। इसलिए समष्टि का अंग होकर भी अलग रहने की चाह नये कवियों में दिखाई देती है। प्रमाण स्वरूप अज्ञेय की पंक्तियाँ ली जा सकती हैं.....

"किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।" (1)

---

1. अज्ञेय : 'नदी के द्वीप' 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-10, संपा: विद्यानिवास मिश्र, पृ0 75

5.6.6 शिल्प संबंधी नवीनताएँ :

''नयी कविता'' के काल में शिल्प के क्षेत्र में भी बड़ा भारी परिवर्तन हुआ । भाषा तथा शैली में शब्द , बिंब , प्रतीक , फैंटसी आदि के प्रयोगों का नया विधान हुआ जो प्रयोगवादियों के शिल्पविधान-सा अनुदात्त और व्यापक परिवेश को लिए हुए था । 'प्रयोग के लिए प्रयोग' की पद्धति से नये कवि दूर रहे ।

5.6.6.1. भाषा का नया प्रयोग :

भाषा में समय-समय पर आनेवाले परिवर्तनों को देखकर ही हम काव्य-प्रवृत्तियों में होनेवाले अंतर को समझते हैं । ''... नये कवि अपनी आवश्यकताओं के अनुसार भाषा को प्रयोग के माध्यम से विकसित करते हैं । शब्द के वाच्यार्थ को अभिव्यक्ति के अनुकूल मोड़कर उपयुक्त विशेषणों से चित्र/बिंब संयोजित कर , वाक्य गठन के अन्दर अर्थ ध्वनियों को विकसित कर तथा भाषा के सामान्य प्रयोगों को विशिष्ट अर्थों में संदर्भित कर नया कवि भाषा को संप्रेषण के अनुकूल बनाता है । '' (1)

नयी कविता की भाषा लोकजीवन के बहुत निकट है । ग्रामीण बोलियों , शब्दों तथा मुहावरों का प्रयोग इसका वैशिष्ट्य है । जो शब्द कविता के लिए अनुपयुक्त तथा अयोग्य माने गये थे , नयी कविता में उनकी बाढ़-सी हो गयी । नये-नये शब्दों का आविष्कार , पुराने शब्दों में नये

---

1. डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया : हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ, पृ० 133

अर्थों" का आदि जैसी प्रयोगवादकालीन शब्द-संबंधी मान्यताएँ नयी कविता के काल में भी कायम रहीं। शब्दों की तोड़-मरोड़ से भाषा में अटपटापन भी आ गया। भाषा गद्य के अधिक निकट आ गयी।

नयी कविता की भाषा में व्यंग्य की प्रधानता है। यह व्यंग्य कथ्य को उभारने तक ही नहीं रहता, जीवन के प्रति उसका रागात्मक संबंध भी प्रकट करता है।

अधिकतर नये कवि नागार्जुन का सरस व्यंग्य कोरे हँसना-हँसाना नहीं, दोनों की जटिल समस्याओं से रागात्मकता स्थापित करना भी है —

''अधपकी, अधकची होंगी हरियल गिरिजन वन में
कुछ तो किरनी रेत हटे उतरी फिरी गगन में
महँगाई की सूर्पनखा को कैसे पाल रही हो
शासन का गोबर जनता के माथे डाल रही हो।'' (1)

५.६.६.२ बिंब :

पूर्वी तथा पश्चिमी आलोचकों ने बिंब-विधान को काव्य का महत्वपूर्ण अंग माना है। आई.ए. रिचर्ड्स, सेसिल डे लुइस, एज़रा पाउंड आदि ने अपने अपने दृष्टिकोणों से बिंबों पर विचार किया है।

'बिंब' अंग्रेज़ी के 'इमेज' का पर्यायवाची शब्द है। सी.टी.ओनियन्स ने 'इमेज' शब्द का अर्थ किसी व्यक्ति या वस्तु की प्रतिकृति कहा है। (2) सी.डे.लुइस बिंब को शब्द-चित्र या वाङ्मय-चित्र मानते हैं। (3) इन

- -

1. नागार्जुन : अब तो बंद करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन, पृ06
2. सी.टी.ओनियन्स: दि शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड, प्रेस, 1950
3. C. Day Lewis : The poetic Image, Jonathan Cape, London, Seventh Impression, 1953, P-17

वाङ्मय चित्रों से कवि के संवेदनों का घनिष्ट संबंध भी रहता है । (1) बिंब पूर्णत : मानसिक व्यापार है और मस्तिष्क की आँखों से देखी जानेवाली वस्तु है । (2)

कवि अपने ऐन्द्रिय अनुभवों के असंख्य पदार्थों का अपने मन में संचय करता है । उसी में से वह कविता का उपादान ग्रहण करता है । बौद्धिक तथा वैकारिक ग्रहणों (perception) से समीकृत जटिल संघातों को ही बिंब कहते हैं ।

बिंब सामान्य अर्थ के अलावा शब्द की विशिष्ट अर्थ को छाया से आच्छादित कर देता है । वस्तुस्थिति को अधिक स्पष्ट तथा मुखर करने में यह सहायक रहता है । संवेदना ही बिंब का मूलाधार है, बुद्धि नहीं । प्राचीन काव्य में जो स्थान चरित्र का था आधुनिक कविता में वही स्थान बिंब को दिया गया है । चरित्र-चित्रण के लिए विस्तृत भूमिका की ज़रूरत होती है जब कि आधुनिक कविता के सीमित परिवेश में बिंबों से संवेदनाओं का स्थापन सुगमता से संभव हो जाता है ।

'नयी कविता' में बिंबों का संबंध विषय-वस्तु तथा रूप-शिल्प दोनों से है । बिंबों से विषय-वस्तु में संक्षिप्तता आ जाती है और रूप-शिल्प में आकर्षण ।

बिंब-प्रयोग की सुविधा यह है कि कम-से-कम समय में भाव व्यंजित हो जाता है । 'नयी कविता' के 'अधूरे आँसू'' (3) ''धूप कटघरा पहि' (4) जैसे बिंब भाव के रंग को अधिक गहरा कर देते हैं ।

- -

1. S.T. Coleridge (Quoted) C.Day Lewis, The poetic Image, P-19
2. Encyclopaedia Britanica, Vol.4, London, Britanica Ltd., 1964, P-328
3. 4. नगेन्द्र कुमार : उद्धृत : रांगेय राघव ; आधुनिक हिन्दी कविता में

काव्य के आंतरिक गठन से बिंबों का अटूट संबंध है । (1) ये केवल कविता के आभूषण नहीं हैं । (2)

नयी कविता में यौन-बिंबों की बहुलता है ।

अगर किसी ने इस पर आपत्ति उठायी तो अपने पक्ष की पुष्टि हेतु नये कवि आध्यात्मिकता का सहारा भी लेते हैं और यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि ये यौन-बिंब अधिकांशत : आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति हेतु स्वीकार किये गये हैं ।

5.6.3. प्रतीक :
- - - - - - - - -

'प्रतीक' अंग्रेजी शब्द 'सिंबल' का हिन्दी रूपान्तर है । इसका प्रयोग गोचर या अगोचर विषय का किसी अन्य मूर्त एवं इन्द्रिय गोचर वस्तु द्वारा प्रतिविधान किये जाने के अर्थ में होता है । (3)

भारतीय काव्य-शास्त्र में उल्लिखित 'उपलक्षण' से 'प्रतीक' का बड़ा साम्य है । शब्द की व्यंजना-शक्ति का प्रसार इसका उत्कृष्ट है । पाश्चात्य काव्य शास्त्र में 'प्रतीक' का प्रयोग अभिव्यंजना के व्यापक अर्थ में भी किया गया है । विशिष्ट अर्थ में यह अभिव्यंजना की एक पद्धति मात्र का प्रतिनिधित्व करता है । (4) नये कवियों ने प्रतीकों का प्रयोग वेदों से माना है । (5) लेकिन आज के प्रतीकों तथा वैदिक ऋषियों के प्रतीकों में बड़ा अंतर है । 'तीसरा सप्तक' के कवि मदन वात्स्यायन ने अपने वक्तव्य में इस अंतर को स्पष्ट कर दिया है । (6)

- -

1. C.Day Lewis; The poetic Image, P.22
2. डॉ0के0 राघवन पिल्ले , काव्यबिंबम् भारतीय काव्य मीमांसा में (मलयालम निबंध) प्रभा संहिता, त्रैमासिक , केरल विश्वविद्यालय प्रकाशन-21, जनवरी, मार्च 1982, पुस्तक-6, अंक-3, पृ022
3. डॉ0 नगेन्द्र (संपा): भारतीय साहित्य कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली , प्र0सं0 1981, पृ0751
4. वही, [illegible]

प्रतीकों का प्रयोग काव्य में सभी युगों में हुआ है । भावना की अधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए ही प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। कवि की सफलता अपने अनुभवों को प्रेषित करनेवाले प्रतीकों को चुनने तथा उन्हें अपनी कविता में करीने से रखने में है । (1)

प्रत्येक समर्थ - काव्य - साहित्य पुराने प्रतीकों को छोड़कर नये प्रतीकों को स्वीकार करता है । नये कवि पुराने प्रतीकों को जड़ मानकर उनकी उपेक्षा करते हैं । अज्ञेय के मत में प्रतीक ज्ञान का एक साधन है । (2) जो ज्ञान अभिधा में नहीं बंधता उसे प्रेषित करने में प्रतीक काम आता है । सनातन और पुरातन मान्यताओं का निराकरण करनेवाले प्रतीक भी उनकी दृष्टि में सनातन हो जाते हैं । (3)

जीवन की जटिलता को संश्लिष्ट रूप में चित्रित करने के लिए प्रतीक ही शक्तिशाली माध्यम है । लेकिन घिसे पिटे प्रयोगों तथा प्रतीकों पर विश्वास न होने के कारण नवीनता बनाये रखने के लिए नये कवियों को प्रयोग अन्वेषक बनकर रहना पड़ता है । यद्यपि पुराने प्रतीकों के स्थान पर इन्होंने नये प्रतीक ग्रहण किये हैं तो भी उनका माध्यम भी अब संदिग्ध हो गया है । छायावाद के अभिजात संस्कार का प्रतिनिधि 'कमल' प्रगतिवाद-काल में जनमुख बनकर क्रांति का आह्वान करता रहा तो प्रयोगवादियों ने फिर से उसे मध्ययुगीन अध्यात्म जगत से जुड़ा दिया । क्रांतिकारी जनकमल नवरहस्यवाद का कमल बनकर नयी कविता में उपस्थित हुआ । (4) 'सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान' में भगवान बुद्ध के लिए 'पद्मकोश' प्रतीक

- -

1. Elizabeth Drew Discovering poetry, Oxford University Press, London, 1933, P-63
2. अज्ञेय : आत्मनेपद , पृ0 41-42
3. वही , पृ0 41-42
4. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय , भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम 1959 पृ0 85

प्रयुक्त हुआ है लेकिन इससे 'नद' या 'नदी' का कोई बोध नहीं होता। मुक्तिबोध ने भी इसी प्रकार की 'ब्रह्म राक्षस' को - प्रतीक अपनाया है।(1) निराला 'जागो फिर एक बार-2' में इसका सफल प्रयोग हो कर चुके हैं।(2) इस प्रकार एक ही अर्थ में प्रतीक प्रयुक्त करने से उसका मुलम्मा ही छूट जाता है, उसमें कोई आकर्षण नहीं रहता।

पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग में दुष्यंत कुमार ने काफी सफलता प्राप्त की है।

''मेरी कुंठा रेशम के कीड़े-सी ताने-बाने बुनती
तड़प - तड़प कर बाहर आने को सिर धुनती
गर्भवती - मेरी कुंठा क्वारी कुन्ती
बाहर आने दूँ तो लोकलाज मर्यादा
भीतर रहने दूँ तो घुटन-सहन से ज्यादा
मेरा यह व्यक्तित्व सिमटने पर आमादा
तो क्या निर्णय यही कि तुम में
गर्भवती अपनी कुंठा का कर्ण बहा दूँ
मुझको इससे मोह नहीं है;
इसे बहा दूँ।'' (3)

यहाँ कवि कुंती के गर्भ को अपनी कुंठा का प्रतीक मानकर उस कुंठा को ज्वार-निर्झर में बहा देना चाहते हैं। कुंती ने कर्ण को नदी में बहा दिया था। लेकिन कुंती को क्या अपने बेटे से प्यार नहीं? कवि को क्या

---

1. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, द्वि०सं०, पृ० 129
2. निराला रचनावली-1, पृ०142
3. दुष्यंत कुमार : सूर्य का स्वागत, राजकमल प्रकाशन, प्र०सं० पृ०11

अपनी कविता पर भीख नहीं ? शायद कुंठा पर न हो ।

दुष्यंतकुमार को प्रतीक-विधान में अपूर्व सफलता मिली है ।

५.६.६.४ फैंटसी :

कविता कवि की रुचियों तथा अनुभवों के बीच के संघर्ष से निकलनेवाली चीज है । जब रुचियाँ अनुभवों के अनुकूल नहीं पड़तीं तब कवि काल्पनिक कथाएँ गढ़ने लगता है और फैंटसी का जन्म होता है ।[1] काल्पनिक होने के कारण असंभव प्रतीतियों तथा अतिप्राकृत वस्तुओं को इसमें स्थान मिलता है । लेकिन ये असंभव प्रतीतियाँ तथा अतिप्राकृत वस्तुएँ किसी-न-किसी प्रकार कवि के यथार्थ जीवन से संबद्ध रहती हैं ।

आधुनिक कवियों में यद्यपि 'फैंटसी' का निर्वाह निराला ने सफलतापूर्वक किया था तो भी मुक्तिबोध की कविता में इसका प्रचुर प्रयोग मिलता है । अपनी रचनाओं को निर्वैयक्तिक बनाने के उचित साधन के रूप में ही मुक्तिबोध ने 'फैंटसी' को चुन लिया है । मुक्तिबोध की विशिष्टता इस बात में है कि वे पौराणिक मिथकों का अवलंबन बहुत कम करते हैं । उनके मिथक अधिकांश अविश्वसनीय और भयानक हैं । ''हिमानी गुहाविहार का जोगिन उटज'' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

''स्वयं की ग्रीवा पर / फेरता हूँ हाथ कि / करता हूँ
महसूस /
एकाएक गर्दन पर उगी हुई
सघन अयाल और
शब्दों पर उगे हुए बाल तथा —

---

1. "Poetry springs from the contradiction between the instincts and experience of the poet. This tension drives him to build the world of illusory phantasy which yet has a defenite and functional relation to the real world of which it is the blossom."-- Christopher Caudwell, Illusion and Reality, People's publishing house, Ltd., Bombay, first Indian Edition, 1947, P-134.

बाहों में बीरान ?टोन है
गड़े हुए गाहक....''

'मुद्राराक्षस' की भी यही स्थिति है। वह अपने को मेला पाता है। पेशे से जुड़ता नहीं। केवल नाम से ही उसका अतीत से संबंध है, मानव के 'स्व' का आधुनिक विखंडन ही उस कविता में अंकित हुआ है।

''फैंटेसी'' को सृजन-प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग मानकर मुक्तिबोध ने अपनी साहित्यिक डायरी में लिखा है –'' कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी' का रूप धारण कर लेना मानों वह फैंटेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।'' (1)

मुक्तिबोध का तात्पर्य है कि अनुभव-खंडों को 'फैंटेसी' के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही कला है। उनको फैंटेसी से इतना अधिक लगाव है कि यथार्थ में भी उसकी प्रतीक्षा कर बैठे। फैंटेसी और यथार्थ में वे कहाँ अंतर नहीं मानते –

''मैं विचरण करता-सा हूँ एक फैंटेसी में
यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी।'' (2)

- -

1. मुक्तिबोध : एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिसम्बर 1964, पृ० 19
2. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 118

मुक्तिबोध का यह कथन अब सच निकला है क्योंकि अब कल्पना और यथार्थ के बीच की खाई पट गयी है, सत्ता के संदर्भ में सभी मानसिक व्यापारों का समान महत्व है। (1)

5·6·6·5 मुक्तछंद

वैदिक-पंक्तियाँ अधिकांशतः छन्दोबद्ध थीं। वेद-काल में भी मुक्त स्वभाव की पंक्तियों का सर्वथा अभाव न था। संस्कृत की उन बंधन-विहीन पंक्तियों को आधार बनाकर, (2) छंदोमुक्त निराला ने ही हिन्दी में सर्वप्रथम मुक्तछंद का प्रयोग किया था। (3)

परंतु निराला के इस स्वतंत्र छंद का अप्रत्याशित विरोध हुआ। जिन रूढ़िवादियों ने वेद-पंक्तियों को देववाणी-समझकर शीश झुका दिया था, उन्हीं की भर्त्सना मुक्तछंद के प्रवर्तन के सिलसिले में निराला को सहनी पड़ी। आलोचकों की इस दुधारी नीति पर चोट करके उन्होंने पूछा ''क्यों, परमात्मा स्वयं अगर यह ''रबड़ छंद'' और ''केंचुआ छंद'' लिख सकते हैं, तो मैंने कौन-सा कसूर कर डाला? आखिर आपके परमात्मा का ही तो अनुसरण किया है। आप लोग कृपा करके मुझे क्यों नहीं क्षमा कर देते? (4)

निराला की यह धारणा थी कि कविता की मुक्ति वैदिक छंद के क्षेत्र में

---

1. The war between the imagined and the real has ended, All mental events have equal validity, though not, of course, equal importance."-- Robin Skelton, Poetic Truth Heinemann, London, First published, 1978, P-1.
2. निराला : परिमल की भूमिका, उद्धृत: निराला रचनावली-1, पृ401-402
3. डॉ0 बच्चनसिंह : क्रांतिकारी कवि निराला, नंदकिशोर एण्ड संस, वाराणसी, 1961, पृ0 26
4. निराला : 'परिमल' की भूमिका, उद्धृत: निराला रचनावली-1, पृ0 402

अधिक स्वच्छंदता अनिवार्य है। इसलिए उन्होंने ''परिमल'' की भूमिका में लिखा —''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त-मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं — फिर भी स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है।'' (1)

संस्कृत के विभिन्न छंदों का तथा अंग्रेज़ी के 'ब्लैंक वर्स' के अनुकरण पर 'भिन्नतुकांत' या 'अतुकांत' छंद का हिन्दी में प्रयोग हो चुका था। लेकिन निराला की कविता इन सीमों से हटकर ज्यादा स्वच्छंद बनना चाहती थी। उन्होंने अपने मुक्त-स्वभाव के अनुकूल मुक्तछंद को अपनाया।

निराला का 'मुक्तछंद' या 'स्वच्छंद छंद' छंद की भूमि से एकदम दूर भी नहीं है। ''मुक्तछंद तो वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त है।'' (2) मुक्तछंद में जो 'लय' या 'प्रवाह' है वह छंद का समर्थक तत्व बनकर रहता है। ''वही उसे छन्द-सिद्ध करता है, और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।'' (3)

निराला की मुक्तछंद-संबंधी यह धारणा 'अंग्रेज़ी' काव्य के 'फ्रीवर्स' से भी कई अंशों में मेल खाती है —

" Free verse is emotional pattern without any regularity of sound pattern. It is of course nonsense to dismiss it as mere lawlessness. It can be as rigidly disciplined as the most complicate stanza construction,

- -

1. निराला : परिमल की भूमिका, उद्धृत : निराला रचनावली-1, पृ० 401
2. वही, पृ० 405
3. वही, पृ० 405

and it can bring the same complete satisfaction as the formal types of verse, but the sensitiveness of the reader must be far more specialized, and it is idle to pretend that the appeal of the free verse is, or ever can be, as general or as powerful as that of poetry where the emotional rhythm in matched by a regular rhythmical element in the sound pattern. " (1)

कविता को श्रेष्ठ बनानेवाला घटक उसका छिपा आंतरिक भावात्मक तत्व ही है, प्रत्यक्ष बाह्य रूप नहीं । (2)

निराला ने 'स्वच्छंद छंद' और 'मुक्तछंद' के बीच कोई सीमारेखा नहीं खींची । लेकिन डॉ० बच्चन सिंह इन दोनों में थोड़ा सा अंतर देखते हैं – 'स्वच्छंद छन्द में चरणों की मात्राओं को भावानुकूल घटाया-बढ़ाया अवश्य जाता है, किंतु उसमें तुकों की अवहेलना नहीं की जाती । मुक्तवृत्त की तरह मात्राओं की पूरी स्वच्छंदता भी इसमें ग्राह्य नहीं । स्वच्छंदछंद, जिसमें भावानुकूल चरणों की मात्राओं में परिवर्तन किया गया है, मात्रावृत्त में है । इसे माना जा सकता है । '' (3)

मुक्तछंद में मात्राओं की घटने-बढ़ने की पूरी स्वतंत्रता रहती है और तुकों की उपेक्षा की जाती है । आज के नवोदित कवियों ने 'मुक्तछंद' को ही अधिक आग्रह के साथ अपनाया है । 'नवीन काव्य की यह सामान्य-धारा ही बन गयी है । '' (4)

---

1. Elizabeth Drew : Discovering poetry, Oxford University-press, London, 1933, P-126
2. ". . .it is the hidden emotional pattern that makes poetry, not the obvious form"- Elizabeth Drew, Discovering poetry, P- 124
3. डॉ० बच्चनसिंह , क्रांतिकारी कवि निराला, नंदकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, प्र० सं० पृ० 28

प्रतिष्ठित वर्णिक और मात्रिक छंदों से अलग नये कवि भाव के अनुरूप उसकी स्वाभाविक लय के आधार पर छंदों का निर्माण करते हैं । एकपंक्तिक वाक्यों को तोड़कर, अपूर्ण छोड़कर, प्रश्नवाचक - विस्मयादि बोधक चिह्नों का प्रयोग कर, वाक्यों, वाक्यांशों या शब्दों को कोष्ठकों में रखकर नये कवि अपने भावों को व्यक्त करते हैं ।

छंदों से मुक्त रहकर भी अधिकांश नये कवि संगीत की लय से प्रभावित हैं । मुक्तिबोध ही मुख्य अपवाद हैं । मुक्तिबोध की कविता में संगीतात्मकता का स्थान भाषा की नाटकीयता ने ग्रहण किया है । नाट्यात्मक बनने के कारण मुक्तिबोध की भाषा में गद्यात्मकता भी आई है । गद्यात्मक भाषा में एक गर्भिणी का चित्र —

''आँखों में तैरता है चित्र एक
उर में संभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों में
कपड़ों को धोती है धड़-धड़
घर के काम बाहर के काम सब करती है
अपनी सारी ताकत के बावजूद । '' (1)

पाठकों के सामने डगमग, लड़खड़ाहट के पथ पर चलकर सीढ़ीवाली, 'कमान' के घर पर तड़के ही बाहर पानी भरनेवाली तथा एक आँख से कानी होकर भी घर का सारा काम करनेवाली के करुण चित्र एक साथ उभरते हैं । शारीरिक कमियों और दुर्बलताओं की परवाह किये बिना निराला की कानी रानी भी गर्भिन की तरह मन में डूबी हुई है —

- -

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है - पृ079

''बीनती है, काढ़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी। '' (1)

5.7. नई कविता के प्रतिनिधि - कवि

नयी कविता के प्रतिनिधि - कवियों को चुनना कोई आसान कार्य नहीं, क्योंकि वे अब भी मंज़िल पर पहुँचे हुए नहीं, केवल राही हैं। 'तारसप्तक' से लेकर 'चौथा सप्तक' तक की लंबी यात्रा के पश्चात् भी वे विभिन्न राहों की खोज में हैं। इसी कारण से 'अज्ञेय' 'तीसरा सप्तक' का प्रकाशन करते हुए यह कहने को बाध्य हुए कि 'द्विवेदी काल' के भी मैथिली शरण गुप्त या छायावादी युग के भी निराला जैसा कोई रचना-पुरुष नयी कविता ने नहीं दिया है। '' (2)

फिर भी सप्तकों के रचनाकार एक प्रकार से प्रतिष्ठित हो चुके हैं और 'नयी कविता' में उनका स्थान सुस्थिर हो गया है। परंतु इस आधार पर यह मानना कि सप्तकों के कवि ही प्रयोगवाद तथा नयी कविता के सर्वांगीण विकास में सहयोग दिया है, भूल है। सप्तकों के बाहर भी श्रेष्ठ कवियों की कमी नहीं है। (3)

चार सप्तकों के अंतर्गत कवियों में से प्रतिनिधि-कवियों को चुनना असाध्य कार्य है। हमने यहाँ सप्तकों के प्रमुख सात कवियों के साथ सप्तकों के बाहर के सात कवियों को भी स्थान दिया है। 'तारसप्तक' के तीन कवि - मुक्तिबोध -गिरिजाकुमार माथुर और अज्ञेय — को -'नयी कविता

- -

1. निराला : निराला रचनावली-2, पृ 32
2. अज्ञेय : तीसरा सप्तक, भूमिका, पृ06

में भी अपना स्थान पा सके, प्रस्तुत किये गये हैं। 'दूसरा सप्तक' से शमशेर बहादुर सिंह और धर्मवीर भारती स्वीकार किये गये है। 'तीसरा सप्तक' और 'चौथा सप्तक' से एक-एक कवि को ही स्थान दे सकी हैं।

सप्तकों के कवियों की सूची नीचे दी जा रही है :-

तारसप्तक : 1. गजानन माधव मुक्तिबोध,
2. नेमिचन्द्र जैन, 3. भारत भूषण अग्रवाल,
4. प्रभाकर माचवे, 5. गिरिजाकुमार माथुर
6. रामविलास शर्मा और 7. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'।
(प्रकाशन काल : 1943)

दूसरा सप्तक : 1. भवानी प्रसाद मिश्र, 2. शकुन्त माथुर
3. हरिनारायण व्यास, 4. शमशेर बहादुरसिंह
5. नरेश मेहता 6. रघुवीर सहाय और
7. धर्मवीर भारती।
(प्रकाशन काल : 1951)

तीसरा सप्तक : 1. प्रयाग नारायण त्रिपाठी, 2. कीर्ति चौधरी
3. मदन वात्स्यायन, 4. केदारनाथ सिंह
5. कुंवर नारायण, 6. विजयदेव नारायण साही और
7. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

(प्रकाशन काल : 1959)

चौथा सप्तक : 1. अवधेश कुमार , 2. राजकुमार कुंभज
3. स्वदेश भारती , 4. नंदकिशोर आचार्य ,
5. सुमन राजे , 6. श्रीराम वर्मा
और 7. राजेन्द्र किशोर ।
(प्रकाशन काल : 1979)

सप्तकों के प्रतिनिधियों के रूप में यहाँ स्वीकृत कवि :-

1. अज्ञेय , 2. मुक्तिबोध , 3. गिरिजा कुमार माथुर ,
4. धर्मवीर भारती , 5. शमशेर बहादुर सिंह
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और 7. स्वदेश भारती

सप्तकों के बाहर के प्रतिनिधि - कवि :-

1. डॉ० जगदीश गुप्त , 2. नागार्जुन
3. लक्ष्मीकांत वर्मा 4. धूमिल
5. विपिन कुमार 6. मलयज
और
7. अजितकुमार ।

5.7.1. सप्तकों के प्रतिनिधि कवि :

5.7.1.1. अज्ञेय :

तारसप्तकों के सातवें कवि 'अज्ञेय' सप्तकों के संपादक भी हैं। उनके संपादकत्व में चार सप्तक निकल चुके हैं। उनका जन्म सन् 1911 में हुआ। सप्तकों के कवियों में बुजुर्ग, अनुभव संपन्न, काव्य कुशल 'अज्ञेय' आधुनिकों के आचार्य माने जाते हैं। पहले राजनीति में उनकी बड़ी रुचि थी, अंत में साहित्य क्षेत्र में आकर जम गये। 'प्रतीक', 'दिनमान' 'नया प्रतीक' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं के वे संपादक रहे। घुमक्कड़ प्रकृति के अज्ञेय ने देश-विदेश की यात्राओं में कई साल बिताये हैं।

सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत व्यक्तित्व के होने के कारण उन्हें प्रकृति से गहरा लगाव है, मिट्टी से घनिष्ट संबंध है। वे एक ओर भावुक कवि हैं तो दूसरी ओर गंभीर अध्ययन से उन्होंने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

अकेले का दृष्टिकोण लेकर अज्ञेय काव्य-क्षेत्र में उतरे थे। 'अज्ञेय' का प्रथम काव्य-संकलन 'भग्नदूत' सन् 1933 में प्रकाशित हुआ। इसकी अधिकांश कविताएँ प्रेमानुभूति पर आधारित हैं। रोमानी मनस्थितियों का चित्रण करनेवाली ये कविताएँ छायावादी शैली में लिखी गयी हैं। पुरानी प्रेम पद्धति को अपनाकर कालिदास की भाँति कवि प्रकृति को देखते हैं और प्रेयसी से मिलने की व्याकुल इच्छा प्रकट करते हैं —

''संध्या की नीरवता में
जब तुमको मैं पाता हूँ,
लखकर तेरी सुषमा को —

पुलकित मैं हो जाती हूँ –
तब क्यों तू मुझको निर्मम !
ऊषा को याद दिलाता,
क्यों आता है मन पावन –
की देरी तभी दबाता ? '' (1)

''शिशिर का भिनसारा', 'अन्तरंग चेहरा' जैसी कविताओं में कवि ने प्रेम की उच्च उदात्त अनुभूति के रूप में चित्रित करके यह सिद्ध कर दिया है कि प्रेम-भावना केवल भौतिक या शारीरिक नहीं वह अलौकिक अनुभूति है, जो हमें देवत्व तक पहुँचा देती है ।

''भग्नदूत'' की कुछ कविताओं में क्रांति का शंखनाद भी सुनाई देता है :'–

''तोड़ो बन्धन, छोड़ो गायन,
सब दो एकदम हाहाकार,
आगे है अब युद्ध-क्षेत्र-विस्तार,
उसके आगे - कारागार ! '' (2)

सन् 1942 में अज्ञेय का दूसरा काव्य-संग्रह 'चिन्ता' प्रकाश में आया जिस में मुक्त-रूप से स्त्री-पुरुष के आकर्षण-विकर्षण, उनके बीच का चिरंतन संघर्ष आदि का विश्लेषण किया गया है ।

सन् 1943 में अज्ञेय के संपादकत्व में सात कवियों की कविताओं का संकलन 'तारसप्तक' निकला जिनमें वे स्वयं भी एक कवि रहे । नये-नये प्रयोग करनेवाले 'तारसप्तक' के कवियों में अन्वेषण की मुद्रा में ही समानता थी । 1946 ई० में अज्ञेय का तीसरा मौलिक काव्य संकलन 'इत्यलम्'

- -

1. अज्ञेय : भग्नदूत : हिन्दी भवन, लाहौर, प्र०सं० 1933, पृ०26
2. अज्ञेय : 'क्रांति पथे ' (सन् 1932) भग्नदूत, पृ० 140

प्रकाशित हुआ । 126 कविताओं का यह संग्रह पाँच भागों में बाँटा गया है । प्रथमांश में तत्कालीन क्रांतिकारी आंदोलन का स्वर है तो बाद की कुछ कविताओं में देशभक्ति की भावना मिलती है । विफल प्रेम की विकलता भी कहीं कहीं व्यक्त हो उठी है । कुछ कविताएँ रहस्यवादी हैं, जिनमें कवि प्रश्न को बाहर नहीं; अपने अन्तर की शान्ति में ही खोजते हैं । इस संग्रह के अंतिम खंड में कुछ प्रयोगात्मक व्यंग्य-प्रधान कविताएँ भी हैं ।

सन् 1949 में प्रकाशित 'हरी घास पर क्षण भर'' 49 कविताओं का संग्रह है । इनमें कुछ कविताएँ मुक्त छंद में लिखी गयी हैं, कुछ गीतों की कोटि में आती हैं । प्रकृति का चित्रण, प्रेमानुभूति का निरूपण एवं वासना का अंकन इन कविताओं में हुए हैं ।

1951 ई० में अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' का संपादन किया । उसकी भूमिका में उन्होंने 'प्रयोगवाद' शब्द पर असंतोष प्रकट करते हुए 'तार सप्तक' के कवियों के कार्यक्रम को अधिक व्यापक घोषित किया । (1) प्रयोगवाद का स्थान नयी कविता ने ले लिया ।

1954 ई० में प्रकाशित 'बावरा अहेरी' में भी प्रणय-संबंधी भावनाओं की प्रधानता है । 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957 ई०) में कवि का आत्म-निवेदन है । 'अरी ओ करुणा प्रभामय' सन् 1959 में प्रकाशित हुआ । इसकी कविताएँ 'नयी कविता ' और नये कवि की विशेषताओं का प्रतिपादन करती हैं । वस्तुतः प्रकृति पर बल देने के कारण इन कविताओं में रागतत्व की कमी स्पष्ट लक्षित होती है । 'तीसरा सप्तक' का प्रकाशन भी इसी समय हुआ था ।

- -

1. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ06

'आँगन के पार द्वार' (1961 ई) 'पूर्वा' (1965 ई०) और कितनी नावों में कितनी बार (सन् 1962-से 66 तक की कविताएँ) आदि काव्य संग्रह नवरहस्यवाद पर आधारित हैं और नवीन संवेदना के ये काव्य एक नयी शैली की खोज में है ।

सत्य की खोज और उसका संप्रेषण ही 'अज्ञेय' का ध्येय है । क्योंकि (1) सत्य ही उनके लिए साध्य है शिल्प या प्रयोग साधन से बढ़कर कुछ नहीं ।

भाषा को समृद्ध बनाने का प्रयास भी उनसे कम नहीं हुआ है । 'अज्ञेय' की प्रारंभिक कविताओं में द्विवेदी कालीन वर्णनात्मकता और छायावाद की अस्पष्टता का प्रभाव था । बाद की कविताओं की भाषा आधुनिक परिवेश के अनुकूल उभरती हुई संवेदना को प्रेषित करने की विशेष शक्ति रखती है । निराला के बाद भाषा को रूढ़ि से मुक्त करने का सर्वाधिक प्रयास अज्ञेय द्वारा ही हुआ । "'अज्ञेय' एक अत्यंत सचेत, कुशल शब्द शिल्पी है । 'निराला' में अपने ढंग से वह ताक़त और नफ़ासत थी – यही कहीं ही बारीकी है – हर शब्द और उसके वजन और ध्वनि को तौलने में अज्ञेय कुशल है ।" (2)

अज्ञेय की भाषा में वैविध्य का दर्शन होता है, लचीलापन भी, लेकिन अनगढ़पन से वह सदा दूर है । (3) 'बावरा अहेरी' की भाषा लोक-भाषा के निकट है, 'आँगन के पार द्वार' की भाषा में रहस्यात्मकता आ गयी है । संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू शब्दों और लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग उन्होंने प्रचुर मात्रा में किया है । इन सभी भाषाओं और प्रयोगों के माध्यम से अज्ञेय ने सत्य का कुछ अन्वेषण किया है और अपनी भावसंकुलता

---

1. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, पृ06
2. प्रभाकर माचवे : 'नयी कविता: निराला से मुक्तिबोध' नयापन माचवे-मुक्तिबोध, संपा0 लक्ष्मण दत्त गौतम, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 1972, पृ0229
3. विद्यानिवास मिश्र (संपा०) आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय,' परिचय, पृ031

है अनुरूप छन्द की खोज की है ।[1] शब्दों की शक्ति पर इतना अधिक ध्यान देनेवाले अन्य कोई आधुनिक कवि हिन्दी में नहीं हुए हैं ।

5.7.1.1.1. कवि के अपने सिद्धांत

अज्ञेय के अपने कुछ सिद्धांत हैं, उन सिद्धांतों पर अमल करना ही वे कवि-धर्म समझते हैं । उनका दावा है कि वे पुराने कवियों के समान 'स्वांतः सुखाय' नहीं लिखते । उनके अनुसार 'स्वांतः सुखाय' लिखना अमनोवैज्ञानिक है । कला की अभिव्यक्ति पाठक, श्रोता या ग्राहक को मन में रखकर की जाती है ।

लेकिन उनके सप्तकों के साथी कवियों ने आदर्श रूप में इसे ग्रहण नहीं किया है । 'दूसरा सप्तक' की कवयित्री शकुंत माथुर[2] तथा तीसरा सप्तक के कवि राजेन्द्र किशोर[3] ने स्पष्ट वाणी में कह दिया है कि 'स्वांतः सुखाय' ही वे काव्य-सृजन में रत हैं । इस तथ्य का खंडन नहीं किया जा सकता कि साहित्य की सृष्टि उसके स्रष्टा को भी स्वर्गिक आनंद प्रदान करती है ।

'अज्ञेय' साधारणीकरण और संप्रेषण की समस्या को सुलझाने के लिए ही भाषा की शक्ति बढ़ाते हैं, शब्दों को निरंतर नया संस्कार देते हैं, परंतु वे दुरूहता को अपने आप में बुरा भी नहीं मानते । क्योंकि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की जानकारी रखनेवाले सजग कलाकार से इसकी आशा नहीं की जा सकती कि वह जो कुछ अभिव्यक्त करे हमेशा साधारण जनता की समझ में आये ।[4] इस प्रकार वे एक ओर साधारणीकरण पर ज़ोर देते हैं तो दूसरी ओर इसके विरोधी भी लगते हैं ।

---

1. विद्यानिवास मिश्र (संपा) आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय' परिचय, पृ0 3।
2. शकुंत माथुर : दूसरा सप्तक, ज्ञानपीठ, दिसम्बर 1970, पृ0 3।
3. राजेन्द्र किशोर : तीसरा सप्तक, ज्ञानपीठ, पृ0 265
4. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ0 12

'अज्ञेय' में और भी कई विरोधी तत्व पाये जाते हैं। प्रेम व्यापार की स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह करके 'योनवर्जनाओं के पुंज' को निषेध कर देनेवाले अज्ञेय नैतिक क्षेत्र में अराजकता लानेवाली आधुनिकता के विरोधी भी हैं। 'यांत्रिकता की ओर ले जानेवाली, विघटन की ओर उन्मुख करनेवाली, पाश्चात्य रंग में रंगी हुई आधुनिकता के वह विरुद्ध हैं। उनकी दृष्टि में आधुनिकता की धुरी है निरंतर परिवर्तनशील संस्कारवती चेतना और मानवीय संवेदनापूर्ण प्रवृत्ति जो चेतन और अचेतन को मिलाती है, अनेकता में एकता, गोचर में अगोचर और सभी रूपों में एक अरूप को देखती है।'' (1)

इस प्रकार की बदलती भूमिकाओं के कवि 'अज्ञेय' से बहुत कुछ आशा रखी जा सकती है क्योंकि अब भी उनकी लेखनी कर्मरत है; जीवन के आस्वादन से कवि ने विराम नहीं लिया है। चमत्कारवाद से हटकर रचना-कौशल को कवि-कर्म मानकर वे आगे बढ़ रहे हैं।

5.7.1.2 गजानन माधव मुक्तिबोध

ग्वालियर के एक कुलकर्णी ब्राह्मण परिवार में 13 नवंबर 1917 को मुक्तिबोध का जन्म हुआ। बचपन लाड़-प्यार में बीतने के कारण थोड़ा जिद्दी निकले। घर की नौकरानी की बेटी से उनकी शादी हुई।

शुरू से ही रवीन्द्रनाथ और गांधी की ओर मुक्तिबोध का झुकाव था। रेडियो के समाचार विभाग, पत्र-पत्रिकाओं तथा स्कूल-कालेजों में उन्होंने नौकरी की। बर्गसाँ, फ्रायड और रूसी साहित्यों से वे विशेष रूप से परिचित थे।

मुक्तिबोध की नियति यह थी कि उन्हें अपने जीवन-काल में किसी काव्य संकलन को प्रकाशित देखने का अवसर न मिला। उनका एकमात्र काव्य-संकलन

---

1. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त : आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ077

'चाँद का मुँह टेढ़ा है', मृत्यु (11 सितंबर 1964) के बाद ही प्रकाशित हुआ। इससे पहले भारतीय संस्कृति पर उनका एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था, लेकिन मध्य प्रदेश सरकार ने उसपर प्रतिबंध लगाया। 1963 में 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध'' लिखा। 1964 ई० को वे बीमार हो गये और उसी वर्ष चल बसे।

मरणोपरांत ही मुक्तिबोध की अन्य कृतियों का प्रकाशन हुआ जिन में 'नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र' और 'एक साहित्यिक की डायरी' विशेष महत्व रखती हैं।

मुक्तिबोध की आरंभिक कृतियाँ माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' में प्रकाशित होती थीं, लेकिन कवि-रूप में उनकी ख्याति 'तारसप्तक' के प्रकाशन से शुरू होती है। वे शुरू से ही 'रिबेल' थे। जीवन के हर अपूर्ण पक्ष पर उन्होंने असंतोष प्रकट किया और प्रतिकूल परिस्थिति में भी उन्होंने अन्याय से संधि न की। मानव को शोषण से मुक्त करने का आग्रह उनकी प्रगतिशील कृतियों में पाया जाता है। 'भीड़' में अपने को अकेले पानेवाले मुक्तिबोध की सबसे बड़ी कमजोरी भीड़ ही थी---

'' मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी सुन्दर और शोषण-मुक्त कब होंगे ? '' (1)

ईमानदार, दयालु, कर्मठ और विद्रोही व्यक्तित्व के होने के कारण उन्होंने समष्टि की चिंता अधिक रखी। 'मुक्तिबोध ने युग की सारी विषमता, सारी पीड़ा, सारी तनाव, सारे जहर को अपने भीतर समेटकर, अपने अनुभवों तथा चिन्तनों के आधार पर रोगग्रस्त समाज तथा उसके भीतर पलनेवाले सृजन को उपचार का सही रास्ता सुझाया है। '' (2)

- -

1. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0182
2. शिवकुमार मिश्र : आधुनिक कविता और युगदृष्टि, पृ0250

उन्होंने युग के सारे ज़हर को पी लिया और प्राण देकर युग का पथ प्रशस्त किया । प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी कवि के रूप में उनकी गणना की जाती है, लेकिन कविता को वादों में बद्ध रखना उन्हें पसंद नहीं था । प्रगतिशील संदर्भ में जीवन-सत्य की खोज उन्होंने अवश्य की है और प्रयोग भी कर रहे हैं । लेकिन उनके लिए अपना जीवन ही प्रयोग की वस्तु था ।

मुक्तिबोध अधुनातन कविता के प्रतिनिधि कवि हैं । युग के ज्वलंत सत्यों का साक्षात्कार उन्हें होता है । उनकी कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सत्यों का साक्षात्कार करने के साथ-साथ कवि स्वप्न की दुनिया में भी खो जाते हैं । 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में कवि का यथार्थ तथा फैंटसी दोनों एक समान शक्तिशाली दिखाई देते हैं । 'जितना प्रखर यथार्थबोध, उतनी सशक्त फैंटसी-मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं की विशेषता यही है ।' (1) कवि का दृढ़ विश्वास है कि उनकी यह फैंटसी भविष्य में यथार्थ में परिणत होनेवाली है । (2) अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उनका यथार्थ-बोध किसी फैंटसी की माँग करता है । 'फैंटसी' को विशिष्ट बनानेवाले उपकरण कवि का यथार्थ बोध और जीवनानुभव हैं । निराला की भाँति मुक्तिबोध भी प्रखर यथार्थबोध और गहरे जीवनानुभवों से संपन्न हैं ।

मुक्तिबोध के काव्य का बौद्धिक आधार भी सुदृढ़ है । सस्ती या झूठी भावुकता के वे शिकार नहीं होते । सिद्धांत कथन या सीख देने में भी उनका विश्वास नहीं ।

मुक्तिबोध सारे जीवन में एक प्रकार का मानसिक संघर्ष भोगता रहा । एक ओर वे सब समाज युक्त की बातों में भरना चाहते हैं —

- -

1. शिवकुमार मिश्र : आधुनिक कविता और युगदृष्टि : पृ0265
2. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0118

''बाहों में कस लूँ/हृदय में रख लूँ/घुल जाऊँ,
मिल जाऊँ लिपटकर उससे। '' (1)

दूसरी ओर वे उस से दूर होना भी चाहते हैं —

''डरता हूँ उससे/चपकिया देता है तुम्हें शिकार से/
खतरनाक, खुरदरे कगार-तट पर/ शोचनीय स्थिति में ही
छोड़ देता मुझको। '' (2)

यह मानसिक द्वन्द्व उन्हें आत्म-विश्लेषण करने को बाध्य करता है, कवि भीतरी संघर्षों से प्रेरित होकर जब आत्म विश्लेषण हेतु बैठ जाते हैं उनकी लेखनी से अधिक शक्तिशाली कविताएँ उतरती हैं।

मुक्तिबोध को अपने परिवार की चिंता से बढ़कर समाज की चिंता थी, मानव की चिंता थी। मानव की चिंता करते-करते वे एक भयावह वातावरण में पहुँच जाते हैं और अंधकार से कई चेहरों को उभरते देखते हैं। कभी लंबी नाकवाला कभी कपालाकार और कभी बावड़ी के गहरे पानी में शरीर के मैल को धोनेवाला ब्रह्मराक्षस दिखाई देता था। चाहे मनु का चेहरा हो या निराला का हो या अन्य किसी का, सबों में वे अपनी ही प्रतिछवि देखते हैं —

''पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा
उदास इकहरा
स्लेट - पट्टी पर खींची तस्वीर
भूत जैसी आकृति
क्या वह मैं हूँ ?
मैं हूँ। '' (3)

- -

1. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, प्र०सं० 1964, पृ०270
2. वही, पृ०271

मुक्तिबोध भी निराला की भाँति समाज से टूटी हुई एक इकाई है। ज्यादा आग्रह करने पर भी वे समाज में रम नहीं सके क्योंकि प्रत्येक मनुष्य पर विश्वास रखने पर भी उन्हें बदले में धोखा ही मिला। अकेले ही जाने, किसी खड्डे में गिर जाने और ऊपर से मिट्टी गिरकर उसके नीचे दब जाने का भय उन्हें हमेशा सताता है। कवि का यह भय समस्त दुनिया का भय है। युद्ध की छाया में रहनेवाले विश्व का भय है। ऐसी परिस्थिति में सारा ज्ञान-विज्ञान या बौद्धिक विकास निरर्थक लगता है और कवि उलटी दिशा में चलने लगते हैं। व्यर्थता-बोध तथा एकाकीपन के शिकार बनते वे नज़र आते हैं। —

''मेरी असंग स्थिति में चलता - फिरता साथ है,
अकेले में साहचर्य का हाथ है,
उनका जो तुम्हारे द्वारा गर्वित है
किंतु वे मेरी व्याकुल आत्मा में बिंबित हैं, पुलकित हैं
इसलिए, तुम्हारा मुझ पर सतत आघात है।।
सब के सामने और अकेले में।'' (1)

जीवन के संघर्ष में इतने अधिक घाव झेलनेवाले मुक्तिबोध शरशैया पर पड़े भीष्म की याद दिलाते हैं।(2) निराला को आस्तिकता का सहारा था। नास्तिक मुक्तिबोध का हाथ पकड़ने की कोई शक्ति न थी, इसलिए अकेले ही उन्होंने सब कुछ झेल लिया। मुक्ति के लिए किया गया मुक्तिबोध का यह संघर्ष कम महत्वपूर्ण नहीं। (3)

- -

1. मुक्तिबोध ; चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ0 108
2. प्रभाकर माचवे : नयी कविता : निराला से मुक्तिबोध, गजानन माधव मुक्तिबोध संपा० लक्ष्मणदत्त गौतम, 1972, पृ0233
3. प्रभाकर माचवे : गजानन माधव मुक्तिबोध, संपा0 लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ0 233

मुक्तिबोध पश्चिम से आयी ज्ञान की आंधी मूंदकर स्वीकार नहीं करते । 'वे उसे पचाकर एक नया रसायन पैदा करना चाहते हैं ।'(1) इसलिए मुक्तिबोध की कविता की आत्मा भारतीय है ।

''मायकोवस्की', 'वाल्ट व्हिटमैन' और 'नेरूदा' का उन्होंने गहन अध्ययन किया है । वाक्य-विन्यास और पद-रचना में इन विदेशी कवियों का प्रभाव उभरा है । नये अर्थ के आलोक में ही वे पुराने बिंबों को देखते हैं । वे शब्दों के जादूगर हैं और यही उनकी कविता को एक नयी प्राणवत्ता प्रदान करता है ।(2) शुरू शुरू में वे छंद-बद्ध रचनाएं किया करते थे, लेकिन अंत में आकर छंदमुक्त कविताएं अधिक लिखीं ।

अपने अभ्युदय-काल में मुक्तिबोध छायावाद से प्रभावित थे । छायावाद की रूमानी प्रवृत्तियों से उबरकर वे प्रगतिवादी धारा पर आये । लेकिन जब प्रगतिवाद से भी उनका विश्वास उठ गया, वे नयी कविता के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए । परंतु वे हिन्दी को ऐसा ज्यादा न कर सके । 'वह रक्तांक होकर, एक धूमकेतु की तरह उठा और क्षण भर कौंधकर कण-कण बिखर गया ।'' (3)

5.7.1.3. गिरिजाकुमार माथुर

गिरिजाकुमार माथुर अपने अनूठे व्यक्तित्व के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं । कभी हार न माननेवाले, चुनौतियों को बेहिचक स्वीकार करने वाले ईमानदार कलाकार हैं । उनके मुक्त लोकयुक्त व्यवहार में एक निश्छल भरा

---

1. प्रभाकर माचवे : गजानन माधव मुक्तिबोध, संपा० लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ०236
2. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, पृ०143
3. प्रभाकर माचवे : नयी कविता: निराला से मुक्तिबोध' (अध्याय), गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ०230

सकता है । प्रायः अपने में डूबा मन लेकर फिरते हैं और परिस्थिति की परवाह किये बिना सहज रूप से प्रतिक्रियाशील होते हैं ।

माथुर का जन्म 22 अगस्त 1919 को मध्य प्रदेश में हुआ । उनके कवि-मन पर जन्मभूमि तथा वहाँ के सुन्दर वातावरण का अपरिमित प्रभाव पड़ा है ।

प्रारंभ में ब्रजभाषा में समस्या-पूर्ति की ओर उनका ध्यान रहा । फिर खड़ीबोली में लिखने लगे । छायावाद-काल में उनकी कविताओं पर महादेवी-शैली की स्पष्ट छाप थी । लेकिन 1937 से लेकर उनकी शैली में परिवर्तन दिखाई देने लगा । छायावादी वायवीयता तथा अध्यात्म की ओट से यथार्थ के धरातल पर आ गये । नये प्रयोगों पर उनकी आस्था भी बढ़ी । शेक्सपियर, कीट्स और मिल्टन का गहन अध्ययन तथा निराला का संपर्क उन्हें नये-नये प्रयोगों के लिए प्रेरित करते रहे । ...''जिस प्रकार कविता की रूढ़ियाँ तोड़ने में निराला का विश्वास था उसी प्रकार कवि माथुर ने भी काव्य-परंपरा को विच्छिन्न कर नवीन प्रयोगों का पथ प्रशस्त करने का दृढ़ निश्चय किया । '' (1)

सन् 1941 में जब माथुर का पहला काव्य संकलन 'मंजीर' निकला तब उनकी भूमिका में निराला ने लिखा था -- 'ये सही मानी में कवि और गायक हैं । मेरे घनिष्ट मित्र हैं । मैं अपने यहाँ पार्कों में, गोमती किनारे, सम्मेलनों में, गोष्ठियों में, मित्रों की बैठकों में बहुत बार उनकी लयमयी मधुर आवृत्ति सुन चुका हूँ । '' (2)

....

1. डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र : गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य, पृ0 18
2. गिरिजाकुमार माथुर, मंजीर, भूमिका

1943 ई० में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' में माथुर को भी स्थान मिल गया और प्रस्तुत संकलन में उनकी बारह कविताएँ प्रकाशित हुईं। 'चूड़ी का टुकड़ा' 'रेडियम की छाया', 'कुतुब के खंडहर' 'भीमाडिल' आदि बहुत लोकप्रिय बन चुकी हैं। '' 46 में माथुर का दूसरा काव्य संकलन निकला : 'नाश और निर्माण'। तीसरी पुस्तक 'धूप के धान' नयी कविता की श्रेष्ठ उपलब्धि मानी जाती है। 'शिला पंख चमकीले' (1961 ई०), 'जो बँध नहीं सका' (1968 ई०) आदि उनके अन्य काव्य संकलन हैं।

माथुर का कविव्यक्तित्व निरंतर गतिशील रहा है। वह किसी बिंदु पर आकर टिकता नहीं। टेक्नीक का उन्हें बड़ा ध्यान है। 'तारसप्तक' की कविताओं में उन्होंने विषय से बढ़कर टेक्नीक पर ही ध्यान केन्द्रित रखा। ''विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेक्नीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है। यही कारण चित्र को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं वातावरण के रंग उसमें भरता रहा हूँ। '' (1)

चित्र में वातावरण के रंग भरने का यह क्रम अवश्य ही प्रभावशाली बन पड़ा है —

''रही कसक भरी जंगल के टीलों पर
काँप कर चलती समीर हिलत की
लंबी लहर सी। '' (2)

'नाश और निर्माण' छायावाद और प्रगतिवाद के संधिकाल की उपज है। इसमें सृष्टि के नाश और निर्माण दोनों पक्षों का उद्घाटन हुआ है। एक ओर कवि उदासी, ऊब और अवसाद से पीड़ित हैं तो दूसरी ओर

- -

1. गिरिजाकुमार माथुर : तारसप्तक, वक्तव्य, द्वितीय संस्करण, 1966 पृ० 124

प्रेम तथा सौंदर्य की ओर आकृष्ट हैं । नाश की छाती पर निर्माण का महल खड़ा करना ही कवि का लक्ष्य है —

''जीवन में फिर लौटी मिठास है,
गीत की आखिरी मीठी लकीर-सी
प्यार भी डूबेगा गोरी - सी बाहों में,
ओठों में, आँखों में,
फूलों में डूबे ज्यों
फूल की रेशमी - रेशमी छाँहें । '' (1)

'धूप के धान' में मानवतावादी स्वर की ही मुख्यता मिली है । लेकिन 'शिला पंख चमकीले' में कवि का मानव पर विश्वास टूटता नज़र आता है । मानव का रूप बिगड़ गया है । उसके स्वर में बिखराव आ गया है । वह निराश सा हो गया है । 'आदमी पहचान में नहीं आ पाता कि यह नव बर्बर आदमी ही है या सामग्री । ''(2) 'छामिक मति' में आज के मानव की क्षुद्र मनोवृत्ति का उद्घाटन हुआ है —

''अपने से बड़ों को
देखकर तरसता है
अपने को औरों को
किस्मत को, कर्मों को
कोसता कलपता है
तुरंत नये कैसिए
तुच्छ क्षुद्र बातों पर —

- -

1. गिरिजाकुमार माथुर : तारसप्तक, पृ० 127
2. '' शिला पंख चमकीले, भूमिका

नियम बिगाड़ता है
औरों बदले घर
अपने ईमान का
दिवाला निकालता है । '' (1)

''जो बंध नहीं सका'' आधुनिक भावबोध की कविताओं का संग्रह है । वर्तमान जीवन के यथार्थ का करुण क्रन्दन उसमें सुनाई देता है । हमारे संस्कारों को पीछे ढकेलकर कवि आगे बढ़ जाते हैं । कवि को ऐसी दशा में इस बात का निर्णय करने में कठिनाई महसूस हो रही है कि जानवर या देवता में से किस को आदर्श रूप में स्वीकार किया जाए । दोनों अति की हदें हैं, सच्चा मानव कोई भी नहीं बनता —

''हर आदमी में देवता है
और देवता बड़ा बोदा है
हर आदमी में जन्तु है
जो पिशाच से न ओछा है
हर देवतापन
हमको नपुंसक बनाता है
हर पैशाचिक पशुत्व
नये जानवर बढ़ाता है
हम क्या करें
देवता और राक्षस के द्वन्द्व से कैसे छूटें ? '' (2)

माथुर जी, बाद की कविताएँ काल्पनिक दुनिया से हटकर अपनी सुख-दुखमयी अनुभूतियों की निश्छल अभिव्यक्ति करती हैं । सामाजिक चेतना को मार्क्सवादी विचारों से संबद्ध न करके मानवतावादी दृष्टि से देखने परखने का वे प्रयास करते हैं ।

---

1. गिरिजाकुमार माथुर : शिला पंख चमकीले, पृ० 61
2. " : जो बंध न सका, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1968, पृ०4

5.7.1.4. धर्मवीर भारती :

'दूसरा सप्तक' के अंतिम परंतु श्रेष्ठ कवि हैं धर्मवीर भारती । वे पहले प्रोफेसरी करते थे, लेकिन पत्रकारिता में ही उनका मन लग गया । 'धर्मयुग' साप्ताहिक का संपादन करनेवाले डॉ० धर्मवीर भारती को अन्यान्य विधाओं से कविता ही अधिक पसंद है । उन्हें विश्वास है कि संघर्ष पूर्ण जीवन को उद्घाटित करने की शक्ति आज की कविता में है ।

धर्मवीर भारती अपने काव्य-जीवन के आरंभ में छायावादी लहर में पड़कर रूमानियत तथा यौवन की मांसलता की ओर ज्यादा झुके थे लेकिन नवीनता का आग्रह कभी भी न छोड़ा । अज्ञेय की भांति अनकहे सत्य की खोज में वे सदा व्यस्त हैं । उनकी राय में 'सबसे प्रिय कविताएँ वे हैं जो 'गटर' में पड़े शालिग्रामों, [illegible] दीवारों और धूल में लिपटे हुए बच्चों की भोली आँखों में झलकती हैं, लेकिन जिन्हें न किसी ने कभी लिखा, न किसी ने गाया । '' (1) धर्मवीर-भारती सच्चे अर्थ में भावुक कवि हैं ।

भारती परंपरा के विरोधी नहीं प्रयोग मात्र के लिए 'प्रयोग' को अपनाते भी नहीं । (2) राजनीतिक दासता से उन्हें घृणा है । साहित्य पर राजनीति के दबाव को वे मानते नहीं ।

आधुनिकता को वे यों ही आत्मसात् कर लेते हैं, परंतु शर्त यह है कि यह आधुनिकता मानवता की पुष्टि में कभी बाधक न हो ।

'दूसरा सप्तक' में संकलित कविताओं के अतिरिक्त धर्मवीर भारती की अन्य प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं – ''ठंडा लोहा '' (1952)

- -

1. दूसरा सप्तक, कवि परिचय, पृ० 163
2. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक, वक्तव्य, पृ० 167

'अंधायुग' (1954) 'कनुप्रिया' (1959) और 'सात गीत वर्ष' (1959)। कुछ विदेशी कविताओं का अनुवाद भी 'देशान्तर' नाम से प्रकाशित हुआ है । कवि के रूप धर्मवीर कुशल समीक्षक तथा सफल कथाकार भी हैं । 'गुनाहों का देवता' 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं ।

धर्मवीर भारती की प्रारंभिक रचनाएं अति भावुकता से आक्रांत हैं तो परवर्ती रचनाएं गंभीर विचारों से पुष्ट हैं । कभी कभी भारती का मन भी अभाव का अनुभव करने लगता है, निराशा से ग्रस्त हो जाता है, असफलता का शिकार बनता है । ऐसे अवसरों पर वे अपने को एकदम असहाय पाते हैं —

''ऐसा लगता आज कि मेरा सारा जीवन नष्ट
ऐसा लगता आज कि मेरी सारी साधना भ्रष्ट
मैं ने हर दम घोंटा अपने सपनों का दम । '' (1)

लेकिन अगले ही क्षण पराजय के अंधकार से जूझने को वे डटकर खड़े हो जाते हैं और निराला की तरह अंधकार के गरजते सागर की चुनौती स्वीकार करने में आनंद का अनुभव करने लगते हैं । ''एक नशा होता है अंधकार के गरजते हुए महासागर की चुनौती स्वीकार करने का । इस नशे में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुला मिला रहता है कि उसके आस्वादन के लिए मन बेबस हो उठता है । ''(2)

अस्तित्ववाद से प्रभावित होकर भी भारती अंधकार पर विजय पाने में नियति को बाधक तत्व नहीं मानते । उनके अनुसार मनुष्य के भविष्य को बनाने बिगाड़ने का अधिकार केवल मनुष्य को ही है —

- -

1. धर्मवीर भारती : ठंडा लोहा, पृ० 63
2. धर्मवीर भारती : उद्धृत : डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, पृ०145

''नियति नहीं है पूर्वनिर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है। '' (1)

उन्हें पूरा पूरा विश्वास है कि रात कभी कभी कटेगी और सवेरा फूटते फूटते सब खिल उठेंगे —

'' कल भी हम खिलेंगे
हम चढ़ेंगे
हम उगेंगे
और . . . .
वे सब साथ होंगे
आज जिनको रात ने भटका दिया है। '' (2)

धर्मवीर भारती की काव्य यात्रा के मुख्य दो मील पत्थर हैं— 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया'। द्वितीय महायुद्धोत्तर सामाजिक तथा सांस्कृतिक विसंगतियों तथा युग-जीवन की कुरूपताओं को पौराणिक धरातल पर प्रस्तुत करनेवाला एक गीति-नाट्य है 'अंधायुग'। 'कनुप्रिया' भी राधा-कृष्ण की कथा लेकर चलती है, लेकिन आधुनिक अस्तित्ववादी दर्शन के आधार पर ही उनके प्रणय व्यापारों का प्रस्तुतीकरण हुआ है। प्रस्तुत काव्य में भारती ने कृष्ण को ऐतिहासिक चित्रण किया है। कवि की दृष्टि में ऐसे ईश्वर से बढ़कर मानव ही महान है —

'' लगता है कि मेरे प्रभु
उस निकम्मी धुरी की तरह हैं
जिससे सारे पहिए उतर गये हैं
और जो कुछ घूम नहीं सकतीं। '' (3)

- -

1. धर्मवीर भारती : अंधा युग, पृ026
2. वही
3. वही

भारती की भाषा में गीतात्मक मार्दव अधिक रहता है । गीतात्मकता की परिपक्वता हेतु कवि कोमल शब्दों को चुन चुनकर अपनी कविताओं में रखते हैं । ऐसे शब्दों के मोह में पड़कर उन्होंने ब्रजभाषा से भी सामग्री इकट्ठी की है । उनकी कविता अधिकतर अन्त्यानुप्रास-युक्त है । बिंब विधान तथा प्रतीक योजना में उनको विशेष सफलता मिली है । सुंदर बिंबों को सरल बोलचाल की भाषा में प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करने में वे सिद्धहस्त हैं —

''तुम्हें तो मालूम है
कि मैं वही बावली लड़की हूँ न
जो पानी भरने जाती है
तो भरे हुए घड़े में
अपनी चंचल आँखों की छाया देखकर
उन्हें कुलेल करती चटुल मछलियाँ समझकर
बार-बार सारा पानी ढलका देती है । '' (1)

5.7.1.5. शमशेर बहादुर सिंह :

शमशेर बहादुर सिंह का जन्म सन् 1911 में हुआ । बचपन से ही कविता की ओर विशेष झुकाव था । कुछ वर्ष तक 'रूपाभ' 'नया साहित्य' आदि के संपादक रहे । अपनी कविताओं में एज़रा पाउंड, एडिथ सिटवेल, इलियट, कमिंग्ज़ और निराला के प्रभाव को शमशेर ने स्वीकार किया है ।(2) वे एक अच्छे चित्रकार भी हैं ।

---

1. धर्मवीर भारती : कनुप्रिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सप्तम संस्करण, 1981, पृ0 28-29
2. शमशेर बहादुर सिंह : सीधे अपने पाठक से, निकष-3-4-
संपा० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, 1957, पृ0 349-350

मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण टूटते हुए मध्यवर्ग के प्रतिनिधि कलाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। कला, व्यक्ति और समाज के बीच वे दूरी नहीं मानते। (1)

शमशेर अजीब प्रकार के आदमी हैं। संध्या की शांति के क्षण में भी उन्हें कहीं दूर उदासी की घंटी-सी बजती हुई सुनाई देती है, वह शांत सीमाहीन ज़िन्दगी का एक टुकड़ा लगती है, घंटों उसे निहारकर खड़े हो जाते हैं। इस दृश्य के सुर, ताल, लय और रंग उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा देते हैं। (2) अपने दिल की लहरों के उठाव-गिराव के आधार पर सहज रूप में कविता की सृष्टि हो जाती है। सृजन के उन क्षणों का चित्रण उन्होंने यों किया है : ''मैं अपने आप से बातें करता हूँ। हम सब एक न एक क्षण में करते हैं, कितनी बातें – आत्मकथाओं – बेसिर-पैर के सवाल :- उनका कोई छन्द होता है? उन सब में कहीं - ठहराव और फैलाव-और थाव, और गिराव होता है; कहीं टेढ़ा बनता और कहीं घेरा? ...हाँ, छन्द होता है, और ठहराव भी, और ताल और सुर की चोटें और थाप और गिराव भी होता है, और टेढ़ा बनते और घेरे भी शुरू होते हैं – लंबे लंबे और छोटे छोटे विरामों पर मौजूं छन्दों में : जिनको हमारे दिल की लहर ही माप सकती है और मापती ही है, (फिर आप कबूलें या न कबूलें)'' (3)

अन्य नये कवियों की तरह शमशेर भी ईमानदारी पर ज़ोर देते हैं। ''अगर कविता (जिसे कहते हैं) 'जीवन से फूटकर' निकलती है,

- -

1. शमशेर बहादुर सिंह : सोचें अपने पाठक से, निकष-3-4-संपा-धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, 1957, पृ0 356
2. वही, पृ0 348
3. शमशेर बहादुर सिंह : निकष, 3-4, पृ0 348-49

तो उनमें जीवन की सारी बेताब उलझनें और आहटें और हिचकें और कोशिश और जिन्दगी कवि के अंदर की पूरी ईमानदारी के साथ अपने सामने से पूरे बीज बनाने लगेंगी। '' (1)

कवि को अपने अंदर के आलोक पर बड़ा विश्वास भी है— 'हमारा अंदर/एक बहुत बड़े शिखर का/ आलोक-शिखर/है। '' (2) शमशेर हिन्दी कविता में निराला और पन्त के बाद कुछ भी नया या मौलिक न पाते। सन् 1956 में उन्होंने लिखा था —'' शमशेर साहब अक्सर तो शायद निराला से हैं। हिन्दी कविता में निराला और पंत के बाद कुछ भी ''नया'' सिद्धि नहीं, नहीं आया है, सिवाय कुछ थोड़ा सा अज्ञेय के यहाँ। और दूसरे कवियों के अंदर जो कुछ 'नया' मालूम होता है, वह या तो अनकहा है, या शायद 'विलायती फैशन' है। (मुझे माफ किया जाय : आखिर मैं मैं भी इसी जुमरे में आ जाता हूँ) वह असल में निराला और पंत की टैक्नीक का दूसरा बदल ढंग से 'निखारा' और 'बाकी बढ़ाया हुआ ' रूप है। '' (3)

शमशेर की भाषा उर्दू की शब्दावली से युक्त है, संदर्भ के अनुकूल उनकी भाषा परिवर्तित हो जाती है।

शमशेर ने ''आँखों में जो बसा, कानों में जो समाया और दिल में जो रम गया, उसीको सजाया, उसीको गुन गुनाया, उसी को उजागर किया....'' (4)

---

1. शमशेर बहादुर सिंह : पृ0348-49
2. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, नया संस्करण, 1984, पृ0 71
3. शमशेर बहादुर सिंह : 'दोधे अपनी बाबत से,' निकष-3-4, पृ0349
4. वही, पृ0 350

5.7.1.6 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :

'तीसरा सप्तक' के अंतिम कवि हैं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना। उनका जन्म सन् 1927 में हुआ। वे स्कूल में कुछ काल तक मास्टर रहे, फिर मुंशी बने और आकाशवाणी में भी काम किया। 'दिनमान' के उपसंपादक बनने के पश्चात् ही साहित्यिक के तौर पर उनकी ख्याति हुई।

सर्वेश्वर 'नयी कविता' के बड़े समर्थक थे। 'नयी कविता' पर प्रहार करनेवालों को वे कटु-शब्दों की बौछार से तंग कर देते थे। अज्ञेय और मुक्तिबोध की तरह सक्सेना को भी इस बात की बड़ी शिकायत है कि 'प्रयोगवाद' या 'नयी कविता' की आलोचना समझदारी से न की गयी – "जिनमें रीति तक का सामर्थ्य नहीं है वे भी केवल समझकर नयी कविता के खिलाफ पद्य उगलने लगे, नयी कविता पर आलोचना लिखकर आलोचना लिखने की मश्क की जाने लगी, साहित्यकार बनने और पुराने साहित्यकारों द्वारा मान्यता प्राप्त करने के लिए नयी कविता और नये कवियों को सीधी गालियों द्वारा आरम्भ किया जाने लगा।"(1)

सामाजिक संदर्भ में पायी जानेवाली व्यक्तिगत विषमताओं को दूर करना सर्वेश्वर का लक्ष्य है। समाज की भी उन्हें बड़ी चिंता है। वस्तुतः सामाजिक असंगतियाँ ही उन्हें काव्य-सृजन के लिए प्रेरित करती हैं। (2) जीवन के संघर्षों से भाग निकलना वे पसंद नहीं करते। सक्सेना के अनुसार जिन्दा रहने का अर्थ किसी न किसी युद्ध

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : तीसरा सप्तक, वक्तव्य, पृ० 207
2. वही, पृ० 208, 209

में शामिल होना है –'' मैं जिन्दा रहना चाहता हूँ इसीलिए हर समय किसी न किसी युद्ध में शामिल हूँ । '' (1)

सर्वेश्वर के अनुसार स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साहित्यिक कई स्थापनाएँ बनी हैं । साहित्य के क्षेत्र में राजनीति का जो प्रवेश आदि दिन हुआ है उस पर भी वे अप्रसन्न हैं । ''साम्यवाद या पूँजीवाद मैं दोनों पर थूकता हूँ और पूछता हूँ जिसके पेट में कुछ नहीं है उसको उसके हाथ में तुम्हें बंदूक देने का क्या अधिकार है । '' (2) समाज में घटनेवाली कुरीतियों का रस वे अपनी कविता में ढूँढते हैं ।

सर्वेश्वर को कवि की शक्ति पर बड़ा भरोसा है । अपनी शक्ति पर विश्वास करते हुए उन्होंने लिखा है –

'' मैं ने लिखी थी कविता
मैं हूँ पराक्रमशील
और संसार में समाविष्ट . . . '' (3)

नयेपन के मोही सर्वेश्वर लीक पर चलने को तैयार नहीं हैं –

''लीक पर वे चलें जिनके / चरण दुर्बल और हारे हैं, /
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने/ ऐसे अनिर्मित पन्थ प्यारे हैं ।'' (4)

नूतन के अर्थ में सर्वेश्वर शब्दाडंबर के चक्कर में नहीं पड़ते । परंतु काव्य संबंधी प्रचलित मान्यताओं से वे मुक्त नहीं । काव्य-निर्माण हेतु पारंपरिक जो शिल्प-सामग्रियाँ मिली हैं वे उन्हें मूल समझते हैं–

- -

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना: एक सूनी नाव, अक्षर प्रकाशन, प्रा॰ लिमिटेड, दिल्ली-6, प्र॰सं॰ 1966, पृ०5।
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : एक सूनी नाव, पृ053
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : एक सूनी नाव, अक्षर प्रकाशन, प्रा॰ लिमिटेड, दिल्ली-6, प्र॰सं॰ 1966, पृ05।

"शब्द जिनमें मैं खुलता हूँ
मर चुके हैं,
छंद जिनमें मैं खुलता हूँ
मर चुके हैं,
संबंध जिनमें मैं जीता हूँ
मर चुके हैं।" (1)

सर्वेश्वर की सबसे बड़ी विशेषता भाव और भाषा की सादगी है। साधारण भाषा में आकर्षक कवि की भी भाव की काव्य-सामग्रियों की कमी खटकती है। यदि कवि भी इस कमी के कारण उत्तम काव्य का निर्माण नहीं कर सकते। अपने में विराटता का दावा करनेवाले सर्वेश्वर से हिन्दी कविता को बड़ी आशा थी लेकिन दुर्भाग्य से उनकी जीवन-गति असमय में ही रुक गयी।

5.7.1.7. स्वदेश भारती
= = = = = = = = =

"'भूखी पीढ़ी' के समर्थक स्वदेश भारती 'बैसाखी सप्तक' के कवि हैं। 'भूखी पीढ़ी' के अन्तर्देशीय प्रचारक मलयराय से उनका निकट का परिचय था। कवि का दावा है कि मलयराय तथा उनके अनुगामी राजकमल, रमेश बक्षी, शक्ति चट्टोपाध्याय, सुनील गंगोपाध्याय आदि की आत्मीयता से साहित्यिक-सिद्धि के लिए अनिवार्य कुछ आधार तत्व उन्हें मिल गये हैं। (2) उनके संपर्क में आने के पश्चात ही भारतीय जीवन का महत्व तथा कविता के नये दौर स्वदेश भारती को मालूम हुआ। (3)

- -

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : एक सूनी नाव, अक्षर प्रकाशन, प्रा० लिमिटेड दिल्ली-6, प्र०सं० 1966, पृ० 38
2. स्वदेश भारती : बैसाखी सप्तक, संपा० भारती, सरस्वती विहार, नयी दिल्ली, प्र०सं० 1979, कवि-परिचय, पृ0104
3. वही, पृ0 104

स्वदेश भारती कवि और कविता को भिन्न नहीं मानते । कविता को उन्होंने कवि के व्यक्तित्व का दर्पण कहा है । जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति करने में सबसे सशक्त माध्यम के रूप में उन्होंने कविता को ही स्वीकार किया है — ''कविता कवि के व्यक्तित्व तथा समय का दर्पण है । कविता जीवन का सत्य है । . इस सत्य को अभिव्यक्त करने में कविता ही एकमात्र विधा है, जो अधिक सशक्त, सहज और समर्थ है । (1)

उनकी दृष्टि में साहित्य सृजन हेतु भोगे हुए यथार्थ की सही अभिव्यक्ति अनिवार्य है । (2)

सच बोलने के आदी होने के कारण स्वदेश भारती निराला के समान स्वार्थ-संसार में अकेले रहते हैं —

''यदि मुझ में
अधिक से अधिक झूठ पचा जाने की सामर्थ्य होती
और
सच बोलने की बीमारी से मुक्त हो जाता
और जानता कि
कितनी सावधानी से
सच को झूठ में बदला जाता है
यदि मैं देख सकता
स्वार्थ के पारदर्शी आइने में चेहरा
अपना या औरों का
तभी जीने का सफल संदर्भ मिल पाता । '' (3)

- -

1. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक , संपा-अज्ञेय, सरस्वती विहार, नयी-दिल्ली, प्र०सं० 1979, कवि-परिचय, पृ0108
2. वही , पृ0 108
3. स्वदेश भारती : 'सामर्थ्य', चौथा सप्तक , पृ0 109

''चेंटली'' के प्रयोग में स्वदेश भारती ने मुक्तिबोध की शैली को ही अपनाया है। कमरे में पड़े मुक्तिबोध के 'ब्रह्मराक्षस' के नैन आकाश पर अड़े हुए हैं तो (1) अज्ञेय के हाथ भी आकाश को पकड़ने का सहारा ढूंढते हैं। (2) स्वदेश भारती का 'स्व' अर्थ की नदी में सिर तक गड़ गया है और दो बंधी मुट्ठियाँ ऊपर की ओर उठी हुई हैं। मुट्ठियाँ शायद इसलिए बंद हैं कि कवि के 'अहं' पर समाज द्वारा किये गये आघातों के प्रति रोष प्रकट हो —

''अर्थ, की नदी में गड़ गया है सिर तक
बंधी हुई मुट्ठियों वाले दो हाथ
ऊपर उठे हैं। '' (3)

'स्वदेश' कभी कभी आघातों से जूझने में अपने को असमर्थ भी पाते हैं। इसका कवि का कथन है —

''अंधेरा
मिटनेवाला नहीं है
और मैं कलि समय के चक्रव्यूह को
तोड़कर —
युद्ध करने को असमर्थ हूं। '' (4)

वे इतने हताश हो जाते हैं कि उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। ''भूखी पीढ़ी'' के कवि की यह कमज़ोरी निराला में नहीं पायी जाती। स्वदेश भारती की नियति यह है कि बिना युद्ध किये ही वे सभी तरफ से पराजित हो गये हैं —

- -

1. मुक्तिबोध : 'ब्रह्मराक्षस,' चाँद का मुंह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1964, पृ012
2. अज्ञेय : आँगन के पार द्वार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, तृतीय 1969, पृ010-11
3. स्वदेश भारती : 'अस्तित्व', चौथा-सप्तक, पृ0111
4. स्वदेश भारती : 'अंधेरा', चौथा सप्तक, पृ0 117

''और अब तो हालत यहाँ तक आ पहुँची है
कि दोस्त मुझे घमंडी कहते हैं,
आत्मीय 'सनकी' समझकर
मिलने से कतराते हैं
समाज ने पत्थर फेंकने का ठेका उठा लिया है
लगता है पागल हो चुका हूँ ।
सभी त्रस्त हैं - सभी दुःखी हैं
बिना दुःख किये ही । '' (1)

स्वदेश भारती कविता को हृदय की वस्तु मानकर उसे नये धरातल पर, तथा मौलिक परिवेश में सम्मान के साथ प्रकाशित करना चाहते हैं । (2) इसके लिए उन्होंने सरल गद्यात्मक भाषा को अपनाया है । और अपने भावों को दुरूहता तथा दुर्बोधता से दूर रखा है । आकर्षक तथा नवीन बिंबों और प्रतीकों की योजना से उनकी कविता संपुष्ट हैं । 'सिली हुई आवाज़' (3) 'सार्थ-शर्म करके आवाज़ लगाने वाली हवा' (4) 'समय का बहुरूप' (5) 'हथेली पर सलाम देकर लौट जानेवाली रोशनी की उदास उंगलियाँ' (6) आदि नवीन बिंब-प्रतीकों के उत्तम नमूने हैं । स्वदेश भारती की यह 'प्रारंभिक यात्रा' (7) सफल तथा सार्थक बनी है ।

- -

1. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक, पृ0 118
2. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक, वक्तव्य, पृ0 118
3. वही, पृ0 109
4. वही, पृ0 115
5. वही, पृ0 117
6. वही, पृ0 117
7. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक, वक्तव्य, पृ0 108

5.7.8. [illegible] कवि :

5.7.8.1. जगदीश गुप्त

'नयी कविता' अर्धवार्षिक काव्य-पत्रिका के संपादक डॉ० जगदीश गुप्त (जन्म सन् 1924) श्रेष्ठ आलोचक तथा कवि हैं। आधुनिक काव्य-क्षेत्र में नयी कविता को प्रतिष्ठित करने का जो कार्य उन्होंने अपनी पत्रिका द्वारा किया है, ऐतिहासिक महत्व रखता है। 'नयी-कविता' के प्रकाशन काल (सन् 1954) से लेकर हिन्दी की नयी प्रवृत्ति की पुष्टि हेतु जो-जो प्रयत्न उन्होंने किये हैं उनके प्रभाव का निराकरण नयी कविता के विरोधी भी नहीं कर सकते। 'नयी कविता' पर इनकी मान्यताएँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

"समीक्षक - जगदीश गुप्त को कवि स्वीकार करने में कुछ लोग भी अवश्य ही हिचकते हैं लेकिन 'नाव के पाँव', 'शब्द दंश', 'हिमविद्ध' आदि काव्य संग्रह उनकी कवित्व शक्ति के उत्कृष्ट परिचायक हैं। 'प्रातिभ आलोचक' मार्मिक कवि डॉ० जगदीश गुप्त ने कम लिखा है, फिर भी जो लिखा है उसमें एक प्रबुद्ध कवि का स्पष्ट दृष्टिकोण बड़ी स्वच्छता के साथ उपस्थित हुआ है।"(1) वे चित्रकला के भी कुशल प्रयोक्ता हैं। उनका काव्य ऐसे कई चित्रों को जन्म देता है जो अत्यंत सजीव तथा रंगीन हैं। 'भारतीय कला के पदचिह्न', 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला' आदि उनके विशिष्ट ग्रंथ हैं।

---

1. '[illegible]', कवि-परिचय, संपा०-डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० महेश्वरी सिंह 'महेश' तथा प्रो० कृष्णानंद 'पीयूष', पृ० 108

डॉ० जगदीश गुप्त समान धर्मा बुद्धिजीवियों को मन में रखकर ही कविता का प्रणयन करते हैं। उनका कथन है कि 'नयी कविता उन प्रबुद्ध आस्वादकों को लक्ष्य कर लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नयी कवि के समान है अर्थात जो उसके समान-धर्मा हैं.....''(1) उनकी छोटी कविता 'आस्था' की पंक्तियाँ इस कथन की पुष्टि करती हैं —-

''जो कुछ प्राणों में है,
प्यार नहीं,
और नहीं,
प्यास नहीं....
जो कुछ आँखों में है,
स्वप्न नहीं,
अश्रु नहीं....
आस नहीं...
जो कुछ शब्दों में है,
अर्थ नहीं,
नाद नहीं
स्वाद नहीं....
उस पर आस्था मेरी
उस पर ममता मेरी
उस पर पूजा मेरी।''(2)

जगदीश गुप्त की कविता 'नयी कविता' के समस्त गुणों को आत्मसात् करके चलती है। असत् और असुंदर को भी जीवन-सत्ता

- -

1. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता; नयी अभिरुचि, नयी कविता, अंक- 1, पृ 5-6

[illegible]

लेकिन आज मानवतावादी कवि जगदीश गुप्त नयी कविता के उत्कृष्ट प्रतिनिधि हैं। शिव के साथ अशिव भी उन्हें ग्राह्य है — -

" मीत, मनुहार, सीख, मद सब - - -
ज़िंदगी की भेंट देने की परस्पर रीत।
यह विकार नहीं,
मनुज के साथ जन्मे, बढ़े
उसकी ही धरोहर बंधु,
इन सभी की आत्मा - - -
सर्वथा इनसे अलग होती नहीं जब तक।
दया, करुणा, प्रीत की ऐसी तन्तों की डोर से कसती
आदमी से आदमी की उजली पहचान के आधार,
शिव के ऐसा जैसी —
यह अशिव भी ग्राह्य – यह स्वीकार। " (1)

'अज्ञेय' की कविता में भी इसी अशिव को स्वीकार किया गया है—

"ऊपर वह देवता विचरता था
और हम देख देख सिहरते
विचरते थे
किन्तु वह अनुपम अनुपम
और और मधुर
टोकता था कुरकुराति उस अंधकार में :
खता है री
मना है री
पता है री
कतरा दो राम दो काग दो उखाड़ दो –

- -

1. डॉ० जगदीश गुप्त : [illegible] पृ० 38

वह तो है पूजन-रत
उसे सब रत है। '' (1)

निराला की भाँति अंधकार के प्रति अमिट मोह जगदीश गुप्त में दिखाई देता है। प्रत्येक पुष्प-राशि को घेरे अमित विषाद का दर्शन भी दे जाते हैं –

'एक एक पुष्प-राशि को / घेरे अमित विषाद हैं/ नियम तिमिर ही है सदा/रवि शशि का अपवाद हैं। (2)

उनकी प्रणय-संबंधी धारणायें नयी नैतिकता का समर्थन करनेवाली हैं –

''बीती हुई, झूठी नैतिकता
भारी लबादा है
उसी के बोझ से
आदमी की सीधी चाल कुंठित हो जाती है,
स्वकुंठित हो जाता है सहज मन। '' (3)

जगदीश गुप्त की कविताओं में काव्य के मर्म तक पहुँचने की आतुरता अवश्य है। परंतु काव्य-संबंधी उनकी धारणाओं में अतिवादिता का आभास भी है। पर इसमें संदेह नहीं कि वे प्रतिभा संपन्न कलाकार हैं। ''नये काव्य के स्वरूप, उसकी रचना प्रक्रिया तथा युग के नये संदर्भ में उसकी स्थिति आदि से संबंधित उनके जो विचार पत्र-पत्रिकाओं में लिखित उनके लेखों द्वारा व्यक्त हैं – वे भले ही एक प्रकार की अतिवादिता सूचित करें, इतना तो कहा ही जा सकता है कि कवि-कर्म

- -

1. अज्ञेय : आज के लोक प्रिय हिन्दी कवि-अज्ञेय, संपा० विद्यानिवास मिश्र, पृ० 47
2. डॉ० जगदीश गुप्त : नाव के पाँव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर प्र०सं० 1955, पृ०58
3. डॉ० जगदीश गुप्त : युग्म, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली प्र०सं० 1975, पृ०288

की उन्होंने यथासंभव गंभीरता से ग्रहण किया है तथा काव्य के मर्म तक पहुँचने की उनमें वास्तविक आतुरता भी है । ''(1)

5.7.2.2. नागार्जुन :

[illegible] कवियों में सबसे ख्याति प्राप्त कवि नागार्जुन हैं । निराला-परंपरा के विद्रोही कवियों की श्रेणी में उनकी गणना है । 'एक मात्र मानव जीवन के प्रति समर्पित' कहकर शिवकुमार मिश्र ने उनकी प्रशंसा की है । (2)

निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्मे नागार्जुन की रचनाओं में दुःख-कष्ट भोगनेवालों के प्रति विशेष सहानुभूति दर्शनीय है । प्रगतिशील आंदोलन से वे काफी प्रभावित हैं । सन् 1930 के आसपास से उन्होंने साहित्य में प्रवेश किया था ।

मैथिली भाषा में वे 'यात्री' नाम से लिखते हैं । उनका असली नाम वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' है । नागार्जुन सफल उपन्यासकार भी हैं । (3) बाबा बटेसर नाथ, ' 'वरुण के बेटे ', 'दुख मोचन' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं । अपनी नई शैली की कविताओं के प्रतिनिधि संग्रह 'सतरंगे पंखोंवाली' में उन्होंने युग की पीड़ा और विषमता का, मार्मिक चित्रण किया है । 'युगधारा' 'प्यासी पथराई - आँखें ', 'खून और शोले', 'चना जोर गरम' आदि उनके अन्य काव्य संग्रह हैं ।

---

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962, पृ०249
2. डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य · पृ० 188
3. डॉ० नगेन्द्र (संपा) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1985, पृ० 634

शोषण से पीड़ित जनता, किसानों तथा मजदूरों की दुर्दशा, देश की गुलामी आदि देखकर नागार्जुन ने जमींदारों, सेठ साहूकारों तथा कांग्रेस के पदों पर विराजनेवाले संभ्रान्त-व्यक्तियों तक की कड़ी आलोचना की है —

''वे लोहा पीट रहे हैं,
तुम मन को पीट रहे हो।
वे पत्थर जोड़ रहे हैं,
तुम सपने जोड़ रहे हो।
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन ?
उनींदी घड़ियों में घुलती है। '' (1)

निम्नवर्गीय जनता के सच्चे सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करनेवाले कवि नागार्जुन पहले कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे, परन्तु चीनी आक्रमण से उनके राजनैतिक विचारों पर धक्का लगा और वे तटस्थ हो गये।

रहन-सहन में सादगी बरतनेवाले नागार्जुन निराला के समान अक्खड़-फक्कड़ स्वभाव के हैं। मजदूर वर्ग के प्रति उनकी विशेष आत्मीयता है। फटे पाँवों से [illegible] रिक्शा चलानेवाले एक मजदूर का करुण चित्र सालों व्यतीत होने पर भी कवि की निगाहों से ओझल नहीं होता —

''दूर तक टकराते
उस दिन इन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगा फटी बिवाइयाँ
खुब गईं दूधिया निगाहों में
धँस गईं कुसुम-कोमल मन में। '' (2)

- -

1. नागार्जुन : 'वे और तुम', सतरंगिनी, संपा० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० माहेश्वरी सिंह महेश और डॉ० कृष्ण मोहन पीयूष, प्रथम 1964, पृ० 3।

विद्रोह का स्वर भी उनकी कविता में सुनाई देता है ।
''प्रेमचंद-सी भारतीय कृषक-मजदूर वर्ग के प्रति आत्मीयता, निराला-सा फक्कड़पन और अक्खड़पन तथा अनुचित बातों पर कबीर-सी फटकार - सबका मिला-जुला रूप ही नागार्जुन के व्यक्तित्व का आधार है ।''(1) नागार्जुन की कविताएँ उनके व्यक्तित्व की तरह कड़ी खुली और साफ हैं ।''(2)

देश के नेताओं पर व्यंग्य करने में वे बेजोड़ हैं । डॉ०नामवर-सिंह ने लिखा है कि 'हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा या नागार्जुन ने ।''(3) देश की जटिल समस्याओं की चिंता भी उन्हें खूब है -

'देश हमारा भूखा - नंगा घायल है
बेकारी से
मिले न रोटी - रोजी भटके दर-दर बने
भिखारी से ।'' (4)

प्रेम, नारी आदि पर भी नागार्जुन का दृष्टिकोण स्वस्थ है । उनकी नारी पुरुष का भोगोपकरण नहीं, उसकी सहधर्मिणी है, उसकी प्रेरणा या शक्ति है । अपनी प्रेयसी से कवि का प्रेम परिस्थितियों का रोना नहीं सुननेवाला है —

''तुम नहीं हो पास, मैं तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल सुनने के लिए
एक भी तो रव अंगुलियाँ नहीं है कहीं कदाचित्
रोनी परिस्थितियों का रोना सुनने के लिए ।'' (5)

- -

1. डॉ०प्रकाशचन्द्र भट्ट : नागार्जुन जीवन और साहित्य, सेवा सदन प्रकाशन, मध्य प्रदेश, प्र०सं०1974, पृ040
2. डॉ० शिवकुमार सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ0222
3. डॉ०नामवरसिंह : उद्धृत: डॉ०द्वारिका प्रसाद सक्सेना: हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1979, पृ0456
4. नागार्जुन : जनयुग, 4 जनवरी 1968
5. उद्धृत: डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट : नागार्जुन जीवन और साहित्य, पृ047

प्रियसी का स्मरण करते करते उन्हें मिथिला की मिट्टी भी याद आती है जिसकी गंध मिटाने पर भी मिटती नहीं :

''भर गयी होगी वह बागमती की धार
उगे होंगे पोखरों में कुमुद पद्ममखान
आंख मूंदे कर रहा हूँ ध्यान । '' (1)

कवि जानते हैं कि अपने पात्रों से एकात्मभाव स्थापित किये बिना उनकी मनोभावों का सच्चा तथा सफल चित्रण असंभव है । इसलिए नागार्जुन ऐसे प्रसंगों में स्वयं पात्र बन जाते हैं । उन्हें अनुभव होने लगता है कि पात्रों के सुख-दुःख कवि के अपने हैं । इस रहस्य की चमत्कार से उन्होंने कालिदास से पूछा था :

''रति का क्रंदन सुन आंसू से
तुमने ही तो दृग धोये थे ।
कालिदास सच-सच बतलाना
रति रोयी या तुम रोये थे ?'' (2)

नागार्जुन की कविता का शिल्प-पक्ष अत्यंत सशक्त है । अपने व्यक्तित्व के अनुरूप बहुत सादी , परंतु पुष्टिशाली वर्णन-पद्धति को ही उन्होंने अपनाया है । जटिल प्रयोगों से कवि बचकर रहे हैं । उनकी प्रवाहमयी सरल भाषा कभी-कभी गद्यात्मक लगती है, लेकिन यह केवल दो-तीन कविताओं में ही । अनुकूल रचनाओं में उनकी काव्यात्मकता का अच्छा परिचय मिलता है । प्रगतिवादी नये कवियों में नागार्जुन निस्संदेह उन्नत स्थान रखते हैं ।

- -

1. नागार्जुन : हंस , अगस्त 1947
2. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली , पृ० 43

5.7.2.5 लक्ष्मीकांत वर्मा :

लक्ष्मीकांत वर्मा (जन्म : 1922) ने, आत्मलीन (1) होकर भी अपनी कविता को सामाजिक परिवेश में ढाल दिया है। वैयक्तिक कुण्ठाओं की चर्चा वर्मा की कविता में बहुत कम मिलती है क्योंकि कवि का 'व्यष्टि' 'समष्टि' में समा गया है। (2)

स्वस्थ समाज की कल्पना करते समय कवि ने यथार्थ का सहारा लिया है और स्वर्णिम भविष्य की कल्पना के स्थान पर कुल सत्य की आकांक्षा ही कवि धर्म माना है। (3) 'निकष', 'नयी पत्ते' जैसी पत्रिकाओं के संपादक रहकर उन्होंने नयी कविता के प्रतिमान सामने रखे। 'नयी कविता के प्रतिमान' उनकी प्रसिद्ध आलोचना पुस्तक है।

लक्ष्मीकांत वर्मा की दृष्टि समाज के प्रति ईमानदारी तथा उत्तरदायित्व से भरी पूरी है। इसलिए आत्मलीन होते हुए भी वे परिवेश से प्रभावित हैं।

उक्ति का अनूठापन लक्ष्मीकांत की सबसे बड़ी विशेषता कही गयी है। (4) उक्ति में वैचित्र्य लाने या नवीन ढंग से प्रत्येक बात कहने की ललक इनमें द्रष्टव्य है —

'छाती पर अपने ठाकुर का टप्पू उगाकर माँगना
फिलहाल मैं उनमें प्रतिमा तुम्हारी नहीं
इसलिए कहता हूँ

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा: 'मैं आत्मलीन हूँ' (कविता), नया सप्तक, पृ0152
2. लक्ष्मीकांत वर्मा : स्व परिचय, नया सप्तक, पृ0 133
3. लक्ष्मीकांत वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2014, पृ057
4. डॉ0 शिवकुमार मिश्र : नया साहित्य, पृ025।

आत्मलीन हूँ
रहूँगा मैं आत्मलीन ही ।
आस्था मेरी तुम्हारी नहीं है
एक होने पर, सर्वोपरि होने पर
गुम क्यों है वह . . . '' (1)

लक्ष्मीकांत का जीवन, निराशा तथा शंकाओं से संत्रस्त है, फिर भी उनमें जीवन के प्रति गहरी आस्था और विश्वास है । उनका मानव शक्तिशाली है । गाण्डीव धनुर्धारी कृष्ण तथा मृत्तिका पिंड समाज को भी झुकाने की शक्ति रखता है –

''मैं नहीं कृष्ण या अर्जुन का
यह तो है स्वयं वह मृत्तिका-पिंड
जो समाज को झुकाता है । '' (2)

लक्ष्मीकांत वर्मा ने व्यंग्य से भी काम लिया है । पाठकों के मन में तीखी चोट पहुँचाने में यह सहायक रहा है । कवि की दृष्टि में यह 'रिक्त' का युग है । अब पुरानी मान्यताओं की आशा रखना व्यर्थ है । मार्क्सवाद की आधुनिक दुनिया में वैष्णव भी 'क्यूरेटर' बन गये हैं –

- -

1. लक्ष्मीकांत वर्मा : 'मैं आत्मलीन हूँ', नया सप्तक, पृ0152
2. लक्ष्मीकांत वर्मा : नया सप्तक, पृ0140

" रहमान की दुकान पर ढोलकी का शोर
घट - झंकार मचल चार मन ।
अत्याधीत वंश
गांडीव का मूल्य : केवल एक पौंड
सुदर्शन : केवल एक फुट स्टेपिंग
कर्ण - कुंडल : केमिकल गोल्ड
गीता और भागवत
व्यास बाण का : केवल क्यूटर । " (1)

मुक्तिबोध की तरह श्रीकांत ने भी फैंटेसियों का प्रयोग किया है । "समय : नया पाठ ', 'एक महान परिवेश से कुछ नहीं मिलता ' आदि इसके दृष्टांत हैं । " मुक्तिबोध और वर्मा की फैंटेसियों में अंतर यही है कि मुक्तिबोध की दृष्टि मानसिक जटिलताओं की सृष्टि पर अधिक जमी है और वर्मा की बाह्य जीवन की जटिलताओं पर । " (2) मुक्तिबोध फैंटेसी-निर्माण हेतु प्रकृति तथा मनुष्य प्रकृति से सामान जुटाते हैं तो श्रीकांत वर्मा नागरिक जीवन से । जहाँ मुक्तिबोध 'अंधेरे में', 'ब्रह्म राक्षस' जैसी रचना लिखकर मन के गुप्त तहों तक पहुँचते हैं वहाँ श्रीकांत 'अश्वत्थामा,' 'रोम रोम', 'दूध की तौली' आदि के पीछे पड़ते हैं ।

शहर में आधुनिक जीवन का संपूर्ण वैषम्य श्रीकांत वर्मा की कविता में महत्वपूर्ण स्थान ले पाया है । (3)

2.7.24. सुदामा पांडेय 'धूमिल '

'निराला एवं मुक्तिबोध की ही परंपरा के कवि हैं धूमिल ।

---

1. श्रीकांत वर्मा : 'ब्यूटियो मार्ट में अर्जुन की तलाश करते श्रीकृष्ण', माया दर्पण : पृ0 141
2. नयी कविता , कवि-परिचय, पृ0134

सामाजिक व्यवस्था के प्रति जिस आक्रोश की अभिव्यक्ति निराला एवं मुक्तिबोध ने की थी, उसी आक्रोश को नयी धार देने का कार्य भी युवतम कवि 'धूमिल' ने किया। लेकिन यह कार्य वे बहुत दिनों तक कर न सके। उनका जीवन बहुत सीमित रहा।

अपनी धरती और अपने परिवेश से धूमिल की कविता पूर्ण रूप से जुड़ी हुई है। लेकिन व्यवस्थाओं की असहनीय स्थिति से उनका विरोध है। ऐसे प्रसंगों में धूमिल का स्वर आक्रामक बन पड़ा है। किन्तु यह आक्रामक स्वर भविष्य के प्रति आशामय है। यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़े होकर एक जागरूक तथा जिम्मेदार कवि की तरह वे समाज की कुरीतियों पर वार करते हैं। परिस्थितियों की उथल-पुथल तथा जीवन के संघर्षों का वास्तविक चित्रण धूमिल की कविताओं में मिलता है। राजनैतिक नेताओं के खोखले वादों के प्रति वे सचेत हैं।

अँधेरे में भटकने वाले समाज के मूल्य टूटते जा रहे हैं, टूटी मान्यताओं के स्थान पर नये मूल्यों की संस्थापना भी स्थिर न हो सकी है। ऐसी अवस्था में कवि के व्यर्थताबोध से पीड़ित होने की संभावना अधिक रहती है, अनाचार का स्वर मुखर उठता है :

'' घृणा में डूबा हुआ
सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है। ' (1)

---

1. धूमिल : उद्धृत : दूधनाथसिंह : कुकुरमुत्ता, भूमिका, पृ0 24

प्रस्तुत पंक्तियों में दूधनाथ सिंह ने निराला द्वारा उद्घाटित काव्य-सत्य का वर्णन किया है । (1)

अस्वीकार के स्तर में स्पर्श बोध एक अभिन्न अंग है । स्पर्श या विसंगति बोध की अभिव्यक्ति जीवन का कार्य होती है क्योंकि यही अर्थवत्ता प्रदान करने से ही विसंगति सार्थक हो जाती है । स्पर्श-बोध का जो प्रथम वर्णन निराला की कविता में हुआ था उसकी प्रमाण अभिव्यक्ति धूमिल ने की है —

'' सूरज की आँख से खून चू रहा था
नगर के मुख पोखरे पर
तीन प्रस्ताव पारित हुए
स्त्रियों ने धारण किये
लिंग बोध पर . . . ''(2)

धूमिल कभी कभी उन घटनाओं के बीच में जा खड़े होते हैं जो नैतिक-अनैतिक की परवाह न करते —

'' और मासिक-धर्म में डूबे हुए लत्ते - सा
खड़खड़ाता हुआ दिन
जाड़े की रात में
जले हुए कुत्ते का घाव
सूखने लगा है
मेरे आसपास
एक अजीब-सा प्यार भरा गुस्सा है ।

- -

1. कुकुरमुत्ता, भूमिका, पृ0 24
2. धूमिल 'एक कविता कुछ सूचनाएँ' : उद्धृत: धूमिल काव्य-यात्रा
प्रो0 मंजु अग्रवाल, प्र0 1980, पृ0 96

उधार लेनेवाली बनिया के
कल्लार की तरह
दिल्ली में मात्र इसीलिए बसता हूँ
क्योंकि पतली मेज़ में रखता हूँ । " (1)

भाषा के स्तर पर धूमिल अनाक्रामक तथा हृदय पर चोट करनेवाले शब्दों के प्रयोग में अधिक रुचि रखते हैं । कविता से अकविता की ओर जाने की प्रवृत्ति भी कहीं, कहीं दिखायी देती है । वे ऐसे ध्वनिवाले शब्दों की खोज में हैं जो गणित के सिक्कों की तरह ठीक और अचूक हों । भाव-शिल्पों में नवीनता के साथ धूमिल ने अपने जीवन की अनुभूति को सार्थक बनाकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है ।

5.7.8.5 विपिनकुमार अग्रवाल :
- - - - - - - - - - - - - -

डॉ० रघुवंश ने विपिन कुमार अग्रवाल को कविता में आधुनिकता का नया स्वर कहा है । (2) मुक्त भाषा के स्वीकार के कारण विपिन की कृतियों में एक अलग स्वर ही सुनाई देता है । परंपरा पर उनका विश्वास नहीं है । इसलिए परंपरा-सिद्ध काव्य साधनों के सदुपयोग से वे वंचित रहे ।

आधुनिक जीवन की जटिलता से आक्रान्त विपिनकुमार की कविता को सौंदर्यवादी ही कविता ही नहीं मानते । शिव-गठन के संदर्भ

- -

1. धूमिल : 'कविताएँ-1965', संपादन- संपादकः अजितकुमार तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-7, 1968, पृ० 77
2. डॉ० रघुवंश : नई कविता 5-6, पृ० 134

में उनकी दृष्टि एक अध्येता की दृष्टि है । शिव पर दिखाई गयी यह शिवभक्ति कभी-कभी वैचित्र्य प्रदर्शन मात्र रह जाती है । जीवन से अनुकूल रहकर उसकी व्यंग्यात्मक आलोचना करने में वे सिद्ध-हस्त हैं । 'प्रतिक्रिया' में उन्होंने आधुनिक नागरिकों की कमजोरियों का उद्घाटन किया है । विज्ञान पर भी उन्होंने कड़ा प्रहार किया है —

'' कितनी सहज बातों की कठिनाइयों को ढूंढा है हमने ।'' (1)

विपिनकुमार की कविताओं में मध्यवर्गीय जीवन साकार हो उठा है । मध्यवर्गीय-मानव की समस्याओं का यथार्थवादी दृष्टि से इन में अंकन हुआ है ।

अपनी कृतियों में कृत्रिमता से अलग रहने पर भी, सफलता प्राप्ति की इतनी अधिक चेष्टा कवि की ओर से हुई है कि अचानक अकृत्रिमता तथा सफलता का बोध होने लगता है । प्रदर्शन-प्रियता से कवि स्वयम् दूर हैं —

''मेरे रचयिता मुझे प्रदर्शिनी में टांगना मत । '' (2)

कवि की बढ़नेवाली बौद्धिकता के प्रभाव के कारण उनके प्रतीक तथा बिंब अटपटे भी बन गये हैं ; पाठक उनसे परिचित नहीं हो पाते । इसके कारण यत्र कहीं-कहीं अस्पष्टता लिये हुए हैं । (3)

जन-भाषा की ओर विपिन का विशेष झुकाव है । उनकी भाषा गद्य से अधिक निकट है । कम-से-कम शब्दों से काम लेने से

- -

1. नई कविता : 5-6, पृ0 163,

2. वही, पृ0 151

3. वही, पृ0 149

कल्पनाशील [1] दिमाग के लंबे-लंबे वाक्यों को वे काव्य में प्रस्तुत करते हैं -

'' कमरे में जब अकेले ऊब जाता हूँ, तो बात करने के लिए
मन को बहलाता हूँ
तब . . .नाम लेकर प्यार से तुम को बुलाता हूँ
अपना चेहरा, हाथ जैसे पास आती हो, लेकिन
कैसा देख कर हट जाती हो।' (2)

विपिन कुमार अग्रवाल के लिए अभिव्यक्ति ही सबसे बड़ी समस्या है। इसका हल करने को वे व्याकरणीय औजार ढूंढते हैं :- ''आधुनिकता की मुख्य समस्या अभिव्यक्ति की है। इस समस्या को हल करने के लिए व्याकरणीय औज़ार ढूंढना है और उन्हें तेज़ बनाना है।' [3]

उनकी खोज अब भी जारी है, उनसे बहुत कुछ आशा रखी जा सकती है।

5.7.2.6. मलयज

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करनेवाले मलयज ने सफलों से बाहर रहकर ईमानदारीपूर्वक साहित्य साधना की। दुःख और निराशा उनकी कविताओं का मुख्य स्वर है। 'मुझे तो तुमने प्रभु केवल दर्द की दृष्टि दी' [4] कहकर अपने अधूरे जीवन को उन्होंने दुःखमय बताया है। निराशा, कुंठा तथा जीवन की कटुता को उद्घाटित करने के लिए मलयज ने मुख्य रूप से पौराणिक प्रतीकों का सहारा लिया है। चेतन-उपचेतन मन की प्रवृत्तियों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत

- -

1. डॉ0 नामवरसिंह : 'विसंगति और विडंबना' (अध्याय) कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि.सं. 1974, पृ0 169
2. विपिन कुमार अग्रवाल : नई कविता 5-6, पृ0 147
3. विपिनकुमार अग्रवाल : नई कविता अंक- 7, पृ0 39
4. मलयज : नयी कविता - 4, पृ0 54

करते लेकिन इन पौराणिक प्रतीकों को वे आत्मसात करते हैं। परंपरा की वैज्ञानिक चेतना के आलोक में देखने का अवसर यह प्रदान करता है।(1)

मलयज की मौलिक कृतियाँ परिमाण में बहुत कम हैं। आदर्श और यथार्थ के बीच पड़कर हमेशा संघर्ष का अनुभव करनेवाले साधारण मानव का दर्शन उनकी कविता में होता है। इस संघर्ष ने ही उनके काव्य में पीड़ा और विवशता को जन्म दिया है।

केवल वैयक्तिक पीड़ा को प्रकाशित करने से ही मलयज तुष्ट नहीं होते, उन्हें समाज का कल्याण भी काम्य है। अंधविश्वासों से पीड़ित समाज की मुक्ति उनका लक्ष्य प्रतीत होता है। कवि को भूत और वर्तमान से बढ़कर भविष्य पर ही विश्वास है –

"अतः हे और बलदेव, इस भूत से वर्तमान से महत्
उस भविष्य का तीसरा वरदान मुझे दो कि ...
उन निर्जीव नपुंसक मूर्तियों को तोड़ूँ
जिनकी आराधना में नेत्र उनके मुंदे हैं।" (2)

यद्यपि बलदेव से या मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र से (3) उज्ज्वल भविष्य देने या धर्म की रक्षा करने की प्रार्थना मलयज करते हैं तथापि आज की धर्मच्युति का प्रधान कारण उनकी दृष्टि में विकलांग परंपरा ही है–

- -

1. मलयज : नयी कविता और पौराणिक प्रतीक, नयी कविता: 5-6, पृ० 5।
2. मलयज : नई कविता -4, पृ०53
3. मलयज : नई कविता-4, पृ०63

"हम विरासत के होते हैं, क्योंकि सिर्फ
विरासत परंपरा में,
हर उसकी ज्योति बिंदु की सिर्फ शिकार हाथों की
उनकी कुछ कोशिश हैं।" (1)

मलयज की भाषा काव्यात्मक है। शब्दों का चुनाव बड़े ध्यान से वे करते हैं। शब्दों की मितव्ययता पर उनका हमेशा ध्यान रहा है। प्रतीकों तथा बिंबों के विधान में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

5.7.8.7. अजितकुमार

हिन्दी के पुरानी पीढ़ी की कवयित्री श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा के सुपुत्र अजित कुमार (जन्म 1933) सहज अभिव्यक्ति और विचारों की पकड़ के लिए विशेष ज्ञात हैं। 'इनकी रचनाओं का परिवेश विराट है – और उस विराट परिवेश को बड़ी सफलता से छोटे-बड़े शब्द-चित्रों के माध्यम से वे प्रकट करते रहे हैं'। (2) 'अकेले कंठ की पुकार', 'अंकित होने दो' आदि इनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं।

अन्य नये कवियों के विपरीत अजितकुमार ने अपनी कविता को गद्यात्मक बनाने का प्रयत्न नहीं किया है। लय का संपूर्ण निर्वाह उनकी कविता में हुआ है। 'अकेले कंठ की पुकार' में वे व्यक्ति की शक्ति को सीमित बताते हैं और नूतन जिंदगी की पुष्टि के लिए एक पारंपरिक प्रयास

- -

1. मलयज : नई कविता, पृ0 65
2. कवि-परिचय, पाठ्यक्रम : संपा. डॉ0 वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 माहेश्वरी मिश्र महेश और प्रो0 कृष्ण नंदन पीयूष, पृ0 160

की आवश्यकता पर बल देते हैं। प्रगतिवादी-प्रयत्न की भी वे इसीलिए उपेक्षित न मानते —

''क्योंकि सृजन जितनी बार
नयी दुनिया बसाने के लिए
मेरा कविता संसार काफी नहीं है
इसलिए तुम पुकार देकर सारे
ताल - सुर - लय का नया संबंध जोड़ो
औ प्रवृत्ति बदलो। कृति अपने कदम दम और मोड़ो।" (1)

स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति ही उनके अनुसार कविता का प्राण है और मात्र उसी सत्य को वाणी देना ही कवि का धर्म है।(2) लंबी तथा छोटी कविताओं का प्रणयन अजित ने किया है। लंबी कविताओं की अपेक्षा उनकी छोटी कविताएँ ही अधिक रोचक बन पड़ी हैं। 'कवियों का विद्रोह' कविता इन पंक्तियों में व्यक्त हो जाती है जिनमें काव्य के पुरानी प्रतिमानों को तोड़ देने का आह्वान है —

''चांदनी चंदन सदृश :
हम क्यों लिखें ?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें ?
हम लिखेंगे :
चांदनी उस रुपये-सी है कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।
हम कहेंगे ज़ोर से :
मुँह घर - अजायब है

- -

1. अजितकुमार : अकेले कंठ की पुकार : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1958, पृ० 9
2. वही, पृ० 50

(जहाँ पर बेतुके, अश्लील, गन्दा, और मुर्दा
भाव रहते हैं।') (1)

अजितकुमार की विशेषता इस बात में है कि वे संकटों के बीच भी अपने को खुश पाते हैं, दुनिया के मेले में आया हुआ बच्चा समझते हैं —

'' हाँ, कहा न मैं ने - मेले में आया हूँ, बच्चा हूँ।
देखिए मुझे - बैठा हूँ
दुनिया के मेले में हूँ
रंगी - चंगी चीज़ों में, भीड़ों में, रेले में हूँ
मैं खड़े चक्कर खाता हूँ
ठोकर खाकर देखता हूँ
ज्यादा-से-ज्यादा चीज़ देखता हूँ
जा बैठता हूँ '' (2)

कवि को ऐसा जीवन बेहद आकर्षित करता है। वे टूटे-फूटे स्वर में कुछ गुनगुनाने लगते हैं —

'' मुझको यह जीवन हर्षित करता है,
मन : बेहद आकर्षित करता है।
मामूली खेल-तमाशों में खोया रह जाता हूँ
कुछ गाता हूँ,
टूटे - फूटे स्वर में कुछ गाता हूँ . . .'' (3)

अजित का स्वर टूटा-फूटा नहीं लगता। विषय-वस्तु, शिल्प, भाषिक संरचना, संवेदनात्मक स्वतन्त्रता आदि सभी दृष्टि

- -

1. अजितकुमार : संकलित, पृ० 161
2. अजितकुमार : 'मेले में', संकलित, पृ० 162
3. वही, पृ० 163

अनिवार्य गुणों से अर्पित भी कविता संयुक्त है । इनकी जीवनगंधी कविताओं का रचना लघु किन्तु सर्वांगी संपूर्ण संघटन नये काव्य में विरला ही है ।

इन्हीं के बाहर रहकर हिन्दी की नयी काव्य-प्रवृत्तियों के विकास में सर्वश्री देवीप्रसाद और भी कई कवि हुए हैं, जिनमें सुरेन्द्रकुमार, बालकृष्णराव, शंभुनाथसिंह, रामदरशमिश्र जैसों का नाम विशेष उल्लेख्य है । उनके काव्य की विशद चर्चा यहाँ संभव नहीं हुई । इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जिन कवियों पर विचार किया गया है नयी कविता में उनका ही राज चलता है । नयी कविता की विकास के पथ पर अग्रसर सर्जनाशील – चाहे बड़े हों या छोटे – अपना अपना महत्व अवश्य रखते हैं । न कोई घटकर है न बढ़कर, क्योंकि साहित्य सृष्टि में इनका विकास होता ही है ।

9.8 निष्कर्ष :
• • • • • • •

1. सन् 1950 के आसपास से शुरू होनेवाली नयी कविता पर समग्रतः दृष्टि निक्षेप करने से विदित हो जाता है कि हिन्दी काव्य की यह नयी प्रवृत्ति का प्रवाह अभी तक मंद नहीं पड़ा है । यद्यपि नयी पीढ़ीवालों ने 'नयी कविता' के अंत की बात कही है और उनकी ओर से आधुनिक कविता में अलग-अलग प्रवृत्तियों को प्रस्थापित करने के कई प्रयास हुए हैं तो भी उन्हें आंदोलन का रूप देने या लोकप्रिय बना लेने में सफलता नहीं मिली है ।
2. यह तथ्य अनदेखा किया भी नहीं सकते कि इन नयी पीढ़ीवालों की कविता भी कविता है, अत्यंत व्यक्तिगत कुछ वर्षों

का उद्घाटन कथ्यों की ओर से हुआ है। स्वयं की भटका होगा, आज की इस जटिल परिस्थिति में व्यक्तित्व का उद्घाटन अनिवार्य-सा हो गया है। स्वयं मुखौटे से मुक्त होकर अवसरवादियों का मुखौटा खींच लेनेवाले ये अवश्य चाहते हैं।

3. 'नयी कविता' की इन नयी दिशाओं के प्रवर्तकों का दोष यही है कि वे हिन्दी कविता में नयापन लाने हेतु विदेशी साहित्य का मुँह ताकते हैं। अपने देश तथा परिवेश का ध्यान किये बिना पाश्चात्य - दर्शनों से ये जल्दी ही प्रभावित होते हैं और उन दर्शनों की संकुचित सीमा में समस्त साहित्य को समाविष्ट करना चाहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ये मौलिक प्रतिभा नहीं रखते। अपनी ओर से कुछ देने, साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने या आंदोलन चलाने की शक्ति ये नहीं रखते।

4. 'नयी कविता' प्रयोगवाद का अगला चरण है और प्रयोगवाद का विकसित स्वरूप ही नयी कविता है। इसलिए प्रयोगवादी कविता के मुख्य कवियों ने नयी कविता के व्यापक क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा की छाप लगायी है।

5. 'प्रयोगवाद' तथा 'नयी कविता' के मुख्य आधार 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' हैं। बाद के दो सप्तकों ने भी नयी कविता को पुष्ट करने में सहयोग दिया। पर इन सप्तकों के बाहर भी अनेक प्रयोगवादी तथा नये कवि हैं जो किसी क्षेत्र में न जाकर साहित्य-सेवा ही मुख्य ध्येय मानकर चलते हैं।

6. पहली कोटि में मुख्य रूप से अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुरसिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, स्वदेश भारती आदि आते हैं और दूसरी कोटि में जगदीशगुप्त, नागार्जुन, श्रीकांत वर्मा, विपिनकुमार, मलयज, अजित आदि की गणना है।

तथा प्रयोगवादियों के आश्रय-

7. नये कवियों प्रयोग इतने भिन्न प्रकार के हैं कि प्रयोग को छोड़कर किसी बात में समानता का भाव दिखाई नहीं देता। लेकिन मात्र प्रयोग को नये कवि कविता नहीं समझते।

8. नये कवियों में कुछ घोर अहंवादी हैं तो कुछ पेट के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हैं। अहं की रक्षा करते हुए पेट की चिंता करनेवाले कवियों की कमी भी नहीं है।

9. नये कवियों में पाठकों के लिए शिकायतें हैं और क्रमशः कुछ शिकायतें भी।

10. आधुनिक काव्य को अतिक्रमित करने के लिए नयी पीढ़ीवालों द्वारा नयी कविता का घोर विरोध हो रहा है, पर केवल नयी कविता का विरोध ही काम न देगा, भाव-शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तनों को मुखरित करने की क्षमता भी कवियों में होनी चाहिए। निराला जैसे युगान्तरकारी व्यक्तित्व रखनेवाले, भारत की मिट्टी से परिचित कवियों से ही यह संभव है।

. . . .

छठा अध्याय :

(क) निराला : नई कविता के अग्रदूत

(ख) निराला काव्य : नई कविता के संदर्भ में

७.१. निराला : नयी कविता के अग्रदूत

७.१.१. नयी प्रवृत्तियों का आविर्भाव :

कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति अकस्मात् फूट नहीं पड़ती। प्रत्येक नयी धारा का अपने पूर्ववर्ती साहित्य से अटूट संबंध है। इसलिए नये साहित्य के संदर्भ में पूर्ववर्ती साहित्य की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। अन्य नयी साहित्यिक प्रवृत्तियों की भांति हिन्दी में नयी कविता का आविर्भाव भी पूर्ववर्ती साहित्य से प्रतिक्रिया स्वरूप ही हुआ। प्रतिक्रिया का मतलब पूर्वापर का संबंध - विच्छेद नहीं, इससे केवल साहित्य के प्रतिमानों का परिष्कार, मूल्यों का संस्कार एवं मान्यताओं में परिवर्तन आ जाते हैं। यह परंपरा का तिरस्कार नहीं, 'एक क्रमिक विकास का ही प्रतिमान है,'(1) काव्य-रूढ़ियों से मुक्ति है। इस मुक्ति से फलस्वरूप पूर्ववर्ती साहित्य के दोषों से दूर रहने की सुविधा परवर्ती साहित्य को मिलती है और साथ ही पुरानी लीक-वलिका के समान नयी चेतना से मंडित होकर नवीन प्रवृत्ति सामने आ उपस्थित होती है।

७.१.२. 'नयी कविता' आकस्मिक नहीं :

पूर्ववर्ती काव्य-रूढ़ियों का अस्वीकार करने तथा नये जीवन मूल्यों

---

1. नया सन्दर्भ : संपा० डॉ० रमेश गुप्त और श्री शशिकुमार चतुर्वेदी, हरिभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1982, भूमिका, पृ० 1।

की स्थापना करने के कारण 'नयी कविता' एक आंदोलन के रूप में ही स्वीकृत की गयी । (1) लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से परखने पर पता चलता है कि यह एक सुनियोजित या सुनियमित आंदोलन न था, काव्य के क्षेत्र में यह विकास एकदम स्वाभाविक था । अभावों का अनुभव, जो साहित्य में नयी प्रवृत्तियों को जन्म देने में सहायक रहता है, यही भी काम करता नज़र आया ।

6.1.3. 'नयी कविता ' अनुभूति नहीं :

स्वाधीनता - प्राप्ति के बाद नवजागरण के निर्माण में, नवीन व्यक्तित्व के स्थापन में हमारी जनता निरत हुई । हमारा साहित्य नये जीवन-दर्शन का प्रेरक नहीं था । तब स्वाभाविक है कि परिवर्तनशील कलाकार हमारे साहित्य में इसके अभाव महसूस करें । नयी मान्यताओं तथा पद्धतियों का भी अभाव अनुभव हुआ, क्योंकि कलाकार उनके प्रति सचेत हो गये । ऐसे नये कलाकारों पर यह आरोप कि उन्होंने पश्चिम की काव्य-प्रवृत्तियों का अंधानुकरण किया है, वे मौलिक-प्रतिभा से कोसों दूर हैं, निरर्थक है । ''नयी कविता का कवि, जगत और जीवन से, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति परिस्थिति से सम्बद्ध रहा ।'' (2) आजका कलाकार अतीत युगबोध से प्रभावित रहता है । नये कवि केवल संवेदन-शील ही नहीं संसार के कोने-कोने

---

1. डॉ० जगदीश गुप्त : नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1969, पृ० 1
2. गजानन माधव मुक्तिबोध: नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-6, 1971, पृ० 34

दैनिकी परिवर्तनों से परिचित हैं, वैज्ञानिक प्रगति के मूल्य-बोधों का ज्ञान रखते हैं और आधुनिकता के हिमायती रहते हैं। स्वाभाविक कलाकार होने के नाते योरोपीय काव्य-प्रवृत्तियों का ज्ञान तो इन्हें अवश्य रहा है और उन काव्य प्रवृत्तियों का थोड़ा बहुत प्रभाव भी इन्होंने ग्रहण किया है, लेकिन इस आधार पर यह आरोप कि इन नये कवियों ने नकल की है, इनका पूरा साहित्य ही अनुकृति है, गलत है। ''वस्तुत: नयी कविता न तो आरोपित रही है और न ही अनुकृति। उसे हिन्दी कविता के आधुनिक विकास की सहज, स्वाभाविक एवं अनिवार्य कड़ी के रूप में ग्रहण करना चाहिए। '' (1)

6.1.4 नयी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव :

श्री विश्व मोहन शर्मा ने हिन्दी की नयी कविता पर अमरीका के साहित्य को अपनाया है और साफ-साफ कह दिया है कि हम इस बात में उनसे पीछे हैं। ''नयी कविता केवल हम अमरीका से पीछे हैं। वहाँ भी अत्याधुनिक कविता 'New Poetry' के नाम से पुकारी जाती है, बिटनीक पीढ़ी, भूखी पीढ़ी - ये नाम भी वहीं से आयात हुए हैं। ''(2)

ब्रिटेन तथा अमरीकी साहित्य में नयी प्रवृत्ति का आरंभ सन् 1912 से माना जाता है। (3) डी०एन०डीचिस ने लिखा है कि

---

1. डॉ० रवीन्द्र भ्रमर : 'नयी कविता' (निबंध), आधुनिक हिन्दी साहित्य, सं० डॉ० कुमार विमल, भारत प्रकाशन, पटना-4, प्र०सं० 1965, पृ० 31
2. विश्व मोहन शर्मा : साहित्य कथा और आत्मा, नालन्दा-पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, प्र०सं० 1972, पृ० 29
3. डी०एन०डीचिस, शार्ट हिस्टरी ऑफ इंग्लिश लिटरेचर, पृ०290

एज़रा पाउंड के 'रिपोस्ट्स' से इस नयी प्रवृत्ति का समारंभ हुआ और इसके प्रचलन में टी०एस०इलियट का भी बड़ा सहयोग रहा। (1) अमरीकी नयी कविता का आरंभ एकिन के अनुसार सन् 1915 में ही हुआ। (2) असल में अंग्रेज़ी तथा अमरीकी नयी कविता का प्रेरणास्रोत फ्रांसीसी साहित्य था। एज़रा पाउंड स्वयं फ्रांसीसी कृतियों से काफी प्रभावित थे। (3) 'पोएट्री' पत्रिका (सन् 1917) के प्रकाशन से अमरीकी साहित्य में नयी कविता की धूम मचने लगी। लेकिन हिन्दी में इस का प्रादुर्भाव तीस-पैंतीस वर्ष बाद ही हुआ।

6.1.5 'नयी कविता' हिन्दी में :

डॉ० बच्चनसिंह के अनुसार हिन्दी में नयी कविता का आरंभ सन् 1950 के आसपास माना जाना चाहिए। (4) यद्यपि नयी धारा का नया नाम 'नयी कविता' 'दूसरा सप्तक' (सन् 1951) के प्रकाशन के बाद ही प्रचार में आया तो भी इसके पहले ही 'नयी कविता' के अंकुर फूट चुके थे। शायद इसी तथ्य को मन में रखकर ही सुमित्रानंदन पंत ने 'नयी कविता' की शुरुआत सन् 1948-50 से मानी थी। (5)

---

1. [illegible], शॉर्ट हिस्टरी ऑफ अमेरिकन लिटरेचर, पृ० 290
2. एकिन : पाथ्वा ऑफ पोएट्री, पृ० 1
3. पोएट्री ऑफ एज़रा पाउंड, पृ० 308
4. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी काव्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 300
5. सुमित्रानंदन पंत : चिदंबरा, पृ० 62-63

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी छायावाद के बाद के संपूर्ण काव्य को ही नयी कविता की संज्ञा देते हैं। (1) इन्द्रनाथ मदान समकालीन कविता को छायावाद के बाद की कविता कहते हैं। (2) अर्धवार्षिक 'नयी कविता' पत्रिका के प्रकाशन काल (सन् 1954) से ही डॉ० जगदीश गुप्त हिन्दी में नयी कविता का आरंभ मानते हैं : ''नयी कविता ने अपने प्रकाशन 1954 ई० से वर्तमान समय तक अपनी समग्र दीर्घ यात्रा में, छायावाद और प्रयोगवाद के सार्थक तत्वों को अपने में समाहित करके भी वास्तविक धरातल का निर्माण किया जो नितान्त ही स्वतंत्र रहा है। '' (3) लेकिन यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि 1954 ई० के पहले ही इस नवीन काव्य-प्रवृत्ति के लिए 'नयी कविता' नाम प्रचलित हो चुका था। पत्र-पत्रिकाओं में इस पर चर्चा भी चलती थी। डॉ०रामस्वरूप चतुर्वेदी का निबंध 'नयी कविता में मुक्तछंद' 1953 में ही प्रकाश में आ गया था। (4) रामस्वरूप चतुर्वेदी जी के ही संपादकत्व में 'नये पत्ते' का प्रकाशन इसी काल में शुरू हुआ। (5) अतः यह कहना कि 1954 से ही नये काव्य के लिए 'नयी कविता' नाम स्वीकार हो गया, ठीक नहीं जँचता। इस नयी काव्य प्रवृत्ति का व्यापक विकास सन् 1950 से मानना ही

- -

1. नंददुलारे वाजपेयी : 'नयी कविता मेरी दृष्टि में', रीति और शैली, वाणीप्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971, पृ०19
2. इन्द्रनाथ मदान : आलोचना और आलोचना- कृति की राह से, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं०1971, पृ० 78
3. डॉ० जगदीशगुप्त : नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ 1969, पृ०1
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'नयी कविता में मुक्तछंद', 'कल्पना' पत्रिका, अगस्त 1953 ई०
5. डॉ०नरेश खरे : आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ : एक पुनर्मूल्यांकन, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र०सं०1976, पृ०148

तर्कसंगत है । हिन्दी में आधुनिकता का क्षिप्रगति से विकास भी इसी समय में दृष्टिगोचर होता है । छायावाद-युग में ही हिन्दी काव्य में आधुनिकता का प्रथम-प्रवेश होता है,(1) पर उसका पूरा समावेश 1950 से आरम्भ ही माना जा सकता है । (2)

राजनैतिक दृष्टि से भी 1950 का बड़ा महत्व है । श्रीकुमार विमल लिखते हैं —''भारत में आधुनिकता का वास्तविक प्रारंभ 1950 ई० से माना जाना चाहिए, क्योंकि इसी वर्ष 26 जनवरी को अनेक अपरिचित जीवन-स्थितियों और युगगत नवीनताओं की स्वीकृति देनेवाला नया संविधान राष्ट्रीय-स्तर पर लागू हुआ तथा हम एक स्वतंत्र प्रजातांत्रिक देश के स्वाभिमानी नागरिक बन गये । प्रजातांत्रिक पद्धति पर वयस्क मताधिकार लागू हो जाने पर शताब्दियों से उपेक्षित वर्गों के अतिसाधारण व्यक्ति को भी एक नयी प्रतिष्ठा मिल गयी । इस तरह भारतीय जीवन में मनुष्य की जन्मसिद्ध मर्यादा का नया आख्यान आ गया ।''(3) मनुष्य की जन्मसिद्ध मर्यादा का यह नया आख्यान जनजीवन में ही सीमित सीमित न रहा, उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा ।

6.1.6 नयी कविता का मूल्यांकन :

नयी कविता के मूल्यांकन को ढूढ़ने के लिए हमें पीछे की ओर

---

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पराग प्रकाशन, पटना 1965, पृ० 211।
2. वही, पृ० 212
3. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 25।
4. डॉ० नगेन्द्र : विचार और विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1974, पृ० 126

ज्यादा चलना पड़ेगा । नंददुलारे वाजपेयी स्वीकार करते हैं कि छायावादोत्तर काव्य में केवल प्रगतिवाद या प्रयोगवाद की समाप्ति नहीं होता, बल्कि जो-जो नयी प्रवृत्तियाँ हिन्दी-काव्य-जगत में प्रकट हुई सब का बीजारोपण छायावाद के अन्तःकाल में ही हो चुका था ।(1) डॉ० नगेन्द्र ने भी नयी प्रवृत्तियों का सीधा संबंध छायावाद से जोड़ा है । अज्ञेय का स्वर भी इसका समर्थन करता है । अपनी 'नयी कविता' प्रवचन के बाद 'अद्येता' के शब्द वस्तुतः अज्ञेय के ही शब्द हैं —

''. . . नयी कविता का आरंभ तो छायावाद के युग में ही हो गया था । ''(2)

डॉ० नामवरसिंह 1938 से काव्य में नयी प्रवृत्तियों का आविर्भाव मानते हैं —''. . . उत्तर छायावादी दौर से कविता को निकालकर उसे समकालीन परिवेश के लिए प्रासंगिक बनाने का जो श्रेय सामान्यतः 'तारसप्तक' को दिया जाता है उसकी शुरुआत 1938 के आसपास ही हो चुकी थी । ''(3) मुक्तिबोध की भी प्रायः यही धारणा है —''नयी कविता के क्षेत्र में अबाधित रूप से प्रगतिशील परंपरा की एक क्षीण धारा बहती है । '' (4)

- -

1. डॉ० नगेन्द्र : विचार और विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1974, पृ०126
2. अज्ञेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य एक परिदृश्य, राजपाल एण्ड - सन्ज़, प्र०सं०पृ०162
3. डॉ० नामवरसिंह : कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि०सं०1974, पृ०92
4. गजानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध, विश्वभारती, नागपुर, द्वि०सं०1977, पृ०13

नयी कविता की जड़ें छायावाद तक पहुँच जाती हैं । प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद दोनों का मौलिक संबंध भी छायावाद से रखता है । ''प्रगतिवादी काव्य धारा की भाँति प्रयोगवादी काव्य का स्रोत भी छायावाद ही है ।'' (1)

6.1.7. निराला : वसंत के अग्रदूत :
- - - - - - - - - - - - - - -

निराला के छायावादयुगीन काव्य में ही उनकी प्रगतिशीलता प्रकट हुई थी, प्रयोगधर्मिता उनकी कला की निजी विशेषता है । ''निराला के समस्त काव्य को प्रयोग का अल्बम कहा जा सकता है ।'' (2)

नयी कविता का संबंध प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद से है और उसका सबल प्रभाव निराला से ही मानना चाहिए । ''नयी कविता की सीधी सबल धारा निराला से लेकर शमशेर, अज्ञेय, केदारनाथसिंह, कीर्तिचौधरी, नागार्जुन, त्रिलोचन और विजय कुमार तक आती है ।'' (3)

प्रयोगवादी कविता पर विचार करते हुए नेमिचन्द जैन ने भी निराला का स्मरण किया है और कहा है कि ''जिस बदलती हुई काव्य-चेतना की एक अभिव्यक्ति 'तारसप्तक' के कवियों में मिलती है वह उस दौर के अन्य बहुत से तरुण कवियों में भी जिनमें निराला के अतिरिक्त शमशेर बहादुरसिंह त्रिलोचन, भवानीप्रसाद मिश्र, रामेश्वरगुप्त

- -

1. डॉ0 बच्चनसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0 1978, पृ0 298
2. डॉ0 बच्चनसिंह: आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 298
3. डॉ0 श्यामसुंदर घोष : नयी कविता का स्वरूप, पृ0 9

केदारनाथ अग्रवाल और नरेन्द्रशर्मा तक का उल्लेख किया जा सकता है।(1)

निराला को नयी कविता के प्रवर्तक घोषित करते हुए धनंजय वर्मा ने लिखा : ''छायावाद-काल में ही निराला ने नयी कविता का द्वार खोल दिया था और 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' में उसका प्रारंभिक रूप मिल जाता है।''(2) सहज नहीं कि जो क्योंकि छायावाद-काल में निराला द्वारा अपनायी गयी थी, उसकी शैली नयी कविता के द्वार तक पहुँचती है। ''निराला की विशिष्टता यह है कि छायावादोत्तर काल में जहाँ उनके अधिकांश समवर्तियों का क्रमशः स्पष्ट ह्रास हुआ, वहाँ निराला ने अपनी सृजनशील जागरूकता बराबर कायम रखी। 'अणिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत गुंज' आदि काव्य संग्रहों से कम से कम दो दर्जन उत्कृष्ट कविताएँ बड़ी आसानी से चुनी जा सकती हैं जिन्हें कोई नया कवि भी अपनी कहने में गौरव का अनुभव करेगा।''(3)

'प्रयोगशील कविता' तथा 'नयी कविता' के सबसे प्रबल समर्थक अज्ञेय भी निराला की अगुवाई स्वीकार करते हैं। वे 'कुकुरमुत्ता' से पहले लिखी गयी निराला की कविताओं में भी 'नयी कविता' के बीज ढूँढते हैं।(4)

- -

1. नेमिचन्द्र जैन : तारसप्तक प्रसंग, बदलते परिप्रेक्ष्य - पृ. 52
2. धनंजय वर्मा : निराला-काव्य: पुनर्मूल्यांकन, विद्याप्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1963, पृ056
3. डॉ० नामवरसिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ० 66-67
4. अज्ञेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य एक परिदृश्य, पृ0162

1937-38 में जिन महाशय ने साहित्यक्षेत्र में निराला को मृत घोषित किया था,(1) उनके मुख से अब प्रशंसा की धाराएँ फूट पड़ीं।(2) 'नयी कविता' का आरंभ 1954 से माननेवाले डॉ०जगदीशगुप्त भी इस नयी प्रवृत्ति के अग्रदूत के रूप में निराला को ही स्वीकार करते हैं।(3) हिन्दी काव्य क्षेत्र में अपनी भूमिका से उनके प्रयत्नों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा था कि उनकी भूमिका ने 'प्राचीन रूढ़ियों और निर्जीव मान्यताओं से काव्य को मुक्ति दिलाने में, निराला आदि द्वारा चलाये गये अभियान को एक आंदोलन का रूप देकर मुक्तछंद को व्यापक मान्यता दिलायी तथा उसे नयी अभिव्यक्ति के स्वाभाविक माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया।'' (4)

6.2 निराला - काव्य : नयी कविता के संदर्भ में

नये काव्य में जीवन की यथार्थता पर सर्वाधिक ज़ोर दिया जाता है। वास्तविक धरती पर उसके वस्तु-सत्य के मानव का सच्चा स्वरूप सामने लाने में नये कवियों ने सराहनीय प्रयत्न किया है। इस

- -

1. ". . .and as a literary force, at any rate, Nirala is already dead."---

अज्ञेय : 'विश्वभारती क्वार्टर्ली'; उद्धृत, डॉ०नामवरसिंह : कविता के नये प्रतिमान, राजकमल, प्रकाशन, दिल्ली0 1974, पृ088

2. अज्ञेय : [illegible] का अनुवाद, (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) स्मृतिग्रंथ: नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्र०सं01982, पृ062-70
3. डॉ०जगदीश गुप्त : नयी कविता: स्वरूप और समस्याएँ पृ0।
4. वही, पृ0 ।

नहीं कि इस नयी दिशा में प्रवृत्त होने की प्रेरणा उन्हें निराला से ही मिलती रही । अपनी युगांतरकारी प्रतिभा का स्वयं निराला को बड़ा गर्व था । 6 अगस्त 1937 में हिन्दी के नये सुमनों के प्रति उन्होंने लिखा था : '' मैं जीर्ण-साज बहु छिद्र आज, / तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन/मैं हूँ केवल पदतल-आसन, / तुम सहज बिराजे महाराज। / ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि/मैं ही वसन्त का अग्रदूत, / ब्राह्मण-समाज में ज्यों अछूत/मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि ।'' (1)

आलोचकों में एक वर्ग निराला की प्रारंभिक कृतियों में नयी कविता के दर्शन देखता है (2) तो दूसरा वर्ग 'कुकुरमुत्ता' तथा अन्य कुछ परवर्ती कृतियों से नवीनता का आरंभ मानता है । (3) ''कविता की इस नयी भूमिका पर निराला का आगमन आकस्मिक न था, स्वच्छन्दतावादी चेतना के पूर्ण-वैभव काल में भी उनकी कवि-संवेदना सामाजिक जीवन के यथार्थ के ताप का उतनी ही प्रखरता से अनुभव किया करती थी ।'' (4) स्वच्छंदतावादी काव्य-धारा के समानांतर यह नयी काव्य-धारा भी 'छायावाद'-काल से लेकर बहती आ रही थी और आज भी यह कई मोड़ लेकर निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर होती जा रही है।

- -

1. 'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र,' निराला रचनावली-1, पृ०331
2. धनंजय वर्मा: निराला काव्य: पुनर्मूल्यांकन, [illegible] मंदिर, दिल्ली, 1963, पृ०56
3. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : आलोचना और आलोचना पृ० 78
4. शिवकुमार मिश्र: आधुनिक कविता और युगदृष्टि, विद्यामंदिर, वाराणसी, प्र०सं०1966, पृ०207

ऐसी स्थिति में निराला की परवर्ती कृतियों के परामर्श-मात्र से नयी काव्य-प्रवृत्तियों के प्रकाश में निराला काव्य का अध्ययन तथा मूल्यांकन अधूरा रहेगा । इसलिए निराला-काव्य का विवेचन उसकी समग्रता में ही आवश्यक है ।

७·१·१· मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा

भारतीय साहित्य में मानववादी या प्रगतिवादी विचार-धारा के प्रचलन के बहुत पहले ही मानवता का उदार स्वर मुखरित हुआ था । स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, अरविंद जैसे महापुरुष मानवता का संदेश समस्त विश्व में फैला चुके थे । निराला की प्रारंभिक कृतियों में उन महापुरुषों का गहरा प्रभाव पड़ा है । 'अधिवास', 'विधवा,' 'भिक्षुक' जैसी कृतियों में गांधीवाद या मानवतावाद के स्थान पर प्रगतिवादी विचारधारा को ढूंढना बेकार है । इन्हें कवि की मानवतावाद के अन्तर्भुक्त मानना ही अधिक समीचीन है ।

निराला काव्य की मानवीय-भूमिका ही उसे उत्कृष्ट बना देती है, वास्तविक गरिमा प्रदान करती है । वेदांत तथा रहस्यवाद को अपनाते समय भी कवि निराला भौतिक जीवन पर आस्था रखते हैं । उनका यह विश्वास कभी मंद नहीं पड़ता । व्यष्टि उनके लिए सबसे बड़ा सत्य है । 'व्यष्टि' और 'समष्टि' में वे अंतर नहीं मानते :

''व्यष्टि और समष्टि में नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम —
माया जिसे कहते हैं।'' (1)
व्यक्ति सत्य ही है, भ्रम ही माया है।

यदि ब्रह्माण्ड में जो प्रकाश फैला है उससे व्यष्टि वंचित नहीं :

''जिस प्रकाश के बल से
और ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई।
व्यष्टि औ' समष्टि में समाया वही एक रूप,
चिद्घन आनंद-कंद।'' (2)

व्यष्टि में समस्त सृष्टि का सार है। (3)
अपनी अंतः शक्ति से अपरिचित भारतीयों को वे आत्मगौरव बोध से उद्बुद्ध बनाना चाहते हैं —

''तुम हो महान, तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता कामपरता,
ब्रह्म हो तुम।'' (4)

---

1. निराला : पंचवटी-प्रसंग-4, निराला रचनावली-1, पृ0 46
2. निराला : " "
3. निराला : निराला रचनावली, 1, पृ0 202
4. निराला : जागो फिर एक बार-2, निराला रचनावली-1, पृ0 143

प्रकृति के नाम पर दूसरों पर स्वामित्व जमाना उनका उद्देश्य नहीं था। प्रकृत स्वामित्व करने लेकिन नहीं बराबरी वाले लेकिन ही निराला प्रतिष्ठा आह्वान करते हैं।

व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर रूप की प्रकृता देखनेवाले कवि आदमी तौर पर उनमें अंतर देखना उचित नहीं समझते। वस्तुतः वे मानव की मानव कल्पना से परख करते हैं। वाल्मीकि, व्यास, - कालिदास, सूर-तुलसी को भी वे महान पुरुष मानने के पक्ष में नहीं, पुरुष ही कहते हैं —''. . . तुलसीदास ने सिर्फ स्वामी की बात देखायी है, बाकी महापुरुषों की नहीं। वह स्वयं भी महापुरुष नहीं है, आधुनिक विद्वानों का मत है। कहते हैं, जवानों के भोगविलास थे, बाकी सबसे बाहर होता था, उम्र के दो चार वर्ष बाद अध्ययन होता रहा तब उनमें पुरुषत्व ही प्रधान रहा।'' (1)

मानव से ही मानव के भीतरी प्रकृता का तिरस्कार जहाँ-कहीं होते देखा, निराला ने दलित मानवता का पक्ष लिया। दुःखों की उत्पत्ति धन-भार्य ही माना, उसके अनु पाने की दौड़ पड़े, नये तरह कल्पना की। निराला लेकिन उन दिनों मुक्तिपथ की अभिलाषा था, लेकिन मानव-सेवा से वंचित मुक्ति उनकी काम्य न थी: ''उसके निकट गया मैं धाय, / लगाया उसे गले से हाय। / देखा माया

- -

1. 'कुल्लीभाट' (सन् 1939) निराला रचनावली-4, पृ021

मैं हूँ निरुपाय, / कहो, कैसे फिर गति बन जाय ?'' (1)

समाज की ओर से उपेक्षिता विधवा को भी समाज के बीच स्थापित करने का वास्तविक प्रयास निराला की कविता में हुआ है । विधवा की दीन-दलित अवस्था के कारण दुनिया के सामने भारत का सर झुक गया :

''ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया /
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया । '' (2)

लकुटिया टेक चलनेवाले 'भिक्षुक' का चित्र कवि के कलेजे को टुकड़े-टुकड़े कर देता है । भूख मिटाने को कुत्तों से जूझनेवाले भिक्षुओं के चित्र हृदय-विदारक हैं । स्वार्थियों ने उनका अन्न छीन लिया है । स्वार्थ के मार्गों को अपनाकर कवि शत्रुओं का अर्थ स्पष्ट कर सकते थे । परंतु विपन्न दृगों को देखने की शक्ति उनमें नहीं थी । उनका अन्न वे नहीं छीन सके : ''छीन का न छीना कभी अन्न ,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न ।''(3)

लेकिन जानवर ही हमारे शत्रु नहीं, मनुष्यों में भी ऐसे कई हैं जो बुद्धि-भावनाओं की परवाह किये बिना उनके ही सामने धर्म के

- -

1. 'अधिवास', (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 35
2. 'विधवा' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 61
3. सरोजस्मृति (सन् 1935) निराला रचनावली-1, पृ0 297

नाम पर आत्मघातों को चुना जिसने है : ''मेरे पड़ोस के वे सज्जन, / करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन, / झोली से पुए निकाल लिये, / बढ़ते कपियों के हाथ दिये, / देखा भी नहीं उधर फिरकर / जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ; / चिल्लाया किया दूर दानव, / बोला मैं —''धन्य, श्रेष्ठ मानव । '' (1)

कवि अपने-अपने उन्नतर शिखरों के अधिकारी आधुनिक मानव की श्रेष्ठता पर विचार कर रहे हैं, ''सब में है श्रेष्ठ, धन्य मानव '' (2) कह रहे हैं, लेकिन मानव से मानव की घृणा देख उनकी वाणी व्यंग्य में बदल गयी ।

पत्थर तोड़नेवाली मजदूरिन का पसीना जो कठोर धूप के मारे काला बन गया थी, उसके पेट में भूख की ज्वाला धधकती थी, लेकिन उसका हृदय सितार जैसे दर्द भरा है । उस सितार से कवि ने जो झंकार सुनी, बिल्कुल नयी थी : ''देखते देखा मुझे तो एक बार / उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार ; / देखकर कोई नहीं, / देखा मुझे उस दृष्टि से / जो मार खा रोई नहीं, / सजा सहज सितार, / सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार / एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर, / ढुलक माथे से गिरे सीकर, / लीन होते

---

1. 'दान', निराला रचनावली-1, पृ० 290
2. 'तोड़ती पत्थर', (सन् 1937) निराला रचनावली-1, पृ० 324

कर्म में फिर ज्यों कहा—मैं तोड़ती पत्थर । '' (1)

'प्रेमसंगीत' में भी वधू की प्रतिष्ठा पर चोट है । जो नीची जाति की है कहारी है, जिसकी जात मसालची नहीं है, उसकी खातिर जो लड़का मटका लेकर पानी भरती है उसे अपनी प्रेयसी कहने में कवि को कोई हिचक नहीं । (2)

'गर्म पकौड़ी' में कवि वधू के बीच में बचपन की भी में चलाती जिह्वा की तरह नमक-मिर्च की तेल में भुनी पकौड़ी के पीछे पड़ते हैं (3) तो दूसरी ओर 'खजोहरा' में काली-कलूटी दासिनी जैसी कुआ पर भी आकृष्ट हुए हैं । (4) कानी रानी का दुःख भी कवि को व्याकुल बना देता है : ''काँपे कुल अङ्ग, /दायीं आँख से/आँसू भी बह चले माँ के दुख से, / लेकिन वह बायीं आँख कानी/ ज्यों-की-त्यों रह गयी रखती निगरानी । '' (5)

पीड़ित मानवता की रक्षा के लिए वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध निराला आवाज़ बुलंद करते हैं : ''जीर्ण बाहु,

---

1. 'तोड़ती पत्थर', (सन् 1937) निराला रचनावली-1, पृ0324
2. 'प्रेमसंगीत' (सन् 1939) निराला रचनावली-2, पृ0 29
3. 'गर्म पकौड़ी' (सन् 1940) वही, पृ041
4. 'खजोहरा' (सन् 1941) वही, पृ0 57
5. 'रानी और कानी' (सन् 1939) निराला रचनावली-2, पृ032

है शीर्ण शरीर, / तुझे बुलाता कृषक अधीर, / ऐ विप्लव के वीर।''(1)

कवि चाहते हैं कि देश की सारी पूंजी पूंजीपतियों और जमींदारों से सरकार के हाथ में आ जाय (2) और पीढ़ियों की सेवा का भार भी देश ही संभाले। उनका यह विचार समाजवाद से प्रभावित था —

''सारी सम्पत्ति देश की हो, / सारी आपत्ति देश की बने, / जनता जातीय वेश की हो, / वाद से विवाद यह बने, / काँटा कहीं से कढ़ जी।'' (3)

6.2.2. आधुनिक भावबोध :

सुशिक्षित मध्यवर्ग नयी परिस्थिति में असंतोष का अनुभव करता है। वह वर्तमान से आश्वस्त नहीं है। अस्तित्ववादियों की दृष्टि में यह अनास्था जीवन की प्रगति का अनिवार्य तत्व है। निराला की मानव-सेवा प्रगति के पथ पर आगे ले जाती है, (4) अस्तित्ववादियों की अनास्था भविष्य समाज में सहायता पहुंचाती है, यानी अनास्था आस्था को जन्म देती है। निराला का जीवन दर्शन अस्तित्ववादी दर्शन से मिलता जुलता है। इसलिए उन्होंने लिखा

---

1. 'बादल राग' 6 (सन् 1924) निराला रचनावली-1, पृ 124
2. 'बिछुड़ा हुआ पाप वह' निराला रचनावली-2, पृ0 161
3. 'खड़-खड़ पैर कढ़ जी' निराला रचनावली-2, पृ0 163
4. 'अधिवास' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 35-36

था : ''प्रकृति के ही भीतर है/ प्रकृति के पार जाना है । '' (1)

इस दर्शन के अनुसार मार्क्स के सिद्धांतों पर विचार प्रकट करते नवनिर्माण की यह अवधारणा स्पष्ट करती है । ''भौतिकवाद चाहता था कि आदमी अधिक-से-अधिक वस्तुओं की कामना करे, जिससे चेतना-विकास से उत्पादित उसका आनंद अधिक से-अधिक व्यापक हो सके । ''(2) निराला ने चेतना पर विचार प्रकट करते अपने व्यक्तित्व के संसार खोलने की उत्सुकता दिखाई दे रहे हैं : ''मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण, / इसमें कहाँ मृत्यु/ है जीवन ही जीवन ।/ अभी पड़ा है आगे सारा यौवन ; / स्वर्ण-किरण-कल्लोलों पर बहता रे यह बालक-मन '' (3)

सिद्धांतों के विकास के बाद अपना पुनः निर्माण होते कवि ने देखा है: '' विश्व के परिसर में म्लान/कुछ रहो कमल में कुसकीन/वासना-मुक्त चाकर विहीन, / आओ मर्म पर, मनोज प्रभात ।''(4)

कवि का आत्म विश्वास बढ़ रहा है — '' यह सच है:- तुम ने जो दिया दान दान वह, / हिन्दी के हित का अभिमान वह, / जनता का जन-ताका ज्ञान वह, / सच्चा कल्याण वह अथच है—/यह सच है । '' (5)

- -

1. 'पंचवटी' प्रसंग'- निराला रचनावली-1, पृ०48
2. डॉ०कमलकुमार गुप्त 'मंगल': अतिवाद, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक भूमिका, अनुपम प्रकाशन मंदिर, पटियाला, प्र०सं०1977, पृ० 92
3. 'ध्वनि' (सन् 1924) निराला रचनावली 1, पृ० 115
4. 'आओ मेरे अधुर उर पर' (सन् 1932) निराला रचनावली-1, पृ० 215
5. सच है (सन् 1935) निराला रचनावली-1, पृ0295

फिर भी वर्तमान में कवि के सपने टूटते हैं । लेकिन सपने देखने की आदत वे छोड़ते नहीं । क्योंकि यथार्थ में टूटनेवाले सपने कल्पना में फिर से जुड़ते हैं —

''स्वप्न ज्यों सब जाय/ यह तरी, यह सरित, यह तट, / यह गगन, समुदाय/कमल वल्लरि-तरंग-भुज-जाल/ हार का उपहार हो । '' (1)

७.१.१. कालानुभूति :

जीवन के प्रत्येक क्षण को निराला ने अपनी अमर कृतियों से अमरत्व बना दिया है । कवि ने स्वयं कहा है : ''दिये हैं मैं ने जगत् को फूल-फल, / किया है अपनी प्रभा से चकित-चल, / पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल— / ठाट जीवन का वही/ जो ढह गया है । '' (2)

'क्षण' की इस आधार भूमि में खड़े होकर अज्ञेयजी (3) की भाँति निराला केवल भविष्य को ही नहीं देखते, वे पीछे की ओर भी देखते हैं जहाँ से वे आये हैं । संपूर्ण परिवेश के प्रति वे सजग हैं, उसका पूरा-पूरा मेल उनको अवगत है । वे जानते हैं कि वस्तुतः भविष्य के निर्माण में अतीत के महत्वपूर्ण अंशों का भी काम होगा ।

---

1. 'वनबेला' (सन् 1937) रचनावली-1., पृ0 325
2. 'स्नेह निर्झर बह गया है', (सन् 1942) निराला रचनावली-2, पृ0 84
3. 'अज्ञेय : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि - अज्ञेय, पृ0 79

इसी कारण से कवि खंडहरों के सामने आशीर्वाद की आशा में सिर झुकाए खड़े हैं :

''बरसो आशिष, हे पुरुष - पुराण,
तव चरणों में प्रणाम है। '' (1)

प्रयोगवाद के पुरोहित 'अज्ञेय' भी अतीत से एकदम कटे हुए नहीं है। (2) 'असाध्यवीणा' में पुरानी परिवेश के माध्यम से जिस 'अस्तित्ववाद' का उद्घाटन उन्होंने किया है कहीं पहले निराला कविता में उसका आभास मिल चुका था :

''तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान। '' (3)

6.2.3.2. पैना हुआ समय :

आधुनिक भावबोध वर्तमान पर अधिक आधारित रहने के कारण समय पर ही कवि का पूरा विश्वास है। कल्पना के कमल से हटकर कठोर समय का सामना करने को आधुनिक कवि सतत तैयार है। कल्पना से भी वह दूर हो गया है : '' बीते समय, न रहे कल्पना / समय रहे, मिट जाय कल्पना।'' (4)

---

1. 'खंडहर के प्रति' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ०69
2. 'तुम्हीं गाती हो,' निराला रचनावली-1, पृ० 247
3. निराला रचनावली-2, पृ०33
4. वही, पृ० 158

निराला की संपूर्ण कविता में कवि का अपना भोगा हुआ सत्य ही प्रकट हुआ है : ''मुसीबत में कटे हैं दिन, / मुसीबत में कटीं रातें ।/ लगी हैं चाँद-सूरज से/ निरंतर राहु की घातें ।''(1)

मृत्यु जैसी सत्य को भी संयत मन से कवि स्वीकार करता है: ''जानता हूँ, नदी-झरने, /जो मुझे थे पार करने, / कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख, / कोई नहीं भेला ।'' (2)

एक दूसरी जगह निराला ने यह भी कहा है कि ''मरण को जिसने वरा है/ उसी ने जीवन भरा है ।'' (3)

6.2.3. नयी नैतिकता :

छायावादी कवि द्विवेदी कालीन नैतिकता के विरोधी थे । छायावादियों में निराला ने ही 'जुही की कली' लिखकर तत्कालीन नैतिकता पर सबसे गहरी चोट की थी । उनकी दृष्टि तटस्थ थी । नयी नैतिकता के वे समर्थक थे । उनका मंतव्य था कि मध्यकालीन नैतिक मान्यताओं से अब समाज की पूर्ण मुक्ति होनी चाहिए । इस क्षेत्र में वे क्रांतिकारी विचार लेकर ही उपस्थित हुए । वे देख रहे थे कि समाज में पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं, उनको

---

1. निराला रचनावली, पृ0 158
2. 'मैं अकेला', (सन् 1940) निराला रचनावली-1, पृ042
3. 'मरण को जिसने वरा है ' (1942 ई0), निराला रचनावली-2 पृ0 85

सम्पत्तियों का अनुचित लाभ उठाते हैं। एक से अधिक पत्नियाँ रखकर मनमानी तौर पर जीनेवाले थे अब वही पत्नियों का तिरस्कार भी कर सकते हैं। पुरुषों की निरंकुशता तथा स्त्रियों की गुलामी निराला की दृष्टि में आधुनिक परिवेश के अनुकूल नहीं। उनका स्पष्ट विचार है स्त्री-पुरुष को समाज में समान अधिकार मिलना चाहिए। अगर पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकते हैं तो नारियों को भी इच्छानुसार पति रखने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। ''चूँकि पुरुष निराधार स्त्रियों की अपेक्षा इस देश में अधिक सम्पन्न हैं, इसलिए हम स्त्री-स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद करने के लिए कहते हैं, क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है।'' (1) स्त्रियों के लिए एक कानून और पुरुषों के लिए दूसरा, ऐसा दोहरी नैतिकता पर निराला का विश्वास नहीं था।

स्त्रियों के आत्मनिर्भर होने की आवश्यकता पर भी निराला जोर देते हैं। ''ज्ञान के बिना जीवन व्यर्थ है। निर्वाह होना कठिन है। स्वावलंबन नहीं आता। स्वावलंबन कोई पाप नहीं, प्रत्युत पुण्य है। हमारे देश के लोग इस समय औरों के हाथों से काम कराते हैं। उनके अपने हाथ निष्क्रिय हैं। जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएँगे, कार्य की सफलता हमें तभी प्राप्त होगी।'' (2)

---

1. 'सुधा', सितंबर 1932, संपादकीय, उद्धृत: निराला-रचनावली-6, पृ० 361
2. प्रबंध प्रतिमा, पृ० 134

निराला को इस बात का भय नहीं है कि स्त्रियों की आत्मनिर्भरता से समाज में व्यभिचार-धर्म बढ़ेगा। उनकी दृष्टि में सतीत्व और स्त्रियता बहुत कुछ दिखाऊ हैं। ''जिसे तौर पर जितना पाप होता है, वह किसी भी [illegible] नहीं से किया नहीं। मैं जानता हूँ, उसके ही एक कौम के अंदर पत्नियाँ बहुत, बेटे, भाई और पिता तक के साथ पति-संबंध स्थापित होने पर कम शिकायतें।'' (1)

कम उम्र में लड़कियों का विवाह करा देने में भी निराला ने आपत्ति देखी है। बाल-विवाह के पक्षपातियों पर उनका व्यंग्य है : ''आठ वर्ष की बालिका के विवाह से बैकुण्ठ में अंकुरित गति प्राप्त करनेवाले पंडितों ने खूब खुलकर शास्त्रार्थ किया और सिद्ध भी कर डाला कि बिना आठ साल की लड़की का विवाह किए हिन्दू धर्म की रक्षा हो नहीं सकती।'' (2)

कवि की राय में लड़की की आयु कम से कम अठारह वर्ष की होनी चाहिए। निराला के उपन्यासों की नायिकाएं इससे कम उम्र में शादी नहीं करतीं। (3) 'सरोजस्मृति' में निराला ने जिस लड़की को देखा था उसकी आयु भी अठारह है : ''वे कहे गये क्या हैं, भय्या, / स्वर्गीय पास है लड़की वह, / बोले कुछ से, [illegible] हो तो / वर को है उम्र, ठीक ही है, लड़की भी अठारह की है।'' (4)

---

1. प्रबंध प्रतिमा, पृ० 140-141
2. सुधा, वर्ष 30, खंड10 [illegible]0-7
3. (अ) 'अप्सरा' निराला रचनावली-3, पृ०18
   (आ) 'निरुपमा', निराला रचनावली-3, पृ०368
4. निराला रचनावली-1, पृ० 300

कुछ नारियों के अपने इष्ट के पास स्वयं जाने में (1) या उनकी साथ मदिरापान में भी निराला ने नैतिकता का विरोध नहीं देखा। (2)

लेकिन साहित्य में अश्लीलता का खुला परामर्श उन्हें पसंद न था। इस पर संस्कृत के कवियों से भी वे अप्रसन्न थे। जानकी वल्लभ शास्त्री के एक लेख की आलोचना करते हुए निराला ने लिखा : '' 'ध्वनि ' वाला लेख काफी अच्छा है। पर अभी ध्वनि के प्रदर्शन में वैसा अश्लील उदाहरण न देना था, और संस्कृत साहित्य में इधर के कवियों ने अश्लीलता में ही कमाल दिखाया है, मैं समझता हूँ।'' (3)

परंतु निराला की छायावादी कविता में अपने प्यारे के प्रेम (4) विविध प्रकार की रंगरेलियों में डूबनेवाली कली का दर्शन होता है (5) प्रिय-मिलन के लिए निकली युवती का चित्रण मिलता है प्रिय के कठोर करों से मसल दिये गये उरोज तथा ओठों पर पड़ी दाँतों की निशानी भी दिखाई देती हैं। (6) द्विवेदी-युग के नैतिक नियंत्रणों का विरोध इससे हो जाता था। लेकिन उनकी 'विधवा' 'तोड़ती पत्थर' आदि प्रगतिशील कृतियों में नारी का अन्य-रूप ही सामने आता है। नारी के अंग-सौष्ठव पर ध्यान देते समय कवि हमेशा पवित्रता का

- -

1. 'मौन रही हार', निराला रचनावली-1, पृ0 240
2. 'प्रभावती' निराला रचनावली-3, पृ0255
3. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ0 83
4. 'जुही की कली,' निराला रचनावली, 1, पृ0 31-32
5. 'मौन रही हार' निराला रचनावली-1, पृ0240
6. 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे' निराला रचनावली-1, पृ0212

व्यक्त रही हैं । (1) भर-दोपहर ग्रीष्म वाली मजदूरिन की आँखों में मार खाकर भी न रोने का भाव ही कवि ने देखा है । "देखा मुझे उस दृष्टि से / जो मार खा रोई नहीं, / सजा सहज सितार, / सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार ।" (2)

परंतु 'प्रेमसंगीत' (1939ई) से लेकर कवि की काम-चेतना में स्पष्ट - परिवर्तन लक्षित होता है । अपनी दिल की बात खोलकर कहने का साहस उन्हें मिल गया । मन के व्यापारों की ईमानदारी से साफ प्रकट किये बिना उनसे रहा नहीं जाता : "ब्राह्मन का लड़का / मैं उसको प्यार करता हूँ / जात की कहारिन वह, / मेरे घर की है पनिहारिन वह, / आती है होते तड़का, / उसके पीछे मैं मरता हूँ ।" (3)

'खजोहरा' में स्नान करनेवाली नायिका का नग्न चित्रण कवि करते हैं लेकिन उसकी नग्नता को अपनी ही आँखों नहीं देखते । पेड़ पर बैठकर खजोहरा सब कुछ देख रहा था : "जहाँ नहाने की मदन जैसा बैठा / डाल पर बड़ा-सा खजोहरा था, / रोंयों भर रंग उसका और कुछ का था / सुंदरी की ओर को लगा हुआ ।" (4)

'स्फटिक शिला' में कवि की वास्तविकता बढ़ी । खजोहरा का स्थान उन्होंने स्वयं ग्रहण कर लिया । स्नान करके लौटनेवाली सीता जैसी नायिका के कठोर उरोजों पर वसन की चोट जैसी आँखों से कुछ

---

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ0123
2. 'तोड़ती पत्थर', निराला रचनावली-1, पृ0324
3. निराला रचनावली-2, पृ029
4. " पृ0 61

देर तक प्रहार करती ही रहे : '''अदम कहीं से नहीं कांपता/ कुछ भी संकेत नहीं देता/वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह/सीधे ऐसे जमात की . . .।'' (1)

इस प्रकार निरंतर विकसित होती रहनेवाली कवि की काव्य-चेतना से यह विदित होता है कि आधुनिक परिवेश में अपनी नयी वैज्ञानिकता ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया था ।

6.2.4. नवीन सौंदर्यबोध :

नयी कविता का सौंदर्यबोध यथार्थ पर आधारित है । चाहे वस्तुगत सौंदर्य बोध हो या भावगत, सत्य ही उसका मूलाधार है, आधुनिक वैज्ञानिक युग में सत्य का महत्व बढ़ता जा रहा है, तुच्छ से तुच्छ वस्तु भी सत्य होने के कारण सुंदर दिखाई देने लगी है । नयी कवि की दृष्टि में ऐसी कोई वस्तु न रह गयी है जो कविता के लिए उपयुक्त न हो । अणु-अणु, कण-कण अब कविता का विषय बन गया । निराला ने ऐसे एक 'कण' में अखिल विश्व का ही दर्शन किया है :

''तुम तो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुम में
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक ?
बिंदु ! विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण ?'' (2)

1. निराला रचनावली-2, पृ073
2. 'कण', निराला रचनावली-1, पृ0101

नये कवि असत्, दुःख और मृत्यु में भी रंग भरते मधुर बनाते हैं और उन्हें कोमल से कोमल दृश्य से भी चिढ़ नहीं। निराला को भी मृत्यु में रंग और रस दिखाई दे रहे हैं। Endless blue (1) कहकर उन्होंने मृत्यु में आकर्षक रंग भर दिया है :

''नील नयन, नील पलक ; / नील वदन, नील झलक । /
नील-कमल- अमल-हास, /केवल रवि-रजत भास, /
नील-नील आस-पास, / वारिद-नद-नीलालक ।
नील-नीर-पान-निरत/जगती के जन अविरत, /
नील नाव के आनत, /विधि-अलि-नील अलक। '' (1)

रंग ही नहीं मृत्यु को निराला ने मधुर-रस भी दे दिया :
''मधुर मधुर, मृत्यु मधुर । कम्प्र जग कम्पित उर । '' (2)

अंधकार और श्याम रंग के प्रति भी कवि का विशेष आकर्षण है।(3) कवि के अनुसार केवल सत्, सत् कहने से उत्कृष्ट कला का सृजन नहीं होता/कला की पुष्टि के लिए 'असत्' की भी आवश्यकता है।

''जिस छवि प्रकाश का और कमल
छवि छवि में हुआ, असत् भी, सत्,
वह देखा हुआ है एक महत् परिचय से
अविनश्वर वही ज्ञान भीतर . . . '' (4)

---

1. निराला रचनावली-8, पृ0 457
2. निराला रचनावली-2, पृ0 423
3. वही पृ0 459
4. वही पृ0 277

यह विचार निराला में बहुत पहले ही था, धीरे धीरे यह अधिक दृढ़ और स्पष्ट होता गया। उनकी परवर्ती कृतियों में जीवन के कल्पनात्मक तत्वों और वस्तुओं की ओर वे विशेष रूप से झुकते नज़र आये। अब उनकी आँखों में रवीन्द्र या शैली के अलौकिकता से मंडित सपने नहीं थे उस अलौकिक सौंदर्य को चुनौती देते हुए ठीक उलटी दिशा में वे चलने लगे थे। 'तोड़ती पत्थर' 'प्रेम संगीत' 'खजोहरा' आदि कविताओं में नये सौंदर्य बोध का दर्शन होता है।

6.25 वैयक्तिकता :

नयी कविता की वैयक्तिकता अन्तर्मुखी होकर आत्मा पर ही केन्द्रित रहती है। यह इसलिए कि नया कवि बाह्य दुनिया को अपने अनुकूल नहीं पाता। वह अकेलापन या अनुभव करने लगता है। वह समाज में पूर्ण रूप से रम नहीं सकता। वह भीड़ में रहता है लेकिन उससे दूर है। प्रकृति की गोद में रहनेवाले निराला भी अपने को दूर मानते हैं - ''हूँ दूर - सदा मैं दूर।/[illegible]-[illegible], / [illegible], / देख रहा हूँ दूर-दूर।/ हूँ दूर - सदा मैं दूर। '' (1)

जीवन की सांध्यवेला में भी कवि अपने को अकेले पाते हैं: ''मैं अकेला; /देखता हूँ, आ रही/मेरे दिवस की सांध्यवेला। ''(2)

---

1. 'हूँ दूर', (1923 ई0) निराला रचनावली-1, पृ07।
2. 'मैं अकेला', (1940 ई0) निराला रचनावली-2, पृ042

अपने को अकेला पाकर स्वार्थी दुनिया से क्षुब्ध मोहभंगी कवि को अंदर भी चैन नहीं। विधि के कड़े प्रहारों ने उनके दिल के 1921 ई० में ही टुकड़े टुकड़े कर दिये हैं: "जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल गया।" (1)

कवि अपनी आत्मा के इन जीवित क्षेत्रों में निरंतर संघर्ष का अनुभव करते रहे। सन् 1936 में वे लिख रहे हैं: स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,

रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय ;
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रान्त-
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार।" (2)

विश्व-युद्धोत्तर परिस्थिति में कवियों का मानसिक संघर्ष और अधिक बढ़ा। प्रगतिवादियों के समाजपरक यथार्थवादी सौंदर्य बोध पर भी धक्का लगा। यंत्र-युग पर, समाज-कल्याण पर कवियों का भी विश्वास था मिटता गया। स्वच्छंदप्रेम वाली प्रगतिवादी जनकल्याण समाज-कल्याण आदि की निरर्थकता पर प्रयोगवादी व्यंग्य करने लगे।

- -

1. अध्यात्म फल, निराला रचनावली-1, पृ030
2. राम की शक्तिपूजा : निराला रचनावली-1, पृ0311-312

'अर्थ' और काम पर मुग्ध रहा है कैपिटल की जिंदगी। उस के प्रभाव से वे बच न सके। ईश्वर तथा पुराण भी आलोचना के विषय बन गये। निराला के व्यंग्य-काव्य 'कुकुरमुत्ता' में वेद-वेदांत, पुराण, विष्णु और उनके सुदर्शन-चक्र तक उपहास की गयी: "काम मुझ ही से सधा है/ शेर भी मुझ से गधा है।/ चीन में मेरी नकल, छाता बना/ छत्र भारत का वही, कैसा तना। / सब जगह तू देख ले/ आज का फिर रूप पैराशूट ले।/ विष्णु का मैं ही सुदर्शन-चक्र हूँ।/ काम दुनिया में पड़ा ज्यों, वक्र हूँ। / उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी/ और भी लम्बी कहानी- सामने लाऊँ, कर मुझे डंडा/ देख डंडा/ और है [illegible] अनुज में राम का।" (1)

रामराज्य की आलोचना करते करते आखिर शूद्रों का पक्ष भी लेने लगते हैं, निराला : "मैं ने देखा, कहा मैंने मन उनका समाज है, / चोट खाई हुई सब रामजी के राज में, / शूद्रों को मिला नहीं/ जिनसे कुछ भी कहीं।" (2)

सीता जैसी पवित्र नारी को कलंक की आँखों से देखने का धार्ष्ट्य भी कवि ने किया है: (3)

तब तक कवि के वैयक्तिक दृष्टिकोण में एक क्रांतिकारी परिवर्तन भी आ चुका था। व्यक्ति - मानव की सहानुभूति या

- -

1. 'कुकुरमुत्ता', निराला रचनावली-2, पृ०44-57
2. '[illegible]', निराला रचनावली-2, पृ०72
3. वही, पृ०75

सम्मान की दृष्टि से न देख, स्वयं उन मानवों में एक बन कर रहने में कवि गर्व का अनुभव भी करने लगे : '' तू छोटा बन, बस छोटा बन/ मानस में अणिमा जागर । '' (1)

ज्यों-ज्यों व्यक्ति - मानव से निराला का संबंध घनिष्ट होता गया 'त्यों-त्यों वे वेद-वेदांत पुराणेतिहासों के अभिजात - संस्कारों से हटते गये ।

6.2.6 शिल्प :

6.2.6.1 भाषा :

शिल्प का सबसे प्रमुख एवं प्रधान साधन भाषा है । हमारे भावों तथा विचारों को भाषा सर्वाधिक स्पष्टता प्रदान करती है । इस भाषा का सीधा संबंध हमारे जीवनानुभवों से रहता है । ''जो कुछ हम अनुभव करते हैं, भाषा उसी का रूप है । ''(2) कलाकार जितने अनुभवी होंगे उनके भाव तथा विचार सुपुष्ट एवं सशक्त होंगे । कुशल कलाकार जब अपने सुपुष्ट-सशक्त भावों-विचारों को प्रकट करने लगता है, भाषा भी तदनुरूप उत्कृष्ट तथा उन्नत बन जाती है । इस प्रकार भाषा का सीधा संबंध लेखक के व्यक्तित्व से ही बनता है । इसलिए निराला ने लिखा था : ''जो मनुष्य जितना गहरा है, वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गंभीरता तक पैठ सकता है और पैठता है । साहित्य में

---

1. निराला रचनावली-2, पृ0409
2. जयशंकर प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ0 41

भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए । भाषा भावों की अनुगामिनी है । '' (1)

इस संबंध में वे और कहते हैं ''जो मनन भाव लोक-भाषा-प्रोक्ति रूप में चाहता है, वह भौलिक है : उसे भाषा की प्राप्त नहीं, वह भाव क्या समझेगा ? '' (2)

संदेह नहीं कि निराला भावानुकूल भाषा के समर्थक हैं । इसलिए उनकी भाषा में स्वच्छता का पर्याप्त अभाव है । कहीं कहीं प्रौढ़ गंभीर एवं ओजपूर्ण वाणी मुख उठती है तो कहीं कहीं माधुर्यपूर्ण शैली के नमूने मिलते हैं । कभी कभी सरल सुबोध शैली की ओर वे उन्मुख होते हैं तो बोलचाल की भाषा पर भी कुछ रीति दिखाई देते हैं, किन्तु सब प्रसंग के अनुकूल निराला की भाषा निरंतर बदलती रहती है । भाषा की यह अनेकरूपता निराला-काव्य के अभिव्यक्ति-पक्ष की सबसे बड़ी विशेषता है ।

मुख्य रूप से निराला-काव्य में चार प्रकार की भाषा शैलियाँ पायी जाती हैं –

1. प्रौढ़ शैली
2. मधुर शैली
3. सरल, सुबोध, व्यावहारिक शैली
4. बोलचाल की शैली

- -

1. प्रबंध पद्म : पृ0 23
2. जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला के पत्र, पृ0 120-121

6.2.6.1.1. प्रौढ़ शैली :

निराला ने अपनी छायावादी-रहस्यवादी तथा संस्कृतिप्रधान कृतियों में प्रौढ़, गंभीर, ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी कृतियों में संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता तथा लंबी समास-योजना की प्रवृत्ति मिलती है। प्रतीकात्मक और लाक्षणिक प्रयोगों की भरमार रहती है। दीर्घ समासान्त पदावली से युक्त भाषा का श्रेष्ठ उदाहरण 'राम की शक्तिपूजा' से लिया जा सकता है :

''प्रतिपल - परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल-समूह, -
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह, क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरित वह्नि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,
राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत लंकापति-मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव, -
विध्दांग-बध्द-कोदण्ड-मुष्टि-खर रुधिर स्राव . . .''(1)

निराला ने अपनी प्रारंभिक कृतियों की पंक्तियों में भी इस प्रकार की दीर्घ समासान्त पदावली का प्रयोग किया है लेकिन इस शैली का पूर्ण विकास राम की शक्तिपूजा में ही हुआ है। इस शैली का प्रथम दर्शन 'तुम और मैं' (सन् 1923) में होता है। 'गंध-कुसुम-कोमल पराग'(2) 'मृदुगति मलय-समीर'(3) 'रघुकुल-गौरव रामचंद्र'(4) 'शिव-जटा-भूषण गान'(5) 'कुन्द-इन्दु-अरविंद-शुभ्र'(6) आदि शब्द - योजना

---

1. निराला रचनावली-1, पृ० 310
2. 3. 4. 5. 6. निराला रचनावली-1, पृ०38

केवल आलंकारिकता या नादसौंदर्य की सृष्टि करते नहीं की गयी, भावों के उत्तरोत्तर विकास में सहायक रहनेवाली दीर्घ समासांत पदावली का निर्माण भी कवि का लक्ष्य था । 1923 ई0 में लिखी गयी उनकी 'मरण' में भी लंबी समास-योजना की प्रवृत्ति मिलती है : -'' वेणु-वर-वाहन-नीरज-सिंधु मान हूँ । '' (1)

'राम की शक्तिपूजा' का प्रतीक समास पूर्णवाक्य का काम देता है । समासान्त शब्दावली का गठन करते समय निराला व्याकरण सम्मत नियमों की परवाह नहीं करते । ''कौशल-समुद्र'केश' के स्थान पर 'केश-कौशल-समुद्र' (2) कहकर उन्होंने पुराने महारथियों को चिढ़ाया है ।

अत्यंत प्रौढ़ तथा परिमार्जित भावों को साकार करने में यह समासान्त पदावली विशेष सफल सिद्ध हुई है । 'राम की शक्ति-पूजा' की शक्ति बहुत कुछ इस शैली पर निर्भर है । बाणभट्ट की 'कादंबरी' का स्मरण दिलाने वाले ऐसे प्रयोग हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में सर्वथा नूतन एवं अद्भुत है । (3)

6.2.6.1.2 मधुर शैली :

प्रेम-प्रसंगों को प्रस्तुत करने तथा प्रकृति के सुरम्य चित्रों

---

1. निराला रचनावली-1, पृ056
2. वही पृ0 310
3. डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पंचम संस्करण-1979, पृ0242

की इसके लिए निराला ने माधुर्य गुणपूर्ण कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है। इस शैली में प्रेम-श्रृंगारिकताओं के मार्मिक उद्गारों की पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। सरलता, मधुरिमा तथा कोमलता से युक्त पदावली ने निराला की ऐसी कृतियों को अपूर्व सौंदर्य प्रदान किया है। अभिनव अर्थ-व्यक्ति और रस ध्वनि से परिपूर्ण यह मधुर शैली निराला की प्रिय कवि के रूप पर खिली देती है। सन् 1922 में उन्होंने इस शैली का सर्वप्रथम प्रयोग 'जुही की कली' में किया :

''आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आयी याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात . . '' (1)

उसका बिंब विधान मन संस्कृति का पुनः उन्मीलन करता है। शब्द-संचय अपनी ध्वन्यात्मकता से अर्थ संप्रेषण करने में समर्थ है –

''फिर क्या ? पवन/उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन/कुंज-लता-पुंजों को पार कर/पहुँचा जहाँ उसने की केलि/कली-खिली-साथ। '' (2)

'पंचवटी-प्रसंग -3' में शूर्पणखा का सौंदर्य वर्णन करते समय भी कवि ने इसी शैली से काम लिया है :

''देख यह कपोत-कण्ठ/बाहु-वल्ली कर-सरोज/उन्नत उरोज पीन-क्षीण कटि-/नितंब-भार-चरण सुकुमार-/गति मन्द-मन्द, /छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियों का, /देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।''(3)

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 3।
2. वही, पृ0 3।
3. निराला रचनावली-1, पृ0 45

इस माधुर्य गुणपूर्ण शैली में उनकी कविता अतिशय प्रवाह से युक्त हो गयी : ''यौवन-मद की बाढ़ नदी की/किसे देख झुकती है?/ गरज गरज वह क्या कहती है, कहने दो-/ अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो।/सुना, रोकने उसे कभी कुँआर आया था, / दशा हुई फिर क्या उसकी ?—/फल क्या पाया था ?'' (1)

ध्वन्यात्मकता की सृष्टि करने में भी यह शैली सफल हुई है। 'बादल राग' का नाद सौंदर्य अवश्य दर्शनीय है। कविता पढ़ते समय ऐसा लगता है कि बादलों का मन्द्र मधुर राग सुनाई दे रहा हो : '' झर झर झर निर्झर - गिरि-सर में, / घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में, / सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में/ मन में, विजन-गहन-कानन में, /आनन-आनन में, रव -घोर कठोर—/राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर ! '' (2)

निराला काव्य की संगीतात्मकता निराली है। लय, ताल और झंकार से युक्त निराला के गीत इसके प्रमाण हैं। कवि की स्वर-साधना के प्रखर रूप का प्रतिनिधित्व करनेवाले ये गीत पाठकों की हृदय-वीणा को झंकृत कर देते हैं। नवीनता के प्रति कवि का इतना अधिक आग्रह है कि ऐसे गीतों में वे 'नव' शब्द का प्रयोग करते चले गयीं : ''नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव, /नवल कण्ठ, नव जलद - मन्द्र रव ; / नव नभ के नव विहग-वृन्द को / नव पर नव स्वर दे ।'' (3)

- -

1. 'धारा' (1923 ई०) निराला रचनावली-1, पृ० 72
2. निराला रचनावली-1, पृ० 116
3. 'वर दे वीणावादिनी वर दे ! (1931 ई०) निराला रचनावली-1 पृ० 210

उनके ऐसे गीत बहुत कम हैं — जिन में 'नव', 'नवीन', 'नूतन' या 'नया' शब्द का प्रयोग न हुआ हो । 'रहा तेरा ध्यान'(1), 'आओ मेरे आतुर उर पर (2) 'मिला उज्ज्वल जीवन, नव मन',(3) 'रही आज मन में '(4) आदि गीतों में 'नव' शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग हुआ है ।

प्रकृति के अलौकिक रूप सौंदर्य की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए भी निराला ने मधुर कोमलतामयी शैली का आश्रय लिया है : ''सोती हुई शशि - अंक पर / शरत् शिशिर दोनों बहनों के कुच-विलास-मद-शिथिल अंग पर/ चरण-चरण चढ़े जाते थे । पवन की झर-झरन कमनीय धीरे-धीरे आकर/ नींद उचट जाने के भय से थी कुछ - कुछ घबराती । '' (5)

'सन्ध्या सुंदरी'(6), 'शरत्पूर्णिमा की विदाई'(7) 'शृंगारमयी'(8), 'नयनों के डोरे लाल गुलाल - भरे'(9) आदि मधुर शैली में लिखी गयी निराला की श्रेष्ठ रचनाएं हैं ।

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0219
2. निराला रचनावली-1, पृ0 214
3. वही, पृ0 220
4. वही, पृ0 262
5. 'वन कुसुमों की शय्या' (1924ई0) पृ074-75
6. निराला रचनावली-1, पृ0 65
7. वही, पृ0 67
8. वही पृ0 76
9. वही, पृ0 212

6.2.6.1.3. सरल, सुबोध, व्यावहारिक शैली :

एक ओर निराला ने गंभीर भावों तथा प्रौढ़ विचारों को प्रकट करने के लिए दीर्घ-समास-योजना को अपनाया है तो दूसरी ओर जीवन के व्यावहारिक पक्ष का यथार्थ-चित्र अंकित करने के लिए अभिधा-प्रधान भाषा का भी प्रयोग किया है। सर्वसाधारण की भाषा का स्वाभाविक प्रयोग निराला-काव्य में ''जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल गया''[1] से, शुरू होता है। फिर इसका स्थान 'अधिवास' (सन् 1923 ई) में हुआ : ''कहाँ –/मेरा अधिवास कहाँ ?/ क्या कहा ? – रुकती है गति जहाँ ?/ भला इस गति का शेष/ सम्भव है क्या, / करुण स्वर का जब तक मुझ में रहता है आवेश ?''(2) 'गत वन पतझार'[3] (1923 ई०) 'विधवा'[4] (1923 ई०) आदि कविताओं में भी सरल-सुबोध भाषा शैली का प्रयोग हुआ है। लेकिन ये सारी प्रारंभिक रचनाएँ अधिवास संस्कारों से मुक्त नहीं हैं। विधवा की पीड़ा का उद्घाटन करते समय भी कवि का ध्यान उसके अनुपम के सौंदर्य पर जा टिका है – ''ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया/जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।''[5]

1. 'अध्यात्म फल' (1921 ई) निराला रचनावली-1, पृ030
2. निराला रचनावली-1, पृ035
3. निराला रचनावली-1, पृ055
4. वही, पृ0 60
5. निराला रचनावली-1, पृ061

अगर भाव के अनुकूल भाषा भी सीधी होती तो पंक्तियाँ पर कविता ज्यादा प्रभाव डालती ।

छायावादी संस्कार के शब्द 'भिक्षुक' में कम हैं । इसलिए उसकी व्यथा अधिक निखार उठी है :

''पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को - भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता -
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता । '' (1)

'तोड़ती पत्थर'[2] में भी 'श्याम तन' 'गुरु हथौड़ा' 'सघन-मालिका' 'छिन्नतार' 'झंकार' आदि अभिजात शब्दों से निराला दूर न रह सके । लेकिन 'प्रेम संगीत' में उन्हें मुक्ति मिल ही गयी : बम्हन का लड़का/ मैं उसको प्यार करता हूँ/ जात की कहारिन वह/ मेरे घर की है पनहारिन वह, / आती है होते तड़का, / उसके पीछे मैं मरता हूँ । '' (3)

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 64
2. वही, पृ0 323-324
3. वही-2, पृ0 29

6.2.6.1.4. बोलचाल की शैली :

सामाजिक अनाचारों और रुढ़ियों के विरुद्ध अपना क्षोभ प्रकट करने के लिए निराला बोलचाल की चलती भाषा को ही सर्वाधिक उपयुक्त समझते हैं। समाज पर सीधा प्रहार करने के उद्देश्य से ही वे बोलचाल की शैली ग्रहण करते हैं। समाजवादी शक्तियों पर उनका प्रहार अत्यंत तीक्ष्ण है। उनकी अनेक रचनाओं में अंग्रेज़ी और उर्दू शब्दों की भरमार है। 'कुकुरमुत्ता' में अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी उर्दू तथा हिन्दी मिश्रित शब्दावली देखने को मिलती है :

''कास्मोपोलिटन और मेट्रोपोलिटन/ जैसे फ्रायड और लीटन।/फैसी और फलाफूल/ चकमक और दो रंग /भारत में प्रेस/ थियेटर में जैसे टेनिसकोर्ट।/ सब समय जैसे स्पोर्ट / सैलों में जैसे कुलशील।'' (1)

'रानी और कानी' (सन् 1939) में भी बोलचाल की चलती भाषा का प्रयोग मिलता है : ''रानी अब हो गयी सयानी, / बीनती है, काँड़ती है, कूटती है, पीसती है, / डलियों के सीले अपने रखी हाथों ... सीती है, / घर बुहारती है, करकट फेंकती है, / और घड़ों भरती है पानी।'' (2)

---

1. निराला रचनावली-2, पृ047
2. निराला रचनावली-2, पृ032

व्यंग्य की ध्वनि 'बापू के प्रति'[1] (सन् 1940) 'मास्को डायलाग्स'[2] 'खजोहरा'[3] जैसी अन्य कविताओं में भी मुखर है। एक ओर बापू के अनुयायियों पर[4] और दूसरी ओर ''मास्को डायलाग्स' लेकर घूमने वाले मित्रवादियों पर भी व्यंग्य करती हैं।[5] 'गर्म पकौड़ी'[6] में अपनी ही परेशानी पर व्यंग्य है तो 'खजोहरा'[7] में एक अधेड़ उम्रवाले की परेशानी परिवार का चित्रण करती है। साधारण जीवन के बहुत निकट आने के कारण निराला की काव्य भाषा कहीं-कहीं गद्यात्मक भी बनती है। ''रानी ने अपनी रखवाली की'',[8] 'जाँ मिलते रहे',[9] 'कुत्ता भौंकने लगा'[10] 'बना की '[11] आदि की भाषा गद्य के अधिक निकट है : ''रानी ने अपनी रखवाली की; / किया बलात्कार रहा., / बड़ी-बड़ी चोरी रहीं।'' (12)

चलती भाषा का प्रयोग करने के कारण कवि की कुछ वाणी में कठिलपन का आभास मिलता है। जनसाधारण के बीच प्रचलित गालियों को भी निराला ने अपने काव्य में स्थान दिया है। 'हरामी खानदानी (13), 'साला' (14), 'लल्लू के पट्ठे' (15)

- -

1. निराला रचनावली-2 पृ0 34 (2) वही, पृ0 36
3. वही, पृ0 59, 60, 61 (4) वही, पृ0 34-35
5. वही, पृ0 36-37 (6) वही, पृ0 41-42
7. वही, पृ0 61 (8) वही, पृ0 177
9. वही, पृ0 180 (10) वही, पृ0 181
(11) वही, पृ0 178 (12) वही, पृ0 177
(13) वही पृ० 45
(14) वही, पृ० 37
(15) वही, पृ० 37

बैठा।"(1) आदि इसके उदाहरण हैं।

6.2.6.1.5 नियमभंग :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निराला की भाषा में व्यवस्था की कमी देखी है।(2) इसका एक कारण यह है कि संस्कृत की समास-बहुला गुम्फित शैली पर आकृष्ट होकर कवि कभी कभी क्रियापदों को छोड़ देते हैं। क्रियापदों के अभाव के कारण अर्थ समझने में कठिनाई होने लगती है : "अलि-दल के प्रिय, जल-जग, गगन घन-घन धार" (3)

रामविलास शर्मा के अनुसार "निराला जिस तरह की पदयोजना कर रहे हैं उसमें क्रियाओं का भरपूरा प्रयोग बाधक है। यह इस कारण नहीं कि पदावली तत्सम है, निराला अतत्सम पदावली से भी क्रियाएँ गायब कर देते हैं, न केवल पद्य में वरन् गद्य में भी।"(4) कवि ध्वनि-प्रवाह पर ज्यादा ध्यान देते हैं और ऐसे संदर्भों में क्रियाओं का प्रयोग करके पाठकों का ध्यान भाव और संवेदना के केन्द्रों से हटाना नहीं चाहते। राम की शक्तिपूजा में इसके कई दृष्टांत भरे पड़े हैं : "लक्ष्मण चिन्ता-पल, पीछे वानर-वीर सकल;

---

1. निराला : निराला रचनावली - 2, पृ0 197
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0719
3. गीतिका, पृ0 12
4. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-2, पृ0 399

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण ''

दोनों पंक्तियों में क्रियाओं का अभाव है । कवि भाव तथा संवेदन को मूर्त बनाने के लिए एक ओर इस प्रकार क्रियाओं की उपेक्षा करते जाते हैं तो दूसरी ओर वे क्रिया द्वारा भावों को मूर्तता भी प्रदान करते हैं :

''उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकतीं दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार । '' (1)

इन पंक्तियों में 'उतरा' और चमकतीं क्रियाएं भाव को मूर्त करने में सहायक हुई हैं । दूसरी पंक्ति से भाव को समझने में जिस दुर्बोधता की संभावना थी वह 'चमकतीं' क्रिया से दूर हो गयी है । राम की आँखों की चमक पाठक उन ताराओं में देखने लगते हैं ।

इस प्रकार निरालाकाव्य में क्रियाहीन तथा क्रियायुक्त प्रयोग देखने को मिलते हैं । उनकी प्रारंभिक कृतियों में क्रियाओं का अभाव नहीं दिखाई देता । शैली में कसाव पैदा करने की दृष्टि से ही वे सन् 1930 के बाद क्रियाहीन प्रयोगों की ओर उन्मुख हुए थे । (2) 'तुलसीदास' (सन् 1934) (3) तथा राम की शक्तिपूजा (सन् 1936) (4) क्रियाहीन और क्रियायुक्त प्रयोगों का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है:

- -

1. 'राम की शक्तिपूजा', निराला रचनावली-1, पृ0311
2. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ0399
3. निराला रचनावली-1, पृ0289
4. वही, पृ0319

''बोली वह, मृदु-गंभीर-घोष, ''मैं पाप तुम्हारे, करो तोष।''/
फिर पृथ्वी से निकली सरोष वह सीता, / अंक में उसी के आप लीन-/
निज मर्यादा पर समासीन, / है गयी पुरुष की स्नेह-क्षीण गत गीता।''(1)

पहली दो पंक्तियों में 'बोली' और 'करो' क्रियाएं हैं, लेकिन 'मृदु गंभीर घोष' और 'मैं पाप तुम्हारे' से क्रियाएं गायब हो गयी हैं। 'लीन' और 'समासीन' से भी क्रिया का पूर्ण बोध नहीं होता। अंतिम पंक्ति में पूर्ण-क्रिया आ गयी है।

लिंग-नियम का पालन भी निराला ने पूर्णतः से नहीं किया है। पुल्लिंग शब्द पवन को उन्होंने स्त्रीलिंग बना दिया:
'बही पवन पछवी' (2)

'पवन' निराला के अनुसार पुल्लिंग शब्द है: ''भार पवन पश्चिम से होता।'' (3)

'तरंगों के प्रति', 'प्रियसी' आदि कविताओं में 'तरंग' शब्द स्त्रीवाचक है तो 'है मैं कटु वाण' में उसी कवि ने पुल्लिंग कर दिया:

''मिलता रहेगा न कितने तरंग हैं।'' (4)

- -

1. 'तुलसीदास', निराला रचनावली-1, पृ0282
2. निराला रचनावली-1, पृ0165
3. 'पारस' पश्चिम : पृ0 64
4. 'है मैं कटु वाण', निराला रचनावली-1, पृ0 229

'बार' को भी निराला ने पुल्लिंग शब्द स्वीकार किया :
'कितनी बार पुकारा ' (1)

कम से कम शब्दों में अर्थ व्यक्त करने के क्रम में निराला ने कहीं कहीं कारक चिह्नों को भी छोड़ दिया है । ''अनामिका' में 'कैमरा हाथ में लिए कुछ सभी देखते हैं'' के स्थान पर निराला ने ''देखते सभी कैमरा हाथ'' (2) कहा है ।

'ने' का प्रयोग भी उन्होंने कई संदर्भों में अनावश्यक समझा है : '' कोमल कुछ कम कुछ गर्म है '' (3) में 'ने' गायब हो गया है ।

निराला-काव्य में 'र' से अंत होनेवाले शब्दों की बहुलता है । 'तीर', 'धीर', 'क्षार', 'सार', 'भार' आदि अनेक शब्द उनकी कविता में आ गये हैं । इस प्रकार के शब्दों से कुछ स्थानों में कभी कभी से असंगत भी हो जाती हैं । सार, हार, निर्भर, आदि के साथ 'भार' शब्द का उन्होंने कई बार प्रयोग किया है । 'अब चली अलि, शिशिर समीर' गीत में पास-पास की दो 'भर' आये हैं, संपूर्ण काव्य-सौंदर्य को नष्ट कर देनेवाले हैं ।

व्याकरण नियमों की परवाह किये बिना निराला ने 'भर' शब्द से 'भरी' शब्द का गठन भी कर लिया है ।

तुकबंदी के मोह में शब्दों की मात्राओं को भी उन्होंने

- -

1 रचनावली-1, पृ0249

2 पृ0328

घटा-बढ़ा दिया है । 'कुकुरमुत्ता' में 'कोमल' से कुछ निराले ढंग से कवि ने 'डोल' शब्द के स्थान पर 'डोला' का प्रयोग किया : '' मैं डबल जब, बना डमरू/ बजाया, जब बना डोला।/ मंडू टोकर कभी निकला/कभी मनकार ध्वनि डोला ।'' (1)

कुछ निराले ढंग से क्रियाओं के रूप को बिगाड़ देने में भी निराला न हिचके । 'उड़ा दिया' 'लूटा दिया' आदि के समानांतर 'कूटा दिया' 'टूटा दिया' आदि विचित्र प्रयोग करके क्रियाओं का असली रूप भी उन्होंने भ्रष्ट कर दिया : ''

काव्य में हास्य-व्यंग्य की पुष्टि करने के उद्देश्य से उन्होंने अंग्रेज़ी के उच्चारण में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन ला दिया है । ह्रस्व को दीर्घ तथा दीर्घ को ह्रस्व करके हास्य-व्यंग्य के साधन से जुटाते हैं :

''कारनेट, कोरविनेट, ड्रम, , मीटर,
क्लारियोनेट स्वान का, ट्रम्पेट, फ़िटर,
मानते हैं सब सुर से जोड़ी से,
बानगी है यही से । '' (2)

इसी प्रकार 'ड्रिल' को 'डिरिल' (3) 'पिरमिड' को 'पीरामीड' (4) 'मुगल' को 'मोगल' (5) बनाकर उच्चारण को बिगाड़ दिया है ।

- -

1. गिरते जीवन को उठा दिया', अर्चना, पृ० 38
2. 'कुकुरमुत्ता' (1941 ई०) निराला रचनावली-2, पृ048
3. वही, पृ048
4. वही , पृ0 49
5. महाराज शिवाजी का पत्र (1926 ई) निराला रचनावली-1. पृ0146-147

शब्दों तथा वाक्यों के प्रयोग में यद्यपि निराला में इस प्रकार के कुछ दोष दिखाई देते हैं तो भी उनकी भाषा में जो शक्ति है, वह अन्यत्र पायी नहीं जाती । इस शक्ति को लेकर ही रामविलास शर्मा ने कहा था : ''निराला की वाक्य-रचना में जैसे दोष हैं, उनसे अनेक कवि मुक्त हैं – हिन्दी उर्दू दोनों के – किन्तु वे निराला से बड़े कवि नहीं, उनकी भाषा में वह शक्ति नहीं जो निराला की भाषा में है । '' (1)

निराला ने अपनी भाषा को स्वयं गढ़ा है । शब्द-चयन में वे अपने ढंग निराले रखते हैं । उनका शब्द भंडार बहुत कुछ भाव की माँग पर खड़ा है और यह भाव जब भाव तथा मूर्ति-विधान से निखर कर एकाकार हो जाता है तब उनकी कला उत्कृष्ट कोटि की हो जाती है । केवल उदात्त ध्वनिवाले शब्दों में ही नहीं अनुदात्त कर्कश शब्दों में भी वे कविता करते हैं । जनसाधारण की समस्याओं पर प्रकाश डालते समय सरल-सुबोध-व्यावहारिक तथा बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं । तोड़ती पत्थर पर लिखे गये कोमल पदों से कुछ मधुगीत भी निराला की प्रतिभा के परिचायक हैं ।

यद्यपि निराला ने अपने भाव को रूप देने के लिए मुख्य रूप से चार प्रकार की शैलियाँ अपनायी हैं तथापि सरल-व्यावहारिक तथा बोलचाल की शैलियाँ ही उनके नये काव्य में प्रयुक्त हुई हैं । प्रौढ़ और मधुर शैली का दर्शन उनकी स्वच्छंदतावादी कृतियों में होता है ।

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, प्र०सं० पृ०57।

शुरू से ही छायावाद की अव्यावहारिक प्रवृत्ति पर वे असंतुष्ट थे (1) क्योंकि सत्य को पकड़ना छोड़ना उन्हें पसंद न था । (2) इसलिए छायावाद के अभ्युदय-काल में ही यथार्थ-चित्रण का व्यापक और देने वाले कवि के रूप में वे विख्यात हो गये ।

6.2.6.2 बिंब-योजना :

बिंब योजना की दृष्टि से नयी काव्य-धारा पूर्ववर्ती-छायावादी-काव्य धारा की अपेक्षा अधिक समृद्ध है । छायावाद की विशिष्ट शैली के समानांतर ही निराला की यथार्थवादी कृतियों में एक नई साधारण-सुबोध शैली विकसित होती जा रही थी और उस नई शैली में नवीन बिंब योजना के लिए पर्याप्त स्थान भी था । प्रगतिशील कविता के सभी नवीनतम तत्वों को आत्मसात् करके प्रयोगवादियों ने अभिव्यक्ति का जो नया तरीका अपनाया उसमें प्रतीक-विधान तथा बिंब-योजना की प्रधानता रही ।

बिंब का माध्यम शब्दार्थ है और सृष्टार्थ की सौंदर्य दृष्टि भाव को रूप देकर अमूर्त को मूर्त बना देती है । निराला भी केवल शब्द के अभिधार्थ से तुष्ट न होकर शब्दार्थ के माध्यम से छोटे-बड़े मानस चित्रों को प्रस्तुत करते हैं ।

निराला के गतिशील शब्द-चित्रों में 'निर्झर' का रूप क्या से क्या हो गया है, देखिए –

---

1. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला साहित्य साधना-2, पृ0 57।
2. ''सत्य न पकड़ा है न पकड़ता'' -निराला, जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला के पत्र, पृ0 114

''बही निर्झर, किस कर्म-सलिल-संचार में बहकर
प्रलय कारा अलख को कर गया संसार में बहकर –''(1)

'निर्झर' प्रयोग से केवल एक छोटी धारा का आभास मिलता है लेकिन 'किस कर्म-सलिल' जैसे शब्द-प्रयोगों से हमारे मानस-पट पर विकट भाँति उसके कई चित्र बारी-बारी से अंकित हो जाते हैं। वह वेगवती धारा छोटे ही अर्थ में अत्यंत प्रचंड रूप धारण करती है।

विधवा के अश्रु को भी शब्दचित्र द्वारा निराला ने साकार बना दिया है। इसीलिए उन्होंने ओजस्व और प्रवाह का विधान स्वीकार किया है :

''आँसू-कण-सा पलकों से झर गया।'' (2)

निराला की 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में अधिकांशतः वस्तुप्रधान बिंब ही प्राप्त होते हैं। लेकिन सादगी और नवीनता विशेष द्रष्टव्य है।

''चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।'' (3)

---

1. 'गरीबों की पुकार' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 57
2. 'विधवा' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 61
3. 'भिक्षुक' (सन् 1923) निराला रचनावली-1, पृ0 65

'रूई ज्यों जलती हुई भू' (1) – भी वस्तुप्रधान बिंब का नया तथा सफल प्रयोग है ।

इस से कम शब्दों में विराट मानव चित्र खींचने में भी निराला की अपूर्व क्षमता है :

''उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार '' (2)

केवल एक ही शब्द 'छिन्नतार' से पत्थर तोड़नेवाली के समस्त मानसिक व्यापार प्रकट हुए । उस मजदूरिन के दुःख, क्षोभ और असमर्थता का पता एक साथ लग जाता है लाचार होने के कारण वह अट्टालिका पर प्रहार नहीं कर सकती, सिर्फ पत्थर तोड़ सकती है ।

इसी प्रकार प्रेम-संगीत में ''ऐंठ अकड़ चलती है बामनी/ मैं ही समझता हूँ इस ठस को '' (3) में 'ठस' शब्द के प्रयोग से कहारिन के दिल का पूरा-पूरा उद्घाटन हो गया है । यह समझने में कोई देर नहीं लगती कि केवल कवि ही जीवन की कमी के पीछे नहीं भागते, कहारिन की भी वही अवस्था है ।

''आँसू भर भर कर कहती है दुःख से '' (4) भी बिंब के क्षेत्र में अपूर्व प्रयोग ही कहा जायगा । अपने दुःख की परवाह न

---

1. 'तोड़ती पत्थर' (1937 ई) निराला रचनावली-1, पृ0324
2. वही, पृ0324
3. 'प्रेमसंगीत' (1939 ई)निराला रचनावली-2, पृ029
4. 'रानी और कानी' (1940ई) निराला रचनावली-2, पृ032

करनेवाली 'माँ के दुःख से' हमारी आँख से रोनेवाली रानी का चित्र हृदय से मिटता नहीं ।

'खजोहरा' में गाँव का तालाब 'डूबने से लोगों को बचाता रहा' (1) । यह व्यंग्य चित्र भी तालाब की गहराई तथा आकार को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करनेवाला है ।

'उठे पुष्टस्तन' (2) को देखकर किसी छिपकलीजाना से कवि अभिभूत हो जाते हैं । अपने दुष्ट मन को काबू में रखने का कष्ट करनेवाले कवि का मानस चित्र 'स्फटिक शिला' में देखने को मिलता है ।

मानव और प्रकृति को जोड़ने के लिए कवि ने कई प्रकार के बिंबों से काम लिया है । पंचतत्वों और उन तत्वों के पाँच गुणों के परामर्श से उन्होंने यह कार्य सफलतापूर्वक साधा है । मानव तथा प्रकृति में एक ही प्रकार का व्यापार उन्हें नज़र आता है :

''धाम से जो पानी उड़ा, बादलों में बरसा है,
आदमी का जीना हुआ रहा मान आने पर । ''(3)

कवि की इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर ही डॉ.रामविलास शर्मा ने कहा था : ''उनका मूर्तिविधान खंड-खंड प्रस्तुत न करके मानव-प्रकृति का संश्लिष्ट यथार्थ गहराई से चित्रित करता है ।''(4)

- -

1. निराला रचनावली-2, पृ0 80
2. 'स्फटिक शिला' (1942 ई) निराला रचनावली-2, पृ0 75
3. 'घारि हाथ येव बुझे' निराला रचनावली-2, पृ0 172
4. निराला की साहित्य साधना-2, पृ0 336

6.2.6.3 प्रतीक विधान :

अप्रस्तुतविधान के स्तर पर उससे भी अधिक व्यापक अर्थ को व्यंजित करनेवाला माध्यम है प्रतीक । प्रतीक के रूप में जो वस्तु ग्रहण की जाती है वह अपने प्रस्तुत रूप और अर्थ को छोड़कर विशिष्ट रूप तथा अर्थ स्वीकार करती है और अधिक आकर्षक बन पड़ती है । निराला ने 'जुही' को प्रेमिका का प्रतीक मानकर अधिक प्राणवान और मनोवैज्ञानिक बना दिया है । विरह, प्रकार, कमल आदि रूढ़ प्रतीकों को छोड़ नये प्रतीकों को अपनाने में उन्होंने विशेष उत्साह दिखाया । एक ओर द्विवेदी कालीन नैतिकता पर प्रहार करना था, दूसरी ओर अश्लील-कथन से भी बचना था । निराला ने पवन-जुही की प्रतीक-योजना करके उचित मार्ग ही ढूंढ लिया: ''निर्दय उस नायक ने/निपट निठुराई की/कि झोंकों की झड़ियों से/सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली । मसल दिये गोरे कपोल गोल ।'' (1)

प्रतीक-योजना के क्षेत्र में शुरू से ही निराला बहुत विरोधी हैं । नयी काव्य-प्रवृत्तियों को जन्म देते समय नये प्रतीकों की आवश्यकता उन्हें और अधिक महसूस हुई । बादल-राग में कवि ने बादल को अनेक अर्थवाही प्रतीक के रूप में चुना है । 'बादलराग-1', में विश्व की सेवा में तत्पर क्रांतिकारी वीर के रूप में बादल का चित्रण किया जाता है । 'बादलराग-2' में उसका रूप थोड़ा बदलता है । यहाँ बादल अधिक अतीव कल्याणकारी है । वह निरंतर निर्भीक,

- -

1. जुही की कली, निराला रचनावली-1, पृ0 31

स्वच्छंद, उद्दाम, प्रचंड वज्रघोष सुनाकर लोगों को चमत्कृत कर देता है। तीसरे 'बादल राग' में अपने सभी संबंधियों के सभी प्यार को छोड़ स्वार्थकुल होकर वह सेवा पथ पर उतरता है। पूर्ण-मनोरथ होकर जब वह लौटता है सर्वत्र अभिनंदन पाता है। 'बादलराग-4' में बादल केवल सुकुमार शिशु का प्रतीक बनकर आता है। पाँचवें 'बादल राग' में भी बादल को शिशु रूप ही दिया गया है। वह निर्भय हाथ बढ़ाकर आकाश पर चढ़ता है और अपने आगे सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रह तारा झुकते पाता है। अंतिम कविता -'बादल राग-6' में बादल में पुनः क्रांतिकारी का रूप आता है। (1) वह पूँजीपति-जमींदार जैसे बड़े बड़े पर्वतों पर वज्रपात करके छोटों के विकास में लगा रहता है।

इसीप्रकार 'जलद के प्रति' में बादल सिंधु से सिंधु लेकर दुःखियों की सेवा करने को आये पुण्य देश के नेता हैं' (2) की कविता में काली-काली कीट पतंगे अज्ञात की ओर भागनेवाले वकील हैं। (3) जो गरजते हैं वही नहीं बरसते।

'तुम और मैं-2' (सन् 1949)[4] में कवि स्वयं बादल बन जाता है और थोड़ा बरसकर नीचे गिरता है। लेकिन उसका अंत नहीं होता, सारा जीवन बाकी पड़ा है, वह फिर आकाश पर चढ़ता है।

बादल सृष्टि तथा ध्वंस दोनों के प्रतीक है निराला काव्य में।

- -

1. बादलराग-6, निराला रचनावली-1, पृ0123-124
2. 'पर तुम कूद पड़े, घनमाला/मा की हरा वसन सुंदर-' 'निराला रचनावली-1, पृ054
3. ''दौड़ते हैं बादल ये काले-काले/हाईकोर्ट के वकील मतवाले-''निराला रचनावली-2, पृ057
4. निराला रचनावली-2, पृ038

प्रचलित प्रथा के विरुद्ध निराला ने प्रकाश को मृत्यु का प्रतीक भी माना है :

> ''जेठ ताप दिवाकर ने जब
> भू का फूल जला दिया। '' (1)

कवि अंधकार तथा मृत्यु में आशा देखने के अभ्यासी भी हैं : '' मृत्यु की प्रथम आशा जागी।''(2)

इस प्रकार निराला अपनी कृतियों में परस्पर विरोधी तत्वों को लेकर यथार्थ जीवन की प्रतिच्छवि प्रस्तुत करते हैं।(3)

'गर्म पकौड़ी' सर्वहारावर्ग का प्रतीक है। उसकी अवमानना से कवि की जीभ जल गयी, लार की हुई टपकी फिर भी उसको न छोड़ा : ''पर दाढ़ तले तुझे दबा ही रक्खा मैं ने / कंजूस ने ज्यों कौड़ी। '' (4)

कुकुरमुत्ता एक साथ पूँजीपतियों, परंपराप्रेमियों छायावादियों प्रगतिवादियों मार्क्सों तथा आधुनिकता की फैशन परस्ती-वालों का विरोधी प्रतीक है। निराला कथित गुलाब पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है। आखिर नवाब भी अभिजात संस्कार को छोड़ कुकुरमुत्ता के प्रेमी बन जाता है : ''चला, गुलाब जहाँ थे, उगा/सब के साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता '' (5)

1. निराला रचनावली-1, पृ०34
2. वही -2, पृ० 354
3. डॉ०रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ०324
4. निराला रचनावली-2, पृ० 42
5. निराला रचनावली-2, पृ०56

हास्य-व्यंग्य की सृष्टि हेतु विभिन्न प्रतीकों के सहारे 'कुकुरमुत्ता' तथा 'खजोहरा' में कई व्यंग्य-चित्र निराला ने उपस्थित किये हैं – ''मेंढक एक बोलता है जैसे कुराज, /दूसरा पाजी घुन रहा है बाज '' (1)

और एक व्यंग्य चित्र है ''क्षमा माँगने की मदन जैसी टेका/ हाथ पर खड़ा-खड़ा खजोहरा का ।''(2)

निराला के लोक गीतों में भी प्रतीक-विधान कलात्मक ढंग से हुआ है: ''भर गये मोती के दाने जमीं के मन छूटे हैं ।''(3)

निराला ने अपनी हृदयस्थ अनुभूतियों के आधार पर मनोनुकूल प्रतीकों की सृष्टि की है । इस दिशा में निराला की अपनी विशेषता है । उनके प्रतीक चित्रों में रूपगत तथा भावगत सौंदर्य वर्तमान है । ''... कवि की अनुभूति जितनी उत्कृष्ट एवं उदात्त है, उसकी प्रतीक-योजना भी उतनी ही कलात्मक एवं मार्मिक जान पड़ती है और अपनी इस प्रतीक योजना के द्वारा कवि ने भाव-निरूपण की पद्धति में एक युगान्तकारी परिवर्तन भी प्रस्तुत किया है । '' (4)

---

1. 'खजोहरा'-निराला रचनावली-2, पृ० 59
2. निराला रचनावली-2, पृ० 61
3. अर्चना, पृ० 33
4. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ० 212

6.2.6.4. फैंटसी :
- - - - - - -

निराला के उपचेतन के अगाध तल में स्वप्न चित्रों की ढेरों सामग्रियाँ छिपी पड़ी हैं। बाहर से धक्का लगने या प्रेरणा मिलने पर वे चेतना की ऊपरी सतह में आ जाती हैं और धीरे-धीरे वे सामग्रियाँ एकत्रित होकर काम करने लगती हैं, इन्हीं से और स्वप्न चित्र तैयार हो जाते हैं। अपने ऊपर लगे धक्के की तीव्रता के अनुसार वह चित्र सुस्पष्ट या धुंधला रहता है। उचित अवस्था में उभरनेवाली स्वप्नों से भी कवि वंचित नहीं हैं। इसलिए "निराला की प्रतीक-योजना यदि उचित रूप से संयोजित की गयी हो, यदि उचित रूप से, वह यथार्थ की विरोधी नहीं है।" (1)

साहित्य-जीवन के प्रारंभ से लेकर कवि अपने को पराशक्ति-युक्त मानने में विशेष आनंद का अनुभव करते थे। कभी कभी देवी के सम्मुख आँसुओं का उपहार लेकर खड़े हुए भक्त के रूप में, (2) कभी कभी स्वयं शिशु बनकर देवी की गोद में (3) हैं और कभी देवी के युगल सिंहासन के महाराज के रूप में (4) कवि अपने को पाते हैं। ये स्वप्न तो कवि की अपनी शक्ति-साधना के अंग हैं और वे रह-रहकर सिद्धि की आशा प्रकट करते हैं। लेकिन जब उनकी

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ०327
2. 'क्या दूँ' (1924 ई०) निराला रचनावली-1, पृ०95
3. 'देवी! कौन वह', निराला रचनावली-1, पृ०63
4. निराला रचनावली-1, पृ० 204

अचेतन मन से इस प्रकार के स्वप्न चित्र उभरते हैं वे अधिक मार्मिक तथा कलात्मक मालूम पड़ते हैं : ''मैं बैठा था पथ पर, / तुम आयी चढ़ रथ पर ।/x x x x/उतरे, बढ़ गयी आगे, / चक्रों की पड़ी लीक, / देखता ही गया देख, /बीती अविनश्वर पर । '' (1)

कहीं बाद सन् 1952 में एक संध्या को कवि यौवनवाली के साथ नौका-विहार करते नज़र आते हैं : 'युवती के कर पतवार/ पुरुष को बचाती है/ नाव, एक नौका/ देता है ताल/ नाविकों की सफ़ी । युवक एक नायक भी, / मुस्कराती ; / बैठे हैं कई ''(2)

'कैलाश में शरत्' (1946 ई0) निराला की सबसे सफल फैंटेसी है । स्वामी विवेकानन्द , माताजी, उनके शिष्यों, राजपुत्रों तथा भारत के नागरिकों के साथ कवि पीठ पर कैलाश-यात्रा हेतु निकल पड़े हैं । अफगानिस्तान पहुंचने पर घोड़ों को छोड़ दिया । पथ दुर्गम था । काश्मीर, कैलाश, मानसर आदि का इतना स्वाभाविक वर्णन कवि प्रस्तुत करते हैं कि अनुभूत सत्य का आभास होने लगता है । स्वामी विवेकानंद के साथ रहने पर भी कवि मंझधार की आशा नहीं छोड़ते : ''नाव पर वहाँ का/ भीषण, वो मेघ-माथ, /करते तृषि बन्द था/स्वागत करने को । '' (3)

- -

1. मैं बैठा था पथ पर' (1940 ई) निराला रचनावली-2, पृ0 43
2. निराला रचनावली-2, पृ0 434
3. निराला रचनावली-2, पृ0 203

मौत तभी का निराला का आग्रह अंत तक बना रहा और आखिर उनकी मृत्यु का कारण भी वही बना ।''(1)

कभी कभी निराला के स्वप्न और यथार्थ की अलग अलग पहचानना भी कठिन हो जाता है । अर्चना के कुछ गीतों को देखने से पता नहीं लगता कि कवि मरण का वरण स्वप्न में कर रहे हैं या जागरण में : ''निविड़ विपिन, पथ अराल ; / भरे हिंस्र जन्तु-व्याल/ x x x /अन्धकार से छूट कर भेजा जा रहा क्यों, / तन उन्मीलन निःस्वर मन्द्र-प्राण मरण-ताल ।''(2)

6.2.6.5 मुक्त छंद :

काव्य-भाषा की मात्रा, वर्ण, गति, यति या लय के बंधनों से नियमित करना ही छंद का धर्म है । इसलिए छंद कभी बंधनमुक्त नहीं होता । भले ही 'मुक्तछंद' में बंधन कुछ ढीला हो, गति या लय के बंधन से वह मुक्त नहीं है ।

मुक्तछंद के प्रवर्तक निराला ने मनुष्य की मुक्ति से इसका संबंध जोड़कर कहा है : ''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है । मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना ।'' (3)

1. डॉ0रामविलास शर्मा: निराला की साहित्यसाधना-1, प्र0सं01979, पृ0 415
2. निराला रचनावली-2, पृ0 339
3. 'परिमल की भूमिका', निराला रचनावली-1, पृ0401

निराला के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वे छन्द से मुक्ति नहीं, छंद की मुक्ति चाहते थे / उन्होंने अन्यत्र कहा है: ''भावों की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है।'' (1)

अपने मुक्तछंद का समर्थन करने के लिए उन्होंने वेदों का सहारा लिया : ''भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी - मुक्तछंद, / सहज प्रकाशन वह मन का -/ निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र। '' (2)

साहित्य में स्वाधीन चेतना लाने के लिए निराला छंदमुक्त कविता को आवश्यक समझते हैं। (3)

इसलिए श्यामा से भी कवि अकृत्रिम-स्वर में 'सरिगम' सुनना चाहते हैं : '' निर्झर के झर-झर स्वर में/ तू सरिगम मुझे सुना री -। '' (4)

रस-साधना के संदर्भ में भी निराला ने मुक्तछंद की अपरिमित महत्व देखा है। कविता कामिनी से उनका अनुरोध है : ''अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू/ प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह।/ गजगामिनि, वह पथ तेरा संकीर्ण / कंटकाकीर्ण / कैसे होगी उससे पार। '' (5)

- -

1. निराला : प्रबंध प्रतिमा, पृ0 270
2. 'जागरण', निराला रचनावली-1, पृ0 173
3. 'आवाहन' (1924 ई0) निराला रचनावली-1, पृ074
4. निराला रचनावली-1, पृ090
5. 'मित्र के प्रति' (1935 ई0) निराला रचनावली-1, पृ0 293

प्रसाद जैन से अपनी मुक्तछंद का प्रचार होते देख उस पर असंतोष प्रकट करने वाले बंधुओं पर उनका व्यंग्य है : ''बही बन्धु, वायु प्रबल/ जो न बंध सकी, / देखते वह तुम, बहती/ न बंध सकी। '' (1)

जब पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में निराला के मुक्त छंद की विरोध किया (2) तब उसका खंडन करने के लिए निराला ने अपने मुक्तछंद का संबंध कवित्त छंद से जोड़ दिया। उन्होंने कहा कि मुक्तछंद के चरणों से एक वर्ण को हटा देने से कवित्त छंद की सृष्टि होती है। (3)

स्वच्छंद छंद को निराला ने वार्तालाप के अनुकूल रखकर (4) उसमें नाटकीयता भर दी है। 'सेवा प्रारंभ' में स्वामी अखंडानंद और बुढ़िया के बीच का वार्तालाप उनके मुक्तछंद में बहुत प्रभावशाली है। ''खड़ी हुई बुढ़िया सेवा से, / एक दिन बोली, —''तुम मेरे बेटे हो उस जन्म के। ''/स्वामी जी ने कहा, — / अब से भी माँ हो तुम मेरी माँ। '' (5)

मुक्तछंद निर्माण के सिलसिले में एक ओर निराला 'आर्ट ऑफ रीडिंग' पर ज्यादा ध्यान दे रहे थे (6) तो दूसरी ओर मात्रिक मुक्तछंद

- -

1. 'मित्र के प्रति' (1935 ई) निराला रचनावली-1, पृ0293
2. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव (भूमिका) पृ0 AA
3. 'पंतजी और पल्लव', निराला रचनावली-5, पृ0182
4. निराला रचनावली-5, पृ0181
5. निराला रचनावली-1, पृ0339
6. निराला : 'पंतजी और पल्लव' (1927ई) निराला रचनावली-5 पृ0 181

की भी वकालत करते थे। (1) ''मैं ने पढ़ने और गाने दोनों के मुक्त छन्द निर्मित किये हैं। पहला कवित्तवृत्त में है, दूसरा मात्रावृत्त में। '' (2)

कृत्रिम अनुप्रासों को उन्होंने मुक्तछंद के विरुद्ध नहीं माना। पंत जी की कविता में अनुप्रासों की कृत्रिमता देख उन्होंने उनकी कटु आलोचना की। (3) अपनी कृतियों में यथा संभव निराला ने अनुप्रासों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। 'भिक्षुक' की प्रथम पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

''वह आता—/दो टूक कलेजे के करता पछताता/
पथ पर आता . . '' (4)

'एक' 'टेक', 'जाते' 'पाते', 'खड़े हुए' 'अड़े हुए' आदि प्रयोग भी कवि के अनुप्रास प्रेम के उदाहरण हैं।

निराला मुक्तछंद को स्वरप्रधान न मानकर व्यंजन-प्रधान मानते हैं। (5) मुक्तछंद पढ़ते समय 'आर्ट ऑफ रीडिंग' पर ही वे अधिक ध्यान देते थे, 'आर्ट ऑफ म्यूजिक' पर नहीं। (6) कविता पढ़ते समय गंभीर, कठोर या अन्य विशिष्ट अर्थ सूचित करनेवाले शब्दों पर आवश्यक ज़ोर देने का मौका मिलता है लेकिन गाते समय उसकी सुविधा बहुत कम है —

---

1. निराला : 'मेरे गीत और कला' (1936ई) निराला रचनावली-5, पृ0 395
2. वही, पृ0 395
3. 'पंतजी और पल्लव' निराला रचनावली-5, पृ0181
4. 'भिक्षुक' निराला रचनावली-1, पृ0 64-65
5. निराला रचनावली-5, पृ0 181

''उथल-पुथल कर हृदय-/मचा हलचल-/ चल रे चल-/
मेरे पागल बादल !/ धँसता दलदल,/
हँसता है नद खल-खल
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल ।'' (1)

काव्य-भाषा में सरलता और व्यावहारिकता लाने में भी मुक्तछंद सहायक रहा : 'गर्म पकौड़ी-/ ऐ गर्म पकौड़ी !/ तेल की भुनी/ नमक-मिर्च की मिली,/ ऐ गर्म पकौड़ी !'' (2)

धीरे-धीरे पद्य और गद्य के बीच का अंतर भी मिटता गया : 'आज ठण्डक अधिक है !/ बाहर ओले पड़ चुके हैं,/ एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था -/अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,/ हवा हाड़ तक बेधजाती है . . .''(3)

इस प्रकार भाषा की छिपी हुई शक्ति को उद्घाटित करने में निराला का मुक्तछंद काम आया । यह भी एक प्रकार का प्रयोग था । वे यह दिखा देना चाहते थे कि गद्य व पद्य दोनों में एक ही प्रकार की भाषा प्रयुक्त हो सकती है ।

निराला को अपने मुक्तछंद पर बड़ा गर्व था । आलोचकों की ओर से भी इसका कुछ स्वागत हुआ । परंतु डॉ० रामविलास शर्मा को निराला की छंदयुक्त कृतियाँ ही अधिक पसंद हैं । उनकी राय

- -

1. 'बादल राग-1', निराला रचनावली-1, पृ0116
2. 'गर्म पकौड़ी', निराला रचनावली-2, पृ04।
3. 'कुत्ता भौंकने लगा', निराला रचनावली-2, पृ018।

में निराला ने मुक्त-छंद में स्वच्छ भावोद्गारवाली कविताएँ बहुत कम लिखी हैं। नाटकीय, वस्तुतः कथा-प्रधान तथा वर्णनात्मक कविताएँ लिखने के उद्देश्य से ही उन्होंने मुक्तछंद का सहारा लिया है। (1) शर्मा जी ने यहीं यह भी कहा कि ''मन का स्वच्छ उच्छ्वास, भावों का अकृत्रिम चित्र उनके मुक्तछंद में प्रायः नहीं है।'' (2) अगर 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार-1, 2', 'बादल राग 1-6', 'भिक्षुक', 'महाराज शिवाजी का पत्र,' 'तोड़ती पत्थर', 'गर्म पकौड़ी', 'कुकुरमुत्ता', 'स्फटिक शिला' जैसी कृतियों को मुक्तछंद के अंतर्गत मान लेंगे तो शर्माजी का मत अस्वीकार करना पड़ेगा।

सुमित्रानंदन पंत ने लिखा था—

''छंद - बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी निःसृत,
गलित ललित आलोकराशि, चिर अकलुष, अविजित,
स्फटिक शिलाओं से तू ने वाणी का मंदिर
शिल्पि, बनाया ज्योति - कलश निज यश का धर चिर।
अमृत-पुत्र कवि, यशः काय, तव जरा मरण जित,
स्वयं भारती से तेरी हृतंत्री झंकृत।'' (3)

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ0 426
2. वही, पृ0 426
3. 'अनामिका', कवि के प्रति, सुमित्रानंदन पंत, सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली-2, पृ. 115-16.

6.7 निष्कर्ष

1. 'नयी कविता', काव्य के क्षेत्र में एक सुनियोजित आंदोलन न था। यह पाश्चात्य साहित्य की अनुकृति भी न थी। यह आधुनिक विकास की सहज और अनिवार्य साहित्यिक भूमिका है।

2. 'नयी कविता' की धूम अमरीकी काव्य में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही मच गयी थी, पर हिन्दी में इसका प्रचार तीस-पैंतीस वर्ष बाद ही हुआ।

3. हिन्दी में आधुनिकता का तीव्र गति से विकास सन् 1950 के आसपास ही हुआ था। लेकिन इससे पूर्व छायावाद-काल में ही निराला, पंत जैसे कवि अपनी कृतियों में आधुनिकता की काफी प्रमाण दे चुके हैं। डॉ०नगेन्द्र, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ० नामवरसिंह, डॉ० बच्चनसिंह तथा अज्ञेय ने प्रगतिवाद - प्रयोगवाद आदि नयी प्रवृत्तियों का संबंध छायावाद से जोड़ा है और उसे काव्य की सभी नयी प्रवृत्तियों का मूल-स्रोत माना है।

4. निराला काव्य को मुख्य आधार बनाकर ही आलोचकों ने 'नयी कविता' तक की जड़ों को छायावादी-काव्य में ढूंढने का साहस किया है। छायावाद-युग में ही हिन्दी काव्य की सभी आधुनिक प्रवृत्तियों का बीजारोपण निराला-काव्य में ही हुआ था।

5. छायावाद-युग में प्रगतिवादी कविता की, प्रगतिवाद-युग में प्रयोगवादी कविता की तथा प्रयोगवाद-युग में 'नयी कविता' की संभावनाओं में झाँकनेवाले निराला की दूरदर्शिता तथा विलक्षणता से उनके सृजन भी प्रभावित हो गये और हिन्दी कविता में निराला 'क्रांति के अग्रदूत' माने गये ।

6. निराला की विशेषता इस बात में है कि वेदान्त–रहस्यवाद पर आस्था रखते हुए भी वे भौतिक जीवन से मुँह नहीं मोड़ते, व्यष्टि और समष्टि में अंतर नहीं मानते । निराला का वस्तुगत संसार से भी मेल है ।

7. अस्तित्ववादियों के अनुसार व्यवस्था 'भविष्य' के निर्माण में सहायक रहती है । निराला-काव्य में जिस व्यवस्था की झाँकी मिलती है, वह आस्था को जन्म देने-वाली है; 'भविष्य' की कल्पना में सहायक सिद्ध होती है ।

8. निराला शुरू से ही नयी नैतिकता के आग्रही थे । द्विवेदी-कालीन नैतिकता पर 'जुही की कली' लिखकर सर्वप्रथम चोट निराला ने ही की थी । लेकिन साहित्य में अश्लीलता का खुला प्रदर्शन उन्हें पसंद न था । द्विवेदी-युग के नैतिक, नियंत्रणों का विरोध ही उनका लक्ष्य था, अश्लीलता का प्रचार नहीं । मन की बातों को ईमानदारी के साथ प्रकट करना ही उन्होंने कवि-धर्म समझा ।

9· -'नयी कविता' के सौंदर्यबोध का मूलाधार यथार्थ ही है और इस यथार्थ या सत्य-कथन के निराला गुरु से ही उपलब्ध है। सत्-असत्, सुंदर-असुंदर को निराला ने काव्य का विषय बना लिया और नये कवियों का मार्ग प्रशस्त किया।

10· बाह्य-दुनिया को अपनी वैयक्तिकता के अनुकूल न पाकर छायावादियों की भाँति प्रयोगवादी तथा नयी कवि भी भीड़ में अकेलेपन का अनुभव करते हैं। निराला भी अपने को सबों से दूर और अकेला पाते हैं।

11· निराला ने भाषा का प्रयोग सर्वत्र भावानुकूल किया है। इसलिए उनकी भाषा स्वच्छन्दता से व्यवहार रखती है। प्रौढ़, मधुर, सरल एवं बोलचाल की शैलियों का सफल प्रयोग निराला की कृतियों में मिलता है। उनकी भाषा में कहीं कहीं व्यवस्था की कमी तथा नियम-भंग भी दृष्टिगोचर हैं। बिंब-योजना, प्रतीक विधान, फैंटसी, मुक्तछंद आदि के क्षेत्र में भी निराला प्रयोगवादियों तथा नयी कवियों के निकट रहे।

= = =0= = =

पाँचवाँ अध्याय :

आधुनिकता

7. आधुनिकता

पश्चिम के लेखक जहाँ अपनी परंपरा की रक्षा करने में आधुनिकता की पुष्टि देखते हैं (1) वहाँ हिन्दी के नवलेखक आधुनिक का ढोंग करने के लिए परंपरा का तिरस्कार अनिवार्य समझते हैं। (2) उनके मन में यह धारणा घर कर गयी है कि परंपरा आधुनिकता का बाधक तत्व है। इस झूठी धारणा को निर्मूल किये बिना हम सच्ची आधुनिकता का साक्षात्कार नहीं कर सकते। इस संदर्भ में आर०एन० [illegible] का कहना है कि बहुत अधिक सजग रहने पर भी पश्चिम के लेखक परंपरा से अलग नहीं हो पाये हैं। (3) आधुनिकों के आचार्य टी०एस० इलियट को भी अपनी परंपरा पर बड़ा गर्व है। (4) मगर हमारे नवलेखक अमेरिका जैसे पूँजीवादी राष्ट्रों की आधुनिकता मात्र को आधुनिकता समझकर [illegible] रास्ते से भटक गए हैं। पूँजीवादी देशों की आधुनिकता को हम यथार्थ-आधुनिकता स्वीकार नहीं कर सकते। (5)

निश्चय से हिन्दी के नवलेखकों ने पूँजीवादी आधुनिकता के दोषों को देखने का प्रयास नहीं किया है। पश्चिमी लेखकों का अंधानुकरण करनेवाले हमारे [illegible] प्रवृत्ति पर असंतोष प्रकट करते हुए

- -

1. Howard Sergeant : Tradition in the making of Modern Poetry, Vol - 1, Britannicus Liber Ltd., London, first published 1951, P-5
2. [illegible] : 'अपनी अतीत की पूंजी,' निकष-3-4-सं० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ० 18-19
3. आर०एन० [illegible] : [illegible], पृ० 7
4. "I am proud of all the Irish blood that's in me." -- T.S.Eliot, The Waste land, Ed. by Valerie Eliot, Faber and Faber, London, 1972, P-45
5. [illegible] बंद्योपाध्याय : [illegible], पृ० 43

शिवदानसिंह चौहान ने 1955 में लिखा था : ''स्वतंत्रता के बाद हमारे बहुत से तरुण लेखकों और कलाकारों को आकृष्ट करने में पाश्चात्य साहित्य की उन प्रवृत्तियों का बड़ा हाथ रहा है, क्योंकि हमारे यहाँ का समाज-जीवन ह्रासोन्मुखी नहीं है, विकासशील है और जो कैशोर्य और कुण्ठा उनमें है, वह गुलामी की देन है, जिसे मिटाने के लिए हम कृतसंकल्प हैं। '' (1)

स्पष्ट है कि जो आधुनिकता स्वातंत्र्यपूर्व भारत में पश्चिम से आयी थी, वह ह्रासोन्मुख उपनिवेशवाद की देन थी, वह हमारे लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी। ऐसी पूँजीवादी अतिवादी आधुनिकता खतरनाक है। ऐसी जनता की आधुनिकता कहना भी असंगत है। ''इस जनता की आधुनिकता का पर्याय स्वीकार करना नामुमकिन है, क्योंकि, पूँजीवादी अतिवादी ने उसी की आधुनिकता स्वीकार किया है,'' (2) शोषण पर आधारित आधुनिकता फैशन ही है। (3)

अब हमारे मन में एक साथ कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं। आखिर आधुनिकता का असली रूप क्या है ? यह देशी है या विदेशी ? क्या यह संपन्न राष्ट्रों की अपनी संपत्ति है ? भारतीयों के लिए आधुनिकता स्वाधीनता के साथ-साथ मिला वरदान है ? प्राचीन भारत में क्या आधुनिकता का नितांत अभाव था ? प्रत्येक काल के जीवन तथा साहित्य में आधुनिकता का प्रभाव कहाँ तक है ? भगवान बुद्ध, कबीर, तुलसी,

- -

1. शिवदानसिंह चौहान : साहित्य की समस्याएँ, पृ0 5
2. गंगा प्रसाद मिश्र : आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, पृ0 11
3. शंभुनाथ सिंह : नवगीत दशक-2, पराग प्रकाशन, दिल्ली-32, प्र0सं0 1983, पृ0 8

भारतेंदु, रविबाबू, निराला, अज्ञेय आदि विभिन्न युगों के प्रतिनिधि क्या आधुनिक कहे नहीं जा सकते ? क्या और साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले और समकालीन न रहनेवाले भी आधुनिक बन सकते हैं तो आधुनिकता का सच्चा स्वरूप क्या है ?

7.1. मॉडर्निटी और 'मॉडर्निज़्म'

पाश्चात्य देशों में 'आधुनिकता' के अर्थ में 'मॉडर्निज़्म' शब्द का प्रचार ही अधिक हुआ है । इस मॉडर्निज़्म' का आविर्भाव उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में धार्मिक संदर्भों में हुआ । (1) डार्विन के सिद्धांतों के प्रकाश में बाइबिल का आलोचनात्मक विश्लेषण करके ईसाइयत को समय के अनुकूल बना देने का प्रयास ही प्रोटेस्टेन्ट धर्म के कुछ परिवर्तनवादी विचारकों ने किया था । (2) यह एक सुनियोजित आंदोलन न था । (3) इसी प्रकार का एक प्रयास रोमन कैथोलिक धर्माधिकारियों की ओर से भी हुआ । आधुनिक विज्ञान तथा दर्शन के विरुद्ध पड़नेवाले धार्मिक विचारों की उपेक्षा करके बाइबिल की वैज्ञानिक व्याख्या का साहसपूर्ण कार्य उन्होंने भी किया । (4) 'धर्म' की प्रगति की कामना करते हुए ये आंदोलन चलाये गये थे । (5)

- -

1. The new College Encyclopedia, Galahabad Books, New york, 1978, P-591.
2. " P- 591
3. The Encyclopedia Americana, Vol.19 Americana Corporation, New York, International Edition, 1974, P-289-L "Modernism, in Protestant churches, is not an organised movement book an approach to religion"
4. The Macmillan Encyclopedia, Macmillan, London, first Edition:1981, P-822
5. "They (modernists) believed that the church could progress through their program-furthering social reform and developing new ideas--thus reclaiming true leadership in the modern world."--The Encyclopedia Americana-Vol.19, 1974, P-289 L

मगर 'धर्म के अधिकारियों' ने इस आधुनिकता के सिद्धांतों को संदेह की दृष्टि से देखा। (1) आधुनिकों और अधिकारियों के बीच की दूरी बढ़ती गयी और आखिर स्थिति यहाँ तक पहुँची कि आधुनिकतावादियों ने संसार को मूढ़ घोषित किया। (2)

भारतीयों ने आधुनिकता के अर्थ में 'मॉडर्निटी' शब्द को ही स्वीकार किया क्योंकि इससे 'वाद' की गंध नहीं आती, यह एक मानसिक वातावरण अथवा हमारे जीवन तथा साहित्य से संबद्ध रखती है।

१.२ आधुनिकता : अर्थ परिभाषा :

धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण के रूप में ही 'एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना' (3) में 'मॉडर्निज़्म' की व्याख्या की गयी है। 'मॉडर्निज़्म' के अर्थ में 'लिबरलिज़्म' का भी प्रयोग होता था — "... Sometimes the term is used interchangeably with liberalism." (4) आधुनिकता के प्रवर्तक काल-परिवर्तन तथा वैज्ञानिक प्रगति के अनुसार अपने सिद्धान्तों में आवश्यक परिवर्तन करने में हिचकते नहीं हैं। उनका विश्वास था कि इस प्रकार के नये परिवर्तनों को आत्मसात करने से आधुनिकता का स्वरूप अधिक सशक्त हो जाएगा, उसकी कुछ कमजोरी नहीं। (5)

---

1. I bid, P.289-L
2. The New College Encyclopedia, 1978, P.591
3. The Encyclopedia Americana - Vol.19, 1974, P.289-L
4. Ibid, 289 L.

5. "Modernists agree that their doctrines are open to revision in the light of changing times and of advances in knowledge, but consider this to be a source of strength, not of weakness." -Encyclopedia Americana, Vol. 19, P-289-L

वैज्ञानिक परिवेश में ईसाइयत की देन से एक नवीन दृष्टि-कोण को ही पाश्चात्य देशों में 'माडर्निज्म' स्वीकार किया गया था। परन्तु आज पश्चिम में भी आधुनिकता वर्तमान है यह नितांत भिन्न है। पश्चिम में अनेक जीवन-दृष्टियाँ नये सिरे से बनी हैं और इन के संघर्ष में आने के कारण आधुनिकता के नाम बदले हैं। ''अस्तित्ववाद से लेकर क्रांतिकारी मानववाद (Radical Humanism) तक ये विचार-धाराएँ प्रचलित हैं। जहाँ अस्तित्ववाद वैयक्तिक आत्मरक्षा के पक्ष को प्रधानता देता है, वहीं संशोधित मानववाद सामाजिक विकास की समग्रता की अवधारणा घोषित करता है। यह दृष्टि-भेद इतना सुस्पष्ट है कि इन में से किसी एक को दूसरे के अधीन स्वीकार नहीं रखा जा सकता...'' (1)

कुछ काल तक 'आधुनिकता' कहने से पश्चिमी आधुनिकता का ही बोध होता था और आर्थिक दृष्टि से अविकसित पश्चिमी राष्ट्र ही आधुनिकता के अधिकारी समझे जाते थे। परंतु अब परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। दुनिया के साम्राज्यवादी, पूंजीवादी, गरीब, साम्यवादी सभी राष्ट्रों में आधुनिक बनने की होड़ लगी है।

7.3 बुद्ध और ईसा :

पाश्चात्यों ने आधुनिकता का संबंध ईसा से जोड़ा है(2) तो भारत में आधुनिकता का आरंभ गौतमबुद्ध से बताया जाता है। (3)

- -

1. नंददुलारे वाजपेयी : रीति और शैली, पृ० 43

2. The Encyclopedia Americana, Vol.19, Americana Corporation, New York, International Edition, 1974, P.289-L

3. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 37

ईसा ने अंधश्रद्धा का निराकरण किया। बुद्धि और तर्क को सर्वाधिक महत्व देनेवाले थे गौतम बुद्ध। बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा - तुम किसी बात पर सिर्फ इसलिए विश्वास मत करो कि उसका प्रतिपादन मैं ने किया है। किसी ग्रंथ में लिखित होने के बल पर भी किसी तथ्य पर विश्वास मत करो। अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसने के बाद ही किसी पर विश्वास करो। आधुनिक बुद्धिवादी इससे बढ़कर क्या कह सकते हैं ?

ईसा ने अपने को परम पिता का पुत्र घोषित किया था। वे अपने को परमपिता से अभिन्न मानते थे। पर प्रत्यक्ष जगत में मानव बनकर ईसा हमारे सामने आये। ईसा जैसे अन्य किसी क्रांतिकारी को दुनिया ने आज तक नहीं देखा है।

भगवान बुद्ध भी कम क्रांतिकारी न थे। उन्हें भारत ही नहीं दुनिया के प्रथम आधुनिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है। दिनकर ने लिखा है : "... आधुनिकता का आरंभ भारत में बुद्ध के समय हुआ था और वह धारा तब से भारत में बराबर बढ़ती आ रही है।"(1) रमेश कुंतल मेघ ने इससे भी आगे बढ़कर अर्जुन तक को आधुनिक मान लिया है : "लगभग सभी कालों में आधुनिक मनुष्य (अर्जुन, कौटिल्य, कबीर) भी हुए हैं, और इससे पहले भी आधुनिक युगों की सृष्टि हुई है (वैशाली के गणराज्य के दिन, समुद्रगुप्त के युग की निर्माण अवधि, रीतिकाल पूरी के बाद का सन्तों का जनजागरण)।

---

1. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 37

जब-जब पश्चिम चेतना की अवधारणा की धार्मिक चेतना के विरोध में अवतरण किया है तब तब आधुनिकता की सुगबुगाहट हुई है,''[1] कबीर दास को हिम्मत जुलाहे से बढ़कर आधुनिक साबित करते हैं। हमारी वर्तमान आधुनिकता, जो यूरोप से संबद्ध है, का भारत में प्रवेश उन्नीसवीं सदी में ही हुआ। (2)

7.4 आधुनिकता : भारतीय परिभाषा :

डॉ० रामधारी सिंह दिनकर की नज़र में आधुनिकता एक प्रक्रिया है : ''यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य की ऊँचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं बल्कि उसके कर्म से नापता है। आधुनिक वह है जो मनुष्य मनुष्य को समान समझता है।''[3] डॉ० गंगाप्रसाद विमल आधुनिकता को एक प्रकार की मानसिकता कहा है और उसे धर्म, दर्शन आदि का विरोधी तत्व माना है।[4] एक विकासशील, गतिशील परिवर्तित स्वरूप के रूप में ही कुमार विमल आधुनिकता को स्वीकार करते हैं : ''आधुनिकता अपने-आप में कोई मनगढ़ंत मूल्य या एक स्थिर बिंदु पर टिका हुआ मानदंड नहीं है। यह तो एक विकासशील दृष्टिकोण है, एक

---

1. रमेश कुंतल मेघ : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर-प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1969, पृ० 56
2. रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 37
3. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिक बोध, पृ० 42
4. गंगाप्रसाद विमल, आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, दि मैकमिलन कंपनी, प्र०सं० 1978, पृ० 12

गतिशील सांस्कृतिक सातत्य continuum है, एक जीवित जीवन-दृष्टि है या युग-बोध से उत्पन्न एक सशक्त प्रवृत्ति है।''(1) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार ''आधुनिकता मूलतः मूल्यात्मक बोध है।''(2) समसामयिकता का बोध, क्षण के यथार्थ के प्रति दायित्व, आत्मनिष्ठा के प्रति आग्रह, विवेक, व्यक्तिस्वातंत्र्य आदि गुणों में उन्होंने आधुनिकता के दर्शन किये हैं। सुरेशचन्द्र राजपाल आधुनिकता को मात्र इतिहास का बोध नहीं अपितु पूर्ववर्ती परंपराओं से संबद्ध मानते हैं(3) तो डॉ० जगदीशसिंह ने परंपराओं को आधुनिकता का विरोधी तत्व स्वीकार किया है: ''आधुनिकता और परंपरा में कोई मेल नहीं है। इसके विपरीत दोनों एक दूसरे के विरोधी होते हैं।''(4) डॉ० शिवप्रसाद-सिंह ने हिन्दी की आधुनिकता को अर्वाचीन स्वाधीनता की देन बताकर उसे घटिया ठहराया है।(5) आचार्य नंददुलारे वाजपेयी भारतीयता का आशय हमारी राष्ट्रीय-चेतना के अनुरूप होनेवाले स्वाभाविक विकास से मानकर भारतीयता और आधुनिकता के बीच के अंतर को ही मिटा देते हैं: ''वस्तुतः आधुनिकता और भारतीयता में वैषम्य की कोई स्थिति न है, न होनी चाहिए।''(6)

कुछ आलोचक आधुनिकता को अपरिवर्तनशील शाश्वत मूल्य कहते हैं(7) तो 'मूल्य-हीनता ही आधुनिकता का मूल्य' माननेवालों की

- -

1- कुमार विमल: अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0 256
2- लक्ष्मीकांत वर्मा: नये प्रतिमान: पुराने निकष, पृ0 60
3- सुरेशचंद्र राजपाल: आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, शोध पब्लिकेशन्स, अलीगढ़, प्र0सं0 1972, पृ0 09
4- डॉ0 जगदीशसिंह, आधुनिकता और परंपरा (लेख) संभूति-13, पृ0 13
5- डॉ0 शिवप्रसाद सिंह: आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970, पृ0 110-114
6- नंददुलारे वाजपेयी: रीति और शैली, पृ0 43
7- नरेन्द्रदेव वर्मा: आधुनिकता: कुछ समस्याएँ, उर्मिलय, कलकत्ता 1967, पृ0 17

कभी भी नहीं ।(1) कुछ आलोचकों की यह भी धारणा है कि आधुनिकता पश्चिम की देन है । उनके अनुसार पाश्चात्यता तथा आधुनिकता पर्यायवाची हैं । शिशिर कुमार घोष ने लिखा है : '' "The problem as it exists, is no doubt western in origin. Modern is western. Both the U.S.A. and the U.S.S.R. are, presumably, modern, though not in the same way."(2)

परंतु मंजुकुमारी वाजपेयी(3), रामधारी सिंह दिनकर (4) रमेश कुंतल मेघ(5) जैसे लेखक केवल अमेरिका या रूस को ही आधुनिक नहीं मानते । भारत भी अपने को आधुनिक रखने में सतत प्रयत्नशील रहा है । उनके अनुसार आधुनिकता को स्वीकार करने का अर्थ भारतीयता की अवहेलना नहीं है : भारत को आधुनिक भी बनना है और उसे अपनी परंपरा के श्रेष्ठ अंशों को भी बचाकर रखना है ।''(6)

उपर्युक्त व्याख्याओं के आधार पर एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि 'आधुनिकता' को लेकर हिन्दी के लेखकों में पर्याप्त मतभेद है । कोई इसे मूल्य समझता है तो कोई इसे मूल्यहीनता की दशा ; कोई इसे एक प्रकार की मानसिकता समझता है तो कोई इसे प्रक्रिया , किसी ने इसे 'विकासशील दृष्टिकोण', 'गतिशील सांस्कृतिक आग्रह' या

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. कुबेर दत्त: आधुनिकता नयी और पुरानी, ज्ञानोदय, अप्रैल '67, पृ0 32
2. Sisir kumar Ghosh : Modern and otherwise, P-275
3. मंजुकुमारी वाजपेयी : रीति और शैली, पृ0 53-54
4. रामधारीसिंह दिनकर : आधुनिक बोध , पृ0 50
5. रमेश कुंतल मेघ : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ0 58
6. डॉ0 रामधारीसिंह दिनकर : आधुनिक बोध, भूमिका , पृ0 3

'सीमाकार जीवन-दृष्टि' कहा है तो किसी ने गुणात्मक-बोध । कहीं इसे शाश्वत तथा चिरंतन तत्व के रूप में ग्रहण किया गया तो कहीं परिवर्तनशील काल-मूल्य के रूप में । कुछ इसे परंपरा सापेक्ष मानते हैं तो कुछ परंपरा-निरपेक्ष । कुछ लोगों की दृष्टि में आधुनिकता भारत की परिस्थिति की देन है तो कुछ इसे बाहर के पूंजीवादी, साम्राज्यवादी या साम्यवादी देशों की उपज मानते हैं । कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो आधुनिकता की स्वतंत्र रूप में परिभाषा असंभव मानते हैं क्योंकि यह युग-सापेक्ष है, युग के संदर्भ में ही इसकी परिभाषा संभव हो पाती है । (1)

जीवन के शाश्वत मूल्यों के रूप में भारतीयों ने पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ही स्वीकार किया है । देश-काल के अनुसार कभी-कभी इन में से कुछ मूल्यों को प्रधानता मिलती है, अन्य मूल्य गौण रहते हैं । यथार्थ पर अधिक जोर देनेवाले आधुनिक युग में इन अर्थ और काम को ही अधिक प्रश्रय देते हैं । इस प्रकार के शाश्वत मूल्यों के अतिरिक्त नये मूल्य भी परिस्थिति के अनुसार स्थापित हो जाते हैं । हमारी राष्ट्रीय चेतना इसका उत्तम दृष्टांत है । परंतु आधुनिकता इस प्रकार के शाश्वत या गौण मूल्यों की कोटि में नहीं आती । वह गतिशील है, देश-काल-सापेक्ष, परिवर्तनशील है । आधुनिकता को मानसिकता कहने से संकुचित का ही अधिक बोध होता है, इसलिए इसे दृष्टि या दृष्टिकोण कहना ही उचित है ।

- -

1. डॉ० बेचन : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ० 39

देश-विशेष में आधुनिकता का अर्थ उस देश की परंपरा से संबद्ध रहने में है । प्राचीन रूढ़ियों की परंपरा अथवा परंपरा के महान अंशों की अवहेलना करना भी अन्याय है । प्रत्येक देश की अपनी आधुनिकता है । जहाँ तक हमें इतिहास का पता है, बुद्ध देव के काल से लेकर हम भारत में आधुनिकता के दर्शन देखते हैं, हमें यही समझना पड़ता है कि आधुनिक विचारों से, यहाँ के समाजव्यवस्थाओं तथा धर्मप्रथाओं में से कुछ ही सही, अवश्य प्रभावित है । वे क्रांतिकारी परिवर्तनों के पक्षपाती थे । परंतु पाश्चात्यों के आगमन से जीवन तथा साहित्य के लिए उपयोगी कुछ अन्य आधुनिक तत्व भी हमारी संस्कृति में मिल गये । जिन्हें स्वीकार करने में हमने कोई आपत्ति नहीं देखी । हमारी आज की आधुनिकता पर इस प्रकार पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट रूप में आ ही गया । उपयोगी तत्वों के स्थान पर हमारी परंपरा की बिलकुल बेकार की अनुपयोगी तत्वों को भी पाश्चात्यों के अनुकरण में आत्मसात करने को तैयार हुए, वे भूले-भटके पतित ही रह गये । इस बात में कोई संदेह नहीं कि यह आधुनिकता युग के संदर्भ में ही बदलती रहती है, इसलिए सर्वांग-परिभाषा कठिन है ।

संक्षेप में परिभाषित आधुनिकता की मान्यताएँ ये हैं -

1. आधुनिकता को हम जीवन के शाश्वत मूल्यों की कोटि में गिना नहीं सकते क्योंकि यह स्वभाव से परिवर्तनशील है ।
2. निरंतर परिवर्तित होनेवाली एक जीवन-दृष्टि के रूप में ही यह स्वीकार की जा सकती है ।
3. आधुनिकता तथा संस्कृति के बीच घनिष्ट संबंध है, प्रायः उनमें वैषम्य की स्थिति नहीं है ।

4. सच्ची आधुनिकता का परंपरा के सम्पूर्ण अंशों से कोई विरोध नहीं है। सच्ची आधुनिकता कल्याणकारी विवेक होती जो परंपरा के श्रेष्ठ अंशों को स्वीकार करने में नहीं हिचकती।

5. आधुनिक - परिस्थिति में परंपरा-भंजन नहीं, रूढ़ि-भंजन अनिवार्य-सा हो गया है।

6. बाहर से आनेवाली आधुनिकता को अपनाते समय अपने देश का ध्यान भी रखना चाहिए। संपन्न देशों की आधुनिकता की नकल भारत जैसे राष्ट्रों की संस्कृति के अनुकूल नहीं रहेगी।

7. अन्य देशों की आधुनिकता के अनुपयोगी तत्वों के तिरस्कार से ही अपनी संस्कृति की रक्षा संभव होगी।

8. बाहर की आधुनिकता का पूर्ण तिरस्कार असंभव है। आधुनिकता के महान-अंशों को ग्रहण करके अपनी विशिष्ट राष्ट्रीय-परिस्थिति में एक नयी आधुनिकता का निर्माण करने में ही प्रत्येक देश का कल्याण है।

9. आधुनिकता किसी पूंजीवादी या साम्यवादी देश की ही संतान नहीं है।

10. प्रत्येक देश की अपनी आधुनिकता होती है।

11. आधुनिकता के क्षेत्र में भारत पिछड़ा हुआ देश नहीं है, सदियों पूर्व से गौतम बुद्ध जैसे आधुनिकों को इस देश ने जन्म दिया था।

12. वैदिक काल की आधुनिकता नयी परिस्थिति की उपज है, इसलिए प्राचीन-काल की आधुनिकता से यह भिन्न प्रवृत्ति रखती है।

7.5 खड़ी-बोली काव्य में आधुनिकता का विकास :

आधुनिकता देश-काल सापेक्ष होते हुए भी उनके बंधन में नहीं बंधती । काल तथा देश के अनुसार आधुनिकता का रूप-परिवर्तन होता ही रहता है । ऐसा कोई भी देश या काल न होगा जिसपर आधुनिकता का प्रभाव न पड़ा हो । अतः साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश एक स्वाभाविक, आवश्यक क्रम ही माना जायेगा ।

आधुनिकता के तत्त्वों में धर्म-निरपेक्षता, अन्तरराष्ट्रीयता, एक-विश्व-चेतना जैसे भिन्न-भिन्न तत्त्वों को आधुनिकता के मूल में मान लिया गया है वे सब-के-सब स्वातंत्र्योत्तर भारत की अपनी वस्तु नहीं हैं । भले मात्रा में ही सही, प्राचीन भारत में भी ये तत्त्व विद्यमान थे । भारतेन्दु-युग के कवि-कलाकार धर्म निरपेक्षता पर ज़ोर दिया करते थे । और राष्ट्रों के बीच की दूरी को पाटने का प्रयत्न भी किया करते थे । यद्यपि राधाचरण गोस्वामी जैसे सहृदयी कवि वैराग्यपन की मुक्ति का स्वप्न भी पूर्ण घोषित करते थे (1) तथापि श्रीधर पाठक, (2) प्रतापनारायण मिश्र (3) जैसे आधुनिकता-प्रेमी वर्ग के लोगों ने कविता तथा मानव को मुक्त करके मुक्ति-क्षेत्र में लाने का प्रयत्न करते थे । जाति-पांति पर चोट करनेवाली रचनाएँ प्राचीन कवि कबीरदास ने भी लिखी हैं परन्तु आधुनिक परिवेश में जाति का अर्थ उतना संकुचित नहीं है । शूद्रों का विरोध भारतेन्दु-काल में किसी जाति या वर्ग की मुक्ति हेतु नहीं किया जाता था,

---

1. विनय मोहन शर्मा : साहित्य नया और पुराना, पृ० 9
2. अज्ञेय : हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ० 58
3. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1973 पृ० 461-62.

संपूर्ण देश की मुक्ति के साथ-साथ मानव-मुक्ति पर भी वे बल देते थे । देश की दुःस्थिति का चित्रण, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह समर्थन छुआछूत, बाल-विवाह-विरोध आदि पर ज़ोर देनेवाला भारतेंदुकालीन साहित्य तत्कालीन-समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है ।

भारतेंदुकालीन साहित्य का देवता धार्मिक परिवेश को छोड़ यथार्थ मानव का रूप धारण करने लगा था । 'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।' (वेदव्यास) प्रागैतिहासिक काल से यद्यपि मानवता का विकास होता आ रहा था तो भी मानव का पूर्ण रूप अभी सामने नहीं आ गया था । भारतेंदुकालीन साहित्य में मानव को समझने की कोशिश की गयी, मानव पर साहित्यकार का विश्वास बढ़ता गया ।

7.5.1. भारतेन्दु युग :

नयी मानवता की प्रतिष्ठा भारतेंदु-काल से शुरू हुई थी, परंतु उस धारणा पर लोगों का विश्वास द्विवेदी-काल में भी जारी रहा । इतना नहीं कि इस युग में मानव की प्रतिष्ठा अधिक दृढ़ हो गयी । स्वयं देवता भी मनुष्य पर मुग्ध होने लगे । राम तथा कृष्ण साधारण मानव का रूप धारण करते नज़र आये । 'साकेत' के राम और 'प्रियप्रवास' के कृष्ण इसके प्रमाण हैं । वे आधुनिक परिवेश के अनुकूल चित्रित किये गये, लेकिन उनकी महिमा पर आँच न आयी । भगवान बुद्ध भी साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित हुए । यशोधरा ने उनके व्यवहार की अनुचितता पर शिकायत करने में भी कुछ संकोच नहीं करती ।

'कामायनी' में व्यक्ति तथा विश्व की मुक्ति पर प्रकाश डाल दिया गया है। 'प्रिय प्रवास' के राधा-कृष्ण भी आधुनिक विचारों से प्रभावित मानव ही हैं, जिन्हें विश्व का मंगल ही उन्हें अभीष्ट है। यह विराट विश्व-बोध आधुनिकता का महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। (1)

7.3.2 छायावाद युग :

छायावाद-युग तक आते-आते पश्चिमी शिक्षा तथा साहित्य का इतना अधिक प्रचार तथा प्रभाव भारतीय जीवन पर पड़ा कि एक नयी नैतिकता की स्थापना भी आवश्यक हो गई। अज्ञेय लिखते हैं —
''ईश्वरपरक नैतिकता का स्थान मानवपरक नैतिकता ले रही थी, नयी नैतिकता की स्थापना धीरे-धीरे हो रही थी.. ''। (2)

मानवपरक नैतिकता की स्थापना में बुद्धिवादी परिस्थिति भी सहायक रही। ईश्वर का स्थान प्रकृति को देकर प्रकृति से आत्म-संबंध स्थापित करने में ही कवियों ने संतोष पाया। प्रकृति में मानवीयता को आरोपित करना ही छायावाद की मुख्य प्रवृत्ति रही। छायावाद-युग में गढ़ी गयी मानव-मूर्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उसकी सृष्टि में कवियों ने अद्भुत संयम दिखाया है, अतीत में जाकर उसे विमुख नहीं बना डाला है। कवियों के इस आंतरिक संयम ने इस मानव-मूर्ति को एकविध परिवेश प्रदान किया है। वास्तव में हिन्दी साहित्य में मानव-प्रतिष्ठा की सबसे प्रबल घोषित छायावाद-काल

- -

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 213
2. 'अज्ञेय' : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 99

में हुई । उसके पूर्व या पश्चात् मानव का इतना आकर्षक रूप कभी सामने नहीं आया है । इस दिशा में निराला, प्रसाद, पंत, महादेवी से कम कम महत्व के नहीं हैं । यद्यपि कबीरदास गोविंद से भी ऊँचा स्थान गुरु को देकर अपने को क्रांतिकारी सिद्ध कर चुके हैं तो भी छायावाद के उदयकाल में 'अधिवास' (सन् 1923) की रचना करके निराला ने कुछ मानव को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया और इस प्रकार अपने को कबीर से भी अधिक क्रांतिकारी सिद्ध कर दिया । वेदांत-दर्शन पर विश्वास रखनेवाले निराला दुखी के विपन्न रूपों के सामने द्रवित हो उठे । उन्हें दुःख को माया या मिथ्या मानकर मानव-सेवा से वे दूर नहीं रह सके ।

''उसकी अश्रु-भरी आँखों पर मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनंत, किंतु तो भी मैं नहीं विमर्श;
छूटता है यद्यपि अधिवास,
किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास ।'' (1)

छायावाद-युग में आधुनिकता की गति निरंतर कुछ तीव्र हो उठी थी । यद्यपि पश्चिमी आधुनिकता का प्रबल प्रभाव हो रहा था, तो भी प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की आधुनिकता भारतीयता के अनुरूप ही विकसित हुई । इस काल में ऐसे कुछ कवि भी थे जिन्हें अपनी प्राचीन संस्कृति से विमुख हो जाने का भय था, लेकिन आधुनिकता के गुणों और दोषों को अपनाने में प्रसाद, निराला, पंत आदि सचेष्ट बने रहे ।

- -

1. निराला रचनावली-1, सं० नंदकिशोर नवल, राजकमल, 1983, पृ० 35-36

7.5.3. प्रगतिवाद-काल :

महायुद्धोत्तर अनुभवों ने छायावाद की प्रकृति संबंधी मान्यताओं पर बड़ा आघात लगाया। यह देखकर कि प्रकृति दुष्ट और शिष्ट में कोई भेद नहीं देखती, सभी दंड से चैन नहीं लगते, छायावादियों का दृष्टिकोण भी बदलने लगा। गांधी से बढ़कर समय पर विजय करनेवाले मार्क्स के सिद्धांतों का बड़ा प्रचार हुआ। भारतीय साहित्य में प्रगतिवाद का रूप धारण कर गया। दुनिया के भूखों पर कहीं आँसू की बूंद - ताजमहल-संबंधी की आकांक्षा न जगे, उसे भी ताज की पूजा-सी प्रतीत हुई (1) सो यह मार्क्सवाद का ही प्रभाव था। पंत जी ने उस अनुरूप वस्तु-सौंदर्य को छोड़ा मानव की प्रतिमा को अधिक सम्मानित बना देने के उद्देश्य से ही की थी। पीड़ित मानवता में प्राण फूंकने का प्रयास भी उनकी ओर से हुआ था। दुनिया के अधिकांश स्वभाव पर चोट करके नयी मानवता की सृष्टि करना, शत्रुता के स्थान पर मानव-बंधुता की भावना को प्रतिष्ठित करना यही पंत जी का लक्ष्य है। छायावादियों ने संयम का जो मार्ग अपनाया था, प्रगतिवाद में आकर लुप्त-सा हो गया और पंत जैसे कोमल-प्रकृति के कवि भी संहार तक की धमकी देने लगे। संहार के स्थान पर मार्क्स की क्रांति की घोषणा भी होती रही। (2)

---

1. सुमित्रानंदन पंत : 'ताज' कविता, युगांत, पृ० 54
2. सुमित्रानंदन पंत: 'ग्राम्या', सुमित्रानन्दन पंत - ग्रन्थावली-2, पृ० 92

लेकिन यहाँ भी निराला ने अपने आंतरिक संयम से काम लिया । उनकी प्रगतिशील कृति 'बादल राग', जो प्रगतिवाद के आगमन से पहले ही (सन् 1924) लिखी गयी थी , किसी अमूर्त वायु'-सौन्दर्य पर चोट नहीं करती । ऊँची - ऊँची दर्प-स्फीत चोटियों पर ही चोट करने तथा कीचड़ भरे खेतों को मूसलधार वर्षा से भर देने का आह्वान ही कवि बादलों से करते हैं । (1) कवि जिस क्रांति का स्वप्न देखते हैं उससे छोटों की हानि न होगी, बड़ों की छाती पर ही वज्र गिरेगा, अल्पप्राणों में उस पृथ्वी का समान वितरण होगा और कोई भी जीने के अधिकार से वंचित नहीं रहेगा (2) । विप्लवी बादलों से हिलने पर छोटे पौधों का संकेत देखिए —

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार —
शस्य अपार , /हिल-हिल, /खिल-खिल, /
हाथ हिलाते, /तुझे बुलाते, / विप्लव-रव से
छोटे ही हैं शोभा पाते । '' (3)

निराला तथा पंत दोनों मानव के पुजारी हैं, लेकिन अलग-अलग मार्ग अपनाये जाते हैं, उनके आदर्शों में स्पष्ट अंतर है ।

हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी कृतियों में जो मानव-मुक्ति देखिए, उसकी प्रतिष्ठा देखिए सबसे अधिक आग्रह उठायी गयी थी ।

- -

1. निराला : 'बादल राग-6', निराला रचनावली-1, पृ0 123-124
2. वही, पृ0 123-124
3. बादल राग-6' निराला रचनावली-1, पृ0 123

पर परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति समाज में ही डूब गया, उसका स्वतंत्र अस्तित्व ही न रह गया। एक विशाल परिप्रेक्ष्य की, विश्व-दृष्टि की अवगति में असमर्थ न रहने के कारण यह नयी काव्य-धारा प्रतिक्रिया को प्राप्त करने के पहले ही दुर्बल बन पड़ी।(1) इसकी दुर्बल होने का एक कारण यह भी रहा कि इसका समाज अपनी मिट्टी से कम और विदेशों से अधिक था।

प्रगतिवादी कवियों का दृष्टिकोण वस्तुपरक ही अधिक रहा। आत्मचिन्तन पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में प्रयोगवादियों का एक अत्याधुनिक दल आत्मस्थ होने की कोशिश करता रहा। वस्तु जगत से हटकर आत्मजगत की ओर मुड़नेवाले ये कवि प्रयोगवादी कहलाये।

7.5.4 प्रयोगवाद तथा नयी कविता का जन्म :

आज़ादी की प्राप्ति से दलित-जनता के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनके सपने विफल हो रहे। महत्वाकांक्षायें व्यर्थ सिद्ध हुईं। शोषण और भी कठोर और असह्य हो गया। मनोविज्ञान के अभिनव उपकरणों से विचार-क्षेत्र आक्रान्त था। इससे जनता के सामने कई समस्यायें उठ खड़ी हुईं। विशेष रूप से फ्रायड के मनोविश्लेषण ने मानव-व्यक्तित्व को झकझोर कर दिया। इस सीमाहीन संघर्ष के काल में व्यक्ति-मन का कुंठित हो जाना स्वाभाविक था। अतः बाह्य जगत से बचते रहने की प्रवृत्ति प्रयोगवादियों तथा नये कवियों में पायी जाती है।

---

1. The basic weakness of the progressive poets in Hindi was that they continuousously kept using a narrow range of themes and symboth and never tried to gain a universal perspective." -Ashok Vajpayee, Indain poetry to[illegible] Vol-2, P-163

''आज के कवि का मन प्रत्येक समस्या को सामने पाकर कैसे किसी की गोद में मुँह छुपा लेना चाहता है, अपने भीतर ही आत्मरत होना चाहता है । '' (1)

प्रयोगवाद तथा नयी कविता के बीच के आठ वर्ष के काल में (1943-1951) मनुष्य को उसकी असली परिवेश में प्रतिष्ठित करने का काम किया गया । मानव-व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने में जोर दिया गया । वैयक्तिकता पर कवियों की रुचि बढ़ी । वैयक्तिकता के विकास हेतु रूढ़ियों को तोड़ना अनिवार्य-सा हो गया :

'' कहूँ कहाँ तोड़
झूठी रूढ़ियों को '' (2)

इस काल में विज्ञान का पर्याप्त विकास हुआ । कविता पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । छायावाद के 'अहं' का स्थान प्रयोगवाद में 'काम' ने ले लिया । 'यौन वर्जनाओं के पुंज' (3) मानव की मुक्त दशा में कवि का मन अधीर होना ही पार हो गया । यौन-वर्णन में कवि मुक्त ही नहीं निरंकुश भी हो गये ।

दो महायुद्धों के दुष्परिणाम, विज्ञान तथा मनोविज्ञान का प्रचार, उद्योग, टेक्नालजी आदि के क्षेत्र में नयी परिवर्तन सब ने

- -

1. नेमिचन्द्र जैन : 'तारसप्तक', वक्तव्य, पृ० 5
2. गिरिजाकुमार माथुर : तार सप्तक, पृ० 157
3. अज्ञेय : तार सप्तक, वक्तव्य, पृ० 278

मिलकर प्रयोगयुगीन मानव को नितांत बौद्धिक बना दिया । परंतु बुद्धि से प्रभावित कवि भी कभी-कभी हृदय के अधीन हो जाते हैं —

''चाह रहा है अब भी यह पागल दिल पीछे को मुड़ जाना,
एक बार फिर से दो नैनों के नीलम नभ में उड़ जाना ।''(1)

फिर भी वह रुकता नहीं ठिठकता, पीछे नहीं मुड़ता, आगे के अगम अंधकार को देखकर साहस नहीं खोता क्योंकि उसने मुसाफिरी का बाना धारण किया है । मन को मारकर भी वह आगे बढ़ता है, वह जीने को विवश है ।

'नयी कविता' बुद्धि तथा हृदय के समन्वय तथा संतुलन की दृष्टि लेकर आयी । उसमें मनुष्य को उसकी सारी विविधताओं के संदर्भ में देखने का सफल प्रयास नयी कविता में हुआ है । तारसप्तक के कवि गिरिजाकुमार माथुर जो नयी कविता के भी सफल कवियों में से हैं, 'नयी कविता' में प्रतिष्ठित मानव के बारे में कहते हैं :
''. . 'मनुष्य' को उसकी समस्त सामर्थ्य और विविधताओं के (जिन्हें परिमित निजी दुर्बलता कहते हैं) संदर्भ में ही पहचानने का यत्न अब किया गया है । x x इस मनुष्यता के अनंत पूर्ण आयामों और छोटे-छोटे आत्मिक पक्षों को उद्घाटित कर नूतन कविता ने उसे अधिक संवेद्य बनाने की चेष्टा की है, जिससे आदमी की नयी और अधिक समृद्ध परिभाषा हो सके ।'' (2)

- -

1. नेमिचन्द्र जैन : तारसप्तक, पृ० 22

2. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 232

'नयी कविता' के 'लघुमानव' में 'अहं' का यथेष्ट विकास हुआ है। इस 'कुंठित अहं' का उद्घाटन मुक्तिबोध की पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

''मेरी इस दयनीय दशा का अद्भुततम संसार
अर्थभाव उत्तुंग हुआ है मेरे मन में
मेरी धुरी पर उगता है
फूट कुकुरमुत्ता उन्मत्त । '' (1)

अपने को लघु मानने पर भी नया मानव शक्तिशाली है। ''नया मनुष्य अपने भाग्य में नहीं, मनुष्य और बुद्धि में विश्वास करता है। '' (2)

नयी कविता के काल से ही (सन् 1950 से) आधुनिकता का पूर्ण-समावेश हिन्दी काव्य में हुआ है। (3) इसका मुख्य कारण यही कि तब भारत दुनिया के अन्य राष्ट्रों के बहुत करीब आ चुका था, पश्चिमी संस्कृति तथा साहित्य का गहरा प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ रहा था। पूंजीवादी संस्कृतियों की निकटता का दुष्परिणाम यह हुआ कि अमुक्त देशों की आधुनिकता के बुरे पक्षों को भी हमें स्वीकार करना पड़ा। हिन्दी की साठोत्तरी कविता में हुई बीट-पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी आदि इसके प्रमाण हैं। ''...बीट अमरीकन अमरीकी तरुणों की अतृप्त वृत्ति, मैथुनिक या मानसिक आकुलता और

- -

1. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है, द्वि०सं० पृ० 8।
2. डॉ० रामधारीसिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 16
3. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 212

प्राप्त जीवन का एक आधिभौतिक प्रतिपादन है । ''(1) कहना न होगा कि इनका जीवन-दर्शन भारतीयता के विरुद्ध था, फिर भी इन पीढ़ियों के समर्थक भारत में भी कुछ हुए । पश्चिम के अतिसंपन्न विलासिता के परिवेश में जन्मी ये पीढ़ियाँ भारत की विभिन्न परिस्थिति में नकलमात्र सिद्ध हुईं । पशुओं के समान मुक्त जीवन बिताना, शारीरिक तृप्ति के लिए सामाजिक नियम तोड़ना, पाप-पुण्य को न मानना आदि ही इन पीढ़ियों के आदर्श थे । हमारे पुरुषार्थ चतुष्टय के केवल दो मूल्यों पर ही इन कवियों का ध्यान टिका रहा -अर्थ और काम। धर्म और मोक्ष केलिए अब कविता में स्थान ही न रह गया ।

अमेरिका तथा इंग्लैंड में भी आधुनिकता के नाम पर ऐसी नयी समाजघाती प्रवृत्तियों का प्रचार हुआ था । क्रुद्ध पीढ़ी का इंग्लैंड में इतना अधिक प्रचार इसलिए हुआ कि वहाँ के नवयुवक भी दायित्वों के अभाव में असफल हो रहे थे । उनके पूर्वजों ने सब कुछ कर लिया था, अपनी संतानों को करने को कुछ नहीं रखा । सुख-सुविधाएँ तो थीं, पर करने को काम नहीं था । ऐसी परिस्थिति में अपने पूर्वजों पर क्रुद्ध होना स्वाभाविक था । लेकिन ये क्रुद्धवादी भावुक और निर्विशिष्ट अमेरिका के युवकों की अपेक्षा कम समाजद्रोही सिद्ध हुए । (2)

सारे विश्व में इन पीढ़ियों की लहरें दौड़ीं, परंतु इनकी समाजघाती तत्वों को रूस, जापान जैसे राष्ट्रों ने अपने यहाँ पनपने नहीं दिया ।

----

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 232
2. रामधारीसिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 60

पूंजीवादी आधुनिकता का सम्बन्ध रखनेवाली '[illegible]' का रूप में दुबारा अमरीका की '[illegible]' के अनुकरण में हुआ था लेकिन वहाँ सरकार ने नियम द्वारा उसपर नियंत्रण लगा दिया। जापान ने भी सारी दुनिया से आधुनिकता को स्वीकार करने में ऐसी ही नीति अपनायी है। ''जापान ने औद्योगिक सभ्यता को पूरा-पूरा अपना लिया है, लेकिन साथ ही अपनी परंपरा की रीढ़ को टूटने नहीं दिया, अपनी संस्कृति के सार की रक्षा कर ली और अपनी जीवन-दृष्टि को कायम रखा।''(1)

अनुकरण देशों की आधुनिकता के अनुकरण में तत्पर होते हुए भी भारत ने अपनी परंपरा का निराकरण नहीं किया। आधुनिकता को अपनाने में भारतीयों ने विवेक का मार्ग अपनाया। बाहर से आने-वाली आधुनिकता को भारत की परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित करके ग्रहण करने में ही हमारा हित निहित है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का अभिमत इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है : '' ''हम जिस आधुनिकता को भारतीय वातावरण में देखने की इच्छा रखते हैं'', वह आधुनिकता विश्व-व्यापीन है, परंतु उसकी जड़ें और बुनियाद हमारे राष्ट्रीय परिवेश में रहनी चाहिए।'' (2)

जीवन में व्यक्ति और समाज के बीच बड़ी दूरी है, इस पर ध्यान दिये बिना हम बाहर की आधुनिकता को स्वीकार करते रहें तो शक नहीं कि हमारी संस्कृति का आधार टूट जायेगा। इस बात में मार्ग दर्शन लेकिन हमें पश्चिम से लाभ नहीं, पश्चिम को हमारे पास

---

1. रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 70
2. नंददुलारे वाजपेयी : रीति और शैली, पृ० 44

जाना चाहिए ।(1) आधुनिक पश्चिम के लोगों का परिवार तथा समाज में भी बिखराव बढ़ता जा रहा है । अव्यवस्थित, कुण्ठित जीवन का आश्रय कहीं-कहीं दिखाई दे रहा है । यूरोप से प्रकाशित नयी-नयी किताबें इस बात की सूचना देती हैं कि वे विशेष तौर पर हमारी संस्कृति की ओर आकृष्ट हैं ।(2) अपनी सभ्यता पर वे असंतुष्ट भी होती हैं । 'वस्तु' की (matter) उनके जीवन में जो स्थान था वह 'मन' (mind) लेता जा रहा है । (3)

7.6 आधुनिकता की मुख्य प्रवृत्तियाँ

आधुनिकता के निकट संपर्क में आने के कारण विश्व के विभिन्न साहित्यों में अब पुरानी मान्यताएँ बदली हैं, नयी धारणाएँ स्थापित की गयी हैं । इन धारणाओं का अपनी सात प्रवृत्तियों के अंतर्गत विवेचन किया है ।

सात प्रवृत्तियाँ ये हैं :—

1. मुक्ति का गीत
2. रूढ़ि- भंजन
3. वैज्ञानिक विकास
4. नयी नैतिकता
5. वस्तुनिष्ठ यथार्थ
6. नया मानवतावाद
7. वर्तमान पर भरोसा

---

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 223
2. Kathleene Raine : The Inner Journey of the poet, George Allent Unwin, London, First published 1982, P-190
3. " " P- 190

7.6.1. मुक्ति का बोध :

मुक्ति ही आधुनिकता का मूल-मंत्र है, यह मुक्ति-चेतना प्रत्येक-प्राणी में उसके आविर्भावकाल से लेकर अब तक काम करती रहती है । लेकिन मानव विकसित होने के कारण वैयक्तिक मुक्ति पर ही उसका ध्यान सीमित नहीं रहा बल्कि बढ़कर सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक निर्बन्धों पर भी वह आकृष्ट हो गया । यह अवधारणा वास्तव में मानव के स्वार्थ से उद्भूत है और इस स्वार्थ की पूर्ति, मुक्ति हेतु किये गये समस्त मानव-प्रयत्नों में शामिल हुई है । चाहे समाज की मुक्ति हो या राष्ट्र की अथवा विश्व की, सब के मूल में आत्मरक्षा का भाव छिपा हुआ है । (1)

आधुनिक-युग में मानव की मुक्ति-चेतना राष्ट्रीयता पर ही अधिक केन्द्रित रही क्योंकि अंग्रेजों के अधीन भारत की समस्त जातियों ने अपने को समान रूप से गुलाम पाया ।

मध्यकाल में सामंती शासन व्यवस्थाएँ – जाति, धर्म, आदि – मानव के मुक्तिपथ पर रोड़े अटकाती थीं तो आधुनिक-युग में विदेशी शासन तथा देशी जमींदारी दोनों मानव की प्रगति में बाधक सिद्ध हुए ।

भारतेंदु-काल में भौतिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति के प्रयास होते ही रहे, लेकिन तत्कालीन राष्ट्रीय-परिस्थिति में ऐसे सभी प्रयास दब गये।

- -

1. ''ये समस्त प्रयत्न मूलतः आत्मरक्षा के प्रयत्न हैं, अतः इन्हें स्वार्थ की सीमाओं में रखा जाता है । ''–विजयेन्द्रस्नातक, चिंतन के क्षण, पृ0 150

संपूर्ण देश की मुक्ति का ही प्राधान्य रहा । इस प्रकार हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति भारतेंदु-काल से दृष्टिगोचर होती है । (1) राष्ट्र की मुक्ति को केन्द्र में स्थापित करके मानव की अन्य मुक्तियों का संबंध उससे जोड़ा गया । कहा गया कि राष्ट्र की मुक्ति के लिए मानव को अंधविश्वासों से धार्मिक बंधनों से, प्राचीन रूढ़ियों से बाहर आना है । भारतेंदु-काल में नारी की मुक्ति पर विशेष ध्यान दिया गया ।(2) यह स्वस्थ और तन्दुरुस्त समाज की पुष्टि करने का आग्रह भी आधुनिकता की उपज है ।

द्विवेदी-युग में हिन्दू जाति की मुक्ति पर ही अधिक बल दिया जाता था । परंतु हिन्दुओं की मुक्ति की कामना में हिन्दू-राष्ट्र की स्थापना का मोह बिलकुल नहीं था ।(3) भारतीय गौरव का इतिहास प्रस्तुत करने के लिए हिंदुत्व का आलंब पर उस काल के कवियों ने भले ही जोर दिया हो, पर हिन्दू-राष्ट्र स्थापित करने के संकीर्ण विचारों से वे प्रेरित नहीं थे । यही नहीं राष्ट्रीयता से भी ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से शांति स्थापित करने के आग्रही कवियों की कमी भी उस काल में नहीं थी । इस ओर उदाहरण की, गुप्त जी आदि का उल्लेख किया जा सकता है, आगे चलकर दिनकर, नवीन, माखनलाल जैसे कृतिकार भी राष्ट्रीय-चेतना से हमारे साहित्य को समृद्ध बनाते रहे ।

- -

1. नंददुलारे वाजपेयी : रीति और शैली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1979, पृ० 53
2. Madan Gopal : The Bharatendu : His Life and Times, Sagar Publications, New Delhi, First published 1972
3. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, चिंतन के क्षण, पृ० 151-52 P- 70

यह क्रम छायावाद-काल में अधिक सशक्त रहा। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की अनेक कृतियाँ इसकी प्रमाण हैं। (1) इनमें प्रसाद सबसे आगे हैं। निराला ने 'वीणावादिनी वर दे' कविता में राष्ट्रीयता और भक्ति-भावना में कोई भिन्नता नहीं देखी है। (2) 'बादल राग' (3) 'जागो फिर एक बार-2' (4), 'शिवाजी का पत्र' (5) जैसी कविताओं में मातृभूमि की मुक्ति हेतु संघर्ष करनेवालों में स्फूर्ति भरनेवाली अनेक प्रकरण हैं। पंत की 'बापू' जैसी कविताएं इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। (6)

प्रगतिवादी युग में राष्ट्र से व्यक्ति का इतना घनिष्ट संबंध हुआ कि वह समाज का अभिन्न अंग बन गया। छायावादी - युग का महान मानव जब प्रगतिवाद में आकर व्यक्तित्वशून्य हो गया तो प्रगतिवादी लेखकों में फिर एक दल उठ खड़ा हुआ जिसने व्यक्ति की मुक्ति के लिए लड़ना आवश्यक समझा। इस दल के स्वरों में मुख्य ही 'तारसप्तक' में प्रकट हुए हैं। इनकी रचनाओं में व्यक्ति की मूर्ति फिर से दृढ़ हो गयी। व्यक्ति की मुक्ति ही नहीं भाषा की मुक्ति भी अपेक्षित समझी गयी।

- -

1. नंददुलारे वाजपेयी : रीति और शैली, पृ० 55
2. निराला रचनावली-1, पृ० 210-211
3. 'बादल राग'-6, निराला रचनावली-1, पृ० 123-134
4. निराला रचनावली-1, पृ० 141-143
5. निराला रचनावली-1, पृ० 149-158
6. सुमित्रानंदन पंत : 'बापू' ग्रंथावली, पृ० 95

''हम तो न कुछ कर पाये देवता की, हम कुछ ढालेंगे
जीवन की भट्टी में भरकर, जी-जाता सब बना देंगे।''(1)

गिरिजाकुमार माथुर की 'पृथ्वी कल्प' कविता में युद्ध की विभीषिकाओं से मानवता की रक्षा करने का मार्ग ढूंढा गया है। उनकी चिंता यही कि अब संशय, भय, घृणा, युद्धलिप्सा आदि से संसार को मुक्ति कैसे मिले :

''धरती की दुर्बलता
दृष्टि रुग्णता है,
संशय, भय, घृणा
युद्ध लिप्सा रोग है।'' (2)

अंधभक्ति या अंधविश्वासों से भी मुक्ति की कामना 'तारसप्तक' के कवियों में पायी जाती है। (3)

राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता से प्रेरित कवि भी तारसप्तक(4) में स्थान पा सके हैं। रामविलास शर्मा की 'सत्यं', 'शिवं सुंदरम्' 'विश्व शांति'(5) 'मुक्ति की पुण्यभूमि'(6), 'हत्यारों का राज' (7) आदि कविताओं में व्यक्ति, देश तथा विश्व की मुक्ति पर बल दिया गया है। दुर्भिक्ष से पीड़ित बंगाल को बचाने का आह्वान है :

---

1. भारतभूषण अग्रवाल : तारसप्तक, ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वि०सं०1966 पृ० 91
2. गिरिजाकुमार माथुर : तारसप्तक, पृ० 164
3. प्रभाकर माचवे, तारसप्तक, पृ० 193
4. तारसप्तक, पृ० 254
5. वही, पृ० 262
6. वही, पृ० 249
7. वही, पृ० 256

''साथी, यह पत्थर-सा भार उठाओ।
दुर्भिक्ष महामारी है, युद्ध, लुटेरे हैं,
साथी यह अपना प्यारा देश बचाओ।
हे नौजवान भारत के।
सामने शत्रु की आज चुनौती है,
सब मिलकर भार उठाओ। '' (1)

'दूसरा सप्तक' (सन् 1951) का प्रकाशन स्वतंत्र भारत में हुआ। इसलिए इसके कवि हरिनारायण व्यास का 'बाज पंछी' पिंजर तोड़ नया विश्वास लेकर मुक्त आकाश की ओर बढ़ते उड़ता जा रहा है :

''बाजपंछी तोड़ पिंजर
छोड़ने निज जीर्ण कोटर
वायुमंडल चीरता उड़ जा रहा है ले नया विश्वास
दृष्टि में धैर्य से उन्नत नया आकाश। '' (2)

पर 'तीसरा सप्तक' (सन् 1959) के कवि कुँवर नारायण स्वाधीन भारत में पराधीनता का अनुभव कर रहे हैं। वे अपने को धूलों के ढेर में सदियों की कुंठाओं से ग्रस्त पाते हैं। चारों ओर की दीवारें उठी हैं उन्हें मटियामेट कर देने की जी करता है :

''ढकते घूर रहीं मुझ को सब दीवारें
जी करता उनपर जा यह मस्तक दे मारूँ,
मिलाकर धूलों से पत्थर की बातें हैं...
मेरी जन्मोती की दीवारें मिलाता हूँ। ''(3)

---

1. तारसप्तक, पृ0 249
2. दूसरा सप्तक, पृ0 57
3. तीसरा सप्तक, ज्ञानपीठ प्रकाशन, तीसरा संस्करण 1967, पृ0155

साठ के बाद की नई पीढ़ियाँ मुक्ति की खोज करते करते नारियों के शरीर में नशीले पदार्थों के सेवन में, कामुकता के प्रदर्शन में इसका उत्तर ढूंढती हैं।(1) अकवितावादी भी ''यौन-विकृति और विलासी-प्रवृत्ति को ही विशेष रूप से देखते हैं।''(2) ये विकृत संबंधों और स्वीकृत मान्यताओं में कोई भेद नहीं मानते।(3) अस्वीकृत पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी, बीट पीढ़ी सब अपने ऊपर समाज के बंधनों को अनावश्यक समझती हैं, इसलिए ये एक प्रकार से विद्रोही स्वभाव लेकर चलती हैं। किंतु नवगीत ने आधुनिकता को अपनाते समय विवेक से काम लिया है। नवगीतकार आधुनिकता को अंधानुकरण पर आधारित फैशन नहीं मानते।(4) आधुनिकता के नाम पर परंपराओं की अवहेलना किये बिना ही नवगीतकार आत्मा की मुक्ति के लिए छटपटाते हैं। अमरनाथ श्रीवास्तव अपने को अब भी पहले जैसे पराधीन मानते हैं:

''रोज के कोड़े उस
पड़ते हैं अब भी हैं
खोल दूँ उखाड़कर
भागी चुकती हैं।'' (5)

'सीधा सफ़र' के कवि रमेश भारती अंधकार के चक्रव्यूह में हैं। उसे तोड़ने में वे अपने को असमर्थ पाते हैं:

- -

1. डॉ० शिवप्रसाद सिंह: आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ० 244.
2. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता तीन दशक, पृ0 200
3. श्याम परमार : अकविता और कला संदर्भ, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1968, पृ0 13
4. शंभुनाथसिंह : नवगीत दशक : 2 (भूमिका) पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 1983, पृ08
5. अमरनाथ श्रीवास्तव : नवगीत दशक : 2, पृ0 139

''अँधेरा
मिटनेवाला नहीं है
और मैं कवि समय के चक्रव्यूह को
तोड़कर
युद्ध करने में असमर्थ हूँ । '' (1)

श्रीराम वर्मा अधिक आत्मविश्वास रखते हैं । बीटनिक कवि की भाँति वह कुण्ठित नहीं बनता :

''मेरा नाम अर्जुन नहीं था ;
मेरी माँ सुभद्रा नहीं थी
और मैं भी अभिमन्यु नहीं हूँ ।

फिर यदि मैंने अपनी माँ के गर्भ में ही वीरता-भरी रक्तमयी कहानियाँ नहीं सुनीं ; तो मेरा क्या दोष ?

यदि इतने पर भी मुझ अबोध को
दुर्गम चक्रव्यूह में फँसा दिया गया है
तो, हे मेरे देश के पराजित भविष्य ।
मैं तुम से अनंत दिव्य ऊर्जाओं की
शक्ति लेकर कहता हूँ —
कि मैं इस दुर्गम को भी भेदूँगा ;
पार करूँगा । '' (2)

---

1. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक , पृ0 117
2. श्रीराम वर्मा : चौथा सप्तक , पृ0 229

7.6.8 रूढ़ि - भंजन :

रूढ़ि - भंजन की परंपरा भंजन के अर्थ में ही हिन्दी के अधिकांश लेखकों ने स्वीकार किया है । यह अत्यंत भ्रामक धारणा है । परंपरा का संबंध अतीत से है तो रूढ़ि का अंधविश्वासों पर टिके हुए मूल-मूल्यों से है । प्राचीन रूढ़ियों को परंपरा कहना परंपरा के महान अंशों की अवहेलना करना है ।

पराधीन भारत में आत्मविश्वास बढ़ाने तथा सारे देश में राष्ट्रीय-चेतना जगाने के लिए हमारे लेखक परंपरा का आश्रय ही अधिक लेते थे । दीन-दरिद्र-परतंत्र भारत का दूसरा कोई आश्रय न था । भारतीय समाज के सामने आत्म-सुरक्षा का प्रश्न था । ''इसी आत्म-सुरक्षा के लिए हिन्दू समाज ने यथास्थिति अपरिवर्तनशीलता और परंपराओं के प्रति अन्धी श्रद्धा भावना का सहारा लिया था ।''(1) इस कारण से साहित्य में परंपरा बहुत अधिक आग्रह के साथ स्वीकार की गयी थी । लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब विदेशियों का भय न रहा, विदेशी संस्कृति से अपनी संस्कृति की रक्षा लेने का प्रयास आवश्यक न रहा तो हमारा परंपरा पर जो कड़ा विश्वास था, धीरे-धीरे ढीला पड़ता गया । रूढ़ि परंपरा का तिरस्कार मानकर पाश्चात्य सभ्यता के भारतीय समर्थकों द्वारा यह घोषणा भी की गयी कि भारत में आधुनिकता के आने के साथ-साथ परंपरा का भंजन भी हुआ । लेकिन बारीकी से इस पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि हम भारतीयों की परंपरा के प्रति जो आसक्ति था,

---

1. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 220

उसमें से 'भक्ति' का ही लोप हो गया है, परंपरा का पूर्ण तिरस्कार संभव नहीं हुआ है ।

पराधीन-भारत में रूढ़ि - भंजन शब्द अधिक सार्थक लगता है क्योंकि उस परिस्थिति में अपनी परंपरा से विद्रोह होने का अवसर ही न उठता था । उस काल के साहित्य में रूढ़ियों का ही भंजन हुआ है, परंपरा का नहीं ।

रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों से विद्रोह करनेवाले, सनातन धर्म के अविचारित स्वभाव की आलोचना करनेवाले प्रथम क्रांतिकारी कलावान कबीर ही हैं । समाज की कुरीतियों से बचने तथा धार्मिक रूढ़ियों पर प्रहार करने में कबीर भी पीछे न रहे । यद्यपि कबीर का जन्म तुलसी से पहले हुआ तो भी रूढ़ियाँ तोड़ने में कबीर तुलसी से आगे रहे । तुलसी भी रूढ़ियों की रक्षा चाहते थे ।(1) रीतिकाल में समाज की चिंता ही कवियों को बहुत कम रही, विलासिता में डूबे रहने के कारण रूढ़ियों की ओर उनका ध्यान न गया । परंतु भारतेंदु-काल में पूर्व कालों की अपेक्षा समाज-सुधार में अत्यधिक ध्यान दिया गया और अंधविश्वासों, अनाचारों और रूढ़ियों से समाज की रक्षा करने का प्रारम्भिक प्रयत्न हुआ । अंग्रेज़ी शिक्षा इसकी प्रेरक शक्ति रही । पुरुष की दासी नारी को, अभिशाप-जीवन की अधिकारिणी विधवा को नया, स्वातंत्र्य-सा जीवन देने हेतु रूढ़ियाँ तोड़ना आवश्यक था । भारतेंदु, [illegible], प्रतापनारायण मिश्र जैसे कवि आगे आये । धार्मिक रूढ़ियों से भी उनका घोर-विरोध था । प्रबल रूप से न सही, परोक्ष रूप से द्विवेदी - काल में भी यह प्रक्रिया चलती रही । 'साकेत', 'यशोधरा' आदि काव्यों में उपेक्षिता नारियाँ सम्मान पाती हैं । 'प्रियप्रवास' की राधा श्रीकृष्ण की ही भाँति समाज सेविका है ।

---

1. गोस्वामी तुलसीदास : श्रीराम चरित मानस, टीकाकार - पं० देव-नारायण द्विवेदी, श्री गंगा पुस्तकालय, बनारस, प्र० सं० 1947 पृ० 12

छायावाद काल में रूढ़ियों का विरोध अधिक प्रबल हो गया। पीड़ित मानवता पर, नारी तथा विधवा की समस्याओं पर सभी सहानुभूति लेखकों ने प्रदर्शित की। केवल कविता में ही नहीं नाटकों कहानियों तथा निबंधों द्वारा भी मानव-जीवन की विमुक्ति की सतत चेष्टा होती रही। प्रसाद, पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्र, तथा अन्यान्य लेखकों की रचनाएँ इसके प्रमाण हैं। निराला तो जीवन भर रूढ़ियों से जूझते ही रहे। उनकी कविता तो मुक्ति की छटपटाहटों से भरी है, उनके निबंधों के स्वर भी इस दिशा में अत्यंत सशक्त हैं।

रूढ़ि-भंजन प्रगतिवादियों का एक मुख्य नारा ही था। सन् 1938 में कलकत्ता के आशुतोष मेमोरियल हाल में आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के दूसरे अधिवेशन में रविबाबू का जो निबंध पढ़ा गया उसमें स्पष्ट रूप से 'पुरातनपंथी प्रवृत्तियों का विरोध' करने का आह्वान था। (1) शोषणहीन समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए प्रगतिवादियों ने रूढ़ि-भंजन अनिवार्य समझा।

''जब परंपरा रूढ़ हो जाती है, वह निर्जीव हो जाती है, तब उसे ढोना वैसा ही है जैसा कि मरे हुए बच्चे को बंदरिया द्वारा छाती से चिपकाए रखना।'' (2)

'अज्ञेय परंपरा के समर्थक हैं। किताबाति पोथी से (आधुनिक कवि से) उनका अनुरोध यही कि कभी भी अपनी जड़ों को मत भूलना। पोथी को भी यही है, पुस्तिका को।''

---

1. डॉ0 शीतलप्रसाद अवस्थी, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1974 पृ0 32
2. अज्ञेय : आधुनिक साहित्य: पृ0 22

''मिट्टी के नीचे
कुलबुलाती अंधकार में
बीज की जड़ छिपनाम की :
बोधि का ज्ञान ? बीज ?
बीज ? व्यथा ?
बोधि का बीज ? प्रश्न ?
चेतना ?
मिट्टी के नीचे छिपनाम की
बोधि की जड़ :
वृष्टि रक्षित
आत्मप्रस्तुता '' (1)

7.6.3. नई नैतिकता :

आधुनिकता का प्रचार और बढ़ने पर नई नैतिकता की कल्पना भी की गयी, जो ईश्वरपरक न रहकर मानवपरक रही। वैज्ञानिक प्रगति ने इस नयी नैतिकता की स्थापना में बहुत अधिक सहयोग दिया। आमदनी बढ़ गयी और विज्ञान के अनुग्रह से गर्भ निरोधक साधनों का प्रचार भी होता गया तो ममता या वात्सल्य वैदिक समाज में अधिक स्थान न रहा।

वस्तुतः नैतिकता या अनैतिकता की कोई निश्चित व्याख्या नहीं है। देश कालानुसार इसकी मान्यताओं में परिवर्तन होता है। ''जिस कृति को एक देश अनैतिक कहता है, दूसरा देश उसकी मान्यता के आधार

1. अज्ञेय : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय', संपा0 विद्यानिवास मिश्र : पृ0 46

पर उसे कुत्सित और त्याज्य मानता है । ऐसी स्थिति में रुचि - वैचित्र्य से कोई निर्णय लेना और किसी कृति को ग्राह्य या त्याज्य सिद्ध करना बड़ा कठिन है । वस्तुतः नैतिकता के सभी मानदंड साहित्य पर ज्यों-के-त्यों चरितार्थ नहीं होते । '' (1)

नग्नता भी अपने - आप में बुरी चीज़ नहीं है । संसार की अधिकांश श्रेष्ठ कलाकृतियाँ किसी-न-किसी रूप में नग्नता का प्रदर्शन करती हैं । लेकिन उन कलाकारों ने इतनी कुशलता से काम किया है कि आस्वादक का ध्यान उनकी नग्नता पर नहीं टिकता, उसे अश्लीलता का बोध नहीं होता, उसका ध्यान उस कलाकृति की समग्रता पर ही अधिक रमता है, कलाकार की अभिव्यक्ति-कुशलता ही अपनी कृति को ऐसा श्रेष्ठ सौंदर्य प्रदान करती है । कवि कलाकार नग्नता प्रदर्शन से या यौन-वर्णनों से स्वयम् असंपृक्त भी नहीं रह सकते क्योंकि ये सब जीवन के अभिन्न अंग हैं । 'आत्मनिर्वासन करते समय कवि अश्लीलता से अछूता नहीं रह सकता' । (2)

लेकिन जब नग्नता के लिए नग्नता का प्रदर्शन और अनैतिक बातों का अधिक साहित्य में होने लगा तो अभिव्यंजना का सौंदर्य मिटता गया और कलात्मक स्तर भी गिरता गया । साहित्य 'कमर्शियल पॉर्नोग्राफी' का रूप धारण कर गया ।

- -

1. देवेन्द्र इस्सर : चिंतन के क्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6 जून 1966, पृ0 28

2. Huxley Aldous: Literature & Science, Chatto & Windus, London, 1963, P-22.

नैतिकता के टूटने का एक कारण आर्थिक निःसहायता भी कहा गया है । ''इस निःसहायता का एक बड़ा परिणाम होता है नैतिक मान्यताओं का तड़तड़ाकर टूटना । 'मान मूल्य' पर मानवीय मूल्यों के विघटन का दृश्य दिखाई दिया । ''(1) इस आर्थिक कठिनाई के कारण असुरक्षा भी बढ़ी है, क्षोभ और भय का वातावरण उपस्थित हुआ है, पुराने मूल्य एकदम टूट गये हैं । ब्राह्मण जूता गांठता है, बेटा बाप की हत्या करता है, कुल-नारी का चरित्र बेचकर पति भूख मिटाता है, बूढ़ी खाटों पर स्त्री-पुरुष क्रीड़ा-रत होते हैं । ऐसी अनैतिकता के प्रचार में परोक्ष रूप से विज्ञान तथा मनोविज्ञान का हाथ भी रहा है ।

एक ओर विज्ञान ने मान्यताओं की संख्या कम कर दी तो दूसरी ओर जनसंख्या की वृद्धि को रोकने हेतु गर्भनिरोधक सामग्रियों का निर्माण भी प्रचुर मात्रा में करता रहा । नारी-शिक्षा ने युवक-युवतियों को अधिक निकट स्वतंत्र परिवेश में मिलने का वातावरण भी उपस्थित किया । नारियाँ आत्मनिर्भर होती जा रही थीं, फलतः उन पर पुरुषों का नियंत्रण ढीला होता गया । आबादी रोकने हेतु जिन सामग्रियों का निर्माण विज्ञान ने किया, उनका अनैतिक क्षेत्रों में अधिक उपयोग किया गया । विज्ञान की आड़ में युवक-युवतियों का चरित्र कलंकित होता गया ।

पाश्चात्य सभ्यता से प्रेरित आधुनिकाएँ अबाध-कर्म को श्रेष्ठ धर्म समझ बैठीं । वैवाहिक-बंधन की दृढ़ता नष्ट हो गयी । दाम्पत्य-जीवन की अनिवार्यता संदिग्ध होने लगी ।

- -

1. मदन वात्स्यायन, निबन्ध-3-4, पृ० 9।

इन सब का परिणाम यह हुआ कि नारी की पवित्रता नष्ट हो गयी और सामाजिक जीवन विभिन्न प्रकार के समस्याओं से आक्रांत हो गया । हमारे मनीषियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा । यौन-वर्णन में किसी प्रकार का नियंत्रण उनको अभीष्ट न हुआ ।

भारतेंदु युग में यौन संबंधी बातों में नियंत्रण की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है वह रीतिकालीन उच्छृंखलता की प्रतिक्रिया है । भेद समझते थे यह है उधर उठाकर नारी को उसी स्थान पर बिठाने का परिवर्तन इस काल में शुरू हुआ ।(1) द्विवेदी युग में यह आदर्श संकल्प-ना हो गया, नीति - अनीति का इतना अधिक ध्यान रखा गया कि कवि - कलाकारों की आत्माभिव्यंजना में भी कठिनाई महसूस होने लगी । प्रसंगानुकूल प्रेम या काम की बात करने में भी कवि-मन झिझकने लगे । श्रृंगार-वर्णन में लगाये गये इस नियंत्रण की प्रतिक्रिया छायावाद-काल में हुई । मुक्त-श्रृंगार-वर्णन पर जोर दिया गया, लेकिन द्विवेदी जी का व्यक्ति प्रभाव तब भी छायावादी कवियों पर इतना अधिक जमा हुआ था कि मन की बातों को कहने में वे एक प्रकार के संकोच का अनुभव करते थे । अपनी रचनाओं में वर्णित श्रृंगार या प्रेम को अपने ही जीवन का अंश स्वीकार करने में उनको आपत्ति थी । इसलिए वे लौकिक अनुभूतियों को अलौकिक धरातल पर उतारते रहे । इसलिए छायावादी कवियों का श्रृंगार भी पूर्ण रूप से मुक्त स्वच्छन्द का न हुआ । ऐसे प्रसंगों में एक प्रकार की पवित्रता का ध्यान हमेशा रखा जाता था । परंतु दूसरा

- -

1. "Harischandra, it may be mentioned, wasked for the emancipation of the people. He advocated women's education and supported Mary Carpenter's campaign for the education of Indian women." Madan Gopal : The Bharatendu : His life and Times, Sagar Publications, New Dehhi, First Edition 1972, P-70

महायुद्ध के छिड़ने पर परिस्थिति बदली । पुरानी मान्यताएँ ढह गयीं, नैतिक स्तर गिर गया, फ्रायड के मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर यौन संबंधों में भारी परिवर्तन आ गया । 'तारसप्तक' में अज्ञेय ने तरुण कवियों को यौन वर्जनाओं की परिधि लाँघकर बाहर आने का आह्वान किया । कवि ही नहीं कवयित्रियाँ भी लोक-लाज की परवाह किये बिना यौन-वर्णन में निरत हुईं । शान्ता सिंहा कहती हैं —

''आज मुझ मेहमान तुम ,
रात के इस पहर तो मैं
एक बार बस एक बार ,
अपने तन की छाप छोड़ जाती मुझ पर । '' (1)

तरुण कवियों का मन यौन-कल्पनाओं में इतना अधिक रम गया कि काम-भावना की परिधि में साहित्य संकुचित हो गया ।

प्रयोगवादियों का यौन-दृष्टिकोण 'नयी कविता' में आकर अधिक परिवर्तित हुआ । भद्दी, कुरूप, विकृत, अश्लील बातों को नये कवियों ने भी अछूता न माना लेकिन प्रयोगवादियों से बढ़कर नये कवियों में संतुलन तथा संयम की दृष्टि है, जो जीवन का तटस्थ चित्रण करने में सहायक सिद्ध हुई । धूप और छाया, प्रकाश और अंधकार को जीवन की पूर्णता के लिए अनिवार्य माननेवाले ये कवि इतने तटस्थ हैं कि इन्होंने किसी गुटबंदी या दलबंदी में पड़ना या अपने को किसी वाद के घेरे में बद्ध रखना असंभव समझा । इसलिए 'अति' को छूने का आग्रह इन नये कवियों में बहुत कम दिखाई देता है ।

- -

1. शान्तासिंहा : उद्धृत : नयासप्तक , संपा० रमेश गुप्त और सविता चतुर्वेदी , पृ० ३३

सन् साठ के बाद की कविता में पाश्चात्य प्रभाव ज़ोरों से हुआ।[1] पूँजीवादी देशों की आधुनिकता को सच्ची आधुनिकता मानकर नवकवियों ने अमेरिका के 'बीटनिक', इंग्लैंड के 'ऐंग्री यंगमैन' और जापान के 'सन् ट्राइब' का अंधानुकरण किया। 'बीटपीढ़ी', 'भूखी पीढ़ी', 'क्रुद्ध पीढ़ी', 'अकविता', 'अस्वीकृत कविता' आदि नयी प्रवृत्तियों का जन्म इस अंधानुकरण का परिणाम था। कलकत्ता ही इनका केन्द्र था। जीवन के प्रति अनास्था प्रकट करनेवाले इन भोगवादियों को भविष्य पर कोई विश्वास नहीं था।[2] न्यूक्लियर अणुयुग का अचानक आगमन ही इसका मुख्य कारण बताया जाता है।[3] भविष्य का अस्तित्व ही संदेहास्पद हो गया तो ऐसे जीवन के प्रति आस्था क्यों?

आधुनिक युग की अराजकता का प्रतिनिधित्व करनेवाले इन प्रवृत्तियों को हम, जापान जैसे संपन्न राष्ट्र की आधुनिक युग की मूल-चेतना से प्रेरित मानने को तैयार नहीं हैं। भारत में भी बाहर से आनेवाली ऐसी आधुनिकता का पूर्ण रूप से स्वागत न हुआ। फिर भी हमारे कुछ प्रतिभासंपन्न कवि भी इसके प्रभाव से अछूते न रहे। स्वर्गीय धूमिल की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

''हर लड़की तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है
औरतें
योनि की सफलता के बाद –

- -

1. डॉ० विनय द्विवेदी : नयी कविता : प्रेरणा एवं उपलब्धि, प्रगति प्रकाशन, आगरा-3, प्र०सं० 1979, पृ०57
2. Sisir Kumar Ghosh : Modern & Otherwise, P-179
3. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 234

गंगा का गीत गा रही हैं,
मासिक धर्म रुकने की दुखागिन औरतें
सीवर की पाइपों का रस
नयी सिरे से पीनी चमकी है । '' (1)

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में भी बीट-पीढ़ी का प्रभाव लक्षित है :

''अकेलेपन का धुआं रेंग रहा है
और उफन रहा है आत्मरति का फेन
कोई हैं हरयाली
और शिराओं पर कामेच्छा की रही रात
मौसी रातों में फेर । '' (2)

रति विकृति से ग्रसित तथा ऐन्द्रिय भटकाव से पीड़ित और भी कवि हैं जो उन विकृतियों के पीछे छटपटाते दर्शन तथा चिंतन का आभास कराते हैं

''हम लोग सबका यह ईश्वरी से दीर्घ
अन्तःकरण से इस लिंग-प्रधान युग में
मनोविज्ञान [illegible] पाते रहे हैं
मस्तिष्कों के निचले हिस्से में धूल-समान
बाकी हर जगह श्मशान । '' (3)

- -

1. धूमिल : उद्धृत : समकालीन कविता का व्याकरण, परमानन्द श्रीवास्तव, राधा प्रकाशन, दिल्ली - प्र०सं० 1980, पृ० 12
2. जगदीश चतुर्वेदी : उद्धृत : नया कवि , संपा० रामेश्वर गुप्त और जगदीश चतुर्वेदी , पृ० 30
3. उद्धृत डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970, पृ० 245

यह अज्ञेय जी के आह्वान का ही फल था,(1) लेकिन स्पष्ट है कि इन कवियों का भारतीय जन-जीवन से नहीं पाश्चात्य जीवन से अधिक संबंध है। दुःख और पीड़ा में ही अधिकतर भारतीयों का जीवन कटता है। वस्तुस्थिति से ऊब कर मनोविकृति की कामना करने का अवसर यहाँ प्रायः है नहीं। यह भी हम मानने को तैयार नहीं कि विकास पूर्ण हो चुका है। जो भी हो, अधुनातन कवि ने यह स्वीकार करने में संकोच नहीं किया है कि विकास-पूर्व मनोविकृति लेकर आया है।

यह बात माननी ही पड़ेगी कि आज का मानव विभिन्न संघर्षों का सामना कर रहा है। उसका जीवन अपेक्षाकृत अधिक संकीर्ण है। शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से वह थका हुआ है। लेकिन इन संघर्षों से होकर रास्ता ढूँढ निकालना है। मनुष्य जीवन की सार्थकता उसी में है। आधुनिकता का आदर्श हम सबके सामने आएगा। आधुनिक मानव को अधिक सजगता से काम लेना है।(2) सामाजिक जीवन के प्रति आस्थावान बनना भी है। संतोष की बात है कि कुछ नये कवि आशावादी दृष्टिकोण लेकर कार्य-क्षेत्र में डटे हैं। गिरिजाकुमार-माथुर, रघुवीर सहाय आदि की रचनाओं में आशा भरे स्वर मुखर हैं। ऐसा लगता है कवि राजकुमार कुंभज काँटों भरे रास्ते को खुला चमत्कार से पार करने को कटिबद्ध हैं —

'' और काँटों से भरे रास्ते को
खुले चमत्कार पार करो। '' (3)

- -

1. यौन वर्जनाओं से मुक्त होने का आह्वान, 'तारसप्तक' पृ 278

2. "To be modern means to be more aware, not less".
— Sisir Kumar Ghosh, Modern and otherwise, D.K.Publishing House, Delhi, 1974, P.179

3. राजकुमार कुंभज, [illegible], पृ० 85

7.6.4 वैज्ञानिक विकास :

भारतीय परंपरा वस्तुतः विज्ञान से विलग नहीं चलती। वैज्ञानिकता या भौतिकता से घृणा नहीं भौतिकता के प्रति ही हमारी परंपरा थोड़ी उदासीन रही। विज्ञान की प्रगति से दुनिया के अन्य धर्मों की अपेक्षा हिन्दू धर्म पर ही कम धक्का लगा। (1) जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने में हमारे पूर्वजों को कोई विशेष आपत्ति न थी। विरासत में मिली इस सहज दृष्टि के कारण आधुनिकता को अपनाने में भी हम पिछड़े न रहे।

विज्ञान का विकास सूचित करता है कि सारे आधुनिक आविष्कार भारतीय चिंतन-पद्धति के प्रतिकूल नहीं अनुकूल दिशा में ही हो रहे हैं। वैज्ञानिकों में भी यह धारणा बलवती होती जा रही है कि विश्व का मूल आधार वस्तु (matter) नहीं मन (mind) है। वस्तु के मूल रूप पर विचार प्रकट करते हुए कैथलीन रेन ने लिखा है -

"The pursuit of 'matter' in to its ultimate origins has resulted only in the discovery that what to the senses seems so solid is in reality something intangible, one might say immaterial. The end of the history of scientific investigation would seem to be a dematerialization of matter itself." (2)

---

1. "Strangely, the Indian tradition is not exactly antiscientific but anti-materialistic. As many have observed, among the world religious Hinduism has been least affected by the advance of science-" Sisir Kumar Ghosh: Modern and otherwise, p-282.
2. Kathleene Raine: The inner journey of the poet, George Allen & Unwin, London, first Edition, 1982, P-25

कहना न होगा कि आधुनिकता की रीढ़ विज्ञान से निर्मित है । यह विज्ञान न तो कठिन है और न दुर्गम । [1] आल्डस हक्सली का भी यही विचार है । [2] यह वैज्ञानिक धरातल पर मौलिकतापेक्ष होता है । इस प्रकार के सत्य तथ्य की मर्यादित बातों में ही अमर बना रहें, विवेक के साथ अगर उसका उपभोग करता रहें तो ठीक नहीं कि विज्ञान वरदान ही सिद्ध होगा । आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं का यह संघर्ष केवल भारत में ही मिलने की संभावना है । भारतीय धर्म की परिरक्षा करते हुए भी वैज्ञानिक आविष्कारों को स्वीकार करने में हम सफल हुए हैं ।

ऐसा मानसिक दृष्टिकोण अपनाने से अगर विज्ञान बेकार हो जाएगा तो विनाशीकरण तथा विकृतीकरण का प्रश्न ही न उठेगा । मानव के अस्तित्ववादी भावप्रवण पर धक्का नहीं लगेगा । समाज के सहीकारणी दृष्टिकोण को आधुनिक परिस्थिति के अनुकूल ढालकर विज्ञान से उसका संबंध स्थापित करने में यह विनाशीकरण और विकृतीकरण से भिन्न है । [illegible] गांव [illegible] में नगर बने, पावन तीर्थों में होटल निर्मित किये गये, कभी पवित्र [illegible] का रूप धारण कर गये तो विनाशीकरण तथा विकृतीकरण की आपत्ति उठी । मानव के अस्तित्ववादी भावप्रवण का हनन करनेवाली आधुनिकता का रूप बदलता जा रहा है । वैज्ञानिक विकास की सहायता से प्रकृति का नाश करने के विरुद्ध आवाज़ उठायी जा रही है । विज्ञान को आधुनिकता की रीढ़ कहा जाता था । पर अब विज्ञान से प्रकृति की रक्षा करने में ही आधुनिकता बनी हुई है ।

- -

1. रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिक बोध, पृ0 56
2. Huxley Aldous : Literature & Science, P-13.

लेकिन हिन्दी साहित्य में अब भी वैज्ञानिकता का प्रवेश मंदगति से हो रहा है। कवि-गण यह कह गये से मालूम पड़ते हैं कि कविता और विज्ञान की दृष्टि में मौलिक अंतर है। बुद्धि से बढ़कर किसी शक्ति को विज्ञान नहीं मानता।(1) वैज्ञानिक और कवि में अंतर दिखाते हुए दिनकर लिखते हैं —"वैज्ञानिक शिल्प कारीगर मिस्त्री और मजदूर के समान होते हैं। कवि का साधन विधाता के साधन से मिलता जुलता है।"(2) कवि के साधन में ही नहीं भाषा में भी बड़ा अंतर रहता है। वैज्ञानिक की भाषा में प्रत्येक शब्द का एक ही अर्थ रहता है। जबकि कविता के शब्दों से विभिन्न अर्थ व्यंजित होते हैं।(3)

विज्ञान और टैक्नालॉजी के प्रभाव से यद्यपि साहित्य में बड़ा परिवर्तन हुआ है तो भी वह बाह्यरूपों तक ही सीमित रहता है। नये काव्य की विषयवस्तु और पुराने काव्य की विषय-वस्तु में कोई विशेष अंतर नहीं है, अंतर यही कि पोप जैसे पुराने लेखकों ने शब्दों को लेकर कविता की तो आज के कवियों ने शब्दविचार को लेकर।(4) विज्ञान के इस बाह्य-प्रभाव से हम आधुनिक साहित्य को बचा नहीं सकते, क्योंकि विज्ञान आज के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

. . . .

1. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली, पृ० 98
2. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पृ० 98
3. "When the literary artist undertakes to give a purer sense to the words of his tribe, he does so with the express purpose of creating a language capable of conveying, not the single meaning of some particular science but the multiple significance of human experience, on its most private as well as on its more public levels. Huxley Aldous : Literature & Science, P-14.
4. Huxley Aldous : Literature and Science, P-93

डारविन ने जब अपने वैज्ञानिक सिद्धान्तों से यह प्रमाणित किया कि आधुनिक मानव बंदर की संतान है, तब 'मार्क्स' ने यह घोषित किया कि धर्म, कला, अध्यात्म आदि के क्षेत्र में मानव से निरपेक्ष किये गये मूल्य स्वीकार नहीं किये जा सकते, सबों पर मानव की सर्वोपरिता का स्थान रहता है, फ्रायड ने अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों के आधार पर मानव की अज्ञात वासनाओं का बखान किया । नियमों तथा निषेधों को तोड़ने में मानव को सहारा मिला । अस्तित्ववाद आधुनिकता से अछूता न रहा । निराला ने लिखा : ''कलाकार ईश्वर नास्तिक और आस्तिक दोनों स्वतंत्र नहीं ''.. जो कलाकार है, वह आस्तिकता और भक्ति की कमाई खाता है । वह नास्तिकता की भी कमाई खाता है । ''(1) आस्तिकता की नींव हिल गयी, मार्क्स से बढ़कर अर्थ की प्रधानता स्वीकृत हुई, पाप-पुण्य नैतिक-अनैतिक पर ध्यान कम दिया गया । इस सब का प्रभाव समकालीन साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था ।

विज्ञान का दावा यह है कि उसने मुक्ति रूपी औजार से मनुष्य की बेड़ियों को काट डाला है और सभी प्रकार की दासताओं से मुक्त करके उसे आधुनिकता के धरातल पर खड़ा कर दिया है । किन्तु आज के मानव की मुक्ति में अभिशाप कारनामे भी कम नहीं हैं । ''बुद्धिवाद, टेक्नालाजी और विज्ञान द्वारा मिली मुक्ति, उस पक्षी की मुक्ति नहीं है, जो डैने फैलाकर आकाश में उड़ता है, बल्कि यह उस कुत्ते की मुक्ति है, जो जंजीरों से छूटकर सड़क पर आ गया है और दुनिया में कुचला जाने

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना : 2, पृ०- 1972 पृ० 123 से उद्धृत ।

से डर से इधर उधर भाग रहा है ।(1) 'विज्ञान हमें अपनी ही प्रकृति को नियंत्रित करने में सहायक नहीं होता' । (2)

''ज्ञान के क्रमबद्ध तार्किक विवेचन'(3) को अगर हम विज्ञान मानें' तो स्पष्ट होगा कि पुरातन काल से ही भारतीय साहित्य में विज्ञान का पुट वर्तमान है । हृदय को जीतने तथा बुद्धि से काम लेने का तर्क कई विचारकों ने उपस्थित किया था । भगवान बुद्ध हृदय पर अधिकार करके बुद्धि का सहारा लेकर सत्य की खोज में निकल पड़े थे । कबीर ने भी कुरीतियों से समाज की रक्षा करने के लिए बुद्धि और तर्क से काम लिया था, लेकिन आधुनिक काल में टेक्नालाजी का जो विकास हुआ, प्राचीन काल में उसका नितांत अभाव था ।

भारतेंदु काल में समस्त देश में स्वतंत्रता की जो लहर दौड़ने लगी थी, यह बौद्धिक विकास का ही परिणाम था । अर्थ यही कि इस बौद्धिक विकास में पाश्चात्य विज्ञान तथा टेक्नालाजी का अधिक सहयोग रहा । द्विवेदी-युग में खादी का जो प्रचार हुआ वह पाश्चात्य टेक्नालाजी के विकास के विरुद्ध भारत की प्रतिक्रिया थी । छायावाद-काल में भी बुद्धि की उपेक्षा न की गयी । प्रसादजी ने कामायनी में प्रतीकों द्वारा बुद्धि पर हृदय की विजय दिखायी है, लेकिन बुद्धि की एकदम निंदा नहीं की गयी । 'राम की शक्तिपूजा' में अर्चना हेतु रखे गये नील-कमल के अदृश्य होने पर राम की सहायता बुद्धि ही करती है । भक्ति और बुद्धि दोनों मिलकर साधक को लक्ष्य तक पहुंचाती हैं ।

- -

1. डॉ0रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिक बोध, पृ034
2. डॉ0 राधाकृष्णन, आधुनिक युग में धर्म, पृ03
3. डॉ0 जयसिंह 'नीरद': दिनकर के काव्य में परंपरा और आधुनिकता अनुराधा प्रकाशन, मेरठ, प्र0सं0 1984, पृ037

प्रगतिवादी युग से जीवन तथा साहित्य को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की प्रथा अत्यधिक हो गई। डार्विन, मार्क्स, फ्रायड ने मिलकर इसकी भूमिका तैयार की। प्रयोगवादियों पर विज्ञान का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे अपनी रचनाओं को विज्ञान के यथासंभव निकट लाने में ही सार्थकता समझने लगे। नये नये प्रयोगों तथा प्रतीक-बिंबों के संदर्भ में विज्ञान का सहारा लिया गया :

'' वर्षा में आयन-फ्रीम-सी कोसती बिखर रही होगी''(1)

''इलेक्ट्रान का सुर तार पर है। '' (2)

केवल शैली के क्षेत्र में ही नहीं भावों को ग्रहण करते समय भी ये कवि विज्ञान का बड़ा ध्यान रखते हैं। मानसिक तथा शारीरिक दृष्टि से अब विज्ञान का गुलाम बन गया है। यूरेनियम, कार्बोलिक गोलियाँ, नींद की गोलियाँ आदि उसके जीवन के अंग-से हो गये हैं :

''शीशों पर मिलती हैं सिपिरिटों के ट्यूब
यूरेनियम के पेंसिल
और शान्ति देनेवाली गोलियों के प्यार
तमाम ऐसा केस है जिसमें बाहर में
नींद की गोलियाँ सबसे ज्यादा बिकती हैं। ''(3)

नींद की गोलियाँ इसलिए सबसे ज्यादा बिकती हैं कि आज के मानव की आँखों में चैन नहीं। इस आधुनिक परिवेश में नया कवि भी

- -

1. निकष-3-4, सं० धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकांत वर्मा, 1957, पृ०99
2. निकष-3-4, '' पृ०99
3. जगदीश चतुर्वेदी : उद्धृत: नया प्रपंच, संपा० राजेश गुप्त और ममता चतुर्वेदी, पृ०30

अपने को आहत, विक्षुब्ध और निराकुल पाता है । अपनी ही पहचान में भी वह असमर्थ-सा दीखता है :

''मैं कौन हूँ / आहत/विक्षुब्ध/निराकुल/शून्य/
कोर्ण/मूल/बिंदु स्वर है/मैं हूँ/क्या है/ स्वर है /
मैं कौन हूँ । '' (1)

विज्ञान की प्रगति से कुछ नयी वस्तुएँ हमारे साहित्य को अवश्य मिली हैं लेकिन इससे कविता की रागात्मकता में क्षीण हुआ । विज्ञान की भाषा के अनुरूप कविता की भाषा भी सपाट हो गयी ; सरल, सीधे स्वाभाविक शब्दों के प्रयोग में रुचि बढ़ी ; सत्य और यथार्थ पर ही ध्यान दिया गया ; काल्पनिक तथा अतिरंजित वर्णनों से बच कर रहे ; कम से कम शब्दों में भावों को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति भी प्रबल हो गयी । आज के काव्य में जो तटस्थ दृष्टि आ गयी है वह भी विज्ञान के संपर्क से ही संभव हुई है । श्री रवीन्द्र प्रसाद सिंह की पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप ली जा सकती हैं :

''रात्रि का आसमान/दिन के सितारे/गीला अँधकार ,
उसमें हैं कबूतर के पंखों बेचारे ।/सीटी की पतली धार/पानी की धारा/
जीवन का सूरज है, / रात का भोला-भाला चाँद बड़ा प्यारा ।/नीरव का
सीना है/ आदमी चुप से हैं, (काया में रोता है /सीटी की आवाज में
फटी-फटी टोका है., रोटी में समझा कि रेशम का मौका है ।)'' (2)

- -

1.

2. रवीन्द्र प्रसाद सिंह : निबंध : 3-4- संपा० धर्मवीर भारती, लक्ष्मी-कान्त वर्मा, पृ० 90

परंतु ऐसे प्रश्न हीन व्यक्ति के भीतर, निरर्थक, यांत्रिक 'स्वार्थ' जीवन में कवि का विश्वास मिटता-सा दिखाई देता है :

''तुम 'अनवरत' है,
क्योंकि चलती है –
जिन्दगी नहीं है यह, भोगना है ! भोगना है ? ''(1)

लेकिन कवि को इतनी हताश होने का अधिकार नहीं । उसकी विशाल दृष्टि मुकुट-लिप्ट का फेर नहीं । धूसरों में प्राण फूंकने का, धूल के आदमी को व्यक्तित्व प्रदान करने का, हूटों को भी लिप्त बना देने का अटल विश्वास भी उसके पास है । उसका आशावादी स्वर है कि '' 'पूर्णिमा के अंधकार के बाद' सूरज की ज्योति फूटेगी, कला के राजन के यहाँ सिर फटकार गिरेंगे, डेमोक्रेसी और समाजवाद के राम का प्रकाश फैलेगा, रावण की लंका दग्ध होगी और उसका विध्वंस का कौशलता से ऐसा अद्भुत हो उठेगा कि ब्रह्माणी भी सामने आती सकुचायगी ।''(2)

7.6.5. वस्तुनिष्ठ यथार्थ :

यथास्थिति की वर्तमान प्रस्तुति या अर्थ को यथावत प्रस्तुत करना ही यथार्थ कहा गया है ।(3) इस अर्थ में आधुनिक हिन्दी-काव्य के उदय-काल

---

1. राजेन्द्र प्रसाद सिंह : निकष : 3-4, संपा० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ०90
2. मदन वात्स्यायन : निकष : 3-4 संपा० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ०92
3. 'अज्ञेय': आधुनिक साहित्य, पृ० 117

से लेकर यथार्थ पर ध्यान दिया जाने लगा था । लेकिन काव्य के रूप-विधान पर जितना श्रम उस समय दिया जाता था उतना विषय-वस्तु से यथार्थ चित्रण पर नहीं । यह उत्तर-रीतिकाल का प्रभाव था । शास्त्रीय परंपरा से विरोध के साथ खड़ीबोली में यथार्थ का प्रवेश हो गया ।

खड़ीबोली में आधुनिकता को उजागर करने में वस्तुनिष्ठ यथार्थ प्रमुख सहायक रहा है । ''महान साहित्य और कला सदा, निर्विवाद-रूप से, जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिंबित करती है, अतः उसकी एकमात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद ही है ।'' (1) इसका अर्थ यह नहीं है कि यथार्थवाद अभिव्यक्ति पक्ष का पूर्ण तिरस्कार करता है । वास्तविकता के वैशिष्ट्यपूर्ण कलात्मक चित्रण हेतु आकर्षक शैली तथा टेक्नीक की भी आवश्यकता को मानकर ही यह आगे बढ़ता है ।

यद्यपि यथार्थ का हिन्दी काव्य में पूरे वेग के साथ प्रवेश मार्क्स के सिद्धान्तों से प्रभावित प्रगतिवाद के आगमन से माना गया है (2) तथापि भारतेंदु काल से लेकर यथार्थ पर और देशभक्ति कविताएँ थोड़ी संख्या में ही सही प्रकाशित होती ही रहीं ।

''देश तथा मानव पर प्रेम
जो सदा देश से लगा के रहो,
धर्म मनुजत्व का निभा के रहो ।
आदमी को यही मुनासिब है,
कुल जगत में मिल-मिला के रहो । '' (3)

- -

1. शिवदान सिंह चौहान : साहित्य की समस्याएँ, पृ० 64-65
2. डॉ० शम्भुनाथ पाण्डेय : आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ० 278-79
3. कविता और कविता : सं० डॉ० चन्द्रनाथ मदान, साहित्य सहकार, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1979, पृ० 54

जनता के सामने प्रश्न-चिह्न-सी खड़ी रहती है.
की 'विधवा' भी अनुचित यथार्थ के बहुत निकट है । अपने
जीवन पर वह रोती है :

> ''नहीं तो कर दे कोई दुख विरह-ज्वार से उबार मुझको,
> मिटा दे मेरा यह अस्तित्व धधकाकर पत्थर पर मुझको ।
> न जाने कब से चिन्ता-मग्न, विरह-विधुरा, दुर्भाग्य-मारी
> कहीं रोती यह विकल, व्यथित, हाय ! करुणा की
> कविता-सी'' । (1)

द्विवेदी युग की काव्य-भाषा सरल सपाट होने के कारण यथार्थ के बहुत कुछ अनुकूल थी, परंतु भाव तो इतिवृत्त या पुराण से संबंध रखते थे । छायावादी कविता नवीन कल्पनाओं तथा सूक्ष्म अनुभूतियों से युक्त थी । भाव तथा भाषा दोनों दृष्टियों से वह यथार्थ को स्वीकार करती थी । 'अभिलाष', 'विधवा', 'भिक्षुक', वह तोड़ती पत्थर' जैसी यथार्थवादी रचनाएं उससे पूर्व नहीं लिखी गयी थीं । पंतजी ने भाव के क्षेत्र में यद्यपि यथार्थ को सफलता से ग्रहण किया है तो भी भाषिक संरचना आभिजात संस्कार की ही रही । 'ताज' की पंक्तियां हैं —

> ''हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
> जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
> संग - सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
> नग्न, क्षुधातुर, वास-विहीन रहें जीवित जन ? ''(2)

---

1. कविता और कविता : सं० डॉ० रघुनाथ महान्, साहित्य सहकार, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1979, पृ०66
2. सुमित्रानंदन पंत : युगांत, पृ० 54

स्पष्ट है कि पंत जी की भक्ति चेतना छायावादी संस्कारों से पूर्णतया मुक्त नहीं है ।

छायावाद युग में जिस महिमामय मानव की कल्पना की गयी थी वह प्रगतिवाद युग में आकर समाज का भिन्न अंग हो गया । व्यक्ति समाज में इतना घुल-मिल गया कि समाज से उसे अलग करना असंभव हो गया । समाज तथा वर्ग-संघर्षों में ही उसका ध्यान लगा रहा । इस व्यक्तित्वहीन मानव को समाज की पकड़ से बचाकर उसे स्वतंत्र अस्तित्व देने का प्रयास प्रयोगवादियों ने किया । उनका भी यथार्थ पर बड़ा विश्वास था । उन्हें सारा संसार कुंठा-युक्त प्रतीत हुआ । ऐसे संसार से उनका कट जाना भी स्वाभाविक था । '' उसका (प्रयोगवाद का) व्यक्ति परिवेश से कटा हुआ व्यक्ति था और वह यथार्थवादी तथा बौद्धिक होने के कारण अपनी निजी यौन तथा अन्यान्य कुंठाओं को साहस के साथ प्रस्तुत कर रहा था । '' (1)

प्रयोगवाद ने उलझी हुई संवेदनाओं और अचेतन मन के व्यापारों का उद्घाटन करने योग्य नयी शैलियों को भी अपनाया । 'नयी कविता' में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के यथार्थ जीवनानुभव और ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति की गयी । नयी कविता को नग्न सत्य से डर भी नहीं और भावुकता पूर्ण अभिव्यक्ति पर आस्था भी नहीं । ''इसलिए नयी कविता समग्र भाव से कवि के अनुभवों के माध्यम से युग और परिवेश के यथार्थ की कविता है । ''(2)

भोगे हुए कठोर सत्यों का उद्घाटन वस्तुनिष्ठ यथार्थ द्वारा

- -

1. डॉ० रामदरश मिश्र: हिन्दी कविता: तीन दशक, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली , पृ०25

2. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : तीन दशक , पृ०26

ही संभव है और आधुनिकों का विश्वास इस कारण से इस पर बढ़ गया है। वस्तुनिष्ठ यथार्थ की स्वीकृति आधुनिकता से बहुत निकट माना जाता है। असंगतियों और विसंगतियों के शिकार आधुनिक मानव का नक्शा, टूटा-फूटा फिर उसकी खाका सामने आता है। (1)

7·6·6 नया मानवतावाद

डॉ0 जगदीश गुप्त मानवतावादी विचारधारा को आधुनिकता का सर्वप्रमुख आधार मानते हैं। (2) आधुनिक होने के लिए भी गुण अपेक्षित हैं जब नयी मानवता से प्रतिबद्ध हैं। इस मानवतावादी विचारधारा के अभाव में आधुनिकता का स्तर गिर जाता है वह केवल ऊपरी फैशन बनकर रह जाती है। ऐसी मानवता के निर्माण में कड़ी मेहनत की ज़रूरत है। संयमित, संतुलित, तटस्थ दृष्टि की ज़रूरत है, मानव-जीवन में पैठकर उसकी नसि-नाड़ी को समझने की ज़रूरत है। इस तथ्य को स्वीकार ही मुक्तिबोध ने लिखा था कि 'व्यक्ति-समस्या को मानव-समस्या बनाकर, तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब हम उस समस्या से पूर्ण तटस्थ हों, और फिर उसमें घुसें-रमें, और इस प्रकार, उन सारी नसों नाड़ियों को देखें जिनसे मानव-जीवन बना हुआ है अपनी स्थिति में और विकास में।'' (3)

आज का मानव-जीवन कवि-जीवन से बहुत निकट है। अतः

---

1. विपिन कुमार अग्रवाल : नयी कविता-अंक-7, आधुनिकता पर एक प्रारंभिक निबंध, पृ0 4।
2. डॉ0 जगदीश गुप्त, कवितांतर, पृ0 38
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली-6, 1971, पृ0 56

वस्तु या सामान्य को कविता में स्थान दिया जाने लगा है। ''दीन-हीन-जीवन, की मार्मिक व्यंजना में उसकी उपेक्षित और लघु और मानव बनता रहा, एक कथा है वास्तविकताओं का अभिव्यक्ति बना। '' (1)

द्विवेदी युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने अपने मानव- मानिकाओं को देवी-देवताओं के कुण्ठा से उतारकर सामान्य जीवन के निकट लाने का प्रयत्न किया था। कथा की सबसे छोटी इकाई 'क्षण' को लेकर सियारामशरण गुप्त ने 'एक क्षण' कविता भी इसी कथा में लिखी (2)। पर अब यह इतना अधिक जोर दिया गया कि 'अबद्ध' का अस्तित्व ही स्वीकृत न हुआ।

छायावाद एक विद्रोही स्वर लेकर आया, जो विशुद्ध नया प्रतीत हुआ। इस नये स्वर ने छायावादी काव्य में महान मानव की अपेक्षा सामान्य की प्रतिष्ठा करने में भी बहुत बड़ा योगदान किया। वस्तु का आकार से महत्व पर कम ध्यान दिया गया, उसकी शैली की दृष्टि-कुशलता का ही अधिक महत्व रहा। इस प्रकार उपेक्षित तुच्छ वस्तुएं भी सौन्दर्य से मंडित दिखाई दीं। मनु-पुत्र मानव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसकी लघुता को अभिशाप न मानकर, उसे सृष्टि का अनिवार्य अंग स्वीकार गर्व करने की नयी दृष्टि का सूत्रपात भी किया गया। 'अनिकेत', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि कविताएँ इस बात की पुष्टि करती हैं।

. . . .

1. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता : तीन दशक, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 75
2. ''अस्त होते रवि एक क्षण
प्राण सूखा है पात
[illegible] में बिना सुवास
एक क्षीर्ण का पूर्ण विकास। ''— कविता और कविता, संपादक : डॉ० कृष्णनाथ प्रसाद, ज्ञानभारती, दिल्ली, वि०सं० 1979, पृ० 72

प्रगतिवाद में साधारण मानव को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की गयी । लेकिन यह मानव समाज में इतना घुलमिल गया कि उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी तिरोहित हो गया । प्रगतिवाद में व्यक्ति के उन सुख-दुखों और भावनाओं को भी स्थान मिला जिसका मूल सामाजिक व्यवस्था में है । (1) डॉ० नगेन्द्र ने अहं का सामाजीकरण ही प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य बताया है । (2)

समाज से इस अहं को अलगकर देखने का साहस ही प्रयोगवाद ने दिखाया था । प्रयोगवाद का व्यक्ति परिवेश से कटा हुआ है । (3) अज्ञेय जी को भीड़ का सतत नकार रखना ही अभीष्ट है क्योंकि ऐसे होने का अर्थ मर जाना है । धारा में यानि भीड़ में बहना उन्हें पसंद नहीं । (4) मुक्तिबोध ने भी भीड़ को आत्महीन कहा था । (5) अपने को भीड़ में खोना प्रयोगवादी की दृष्टि में व्यक्तित्व का नाश करना है । वे व्यक्ति के अपने आभ्यंतर की अनुभूति को ही वास्तविक चेतना मानते हैं (6) प्रयोगवादी आत्मस्थ होने के कारण इतने विशुद्ध स्वभाव के हो गये कि वे अपने को महान् आत्मा या महामानव नहीं मानते, जनसाधारण भी नहीं मानते, लघुमानव कहने में ही गर्व का अनुभव करते हैं । उन्हें भय है कि अगर जनसाधारण हो जायें तो प्रगतिवादियों की भीड़ की तरह बनकर अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को खो देंगे (7) इसलिए प्रयोगवादी

- -

1. डॉ० शिवकुमार : प्रतिक्रियाएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-1966, पृ०37
2. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, 1979, पृ०9।
3. डॉ० रामदत्त मिश्र: हिन्दी कविता तीन दशक, ज्ञानभारती, पृ०25
4. नदी के द्वीप, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय, सं० विद्यानिवास मिश्र, पृ० 75
5. गजानन माधव मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ०4।
6. वही, पृ० 59
7. वही, पृ० 59

जनता में विक्षोभ न होने का आश्वासन भी अपने समर्थकों को देते हैं। (1)

युद्धोत्तर उत्पन्न हुई परिस्थितियों तथा नयी नयी राजनैतिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आविष्कारों से पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नयी मान्यताएँ स्थिर हो गयीं। अस्तित्ववाद, क्षणवाद, यथार्थवाद आदि सुविधा के लिए बनायी गयी काल्पनिक वादों प्रचलित हुई थीं। इस काल के कवियों ने मूलतः अपने को ही कुछ कहा। सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन ने भी मानव के अस्तित्व का परिचय दिया। मुक्तिबोध भी सार्त्र के प्रभाव से मुक्त न रहे। उनका कथन है: ''जीवन में मनुष्य मूलतः दुःखी है। अवश्य दुःख शाश्वत है। दुःख से उबरने का कोई उपाय नहीं।'' (2)

नयी कविता ने जीवन को चाहे वह समाज का हो या व्यक्ति का पूर्ण जीवन के रूप में ही ग्रहण किया है। उसमें 'व्यक्ति' की छायावादी प्रगतिवाद की सामाजिकता या प्रयोगवाद की वैयक्तिकता नहीं। नयी कविता का मानव पूर्ण मानव है। (3) उसके सुख दुःख, राग-विराग आदि आधुनिक परिवेश के दबाव में जीनेवाले पूर्ण मनुष्य के हैं।

साठ के बाद लिखी नयी कविता पर चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमणों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इन आक्रमणों ने हमारी परिस्थिति की ओर अधिक आकर्षित कर दिया। नैतिक मूल्य फिर से हिल गये।

- -

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ0 41
2. वही, पृ0 40
3. डॉ0 रामदरशमिश्र : हिन्दी कविता तीन दशक, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, सं0 1969, पृ0 105

पड़ोसी राष्ट्रों की ही नहीं अपने सगे-संबंधियों, मित्रों की आत्मीयता पर भी संदेह अनुभव हुआ । उच्च नैतिक मानों की मूल्यच्युति हो गई । धोखा देना या धोखा खाना साधारण-सी बात साबित हुई । समाज में अधिकतर मुखौटा धारी हो रह गए । अतः : नवलेखक का भी आत्मविश्वास छिन्न हो यह भी जाता रहा :

''मेरा विश्वास भी अब मेरे संग का
मुझे छोड़ गया है
मैं अपने ही टखनों पर टँगा हुआ
मक्कार हो गया हूँ ।'' (१)

शायद इस परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में ही डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने अधुनातन के विकृत रूप को खींचा है । अधुनातन ''एक नकली, व्यक्तित्व हीन, अनैतिक, छद्म यथार्थवादी, चिड़चिड़ा, कुंठित, निराशाग्रस्त, विकृतशील का पुजारी, खोखली हंसी और मिथ्या रोब का मुखौटा लगाये रखनेवाला मानव-मूल्यहीन प्राणी है ।'' (२)

धूमिल की कविताओं में प्रायः यही दृष्टि व्यक्त हुई है । वे पूछते हैं :

''क्या यह व्यक्तित्व बनाने की
चरित्र चमकाने की –

-----

१. श्रीकान्त वर्मा : उद्धृत : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, पृ० २४८

२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ०२२६

अपनी कमाई की
चीज़ है
न, भाई न
कविता
भाषा में आदमी होने की तमीज़ है । '' (1)

आज के मानव के सामने सब बड़ी यही बड़ी समस्या है कि आधुनिक परिस्थिति में कैसे वह आदमी बनकर जी सकता है । विज्ञान तथा औद्योगिकीकरण के विकास के कारण बहुत कुछ वह यंत्र-सा हो गया है और उसके लिए सब कुछ समान है, किसी में कुछ भेद नहीं रखता ।(2)

ऐसा समाज' के कवि मानव की विकृत मूर्ति से तृप्त नहीं हैं । राजकुमार कुंभज मुक्तिबोध अज्ञेय जैसे कलाकारों की भांति भीड़ भरे चौराहे पर अपने को एकदम अकेला पाते हैं, साथ-साथ उस अकेलेपन की घुटन से छूट भी पाने का रास्ता ढूंढते हैं :

'' मेरी समस्या कोई आज नहीं /नगर में /
भीड़ भरे चौराहे पर/ एकदम अकेला खड़ा हूँ /
इस समय/ और मेरे चारों तरफ/ फैला है सन्नाटा /
डर है कब/ इस उत्सुकता में खो गये हैं /
कि अब मैं छूट भी/ कैसे पाऊँगा ? '' (3)

---

1. धूमिल : संसद से सड़क तक, पृ0 9।

2. "Reduced to the state of robot, the modern man's mind has become a recording machine without discrimination, to him no event is more important than another." Sisir Kumar Ghosh: Modern and otherwise, P-14-15

3. [illegible]

यह नया मानव भीड़ से हटकर निराशा या मृत्यु की पकड़ में नहीं फँसता वह अपनी ही धरती पर उपजता है, अपने ही आकाश में खुलता खिलता है :

''हमने, भीड़ से हटकर कुछ बीज बोये
अपनी ही धरती पर उगाये
अपने ही आकाश में फूली-फली। '' (1)

कवि की इस आत्मविश्वासी वाणी में कहीं से वाद की नयी चोटियों का नहीं, नयी कविता का स्वर ही खुलता है। स्पष्ट है कि नयी कविता में विकास का क्रम बना भी रहता है।

7·6·7· वर्तमान पर आस्था :

आधुनिक साहित्य वर्तमान पर ही अधिक आस्था रखता है। वर्तमान की विशेषता इस बात में है कि इसमें खड़े होकर हम अतीत की आलोचना और भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। ''वर्तमान की आधार भूमि पर ही रचनाकार अतीत और भविष्य को प्रतिबिंबित करता है। '' (2)

संसार में ऐसा कोई भी साहित्य न होगा जो वर्तमान पर विश्वास न रखता हो। कारण कि भूत, वर्तमान और भविष्य - इन तीनों कालों में वर्तमान ही मानव का निकट-सत्य है। इस निकट-सत्य की उपेक्षा करके केवल अतीत या भविष्य पर सोचना जड़ता या मानसिक रुग्णता का लक्षण बताया जायेगा।

1· अवधेश कुमार : सीमा रचना, पृ0 4।
2· डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, आधुनिक कविता नये संदर्भ, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1973, पृ0 5।

भारतेंदुकाल में हिन्दी में ही राष्ट्रीय चेतना दिखाई पड़ी यह वर्तमान प्रेम की सूचना थी। (1) उस वर्तमान-बोध से प्रेरक तत्व हैं उस में ही उन्होंने अतीत गौरव का स्मरण किया था। यही नहीं स्वर्णमय भविष्य से बढ़कर अतीत की सभ्यता को स्वीकार करना उस काल के लेखकों ने अधिक उचित समझा। इसलिए गौरवमय अतीत की गाथा अधिक गायी गयी और अतीत जैसे उज्ज्वल भविष्य की आशा भी की गयी। तब से पाश्चात्य आधुनिक विचारों से प्रभावित भारतेंदु जैसे लेखक रीतियों तथा रूढ़ियों से कष्टमय वर्तमान पर ओ चिंतित होने लगे हैं। भारतीय नारियों की दयनीय दशा को सुधारने में ही नहीं उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाने में भी भारतेंदु की रुचि रही।'(2)

प्रगतिवादी युग में वर्तमान को अधिक महत्व दिया गया क्योंकि प्रगतिवादी कवि मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिक वाद से काफी प्रभावित थे। पंत जी ने युगांत, युगवाणी और ग्राम्या लिखकर हिन्दी काव्य में वर्तमान-बोध की प्रतिष्ठा कर दी।

वर्तमान का पूरा-पूरा, पल-पल का उपभोग प्रयोगवादियों को इसलिए अभीष्ट था कि उस परिस्थिति में उन्हें कल की कोई

---

1. ''जो कहा देश से लगा है यहीं,
   [illegible] का मित्र है यहीं।
   आदमी को यहीं [illegible] है,
   पूरा आसमान में मिले-मिलाके यहीं/ ''—गंगा प्रसाद पांडेय समीक्षा:
   कविता और कविता, पं० डॉ० [illegible], पृ०84

2. Madan Gopal: The Bharatendu: His Life and Times, Sagar publications, New Delhi, First Edition, 1972, P-70

अहसास न हो। वैज्ञानिक प्रगति ने आधुनिक मानव को ऐसी एक दुरभिसंधि में लाकर खड़ा कर दिया था कि वर्तमान से बढ़कर कोई ठीक समय उसे नज़र न आया। आधुनिक जीवन की छिन्न-विछिन्नता ही इस क्षण-चित्र का मुख्य कारण है। 'तारसप्तक' के कवि मुक्तिबोध इस क्षण-चित्र पर असहमत हैं। उनकी राय में काव्य में इस क्षण-चित्र की मुख्यता के कारण जीवन का समग्र चित्रण असंभव हो गया है। (1) परंतु 'दूसरा सप्तक' के कवि धर्मवीर भारती मुक्तिबोध से सहमत नहीं होते। उनका प्रश्न है कि अगर तन्मयता का गहरा क्षण अर्थहीन है तो जीवन में सार्थक क्या बचे :

''मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण
रंगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे
तो सार्थक फिर क्या है कनु ? '' (2)

'तीसरा सप्तक' की कवयित्री कीर्ति चौधरी भी अभी की क्षण से संतुष्ट मानती है :

''मैं प्रस्तुत हूँ
इन कई दिनों के चिंतन औ' संकोचों बाद,
यह क्षण जो अब आ पाया है,
उसमें अंधकार में प्रस्तुत हूँ
तुम से सब कुछ कह देने को। '' (3)

- -

1. मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971, पृ0

2. धर्मवीर भारती : कनुप्रिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पंचम संस्करण, 1971, पृ0 69

3. कीर्ति चौधरी, कविता और कविता, संपादक : इन्द्रनाथ मदान, साहित्य सहकार, दिल्ली, प्र0सं0 1979, पृ0 86

'तीसरा सप्तक' के कवि स्वदेश भारती के लिए 'क्षण' आत्महत्या है। इस शताब्दी ने उन्हें आत्महत्या क्षणों पर जीने को बाध्य किया है :

"मैं वृक्ष हूँ इस शताब्दी का
जिसने मेरे जिस्म के
टुकड़े-टुकड़े कर
आत्महत्या क्षणों के बीच
सड़कों फुटपाथों पर फेंक दिया।"(1)

डॉ० रामदरश मिश्र ने क्षणानुभूति को एक अलग दृष्टि से देखा है। मुक्तिबोध की तरह वे भी क्षण को समग्र जीवनानुभूति का बाधक तत्व नहीं मानते – "क्षणों की अनुभूतियाँ संपूर्ण जीवनानुभूति की बाधक नहीं, साधक है। क्षणों को सत्य मान लेने का अर्थ होता है जीवन की एक-एक अनुभूति को, एक-एक व्यथा को, एक-एक सुख को सत्य मानकर जीवन को समग्र रूप से स्वीकार करना।" (2)
इसलिए मुद्राराक्षस का आह्वान है :

"आओ हम उस अतीत को भूलें
और आज की अपनी रग रग के अंतर को छू दें
छू लें इसी क्षण,
क्योंकि कल के वे नहीं रहे,
क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।" (3)

---

1. स्वदेश भारती : तीसरा सप्तक (संपादक: अज्ञेय) पृ० 135
2. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता: तीन दशक, पृ० 99
3. मुद्राराक्षस, निषेध, पृ० 20

क्षणों की परिधि में जीवन की सम्पूर्णता को समेटनेवाली कविताएँ प्रायः आकार में छोटी होती हैं, लेकिन वे गहरी चोट करने वाली हैं। 'क्षण' की महिमा गाकर वर्तमान के प्रति आग्रह प्रकट करने वाले नये कवियों में अज्ञेय, भारती, नरेश मेहता, कुँवर नारायण आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दार्शनिक दृष्टि से 'क्षण' अपनी व्यापकता में अनंत को व्यंजित करता है। लेकिन नयी पीढ़ियाँ जीवन को क्षणभंगुर मानकर प्रत्येक क्षण को अपेक्षित व्यवहारों में लगा देती हैं। इस प्रसंग में नयी पीढ़ियों के प्रति पूर्ण रूप से सहमत नहीं हो पाने के कारण, उनमें आत्मबल व्यापक नहीं है।

''कलियों को देखकर मुस्कुराता हूँ
उनके क्षणों को अपनी हथेलियों में
महसूस करता हूँ
उनकी रंगों, पत्तियों, गंध आदि को
एक पुलक-सा अपने में बांध लेता हूँ
पर जब कोई स्त्री
मुझे देखकर मुस्कराती है,
मुझे लगता है कि मेरे अवयव गल गए हैं।
और मैं नपुंसक होता जा रहा हूँ। '' (1)

---

1. जगदीश चतुर्वेदी : इतिहास हंता, पृ० 64

7.6.8. निष्कर्ष :

1. साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश एक सहज स्वाभाविक क्रम है ।
2. हिन्दी में आधुनिकता का आगमन भारतेन्दु-काल से स्वीकार्य रहा ।
3. मनुष्य की मुक्ति के साथ-साथ संपूर्ण देश की मुक्ति की ओर भारतेन्दुकालीन लेखकों ने ध्यान दिया ।
4. धार्मिक बंधनों से मानव को मुक्त करने का जो क्रम भारतेन्दुकाल में शुरु हुआ द्विवेदीकाल में आकर अधिक तीव्र हो उठा । लेकिन धर्म तथा ईश्वर का पूर्ण तिरस्कार कभी संभव न हो सका ।
5. व्यक्ति, देश तथा विश्व का कल्याण लेखकों का लक्ष्य हो गया । व्यक्ति से लेकर विश्व तक की मुक्ति भावना पर विशाल दृष्टिकोण वास्तव में अपनी आधुनिकता का परिणाम था ।
6. छायावाद-काल में अंग्रेज़ी शिक्षा तथा साहित्य से अधिक निकट आने के कारण भारतीयों में एक नयी नैतिकता की स्थापना की गयी । ईश्वरपरक नैतिकता के स्थान पर मानवतापरक नैतिकता स्थापित की गयी ।
7. छायावादयुगीन मानव-मूर्ति की सृष्टि में कवियों ने अद्भुत संयम दिखाया ।
8. मानव-प्रतिष्ठा की सबसे प्रबल घोषणा संपूर्ण हिन्दी वाङ्मय में निराला द्वारा हुई । इस बात में वे प्राचीन कवि कबीरदास से बढ़कर क्रांतिकारी सिद्ध हुए ।

9. प्रगतिवाद - काल में पूर्ववर्ती-युग की संतुलित दृष्टि विलुप्त हो गयी, विचार के स्थान पर मार्क्स को जिताने की कोशिश निरंतर होती रही, निराला को छोड़कर कोई भी इसका अपवाद न रहा।

10. प्रगतिवाद में व्यक्ति समाज में डूब गया, इसलिए आत्म-विकास हेतु अवसर न रहा।

11. प्रयोगवाद में प्रगतिवाद का सामूहिक दृष्टिकोण बदल गया। आत्म-विकास की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

12. विज्ञान तथा मनोविज्ञान के विकास के कारण अर्थ और काम पर अधिक बल दिया गया।

13. व्यक्ति तथा समाज, बुद्धि तथा हृदय को समान स्थान देकर, वादविवादों के बंधन से मुक्त होकर 'नयी कविता' ने आधुनिकता के अनुरूप समन्वय तथा संतुलन का मार्ग अपनाया।

14. हिन्दी की सन् साठ के बाद की कविता में अनूठेपन विदेशी आधुनिकता से प्रभावित नयी पीढ़ी का आविर्भाव हुआ। इसने हिन्दी कविता को झकझोर तो दिया अवश्य, लेकिन कुछ वर्षों से कविता तो नारा-बाज बन गयी। नयी कविता अब भी विकास के पथ पर अग्रसर है।

15. मुक्ति का गीत, रूढ़ि - भंजन, वैज्ञानिक विकास, वस्तुनिष्ठ यथार्थ, तथा मानवतावादी दर्शन पर भरोसा आदि आधुनिकता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

16. मुक्ति के मूल में, चाहे वह राजनैतिक हो या धार्मिक या सामाजिक, स्वतंत्रता का भाव ही छिपा हुआ है। आधुनिक युग में यह मुक्ति केवल राष्ट्रीयता पर अधिक केन्द्रित रही। स्वातंत्र्योत्तर काल में भी देश की स्थिति बहुत कुछ वही रही, जो स्वातंत्र्य के पूर्व थी। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर मंद न पड़ा। निराला - काव्य इसका उज्ज्वल दृष्टांत है।

17. अंधविश्वासों पर टिके हुए मृत मूल्यों की भर्त्सना के साथ साथ आधुनिकता परंपरा के गुणपूर्ण अंशों को भी स्वीकार करती है। रूढ़ि-विरोधी आधुनिकों ने परंपरा को वर्तमान और भविष्य के निर्माण में सहायक तत्व के रूप में भी ग्रहण किया है।

18. नैतिकता बोध देश-काल सापेक्ष है। आधुनिकता ने जिस नयी नैतिकता की स्थापना की है उसमें 'अर्थ' का बड़ा स्थान है। 'अर्थ' के नाम पर ही समाज में सारे अनर्थ हो रहे हैं। समाज की आवश्यकता का ख्याल बिना प्रस्तुत धनैषणा व्यक्ति अपने ऊपर किसी का नियंत्रण नहीं मानता।

19. विज्ञान आधुनिकता का प्रतीक समझा गया है, पर कभी कभी यह, आधुनिकता का विरोधी तत्व भी साबित हो जाता है। विज्ञान के प्रभाव से काव्य में जिस बौद्धिकता का समावेश हुआ है उससे आधुनिक काव्य विचार प्रधान हो गया है।

20. आधुनिक कवि वर्तमान पर अधिक आस्था रखता है। वर्तमान-परिवेश को उसकी समग्रता में पकड़ने हेतु वह वस्तुनिष्ठ यथार्थ का आश्रय लेता है। यथार्थ चित्रण से ही असंगतियों व विसंगतियों से युक्त आज के मानव की समस्याओं का उद्घाटन संभव है।

21. मानववादी विचारधारा आधुनिकता का सर्वप्रमुख आधार है। इसके इर्द-गिर्द ही आधुनिकता का चक्र घूमता रहता है।

• • • •o• • ••

आठवाँ अध्याय :

निराला काव्य : आधुनिकता के संदर्भ में

8• निराला - काव्य : आधुनिकता के संदर्भ में

आधुनिक परिस्थिति में मनुष्य के पारस्परिक संबंध काफी परिवर्तित हो गये हैं। उसके आचार, विचार, भाव और मूल्य-बोध बदले हैं। इस बदली परिस्थिति में भी पैंसठ साल पूर्व शुरू हुई निराला की साहित्य-साधना भविष्योन्मुखी बनकर आधुनिकों का पथप्रदर्शन करती रहती है। यद्यपि कवि का जीवन-काल समाप्त हो गया है, उसके बाद अनेक तरुण कवि विविध प्रतिभा लेकर सामने आये हैं तथापि भविष्य के क्षितिज को छूने की निराला-काव्य की शक्ति अब तक घटी नहीं, उसकी रोशनी बुझी नहीं।

8•1• मुक्ति का गीत :

मुक्त स्वभाव के निराला मानव को उसके समस्त बंधनों से मुक्त करके उसे स्वच्छ वातावरण में ला खड़ा करने में कवि-धर्म की पूर्ति देखते हैं। वे जानते हैं कि जब तक सारा देश गुलामी की जंजीरों से मुक्त न हो जाए तब तक मानव की वैयक्तिक मुक्ति संभव नहीं होगी। धार्मिक तथा सामाजिक बंधनों से देश की राजनीतिक गुलामी ही उनकी दृष्टि में अधिक घातक थी।

8•1•1• देश की मुक्ति

राष्ट्रीय- सांस्कृतिक कविता भी निराला की प्रतिभा के संस्पर्श से युगबोध के अनुकूल बन पड़ी। द्विवेदी युग के अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी जैसे मूर्धन्य कलाकार राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता के क्षेत्र में उतर चुके थे, परंतु निराला काव्य का महत्व यही कि स्वाधीन भारत में भी उसका मूल्य अक्षुण्ण बना रहा। इसका कारण यह है कि कवि का

बैर केवल अंग्रेजों से नहीं था, आम तौर पर देश के शत्रुओं से था । पूंजीपतियों और जमींदारों से उनकी पटती नहीं थी । शोषक चाहे देशी हो या विदेशी, निराला की दृष्टि में समान है । परंतु गांधीवाद से प्रभावित अन्य स्वाधीनता-प्रेमी कवियों की वाणी में देश के जमींदारों - पूंजीपतियों के प्रति इस प्रकार का आक्रोश नहीं मिलता । 'बादल-राग' (छः कविताएं) में कवि का विद्रोह मुख्य रूप से देश के शोषकों से है :

''अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर-
क्षत विक्षत हत अचल-शरीर
गगन स्पर्शी स्पर्धा - धीर । '' (1)

स्वार्थ से उद्भूत अभिधारणा कहकर हम आधुनिक संदर्भ में राष्ट्रीयता की उपेक्षा नहीं कर सकते । अगर राष्ट्रीयता का आधार स्वार्थ है तो अन्तर्राष्ट्रीयता का आधार भी स्वार्थ ही हो सकता है क्योंकि मूलतः आत्मरक्षा ही राष्ट्र-भावना या विश्व-भावना का लक्ष्य है ।

भारतेन्दुकाल में ही हिन्दी काव्य में आधुनिक राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित होने लगा था ।(2) बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने ''जय जय भारत भूमि भवानी । जाकी सुयश पताका जग के दसहूं दिसि फहरानी '' (3) कहकर भारत भूमि को भवानी का भव्य रूप प्रदान किया ।

भारतेंदु युग के अंत तथा द्विवेदी युग के प्रारंभ में काव्य-रचना का श्रीगणेश करनेवाले श्रीधर पाठक ने तुलसी की पदावली का छन्दात्मक अनुकरण करके देशस्तुति यों की है : ''प्रणामि सुखद सुदेश भारत सतत मम-मनरंजनम्, मम देश मम सुधाम मम तन-प्राण-धन-जन जीवनम्, मम तात-मात-

- -

1. निराला : निराला रचनावली-1, पृ० 123
2. Indernath Madan : Modern Hindi Literature; A critical Analysis, The Minerva Book Shop, Lahore, 1939, P- 54-55.
3. भारत वंदना, प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग) पृ० 629

सुतादि प्रिय मित्र-बंधु-गृह-गुरुमंदिरम् सुर-असुर-नर नागादि -अगणित-जाति-धन-पद-सुंदरम्।' (1)

द्विवेदी - काल में अपार राष्ट्रीयता प्रधान कविताओं की बाढ़-सी हो गयी। स्वयं द्विवेदी भी मातृभूमि की महिमा गाये बिना न रह सके :

''जहाँ हुए व्यास मुनि प्रधान/ रामादि राजा अति कीर्तिमान/ जो थी जगत्पूजित धन्य धाम।/ वही हमारी यह आर्य भूमि है।'' (2)

ऐसी परिस्थिति में ही निराला ने जन्म भूमि की महिमा गाते हुए हिन्दी काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था।

निराला की पहली प्रकाशित कविता 'जन्मभूमि' है। (3) यह कविता 1920 में 'प्रभा' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'प्रभा' के संपादक थे गणेश शंकर विद्यार्थी।

निराला के लिए अपनी जन्मभूमि जगन्महारानी है और उसकी भैरव-वाणी सुनकर सारा विश्व चकित तथा भयभीत है :

'' बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव-वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।'' (4)

मृत्युपर्यंत यह राष्ट्रीय-बोध निराला की कविता की मूल प्रेरणा रहा। सन् 1923 में समन्वय में निकली 'जलद के प्रति' शीर्षक कविता में देश की दुर्दशा की ओर संकेत किया गया है। (5) देशप्रेमी वीरों ने विदेश जाकर शिक्षा

- -

1. श्रीधर पाठक : भारतगीत, द्वि०सं० पृ० 42
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी : द्विवेदी काव्य-माला, पृ० 406
3. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 10
4. निराला रचनावली - 1, पृ० 29
5. निराला रचनावली-1, पृ० 53, 54

पायी, डिग्री प्राप्त की। से कवि का कहना है :

''माँ की दशा देखकर तुम ने / तब विदेश प्रस्थान किया। / बड़ी होशियारी से तुम को / कुछ पढ़ाया, बढ़ाया / 'द' और पढ़ाया, कुल पर / जाल फूट का फैलाया।'' (1)

लेकिन तुम अंग्रेजों के बहकावे में आनेवाले न थे। भक्ति भाव से प्रेरित होकर माँ की दीनता हटाने की कर्म क्षेत्र में कूद पड़े :

''पर तुम कूद पड़े, पहचाना / माँ की दशा वसन सुंदर; धन्य तुम्हारी भक्ति-भाव को / दुःख सहे, किन्तु चौड़ी/, उर्वरा आकर। अपने निज्ञान का, / प्यारि प्रीति-नीति बाँधी।'' (2)

मतवाला के प्रथम अंक में 'रक्षाबंधन' पर निराला की एक कविता निकली। 'रक्षा' से बंधे हुए वीर सपूतों के कोमल करों से भारतीयता की रक्षा कवि चाहते हैं : '' 'रक्षा' से बंधे हैं भारतीयों के कोमल कर, मंगल मनाती क्यों न, रक्षा क्यों करेगा फिर ? / सारी इन पुनरवों के आगे सिवारे मात्र/ अथवा प्रकाश रक्षा बालक-दलों से फिर ?/ देख करतूत ऐसी वीरवर सपूतों की/ भारत का गर्व से उठेगा या झुकेगा सिर ? '' (3)

त्योहारों और पौराणिक घटनाओं की आड़ में राष्ट्रीयता का प्रचार करने की प्रथा तब प्रचलित थी।

प्रथम अंक के मुख पृष्ठ पर ब्रजभाषा में भी रक्षाबंधन को लेकर

- -

1. निराला रचनावली - 1, पृ० 54
2. निराला रचनावली-1, पृ० 54
3. '' '' पृ० 54 - 55

'तुराने महारानी' नाम से निराला ने एक और कविता लिखी थी ।

दूसरे अंक में ब्रजभाषा में ही एक और कविता मिलती जिसमें गोरों से विरोध अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट हुआ ।

गोरी ब्रजवनिताएँ श्याम साँवरेपति कन्हैया को बड़े प्रेम से आलिंगन करती थीं, उनके लिए अपनी जान पर खेलती थीं, लेकिन विदेश से आये ये गोरे श्यामवर्णवालों पर अत्याचार ही करते हैं, उनसे प्रेम की आशा नहीं की जा सकती : '' गोरी जोबन थीं सदा, गोरी ब्रजबनितान गही साँवरो प्रेम है, श्याम कामतनु काम ।।/ श्याम काम तनु काम - रूप गोरें में पायो ।/ लिखी कमलिनी वारि अंक भरि उर बैठायो ।।/ ये अब ऐसी दास कि कहि हाथ पसारि।। देश-भर को प्रेम लेत 'गोरन' की हारि ।।'' (1)

मतवाला के तीसरे अंक में सन् 1923 में छपी 'गये रूप पहचान' जिसे स्वयं विद्वान पैलिथ ने निराला की पहली कविता कहा है,(2) में राष्ट्रीयता का परिचय मिलता है । गांधीवाद से प्रभावित होने पर भी कवि की वाणी में कमजोरी का स्वर बिलकुल नहीं: ''तुम चाहे मत चीरो हे तू / जाली लिपट मत गोरों हे तू/ चटक चटक घंटों की खटपट छोड़ भाड़ में मान/ मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान । '' (3)

देश के अतीत गौरव का स्मरण भी राष्ट्रीयता की पुष्टि करता है । 1924 में 'मतवाला' में प्रकाशित 'दिल्ली' गौरवमय अतीत का उद्घाटन

- -

1. निराला रचनावली-1, परिशिष्ट- मौलिक कविताएँ, पृ० 355
2. डॉ०पे० पैलिथ: सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र०सं० 1982, पृ० 18
3. निराला रचनावली-1, पृ० 55

करती है । देश की बिगड़ी वर्तमान दशा को देखकर कवि पूछते हैं :
'क्या यह वही देश है-/ भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र, / चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्यदीप्त/उड़ती है आज भी जहाँ के वायु-मंडल में/उज्ज्वल, अधीर और चिर नवीन ?- / श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने / गीता-गीत-सिंहनाद-/ मर्मवाणी जीवन-संग्राम की-/ सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग का ?''(1)

देशवासियों में आत्मसम्मान जगाकर उनको अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा करने के लिए हमारे साहित्यिकों के पास केवल गौरवमय अतीत की वीरगाथाएँ ही थीं । उनका सर्वाधिक उपयोग निराला ने किया ।

'वनबेला' शीर्षक कविता में कवि ने अतीत की ओर ध्यान दिया है और अपनी वैयक्तिक मुक्ति के साथ-साथ देश की स्वाधीनता की ओर भी इशारा किया है-

''अपने अतीत का ध्यान
करता मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण ।'' (2)

कवि को सब कहीं कल्पना ही कल्पना दिखाई देती है । इससे मुक्ति की आशा करते हुए वे पूछते हैं -

''ये सन्ताप किस दिन होंगे गीत,
दृढ़ता में सब देखे शीतल चन्दन ।'' (3)

कवि को इस बात का अवबोध तो अवश्य है कि अपना तथा देश का बंधन जल्दी ही टूटनेवाला नहीं है । पर कवि-कर्म उन्हें मौन रहने नहीं देता-

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ० 87
2. ,, पृ० 99
3. ,, पृ० 100

''कठिन शृंखला बजा-बजाकर
गाता हूँ अतीत के गान . .'' (1)

कठिन शृंखला को तोड़ने का एकमात्र उपाय है क्रांति । क्रांति का आयोजन विशेष रूप से किसानों की रक्षा के लिए किया जाना चाहिए । क्योंकि उन्हें केवल गोरों का अत्याचार ही नहीं देश के जमींदारों का दबाव भी सहना पड़ता है । इसका अंत तो होना ही चाहिए । देशवासी जमींदार अंग्रेजों से ज्यादा खतरनाक हैं । इस विचारधारा से निःसृत हैं 'बादलराग' शीर्षक छः कविताएँ । ये 1924 में लिखी गईं । कवि बादलों को विप्लव के वीर मानते हैं और उन्हें भारत में आने का निमंत्रण देते हैं ।

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !'' (2)

उन्हें स्वीकार करने को सब उतावले हैं । सारे लघुकाय शस्य हिला-हिलाकर उन्हें पास बुलाते हैं-'' हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार-/ शस्य अपार, / हिल-हिल/ खिल-खिल, / हाथ हिलाते, / तुझे बुलाते, / विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।'' (3)

विप्लव रव से केवल धनी-मानी व्यक्तियों में ही आतंक पैदा है । अंगना-अंग से लिपटे रहने पर भी भय से उन्हें मुक्ति नहीं : ''अंगना-अंग से लिपटे भी / आतंक- अंक पर काँप रहे हैं ।/ धनी, वज्र गर्जन से बादल ।'' (4)

- -

1. निराला रचनावली- 1, पृ0 101
2. '' पृ0 124
3. वही पृ0 123
4. वही पृ0 124

''स्वाधीनता पर-2'' में कवि अपनी तथा अपने देशवासियों की पराधीनता पर क्षुब्ध हो उठे हैं/भारत की जनता दीन-दलित है, मौन है निद्रित है, स्वप्न में भी पराधीन है: '' मेरे प्राण मेरे विचार-/मेरे जाति-/मेरे पददलित-/

मौन हैं- निद्रित हैं-
स्वप्न में भी पराधीन ।'' (1)

प्रकृति स्वाधीनता की समर्थक है । स्वच्छंदता की रीतिवाली व्यवस्था ही भय को जन्म देता है । इसलिए ''भय ही व्यवस्था का जनक है'' कहकर निर्भय रहने का आदेश कवि देते हैं । निर्भय रहने का अर्थ है स्वाधीन रहना —

'' 'स्वाधीन' का ही
एक और अर्थ 'निर्भय' है । '' (2)

'जागो फिर एक बार-2'' (1926) में भी देश भक्ति पर बल दिया गया है । इसमें देश हित प्राणों की आहुति देने का आह्वान है । यह समर अंग्रेजों से है, भारत के पूंजीपतियों से नहीं । बाहर से आये हुए गोरे कवि की दृष्टि में शेरों की मांद में आये स्यार हैं —

''शेरों की मांद में
आया है आज स्यार —
जागो फिर एक बार । '' (3)

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 120
2. वही पृ0 121
3. वही पृ0 141

भारतवासी लुटते चले आ रहे हैं। लेकिन न जाने क्यों यह शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने में हम झिझकते हैं। ऐसी निष्क्रियता पर रोष प्रकट करते हुए कल्पना करते हैं कि क्या कोई सिंहिनी प्राण रहते अपने शिशु को दूसरों के लिए छोड़ देगी? कायर ही अपने अपमानित जीवन पर आँसू बहाकर मौन रहेगा। पश्चिम के अविनाशी अंग्रेज़ भली-भाँति जानते हैं कि शक्तिशाली की ही विजय होगी। लेकिन पश्चिम में ही नहीं शक्ति की पूजा हम भारतीय भी करते आ रहे हैं। 'गीता' की उक्ति भी यही है:
''योग्य जन जीता है, /पश्चिम की उक्ति नहीं-/ गीता है, गीता है-/ स्मरण करो बार-बार-/जागो फिर एक बार।'' (1)

अपनी शक्ति की पहचान आवश्यक है। हम किसी से कम नहीं। हम अमृत संतान हैं। परमात्मा से भी हमारे ऋषियों-मुनियों का साक्षात्कार हुआ है। इसलिए हमारे यह दीन-हीन भाव का कोई अर्थ है ही नहीं।

8.1.1.1. शिवाजी के प्रति श्रद्धा :

'महाराज शिवाजी का पत्र' के आरंभ में ही शिवाजी को भारत की उद्यान के 'बाग-बान-वृन्तवाला' नायक तथा रक्षक बताकर भारत तथा शिवाजी दोनों के प्रति कवि ने श्रद्धा प्रकट की है—

''वीर! सरदारों के सरदार!— महाराज!
बहुजाति, क्यारियों के पुष्प-पत्र-दल-भरे
बाग-बान-वृन्तवाला भारत-उद्यान के
नायक हो, रक्षक हो . .'' (2)

---

1. निराला रचनावली-1, पृ० 142
2. '' पृ० 145

मातृभूमि के सामने अपने प्राणों को भी तुच्छ मानने वाले कवि सभी वीर के लक्षण भी बताते हैं :

''हैं जो बहादुर समर के , / वे मरके भी/माता को बचायेंगे ।'' (1)

संकट परिस्थिति में शिवाजी ने अपने अनुयायियों से जो कहा, वह कवि का भी आदर्श है:

''बलिदान चाहती है जन्मभूमि ,
लेंगे प्राण से रोकेंगे वार '' (2)

नर-जीवन के सभी स्वार्थों का त्याग मातृभूमि की मुक्ति के लिए करने को निराला तैयार हैं । कवि अपने उर में जन्मभूमि के उस रूप की कामना करते हैं जो अनुपम - शोभ हो, विमल हो – ''जागो मेरे उर में तेरी/ मूर्ति अनुपम-शोभ विमल ,

अपना तन देकर भी उस विमल मूर्ति की रक्षा करना कवि का ध्येय है:

'' मैं तुझे अपना तन दूँगा/मुक्त करूँगा तुझे अटल, /तेरे चरणों पर देकर बलि/सकल श्रेय-श्रम-संचित फल ।''

''वर दे, वीणावादिनि वर दे । '' को दूधनाथ सिंह ने हमारे राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार करने योग्य श्रेष्ठ रचना सिद्ध किया है । (3) इसमें देवी सरस्वती से निराला भारत भर में स्वतंत्रता का अमृतमंत्र भर देने की प्रार्थना करते हैं । ''काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर/ बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर ; / कलुष - भेद- तम हर प्रकाश भर/जगमग जग कर दे-/'' (4)

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 151
2. '' पृ0 153
3. '' पृ0 209
4. '' पृ0 209

'भारति जय विजय करे' कविता में कवि ने भारत की कल्पना भारती के रूप में ही की है : ''भारति, जय, विजय करे/ कनक शस्य कमल धरे । '' (1)

कनक शस्य धरा के चरणों के नीचे शतदल के स्थान पर लंका है, शतदल पर रखे चरणों को सागर-जल धोता है, गले में गंगा का ज्योतिर्मय हार पहनी हुई भारती के सिर पर हिम तुषार का मुकुट-किरीट है । निराला के लिए भारत ही भारती है ।

'जागो जीवन धनिके' में भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त हुआ है । प्रस्तुत कविता में भारती से भारत को फिर से वर देकर सुसंपन्न करने की प्रार्थना की गयी है । (2)

भारत और भारती का ऐसा संबंध 'जला है जीर्ण-शीर्ण प्राचीन' कविता में भी व्यक्त हुआ है । भारत की मिट्टी में अवतरित होकर सभी जीर्ण-शीर्ण-प्राचीन को जलाकर नये सिरे से विकच नवल पैदाकर नवीन शक्ति फैलाने का अनुरोध ही भारती से किया गया है: '' माँ तू भारत की पृथ्वी पर/ उतर स्वच्छन्द माया तम पर, /विकच नवल पैदाकर, /फैला शक्ति नवीन ।'' (3)

निराला के अनुसार समस्त संसार को ज्ञान, सत्य और प्रेम का प्रकाश भारत ने ही दिया है: '' करता है इतिहास, / सत्य-ज्ञान-प्रेम का/प्रकाश दिया है प्रकाश । '' (4)

अपने देश पर गर्व करते हुए आगे उनका कहना है: ''देश यह वही

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 232
2. '' पृ0 242
3. '' पृ0 244
4. 'उद्बोधन', निराला रचनावली-2, पृ0 64

जगी/ जीते गये दुर्भिक्षकाल ।'' (1)

सन् 1942 में लिखी -''भारत ही जीवन धन'' में भी निराला अपनी रमणीय देश की महिमा गाते हैं—'' भारत ही जीवन-धन, /ज्योतिर्मय परम-रमण, /सर-सरिता वन-उपवन।'' (2)

8.1.1.2. देश की रक्षा

ऐसी भारतभूमि की रक्षा के लिए पहले की अपेक्षा अधिक शक्ति के साथ शत्रुओं का सामना करना है: ''समर करो जीवन में/ जन के लिए कभी पीछे न रहो मन के मन से विदेश को न डरो ।'' (3)

अब शराब, रम, परी, आराम के लिए हमारे जीवन में स्थान नहीं, अब तो डटकर लड़ना है, उसी से शत्रुओं की विजय होगी :

''अगर तू डर से पीछे हट गया तो याद रहने दे ।
अगर करना है अरि की ओर तो आराम रहने दे । '' (4)

8.1.1.3. स्वाधीनता के बाद :

स्वाधीन भारत में भी निराला ने पराधीनता का अनुभव किया । स्थान-स्थान पर कांग्रेस सरकार की वह आलोचना करते हैं । एक बार उन्होंने गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा था कि ''आज जागरण के गीत गाना राष्ट्रद्रोह समझा जाता है । फिर मेरे पीछे पुलिस भी तो लगी रहती है ।'' (5) उन्होंने जागरण-गीत लिखना बंद कर दिया । उनका ध्यान मानवता की मुक्ति पर जा लगा । राष्ट्र की परिधि को लाँघकर विश्व मानवता की परिरक्षा के लिए वे प्रयत्नशील हुए ।

---

1. निराला रचनावली- 2, पृ0 65
2. '' पृ0 88
3. '' पृ0 137
4. '' पृ0 160
5. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ0 360

8.1.2. विश्व की मुक्ति

निराला को केवल भारत की चिंता नहीं थी, संपूर्ण विश्व की मुक्ति ही उन्हें अभीष्ट थी –

''बहती है समीर, पुष्प के पुण्य उर में लेती स्वाधीन साँस
पाती है सुरभि स्वाधीन गति। ...
आवर्तन - परिवर्तन - नर्तन-पुनरावर्तन में,-
विपुल ज्यालामय विश्व के कण-कण में,
सूर्य महान और क्षुद्र कण-कण में
एक स्वाधीनता का गुंजता है विपुल कर्म।'' (1)

राष्ट्रों की परस्पर शत्रुता पर निराला आशंकित थे : ''दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्ग गण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण ''
तप्त धरा को शीतल कर देने हेतु कवि बादलों को पुकारते हैं-
''फिर भर दो/ बादल गरजो!/ विकल विकल, उन्मन से उन्मन/विश्व के निदाघ के सकल जन, /आये अज्ञात दिशा से अनंत के घन! तप्त धरा, जल से फिर / शीतल कर दो :-/बादल गरजो!'' (2)

'खुल गया है' गीत में कवि प्रेम भरे पावन विश्व का स्वप्न देखते हैं।(3) अंधकार के बीच से होकर उन्हें किरणों की ज्योति भी दिखाई देने लगी है: ''फूटी ज्योति विश्व में, मानव हुए सम्मिलित/धीरे-धीरे हुए तिरोहित भाव विरोधित।'' (4)

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 120
2. निराला रचनावली-2, पृ0 35
3. '' -1, पृ0 328
4. '' -1, पृ0 259-260

सन् 42 में रचित ''जननि मोहमयी तमिस्रा'' में कवि की एक-विश्व-चेतना अधिक दृढ़ हो गयी है । अब उन्हें विश्व के विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे के अधिक निकट आते नज़र आ रहे हैं । विज्ञान के सहयोग से अब बीच की दूरी कम होती जा रही है –

''जननि मोहमयी तमिस्रा दूर मेरी हो गयी है ।
विश्व-जीवन की विविधता एकता में खो गयी है ।
देखती हूँ वही कलि-नाल-बोली-बोल जग में ।
तड़ित की रेखा खिंची है, क्रान्तिकृत्या हो गयी है ।'' (1)

विश्व की लीग की छवि में कवि भी भागीदार बनना चाहते हैं –

''विश्व की व्यापक लीग-विचार /
कहीं देखने को होंगे मुझे ?'' (2)

सन् '38 में लिखी 'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' में यूरोप और अमेरिका की निवासिनी एडवर्ड के व्यक्तित्व पर आकृष्ट हुए हैं :

''झुक रहे हैं मिले हुए सब
योरप-अमेरिका'' (3)

आश्चर्य तो इस बात में है कि राजवर्ग की परिपाटी छोड़कर कर्तव्यों का परित्याग करनेवाले गौरव को एक ओर से आदर्श पुरुष मानते हैं तो दूसरी ओर प्रेमिका के लिए सिंहासन छोड़नेवाले एडवर्ड उनके लिए मुक्त प्रणयता के अग्रदूत हैं । निश्चय ही निराला का मन इस बात में ज्यादा एडवर्ड की ओर झुका हुआ है क्योंकि धन या पद से बढ़कर उर की पुकार पर निराला का भी विश्वास था ।

- -

1. निराला रचनावली-2, पृ0 86
2. '' पृ0 122
3. '' पृ0 321

'बेला' में संकलित 'बढ़ी नलवदन हास्य' में भी देश तथा विश्व की मुक्ति पर बल दिया गया है । देश कभी भी विश्व से कट न जाये । यही कवि का ध्येय है । देश और विश्व के सम्मिलन में ही दोनों की भलाई है --

''देश विश्व मिले नहीं ;
हुए परस्पर पावन । '' (1)

8·1·3 मानव की मुक्ति :

आधुनिक कवि देश या विश्व की मुक्ति से बढ़कर मानव की मुक्ति को प्रधानता देते हैं । व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक मुक्ति के लिए उसे कर्मठ होने की आवश्यकता है । व्यक्ति की निष्क्रियता का फल जाति को भोगना पड़ता है । अन्य देशों के लोगों की तुलना में भारतीय अधिक आलसी हैं । अकर्मण्य लोगों से निराला का प्रश्न है:

'क्यों अकर्मण्य होकर बैठे,
गहता समर्थ हो व्यर्थ खबर
आये कितने, ले गये अर्थ,
बहु विषय बड़वानल - जल तर । '' (1)

मुक्तिपथ पर मृत्यु से भी नहीं डरना चाहिए । क्यों कि --
''बिना समर दुख यहाँ काम न होगा ।
बिना पसीना आये नाम न होगा । '' (2)

सन् 1945 में देश में महँगाई बढ़ रही थी, सारे देश में अकाल छा गया, लेकिन हमारे नेता कुछ कर न सके ।

1· निराला रचनावली-2, पृ० 248

2· निराला रचनावली-2, पृ० 170

'जलद के प्रति' (1923 ई०) लिखते समय देश के नेताओं से जो आशा थी वह 1945 में जाती रही —

''महँगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहर लाल '' । (1)

'विधवा', 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं का अधिकारियों पर बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ा। अतः कवि ने क्रांति का मार्ग ही अपनाया —

''जल्द - जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला। '' (2)

परंतु निराला को फूल-माल के बदले ईंट-पत्थर मिले। कवि देश को दिशा न दे सके। मृत्यु ही उनके लिए मुक्ति प्रतीत हुई —

''पत्तों से संकुल संकुल वन,
अहंकार से बाँध बाँधा मन,
नहीं डाल पर जो बैठे जन,
ऐसे जब निस्तार करी है ? '' (3)

कवि को चारों ओर दुःख प्रतीत होने लगा। दुनिया में केवल दो ही सत्य मिले — भूख और प्यास।

''बाकी कुछ है नहीं
भूख-प्यास सत्य
लो डूब रहे हैं यहीं। '' (4)

---

1. निराला रचनावली- 2, पृ० 132
2. वही, पृ० 152
3. निराला रचनावली-2, पृ० 335
4. वही, पृ० 337

फिर भी उन्होंने श्रम नहीं छोड़ा । क्योंकि वे कैवल्य मानना नहीं चाहते थे ।

''पथ पर कैवल्य न मार,
श्रम कर तू निश्रम कर,'' (1)

उनका विश्वास था कि भारत से ही संसार में सवेरा फूटेगा ।

स्वयं भारत - प्रताप सिंह कर भी भारत की चिंता करनेवाले निराला सन् 1950 में देवी से प्रार्थना कर रहे हैं -
''भारत को भारत नाम दे वारे ।''

4.1.4.1. विश्व की सब से छोटी इकाई व्यक्ति :

निराला भली-भाँति जानते थे कि देश या विश्व की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है किसी राष्ट्र या विश्व के स्वर्ग होने की बात व्यक्ति की मुक्ति पर निर्भर है । निराला का आग्रह था कि स्वर्ग का पुरस्कार हमेशा विश्व होकर रहे : (2)

4.2. रूढ़ि - भंजन :

रूढ़ि का अर्थ स्वार्थ का बंधन है और इस बंधन से मानवता को मुक्त करना ही साहित्य का लक्ष्य है । गंगाप्रसाद पाण्डेय ने लिखा है :

''किसी भी क्षेत्र में जब हम अड़ते, रूढ़ि अथवा कुरुचि और अंधकार से संघर्ष करते हैं तभी हमें स्वार्थ के बंधनों से मुक्ति मिलती है । इन्हीं बंधनों से मुक्ति का मार्ग शान्ति है और मानवता की इसी शाश्वत शांति की ओर ले जाना साहित्य का ध्येय है ।'' (3)

---

1. निराला रचनावली-2, पृ0 385
2. '' -2, पृ0 418
3. गंगाप्रसाद पाण्डेय : छायावाद के आधार स्तंभ, सं0 रामजी पाण्डेय, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 1971, पृ0 139

यह संकल्प व्यक्त करते समय पंडित के मन में निराला का चित्र कूदकर उभर आया होगा । साहित्य में ही नहीं व्यक्तिगत जीवन में भी निराला शुरू से ही रूढ़िविरोधी थे । अन्य जातियों से पानी लेने तथा कुरिया (मुसलमान) के घर जाने के अपराध में पिताजी से उन्हें कठोर दंड भोगना पड़ा था । इस बात पर रामसहाय से सारी गालियों से लदे भी थे । परंतु निराला अपने विचार से नहीं हटे । पत्नी के निधन के समय भी उन्होंने सामाजिक या धार्मिक रूढ़ियों का पालन नहीं किया । सगे-संबंधियों तथा मित्रों के सामने हास्य-पात्र बने ।

अपने कर्मों में दीनता का भाव निराला ने नहीं देखा क्योंकि उनके अनुसार ''कर्म वही ठीक है, जो ज्ञानजन्य है, अज्ञानजन्य कर्म रूढ़ि का दासत्वमात्र है । यदि शास्त्र ज्ञानजन्य कर्म का आदेश करता है, तो वह ठीक है यदि वह रूढ़ियों के पालन का आदेश करता है, तो उसका विरोध करना चाहिए ।'' (1)

अज्ञानजन्य कर्म की रूढ़ि तोड़कर उससे मानवता को मुक्त करने का प्रयास भी अपने अभ्युदय काल से लेकर अंत तक निराला ने किया था ।

वैभव का आभास जहाँ कहीं उन्हें दिखाई दिया उन्होंने उसका उचित सम्मान किया । कवि के अनुसार वैभव का आभास जिसे हो उसे नीची दृष्टि से देखने का अधिकार किसी को नहीं । वैभव-संपन्न-व्यक्ति कभी किसी की दाब नहीं मानता -

''हे वैभव का आभास
जिसे, देखा भी उसने कभी किसी की दाब ?'' (2)

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना -2, पृ० 42 से उद्धृत

2. निराला रचनावली : 1, पृ० 36

रूढ़ि के विरोध का अर्थ ज्ञान अथवा शास्त्र का तिरस्कार नहीं, इसलिए उनको ऐसे शास्त्र से या पुरातन से कोई चिढ़ नहीं। अंततः उन्होंने '[illegible]' (1) है, पुराण-पुरुषों के आशीष के लिए वे अपना सर झुका देते हैं :-

''बाहरी आडम्बर, ऐ पुरुष - पुराण,
सब वाक्यों में प्रधान।'' (2)

धार्मिक-नैतिक ढोंगों का निराला हमेशा खण्डन करते हैं। अपनी पंक्तियों से उनका कड़ा विरोध भी है। 'आवाहन' (3), 'उद्बोधन' (4), 'प्रपात के प्रति' (5) आदि कविताओं में रूढ़ि के ध्वंस का आह्वान किया गया है —

''आँखों में नव जीवन, की तू अंजन लगा पुनीत,
बिखर झर जाने दे प्राचीन।'' (6)

अपने भाव-बोध में परिवर्तन करके ज्योतिष को पूर्ण विकसित करने का प्रण 'सरोज-स्मृति' में देखा जाता है: ''...मन में बड़ी साध/ परिवर्तित करने की भाव-बंध, /देखा भविष्य के प्रति अबाध।'' (7)

कान्यकुब्ज, ब्राह्मण होकर भी उन्होंने अपने कुल की कमजोरियों का उद्घाटन किया : ''ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलांगार/खाकर पत्तल में करें छेद, इनके कर कन्या, अर्थ खेद, /इस विषम-बेलि में विष ही फल, यह दग्ध मरुस्थल, – नहीं सुजल।'' (8)

- -

1,2 : निराला रचनावली-1, पृ0 68

3. वही, पृ0 73
4. वही, पृ0 92
5. वही, पृ0 96, 97
6. वही, पृ0 92
7. वही, पृ0 299
8. वही, पृ0 302

सरोज की शादी के समय पुरोहित बनकर स्वयं मंत्र पढ़ने का कारण केवल आर्थिक अभाव ही नहीं था, बल्कि उसके पीछे ब्राह्मण वर्ग आचारों की निंदा करने का आग्रह भी था ।

बार में बार कीचड़ से हुए अपने शरीर में लगी मलिनता की परवाह किये बिना वे आगे बढ़ते हैं । अपने शरीर पर लगी मैल को हिन्दी की सेवा करने के उपलक्ष्य में मिला उपहार ही कवि मानते हैं । (1)

निराला के पूर्व हिन्दी काव्य में भारतीय परंपरा के अनुकरण का ही आग्रह होता था । परंतु निराला प्रचलित काव्य-पद्धति से हटकर अंधकार की ओर आकृष्ट हुए । प्रकाश की भांति अंधकार को चाहने वाले हिन्दी के प्रथम कवि . निराला ही हैं । अपने इस विचित्र स्वभाव पर स्वयं आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है : — अंधकार पर इतना प्यार, / क्या जाने यह बालक का अविचार/बुद्ध का या कि साम्य-व्यवहार" " (2)

भगवान बुद्ध ने भी दुःख को शाश्वत सत्य माना था ।

अपने काव्य-जीवन के आरंभ से लेकर अंधकार, असत् और विनाश की ओर निराला का विशेष झुकाव था । सन् 1923 में 'मतवाला' के लिए मोटो तैयार करते हुए उन्होंने अपने इस क्रांतिकारी दर्शन की अभिव्यक्ति किया था —

""अमिय गरल शशि सीकर रविकर राग विराग भरा प्याला
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला "" । (3)

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 256
2. निराला रचनावली-1, पृ0 97
3. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 85 से उद्धृत ।

अपनी इस प्रतिक्रांति-दर्शन के कारण — जो बाद में नये कवियों का मूलमंत्र हो गया — उन्हें कष्ट, अवसाद और बहुत अधिक सहना पड़ा। लोगों ने कुण्ठित की उपाधि दी। फूल के स्थान पर काँटे मिले। 'सिर्फ एक उन्माद'(1924) में इसकी सूचना मिलती है :

''जग अवसाद ढूँढ़ता था, पर दूर,
क्योंकि उसे कब सूक्ति - सुन्दरता ? — था मद चूर।
न देखा उसने कभी विषाद,
देखा सिर्फ एक उन्माद। '' (1)

अंधकार को, सूर्य के उस पार को देखने का आग्रह 'अनुराग' कविता में मिलता है :

''छिपा है वह अंधकार का कमल -
मुझे वही तू ही सब। '' (2)

'[illegible]' (3) कविता में भी अंधकार का महत्व स्वीकार किया गया है।

अंधकार की शक्ति को पहचानने की प्रवृत्ति पाश्चात्य साहित्य में भी विद्यमान है। शेक्सपियर के नाटकों में इसके कई उदाहरण मिलते हैं। मिल्टन के 'पाराडाइज लॉस्ट' का नायक 'शैतान' अंधकार की शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार निराला की सबसे महत्वपूर्ण [illegible] कृति 'राम की शक्तिपूजा' का रावण भी इन [illegible] नहीं है।

---

1. निराला रचनावली-1, पृ 98
2. वही, पृ० 115
3. वही, पृ० 169

भारत की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के कुछ आधुनिक कवियों में भी अंधकार के प्रति आस्था का भाव दिखाई देता है। मलयालम के मशहूर कवि अक्कित्तम तो प्रकाश को दुःख ही समझते हैं, तम में ही सुख की प्रतीक्षा करते हैं –

''प्रकाश दुःख ही है सदा
तम ही है सुखदायक।'' (1)

निराला के अंधकार का महत्व स्वीकार करने का यह अर्थ नहीं है कि अंधकार ही सर्वशक्तिमान है। उन्हें मालूम है कि अंधकार कभी शक्ति का मूल नहीं बन सकता :

''रात्रि का गीत स्वप्न भी भ्रांति
सदा अशांति।'' (2)

इसलिए वे अंधकार के उपासक नहीं बने। और वे आजन्म पर आशान्वित ही रहे ''गया अँधेरा/देख हृदय, हुआ है सवेरा''/(3)

रॉबर्ट फ्रॉस्ट की भाँति उन्हें भी अब मीलों दूर जाना था :

''जाना है बहुत दूर रे,
नहीं कहीं घाटी, नहीं दूर,
सुधा का देता, कुछ देने के लिए है,
निर्जन जीवन रहते हुए;
और कहीं डाल अपना डेरा –
गया अँधेरा।'' (4)

- -

1. ''वेलिच्चम दुःखमानुण्णी
तमस्सल्लो सुखप्रदम्।''– अक्कित्तम,
'इरुपताम् नूट्टाण्टिन्टे इतिहासम्', पंक्तियाँ
पाठिक्ष को-ऑप-लिमिटेड, एर्णाकुलम, प्र०सं०1958, पृ० 22
2. निराला रचनावली-1, 125
3. '' -2, पृ० 103

8.3 नयी नैतिकता :

नैतिकता की स्थापना में विश्व महायुद्धों ने बहुत अधिक सहयोग किया है। युद्धोत्तर परिस्थिति में पुराने मूल्य तथा नैतिक विचार इतने विघटित हो गये कि इस काल में जन-जीवन के रूप-रंग ही बदल गये। इस परिवर्तन को हमारा धार्मिक, सामाजिक या सांस्कृतिक पतन न मानकर आधुनिक परिवेश में नैतिकता के क्षेत्र में उभरी एक नयी प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। (1)

प्रथम-विश्व-युद्ध के बाद ही निराला हिन्दी में अवतीर्ण हुए। यही छायावाद का अभ्युदय-काल था। मनोरमा देवी का अंत हो चुका था, लेकिन निराला ने जवानी के प्रांगण में अभी-अभी पदार्पण किया था। मनोरमा देवी के निधन से यद्यपि वे कुछ काल के लिए काम-भावना से निवृत्त हो गये थे, स्वप्नों में मनोरमा देवी को सरस्वती देवी के रूप में देखने के अभ्यासी हो गये थे (2) तो भी ऐसी अवस्था अधिक काल तक स्थिर न रही। धीरे-धीरे उनका अभिमान टूटा। वे गतिशील हो गये। योगियों का पलायन छोड़ संसार के अधिक निकट आ गये। निराला ने काम-भाव रूप का महत्त्व भी जाना। रस और आनंद से युक्त मतवाली प्याली को पाठकों के ओठों तक उन्होंने पहुँचा दिया। उनकी प्याली की पहली मस्त मदिरा 'जूही की कली' थी : '' निर्दय उस नायक ने / निपट निठुराई की / कि झोंकों की झड़ियों से / सुन्दर सुकुमार देह सारी / झकझोर डाली, / मसल दिये गोरे कपोल गोल, / चौंक पड़ी युवती- / चकित चितवन निज चारों ओर फेर, / हेर प्यारे को सेज-पास, / नम्रमुख हँसी-खिली, / खेल रंग, प्यारे संग। '' (3)

---

1. डॉ० रामदरश मिश्र: हिन्दी कविता: तीन दशक, पृ० 120-21
2. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-1, तृ०सं० 1979, पृ० 37
3. निराला रचनावली-1, पृ० 31

इस 'मतवाला' के काल में ही गीत में भी दर्शन का ध्यान रहा। अद्वैत-दर्शन से कवि ने इस शृंगारिक कविता का संबंध जोड़ दिया। 'तुम्हीं हो ज्योतिर्मयी' का भाव भी इसमें व्यंजित किया गया। 'जुही की कली' की कला पर कवि की अपनी राय है : '' यहाँ, जुही की कली में, कला मुक्ति से बालापन में आती है— यह उसका क्रम-परिणाम है। x x कली की मुक्ति-ज्ञान-विस्मृति- मन के अंधकार से बाहर है बालापन — ज्ञान - परिचय - प्रिय-साक्षात्कार - मन का प्रकाश - खिलना। कली सोती से जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या भी सामने आती है या नहीं, देखें। x x x मैं यहीं से परिणति करता हूँ और उत्कृष्ट कला का एक उदाहरण ''तुम्हीं हो ज्योतिर्मयि'' की छाया उतारते हुए यह साकार है या नहीं, परीक्षा करें। यही दृष्टि रूप और प्रिय-परिचय व्याप्ति है। '' (1)

वीणा और गीत का अद्भुत सम्मिलन 'रसिका' (2), 'रेखा', (3) 'छपकर' (4), मेरे प्राणों में आओ' (5) 'प्यार करती हूँ अलि' (6) ''मौन रही हार '' (7) आदि कविताओं में हुआ है :

''काम नहीं था बदा किया था,
सिर्फ स्वर्ग था बाँध लिया था,
नहीं याद कुछ कि क्या किया था,
हुई जीत या हार। '' (8)

- -

1. 'मेरे गीत और कला'
निराला रचनावली-5, पृ0 407
2. निराला रचनावली -1, पृ0 80
3. '' पृ0 139
4. '' पृ0 175
5. '' पृ0 199
6. '' पृ0 203
7. '' पृ0 240
8. '' पृ0 203

यौवन से इतर संयोग का सुन्दर चित्रण भी निराला ने किया है :

''प्रिय-कर-कठिन-उरोज-परस, कस कसक मसक गयी चोली,
एक-वसन रह गयी मन्द हँस, अधर-दशन, अनबोली,
कली-सी काँटे की तोली । '' (1)

ऐसे वर्णन में अश्लीलता का भान कवि ने नहीं देखा, क्योंकि उस सजनी की यह सुरति दशा पति-आलम्बन के माध्यम से हुई थी निराला के अनुसार पति मनन से मानवी देवी बन जाती है । (2)

निराला में पवित्रता का आग्रह छायावाद-काल के अंत तक रहा । '' सीमाएँ पार करने पर भी रीतिवादी कवियों की तरह निराला कामोत्तेजना का वातावरण नहीं जुटाते, उत्तेजना नियमित रखते हैं जिससे उनके शृंगार-काव्य में एक प्रकार की उदात्त भंगिमा के दर्शन होते हैं । '' (3)

सन् 1937 में लिखी गयी 'तोड़ती पत्थर' में अपनी नायिका के भर बँधे यौवन को कवि ने अनदेखा नहीं किया है । स्वयं कवि भी ऐसी कथा पर मुग्ध हो जाते हैं : ''भरा यौवन' अनदेखा नहीं : ऐसी पवित्रता है ।''(4)

निराला की कला ने उस मजदूरिन के परिपुष्ट अंगों को नहीं, उसके अंतर को छुआ है । उनका ध्यान उस युवती की परिस्थितियों पर जा लगा ।

लेकिन दो वर्ष बाद दूसरे महायुद्ध के प्रारंभ काल में लिखी गयी रचनाएँ निराला की परिवर्तित नैतिक मान्यताओं की सूचना देती हैं ।

- -

1. निराला, रचनावली-1, 'मेरे गीत और कला', पृ0 212
2. " " -3, पृ0 415
3. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-2, पृ0 198
4. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ0 123

सन् 1939 में लिखी 'प्रेमसंगीत' में यह स्वीकार करने में कवि को कुछ भी संकोच न हुआ कि ब्राह्मण होकर भी वे घर की पनिहारिन पर मरते हैं।(1) अब अपनी आत्मा को धोखा देने के लिए कवि तैयार नहीं।

कवि का सौंदर्य-बोध भी बदल जाता है। नीची जाति की, काली रंग-की होने पर भी कवि उसकी ओर खिंच जाते हैं।

''कोयल-सी काली, अरे, /चाल नहीं उसकी मतवाली, / ब्याह नहीं हुआ, तभी भड़का, / दिल मेरा, मैं आहें भरता हूँ।'' (2)

अब उन्हें छायावाद की संकोचशीलता या रहस्य-भावना की आड़ में मुँह छिपाने की आवश्यकता नहीं रही।

इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली युवती का अंधा यौवन ''खजोहरा'' (सन् 1941) की [illegible] आदी हुआ तक अति-[illegible] पूर्ण रूप से छूट जाता है। लेकिन उस समय सौंदर्य का आवाहन कवि स्वयं करना नहीं चाहते। सूर का कन्हैया या रवीन्द्रनाथ का मदन उन्हें नहीं जँचता है। यह स्थान खजोहरा को दिया गया है। [illegible] जैसी कुरूपा में भी कवि ने सौंदर्य का दर्शन किया है।

3 अप्रैल, 1941(3) में लिखी गयी 'कुकुरमुत्ता' व्यंग्य-कविता से लेकर निराला के भावबोध में जो विकृति और मोहभंग आये हैं, उनके पीछे युद्धकालीन परिस्थिति का बहुत बड़ा हाथ है। परिस्थिति के अनुकूल बेकारी, [illegible] आदि पर कवि का विश्वास हिल रहा था, उसको उन्होंने उपहास का पात्र बनाया, प्रगतिवाद के नाम पर मनमाना कायदा [illegible] लेखकों की खिल्ली उड़ायी, टी॰एस॰ इलियट का अनुकरण करनेवाले, आधुनिक

- -

1 व 2 : निराला रचनावली-2, पृ० 29

3. निराला रचनावली-2, पृ० 57

कवियों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा । प्रगतिवादियों के साथ-साथ सर्वहारावर्ग के प्रतिनिधि कुकुरमुत्ते पर भी उन्होंने व्यंग्य कसा । यहीं भी कुछ साबित करके आखिर कवि ने अपने को श्रेष्ठ स्थापित किया ।

'रुई का मैं ही मसूना/ कान में हूँ मैं ही घूमा', (1) 'सब समय जैसे रकीब/बैलों में सन्त जैसे खुशनसीब' (2) 'नहीं मेरे हाड़, काँटे, काठ या, / नहीं मेरा बदन आठों गाँठ का' (3) आदि प्रयोगों में उपहास की भंगिमा ही अधिक है ।

नयी परिस्थिति में नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण भी बदल जाता है । 'तोड़ती पत्थर' में निराला ने सर्वहारावर्ग की मजदूरिन पर जो सहानुभूति दिखाई थी, वह 'खजोहरा' में आकर उपहास का रूप ग्रहण करती है । 'स्फटिक शिला' में स्त्री पर उससे भी कड़ा व्यंग्य हुआ है । माता सीता जैसी स्त्री को, जो मनहार जाती थी, कवि, जवानी की आँखों से देखने लगते हैं । 'स्फटिक शिला' का यह चित्र नैतिकता की तत्कालीन सभी मान्यताओं को पार कर गया था । निराला के इस नये मार्ग को आदर्श मानकर कुछ प्रगतिवादी कवि आगे बढ़े/उन्होंने पौराणिक मिथकों को स्वीकार करके आधुनिक परिवेश के अनुकूल उनमें आवश्यक परिवर्तन करके नये मूल्य संस्कारों से उन्हें भर दिया है । दुष्यंतकुमार की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''गर्भवती मेरी कुंठा कुमारी कुन्ती
बाहर आने दूँ तो लोक-लाज मर्यादा
भीतर रखने दूँ तो घुटन-सहन से ज्यादा ....'' (4)

---

1. 'कुकुरमुत्ता', निराला रचनावली -2, पृ० 47
2. वही, पृ० 47
3. वही, पृ० 49
4. दुष्यंतकुमार : सूर्य का स्वागत, पृ० 11

पौराणिक पात्रों की निंदा करना या उन्हें नीचा दिखाना नये कवियों का उद्देश्य नहीं है । ईमानदारी के साथ अपनी संवेदनाओं को प्रकट करने की आकांक्षा से उन्होंने प्रकट की है । नयी अनुभवों और आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों से प्राप्त जानकारियों के बल पर अछूते क्षेत्रों को छूने, पौराणिक घटनाओं तथा व्यक्तियों पर पुनर्विचार करने का प्रयत्न ही उनकी ओर से हुआ है । जिन धार्मिक विश्वासों ने, पवित्रता के विचारों ने कवियों को कुछ क्षेत्रों से दूर रखा था, उनमें भी नये कवियों का प्रवेश हो गया । यद्यपि यह एक सुनियोजित आन्दोलन न था, समयानुकूल साहित्य में आया नया परिवर्तन था, तो भी संवेदनशील निराला ही इस नये परिवर्तन के भी पथप्रदर्शक स्वीकार किये गये ।

निराला मशाल लेकर आगे-आगे चले, पदच्युत कभी न हुए । जिस प्रकार वे अपने जीवन में कभी-कभी उच्छृंखलता के शिकार हो जाते थे और जल्दी ही प्रकृतिस्थ भी, उसी प्रकार साहित्य में भी मानसिक विचलन के शिकार बनते - बचते थे —

'"कहीं से नहीं कदम डिगता,
कुछ भी शंकित नहीं डरता ।
मधुर उठे हुए स्तनों पर पड़ी की निगाह
चोंच दो वक्ष को, नहीं है ऐसी कोई चाह
देखने की मुड़ी ओर
जिनसे थे लिये स्वाद, लौटे जिनसे कठोर'' । (1)

यह निराला के स्वभाव की विशेषता रही कि जल्दी ही उनका संतुलित मन से अपनी विकृतियों पर पछताने लगते हैं :

- -

1. निराला रचनावली -2, पृ० 75

''मेरा मन कांप उठा,
याद आई जानकी, कहा, सुन राम की,
वैसे छिपे हैं दर्शन। '' (1)

डॉ० रामविलास शर्मा ने 'स्फटिक शिला' में निराला को रवीन्द्रनाथ की विजयिनी की ओर लौटते देखा है। उन्होंने लिखा : ''भोग और भोगेच्छा के बीच निराला का मन कैसे झूलता था, यह कविता उसका प्रमाण है। रवीन्द्रनाथ की विजयिनी का सपना आँखों से मिटता नहीं, 'अनामिका' में उसका रंग-रूप, रेखाएँ, सब कुछ यत्नपूर्वक मिटा दिया; 'स्फटिक शिला' में वे रेखाएँ फिर उभर आईं, उनमें रंग-रूप भर गया, सपना फिर साकार हुआ। '' 2)

भोग और भोगेच्छा के बीच निराला का मन झूलता ही अवश्य था, पर एक व्यक्ति का मन यही करता रहता है। लेकिन रवीन्द्रनाथ की नायिका को ''स्फटिक शिला'' की नायिका के समकक्ष किसी का मन पसन्द नहीं करता। इन दोनों नारियों में जमीन आसमान का फरक है। 'स्फटिक शिला' के अंतिम भाग में ही निराला ने चमत्कार वाली वास्तविक अपनी नायिका को प्रस्तुत किया है। उसके आकार को अलौकिक सिद्ध करने की चेष्टा कहीं नहीं हुई। उसके सौंदर्य पर नहीं उसके स्वभाव पर ही कवि की दृष्टि अधिक लगी है : '' बीस की युवती पर/ आई थी जो नहा कर, / गीली धोती सटी हुई भरी-देह में, सुघर/ उठे कुचकलश, दुष्ट मन को मारकर, / आयत दृगों का दुख ढका हुआ, लेता कर/जो कुछ अपना पर। '' (3)

- -

1. निराला रचनावली- 2, पृ० 75
2. '' पृ० 75
3. डॉ०रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना -2, द्वि०सं०1981, पृ० 228

प्रस्तुत पंक्तियों में से केवल ''श्यामल दृगों का मुख खुला हुआ, सेता घर/ जो कुछ अपना-पर।'' को लेकर यह कहना कि अब भी विजयिनी का अपना निराला की आँखों से मिटता नहीं, उचित नहीं है। 'निराला-रचनावली' में 'सेता घर, जो कुछ अपना-पर' पंक्ति छोड़ दी गयी है।(1) कामोत्तेजना का संचार करने वाले मांसल सौंदर्य मात्र पर कवि का ध्यान टिका हुआ है। कहीं दिव्य या अलौकिक सौंदर्य का आभास नहीं होता। 'प्रेमसंगीत' में भी निराला अपना देख रहे हैं। काली, सीधी ब्राह्मण की लड़की का। 'स्फटिक शिला' में भी वे अपना देख रहे हैं, लेकिन रवीन्द्रनाथ की विजयिनी को नहीं। 'प्रेमसंगीत' से लेकर 'स्फटिकशिला' तक एक ही कामचेतना का क्रमिक विकास दिखाई देता है।

नयी नैतिकता का यह सिलसिला से स्पष्ट करने की सुविधा निराला को अपनी गद्य कृतियों में ही मिली है। मद्य, मदिरा और मदिरालय की बात में वे अद्भुत ढंग की अपनाते जाते थे। प्रभावती जैसी कुलीन-राजकुमारियों के हाथ में पहली रात में मदिरा की प्याली देकर इस प्रकार से नैतिकता की तत्कालीन मान्यताओं में उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया।(1)

वेश्याओं से निराला का निकट का संबंध था। वेश्या-गमन उनकी दृष्टि में कोई बड़ा पाप नहीं था। '' यह कुछ भी अपनी सफाई देते हुए कहते - शिव क्या है? जैसे पाखाना और पेशाब। कोई कब तक रोके रहे।'' (2)

वेश्या की सुशिक्षा बेटी को घृणा की दृष्टि से देखना उनके अनुसार अन्याय था। निराला ने तो उसे राजकुमारी का-सा स्थान देकर सम्मानित किया। (3)

- -

1. 'प्रभावती', निराला रचनावली-3, पृ0 255
2. डॉ0 रामकुमार वर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 227
3. 'अप्सरा', निराला रचनावली-3, पृ0 17, 40

नयी नैतिकता की स्थापना का सबसे अधिक आग्रह निराला के उपन्यास 'कुल्ली भाट' में पाया जाता है । यौन-वर्जनाओं को न माननेवाले कुल्ली के विविध व्यवहार का वर्णन निराला ने जिस कलात्मक ढंग से किया है, उसकी बराबरी हिन्दी के आधुनिक उपन्यासकारों में कोई भी नहीं कर सका है । अनैतिक या अश्लील व्यापारों का चित्रण करते समय कुशल साहित्यकार बड़ी सावधानी से काम लेता है । इस स्थिति में प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार डी०एच०लॉरेंस के अनुभव का उल्लेख आल्डस हक्सले ने किया है :

" for the literary artist, the problem of communicating sexual experience is in someways even more difficult than the problem of communicating mystical experience." (1)

इस असाध्य कार्य पर निराला ने बड़ी कुशलता से अधिकार कर लिया ।

कुल्ली-भाट की कामपरता का दुष्परिणाम यही निकला कि वह यौन-रोग से पीड़ित हो गया । उस महान व्यक्तित्व में यह चन्द्रमा में कलंक जैसा था ।

यौन रोग, समलिंगी मैथुन, बलात्कार आदि गुप्त बातों का उचित कम शब्दों में इतनी तीव्रता तथा प्रभावकारी ढंग से हिन्दी में अन्य किसी लेखक ने इससे पूर्व नहीं किया है । लेकिन नवलेखक इस राह से चलकर

- -

1. Aldous Huxley: Literature & Science, Chatto & Win London, 1963, P. 23.

सभी मर्यादाएँ लाँघकर अंततः कुत्सापूर्ण वर्णनों में रम गये । कथा-जगत में ही नहीं काव्य में भी यौन वर्णनों की धूम मच गयी । ये यौन विकृतियाँ साठोत्तरी कविता में , बाहर से आयी नयी पीढ़ियों की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों के प्रभाव से अधिक जटिल हो गयीं ।

परंतु आज की कविता संतुलन का भाव लेकर आयी है । इस कारण प्रयोगवाद काल में नैतिकता की जो क्षति और यौन-विकृतियों की जो अति हुई थी , नयी कविता के काल में दूर हो गयी । समाज के प्रति दायित्व का भाव आज के कवियों में ज़्यादा दिखाई देता है । आधुनिक कवि घूम-फिरकर अंततः निराला के दिखाये मार्ग पर आकर रुक गये हैं ।

8.4 नया मानवतावाद :

पारलौकिकता के नाम पर जीवन की समस्याओं से मुँह मोड़ने की जो प्रवृत्ति हमारी जनता में बद्धमूल हो गई थी स्वामी विवेकानंद ने उस पर प्रहार किया था । स्वयं वैरागी रहकर भी स्वामी जी ने संसार के दुख-दर्दों की बड़ी चिंता रखी , दीन-दुखियों की सेवा की । विवेकानंद - दर्शन से प्रभावित निराला भी - 'माया' कहकर - मानव के दुख-दर्दों की उपेक्षा नहीं कर सके । दरिद्र-नारायण की सेवा ही उन्हें नारायणोपासना से अधिक अच्छी लगी —

''उनके निकट सदा मैं धाम ,
लगाया उसे गये हैं राम ।
सेवा माया में ? निष्काम ,
कहो , कैसे फिर भक्ति रम जाय ?'' (1)

संसार की आलोचना करके वैराग्य की शरण लेनेवाला मनुष्य उनकी

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 35

साहित्य का केन्द्रबिन्दु नहीं है। "(1) मानव की महत्ता पर उनकी आस्था सुदृढ़ थी। लेकिन पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए भारतीयों को अपनी शक्ति की पहचान नहीं थी, आत्मविश्वास न था। "जागो फिर एक बार-2" में अंग्रेजों के विरुद्ध समर का आह्वान ही न था, मानवता का समर्थन करना भी उसका उद्देश्य था। भारत का मानव ब्रह्मत्व का अधिकारी है। परंतु वह गुलाम का-सा जीवन बिताता है। विदेशियों के सामने हाथ पसारता है। पश्चिम की उक्ति पर ही उसका विश्वास है, 'गीता' की उक्ति पर नहीं —

'योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं —
गीता है, गीता है —
स्मरण करो बार-बार —
जागो फिर एक बार। " (2)

यह भी समझ लो कि तुम ब्रह्म हो —

"तुम हो महान, तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम। " (3)

गरीबों की पुकार 'भिक्षुक' लिखने से पहले ही निराला सुनने लगे थे।(4) पर अब कुछ वर्षों [illegible] कुर्सी से चिपकनेवाले भिक्षुक की उत्पत्ति

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-2, पृ० 159
2. निराला रचनावली : 1, पृ० 142
3. वही, पृ० 143
4. 'गरीबों की पुकार', निराला रचनावली-4, पृ० 57

देख कर प्रभावित हो उठे । सभ्य मानव तो ऐसे लोगों पर रहम नहीं करते, जानवर भी उनको अपना शत्रु समझते हैं —

''चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए । ''(1)

अब दाता कोई न रहा । विधाता ने पहले ही उन्हें छोड़ दिया था । कुत्ते भी लड़ने के लिए खड़े हुए हैं । लेकिन शक्तियों के विरुद्ध जन सामान्य के लिए लड़ना कवि का कर्तव्य हो जाता है । पीड़ितों का प्रतिनिधि बनकर निराला विप्लवी बादलों का आह्वान करते हैं । और वज्र-हुंकार से या अशनिपात से उन्नत भूधर ही हिल जाते हैं, लघुओं की कोई हानि न होगी :

''हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार — / शस्य अपार, / हिल-हिल/ खिल-खिल/हाथ हिलाते, / तुझे बुलाते, / विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते । '' (2)

'लघु' की रक्षा के लिए निराला ने स्वयं गाँव में जमींदारों के विरुद्ध किसानों का संगठन किया था । पर किसानों से पूर्ण सहयोग न मिलने के कारण वे असफल हो गये । फिर भी निर्धन, निम्नवर्ग भारतीय जनता का जीवन-संघर्ष ही उनके मानवतावाद की अन्तर्धारा रही । - (3)

'अधिवास' कविता में जिस उद्देश्य से अपने दुखी भाई के लिए ब्रह्म को भी छोड़ने को निराला तैयार हुए थे उसी उद्देश्य से बचपन की घी में पकायी कचौड़ी भी उन्होंने छोड़ दी । तेल में भुनी मात्र कचौड़ी ही उन्हें अच्छी लगी ।

- -

1- निराला रचनावली-1, पृ0 65
2- 'बादल-राग-6', निराला रचनावली-1, पृ0 123
3- डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-2 पृ0 165

'अधिवास' में अपने दुखी भाई पर प्रकट की गयी सहानुभूति ही कवि की प्रगति की (साहित्यिक प्रगति की भी) अर्गल कर देती है । 'अधिवास' से 'गर्म पकौड़ी' तक आते आते उनके भाई की प्रतिमा भी बदल गयी । सन् 1923 (1) का 'सामान्य' सन् 1939 - 40 (2)(3) में 'लघु' का रूप धारण कर गया । कवि को यह भी मालूम हो गया कि 'जनसामान्य' या 'लघुमानव' का समर्थन करने से भिन्न-भिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । फिर भी नमक-मिर्च की गर्म पकौड़ी को उन्होंने छोड़ा नहीं, दाढ़ के तले उसे दबा ही रक्खा : ''पहले तू ने मुझको खींचा, / दिल लेकर फिर कपड़े-सा फींचा, / अरी, तेरे लिए छोड़ी/ बम्मन की पकाई/मैं ने घी की कचौड़ी । '' (2)

लघुमानव की प्रतिष्ठा करने का भाव 'कुकुरमुत्ता' में भी पाया जाता है । निराला पुरुष मानव को ही देखते हैं, उसकी राजनीतिक कुचालों से उनका कोई वास्ता नहीं । उनके व्यंग्य प्रहारों से 'कैपीटलिस्ट' भी बचता नहीं :

''देखो कैपीटलिस्ट का बचपन देते ही/ रोका नहीं रुकता कौन का मारा/ वहीं से यह कुछ हुआ / जैसे अम्मा से बुआ ।'' (3)

निराला के इस पुरुष लघु मानव को आखिर गुलाब के प्रेमी नवाब भी पसंद करने लगे। कविता की आधुनिक यथार्थवादी प्रवृत्तियों की ओर पुराने रोमानी सौंदर्य के प्रेमी भी आकृष्ट होने लगे । नवाब ने माली को गुलाब के स्थान पर कुकुरमुत्ता लगाने की आज्ञा दी : ''चल, गुलाब जहां थे, उगा सब के साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता । ''(4)

- -

1. 'अधिवास ' कविता, निराला रचनावली-1, पृ0 36
2. 'प्रेमसंगीत', निराला रचनावली-2, पृ0 29
3. 'गर्म पकौड़ी' निराला रचनावली-2, पृ0 41
4. वही , पृ0 41-42

विदेशों से आनेवाली आधुनिकता का अंधानुकरण निराला पसंद नहीं करते हैं। ''चली गोरी बगी लेके किटेटर/बगल उसके पीछे लेके बुलडॉग क्लीपियर/उसके पीछे कुल फिनिशिंग टेरियर–/आधुनिक पॉमेट पीछे बीबी बगल की सोफ्या/बिस्टिकिट कोट। (1)

लघुमानव की पीड़ित आत्मा का रेखांकन उसकी उच्च स्तर में ''रानी और कानी'' में व्यक्त हुआ। इसमें प्रस्तुत व्यंग्य अनीति ढंग का है। करुण और हास्य इतने घुलमिल गये हैं कि एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। पाठक ऐसी दुविधा में पड़ जाता है कि वह रो भी नहीं सकता और हँस भी नहीं सकता। करुण-हास्य के उच्च स्तर से पाठक का दिल भारी लगता है। वह अंदर ही अंदर घुटता है।

रानी कानी होकर भी घर का सारा काम करती है, छीनती है, कूटती है, पीसती है, परंतु पड़ोसिन से यह सुनकर कि रानी का ब्याह होना उसके कुछ अंग काँप उठते हैं। उसे अपने भविष्य की नहीं माँ के दुःख की चिंता है। उसकी दायीं आँख से आँसू फूट पड़े। ''सुनि कुछ कहकर/ दायीं आँख से/ आँसू भी बह चले माँ के दुःख से, / लेकिन वह बायीं आँख कानी/ ज्यों-की-त्यों रह गयी रखती निगरानी।'' (2)

'खजोहरा' की नायिका भी लघुमानव का प्रतिनिधित्व करती है। अपनी नायिका के वर्णन में विरूपता की ठीक विपरीत दिशा में निराला चलते हैं। निराला की कविता में चन्द्र-मुख या कमनीय नैन नहीं, जूड़ा अथवा वेणी नहीं, वेणी में कुछ मेंढी है: ''जूड़ा ताक में ऐसी वैसी इधर-उधर, /डर के मारे आयी दूना पानी, /जहाँ कहीं चढ़ने की तिमारी पर, / दौड़ चली जूड़ा ले बाँहों से पकड़।'' (3)

- -

1. निराला रचनावली-2, पृ० 55
2. '' पृ० 32
3. '' पृ० 61

इसका भावनिष्ठा लहरों की बातों में भरने की कोशिश इसकी सामग्री प्रस्तुत करती है । रवीन्द्रनाथ ने भी निर्झरिणी के तट में बैठने की बात में लहरों का वर्णन किया है, लेकिन निराला के चित्रण में जो स्वाभाविकता आयी है, यथार्थ की गंध आयी है, वह रवीन्द्र नाथ के वर्णन में नहीं। निराला की नायिका को देख लहरें डर के मारे काँप उठीं तो रवीन्द्र की निर्झरिणी के सामान्य से बाहर होने की विरह-पीड़ा के कारण नदी-हृदय भी काँप उठा । ये दोनों अलग विरोधी भाव लेकर आये हैं । रवीन्द्रनाथ की 'निर्झरिणी' का अनुवाद निराला ने ही यों किया है : ''वियोग से नदी-हृदय कंपित कर, / तट पर छाया-वारण-रेखाएँ निज अंकित कर, / जल-धार व्याकुल चली वह धीरे- धीरे/ सिन्धु-वक्ष की ओर, /मन मलिन काया धूलों में, / देख दूर्वा की कोर ।'' (1)

इस दिव्य सौंदर्य के सामने सुधा का रूप एक चुनौती है । सुधा की दृष्टि आधुनिक काव्य में वस्तु की प्रतिष्ठा करती है । उन दिनों (1924)(2) रवीन्द्र की कविता के रोमानी सौंदर्य ने निराला को मोहित कर लिया था लेकिन सन् 1939[3] से लेकर कवि का सौंदर्य बोध ठोस धरती दिशा में चलने लगा ।

इस प्रकार निराला एक ओर नयी यथार्थवादी शैली को अपनाते जाते हैं तो दूसरी ओर उसके समानान्तर छायावादी शैली में भी दलितों पर सहानुभूति प्रकट करते आये हैं । 'अर्चना' में संकलित 'दलित जन पर करो करुणा' (सन् 1950) दीन-दलितों के लिए प्रभु से की गयी विनती है : ''दलित जन पर करो करुणा/ दीनता पर उतर आये/प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा । '' (4)

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 369
2. 'निर्झरिणी' कविता की अनुवाद-कथा-निराला रचनावली-1, पृ0 369
3. 'प्रेमसंगीत' का रचनाकाल ।
4. निराला रचनावली-2, पृ0 33

समाज में दानवों की संख्या कम नहीं है । निराला की आँखें उन पर पड़ी हैं । सन् 1945 में वे लिख रहे थे : ''जो जन-जीव से हुआ दूर, / जो पुण्य बोलकर हुआ क्रूर, / उनकी मानवता से दानव/ अपना जीवन-क्रम तोड़ चुके । '' (1)

रचनाक्रम से निराला प्रतिनिधि बने।उनसे उन्हें आत्मीयता की अधिक आशा थी । अपनी लंबी कविता 'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' में कवि ने एक साधारण किसान को नारदजी से भी श्रेष्ठ साबित किया है । एक बार नारद ने भगवान से पूछा कि मृत्यु-लोक में आपके सबसे बड़े भक्त कौन हैं ? विष्णु ने एक सामान्य किसान का नाम बताया । नारद उसकी परीक्षा लेने गये । खेत में काम करनेवाले उस किसान ने दिन में केवल तीन ही बार भगवान का नाम लिया था । नारद जी असंतुष्ट होकर विष्णु के सामने लौट आये । नारद का संदेह दूर न हुआ था । विष्णु ने नारद के हाथ में तेल पूर्ण पात्र देकर एक बूँद भी बिना गिराये एक बार भूमंडल की परिक्रमा करके आने को कहा । नारद ने वैसा ही किया । भगवान ने पूछा : ''पात्र लेकर जाते समय कितनी बार अपने इष्ट का नाम लिया ? ''

''एक बार भी नहीं, ''

नारद ने सोचा था कि भगवान का दिया हुआ काम है, तब किसी रूप से नाम लेने की क्या ज़रूरत ?

''विष्णु ने कहा, ''नारद, / उस किसान का भी काम मेरा दिया हुआ है, / उत्तरदायित्व कई लादे हैं एक ही था, / सब को निबाहता और/ काम करता हुआ / नाम भी वह लेता है, / इसी से है प्रियतम।'' (2)

- -

1. 'मिट्टी की माया छोड़ चुके,' निराला रचनावली-2, पृ० 133
2. निराला रचनावली-2, पृ० 99

निराला अविनाश काल से लेकर अंत तक ऐसे मानव की कल्पना कर रहे थे जो यदि जीवन और उसे जीवन पर विश्वास रखता हो —

''व्याकुल जीवन, उषा जीवन
होगा चेतन का आवाहन ;
हिंसा की ज्योति , कम्पन ,
होगी कविता होली दुलार । '' (1)

निःसंदेह ''निराला का मानवतावाद हिन्दी साहित्य में उनके अभ्युदय काल से आरंभ होता है और अंतिम दौर तक निरंतर गहरा होता जाता है । '' (2)

8.5 वर्तमान पर भरोसा :
- - - - - - - - - - - - - आधुनिकता का आधार आज की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान है । (3) इस परिज्ञान के बल पर वह वर्तमान के प्रत्येक क्षण को सत्य मान कर उसमें जीता है । उसके लिए अतीत मरा होता है, विस्मृति में विलीन हो चुका है, भविष्य अदृष्ट है , वर्तमान-क्षण का अनुभव ही एकमात्र सत्य है । आस्तिक और नास्तिक के लिए क्षण निरंतर है । यदि किर्कगार्द हो या सार्त्र मानव-अस्तित्व को ही एकमात्र सत्य मानते हैं । लेकिन निराला की आधुनिकता केवल वर्तमान-बोध से परिपूर्ण नहीं होती । वे परंपरा या अतीत से एकदम कटे हुए नहीं हैं और उनका कभी भविष्य पर विश्वास मिटा भी नहीं । उनके लिए वर्तमान केवल अतीत और भविष्य को मिलानेवाला तत्त्व है । केवल और भविष्य की मिलानेवाली पुल है नहीं (4) अतीत, वर्तमान और भविष्य को मिलानेवाली पुल से उनकी गति थी ।

- -

1. निराला रचनावली-2, पृ0 166
2. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ0 159
3. डॉ0 नगेन्द्र: शैली और सिद्धांत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली पृ0 203
4. आधुनिक लोकप्रिय कवि: अज्ञेय, सं0 विद्यानिवास मिश्र, पृ0 80-81 ।

अतीत तथा भविष्य से निराला ने रागात्मक संबंध ही जोड़ लिया था। वे वर्तमान आगे की ओर देखते हैं और पुरातन की उपेक्षा बड़ी सावधानी से करते हैं। निराला का पुरातन सारे संसार को भव-बंधन से मुक्त कर देने की शक्ति रखता है: ''पतन संघात के साथ ही/परिमल-पराग-सम अतीत की विभुक्ति-रज-/आशीर्वाद पुरुष-पुरातन का/भरती सब देशों में, / क्या है उद्देश्य तब ? / बन्धन-विहीन भव ।/ढीले करते हो भव-बंधन नर-नारियों के /'' (1)

लेकिन अतीत के अमान्य तत्वों पर ही प्रहार पर ही- उनकी आस्था है :

''मन्द उठा तू बन्ध-बन्ध पर अटकनेवाली तान
विश्व की नश्वरता कर नष्ट,
जीर्ण-शीर्ण जो, दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट ।'' (2)

यौवन मद की बाढ़ के समान निराला की वाणी की गति प्रबल वेग से होती है । यह धारा कमल-सी कह उठती है-''यह जीवन की प्रबल उमंग, /जा रही मैं मिलने कैसे, / पार कर सीमा, / प्रियतम असीम के संग ।'' (3)

यहाँ प्रियतम, असीम आदि शब्द रहस्यवाद के सूचक नहीं । अज्ञात भविष्य के द्योतक हैं ।

व्यक्ति-जीवन में भेद, दुःखमय अनवरत कर्मों की कीच करनेवाली के साथ दुःख ही लगता है, यह उनकी नियति है । इस अस्तित्व-दुःख से उसे मुक्ति नहीं । यह अनास्था को जन्म देता है । व्यक्ति की चिन्ताग्रस्त

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 69
2. '' पृ0 92
3. '' पृ0 71

असमर्थ और एकाकी बना देता है। निराला को अपने अभ्युदय काल में ही ऐसे अनुभवों का सामना करना पड़ा। लेकिन उन्होंने उसकी परवाह नहीं की '' अपने लिए और उत्पीड़न, /किन्तु, छोड़कर आशीषें केवल, / सबको भरा-भरा जीवन ।x x x जग-उपवन गूंजता था, पर दूर, / क्योंकि उसे कब पुलक-चुम्बन ? – था वह क्रूर/ न देखा उसमें कभी विकास, / देखा सिर्फ एक उन्माद ।'' (1)

7.5.1. अंतर अंतर का टूटना

यद्यपि निराला ने विषाद के स्थान पर उन्माद की बात कही है तो भी परवर्ती कविताओं से पता चलता है कि वे अंतर-अंतर टूट रहे हैं, उन्माद एक दिखावा था। अपनी व्यथियता को आराध्य देव के सामने ही वे खोल देते हैं। 'भर देते हो' की पंक्तियाँ देखिए: '' भर देते हो/ बार-बार प्रिय, करुणा की किरणों से/ क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।/मेरे अंतर में आते हो देव निरंतर, / कर जाते हो व्यथा-भार लघु/बार-बार कर-कंज बढ़ाकर, / अन्धकार में मेरा रोदन/सिक्त धरा के अंचल को / करता है क्षण-क्षण/कुसुम-कपोलों पर वे लोल-शिशिर-कण, / तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो, / नव प्रभात जीवन में भर देते हो।'' (2)

यह कविता उसी वर्ष लिखी गई जिस वर्ष 'सिर्फ एक उन्माद' रचित हुआ था।

कवि को अपने दुःख से तात्कालिक मुक्ति मिल गयी। वर्तमान पर भरोसा बढ़ा:

'मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण, / इसमें कहाँ मृत्यु/ है जीवन ही जीवन/ अभी पड़ा है आगे सारा यौवन ; / स्वर्ण-किरण-कल्लोलों पर बहता रे यह बालक-मन '' (3)

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 98
2. " " पृ0 100

भविष्य को भी बड़ी आशा से देखने लगते हैं —'' मेरे ही अविकसित राग से/विकसित होगा बंधु दिगंत/ अभी न होगा मेरा अन्त ।''(1)

लेकिन स्वार्थी दुनिया कवि के मार्ग में रोड़ा अटकाती ही रही । वर्तमान समाज का सच्चा चित्र देख कवि का मन कुंठित होता रहा: ''यहाँ कभी मत आना, / उत्पीड़न का राज्य, दुःख ही दुःख/ यहाँ है सदा उठाना, / क्रूर यहाँ पर कहलाता है शूर, / और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर ; / स्वार्थ सदा ही रहता परार्थ से दूर, / यहाँ परार्थ वही, जो रहे/ स्वार्थ से ही भरपूर , / जगत की निद्रा, है जागरण/ और जागरण, जगत का- इस संसृति का/ अंत-विराम-मरण । ''(2)

8.5.2. आशा का मिलना तथा खोना

निराला की आगे की कविताओं में इस प्रकार आशा के मिलने तथा खोने का दृश्य निरंतर अंत तक दिखाई देता है :

''आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह की आली, खिली झर जाती है । '' (3)

सन् 1925 में ही अपने दिनमान को डूबते कवि ने देखा । उनका यह दुःख कल्पित न था । भोगा हुआ सच ही था : ''मास-मास दिन-दिन प्रतिपल/उगल रही ही गरल-अनल, /जलता यह जीवन असफल , / दिन-रात-यामिनी-सा असमय ही/डूबा हुआ हुआ निष्फल । चिन्ता डालियों से झरने ही पर है पल्लव-प्राण-/ समाता डूब रहा दिनमान । '' (4)

---

1. निराला रचनावली- 1, पृ0 115
2. '' पृ0 125
3. '' पृ0 133
4. '' पृ0 134

फिर भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द की दुनिया से वे दूर न हो सके। (1)

निराला ने सेक्स सेंसर रखने की आवश्यकता को ही मनुष्य-प्रकृति के अनुकूल समझा। ऐसे आदर्शों का खण्डन करते हुए उन्होंने लिखा —

''सौंदर्य को प्यार करना स्त्री और पुरुष दोनों के लिए स्वाभाविक है। जब आँखें खोलकर अपनी ही दृष्टि से दीन संसार को देखना शुरू करती हैं, जीवन के उस वसंत काल में कोमल प्रभात रश्मियों से चमकती प्राची छवि का सुंदर मुख ही उन्हें अच्छा लगता है। किरणों से भीतर फूल कर हवा की हिलोरों से हिलती, हंसती, पास बुलाती, रूप टक देखती हुई कलियों से उनकी दृष्टि बंध जाती है। उसी प्रकार कवियों भी पूरे उच्छ्वास से बढ़कर सुंदर सूर्य और चन्द्र को ही अपलक देखती रहना चाहती हैं। यह प्राकृतिक सत्य है, जीवन के विकासक्रम का पहला कदम।'' (2)

अंधकार को भी जीवन का अभिन्न अंग स्वीकार करनेवाले कवि आखिर इतने उदास हुए कि सारे विश्व में अंधकार का दर्शन ही वे कर सके—

''कहीं भी नहीं सत्य का रूप, / अखिल जग एक अंधतम कूप, / ऊर्मि-घूर्णित रे, मृत्यु महान, / खोजता कहाँ यहाँ भगवान ?'' (3)

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ 192
2. " -6, पृ0 426-427
3. " -1, पृ0 201

ऐसी दुनिया की परवाह किये बिना आगे बढ़ने का प्रण कवि लेते हैं। (1)

इसलिए कवि ने मृत्यु का वरण स्वयं नहीं किया। [illegible] देवी से मृत्यु देने की प्रार्थना की —

''दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पद-राग-रंजित मरण''(2) ।

मृत्यु की अलौकिक छवि पर कवि मुग्ध होते हैं। (3)

7.5.3. मृत्युपर्यंत अविरत तूलिका

निराला को पता था कि उनका मन 'छिन्न-भिन्नकर क्षण-क्षण क्षीण होता जा रहा है। फिर भी वे वर्तमान-यथार्थ से भयभीत होकर भागे नहीं, निष्क्रिय भी न रहे, उनकी तूलिका मृत्युपर्यंत चलती रही।

यह सफल तूलिका कभी कभी सुख स्वप्न की कलियों को भी खिलाती रही —

''अपने सुख-स्वप्न से खिली
वृन्त की कली।'' (4)

पर समाज के प्रति अपना दायित्व उन्होंने कभी नहीं छोड़ा।

---

1. निराला रचनावली-1, पृ० 223
2. —"— पृ० 229
3. " पृ० 256
4. " पृ० 245

'क्यों अशमित जीवन बैठ, / गिनतासमर्थ हो व्यर्थ सुधार, / आये कितने, हो गये खर्च, / मृदु विमल ...-जल धार। '' (1)

बार-बार हारने पर भी कवि हार में हार की जीत करते ही रहे। हार न सही एक फूल भी उनके हाथ न लगा। एक यही हुआ कि हार से सारा शरीर मलिन हो गया : '' हार-हार हार-हार मैं गया, / जीता जो हार हार में गया, -/ उठी धूल, तन सारा भर गया, / नहीं फूल, जीवन अविकच है -/ यह सच है-। '' (2)

निराला के जीवन की कथा दुःख की रही : ''दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही। '' (3)

8.5.4. समकालीन व्यवस्था पर चोट और असंतुष्ट

सन् 1940 के बाद निराला समकालीन सामाजिक व्यवस्था पर चोट एवं आत्मिक असंतुष्ट दिखाई देते हैं। 'नये पत्ते' में संकलित 'दगा की' कविता में तत्कालीन खोखली सभ्यता का पोल खोल दिया है :

''बड़े-बड़े ऋषि आये, मुनि आये, कवि आये,
तरह तरह की वाणी जनता को दे गये।
किसी ने कहा कि एक तीन हैं,
किसी ने कहा कि तीन तीन हैं।
किसी ने नसें टोहीं, किसी ने कमल देखे।
किसी ने विहार किया, किसी ने अँगूठे चूमे।
लोगों ने कहा कि धन्य हो गये।

1. निराला रचनावली-1, पृ० 248
2. " पृ० 296

बगल खिली न गयी ।
मुरझा सकता हुआ ,
बीना सुर- बहार हुई ।
आज पियानों के गीत सुनते हैं ।

हो पड़ी ।
किरणों का जाल फैला ।
सितारों के तार से
दिन में , वेणुके जैसी रात में ।
हवा की इस चपलता ने हवा दी । '' (1)

सन् 1942 में लिखी गयी 'स्फटिक शिला' कवि की डायरी जैसी प्रतीत होती है । अपनी यात्रा के बीच कवि ने एक काली स्त्री को गाली देते देखा :

''मैं ने देखा, खड़ा पेड़ा / मन उसका सनाथ है / छीट आई हुई यह राम जी के राज से / छूटों को मिला नहीं / जिन से कुछ भी कहीं । '' (2)

ब्राह्मण होकर भी मीराम के विरुद्ध छूटों का पक्ष लेनेवाले निराला केवल उच्च जातियों को ही नहीं राम-राम को भी आलोचना करना अपना धर्म समझते हैं ।

छूटों पर की गयी यह सहानुभूति केवल नहीं थी , आधुनिकता का लक्षण थी , संस्कारवान् होने का प्रमाण थी । पाश्चात्य जीवन-बोधन

- -

1. निराला रचनावली-2, पृ० 178-179
2. '' पृ० 72

से निराला की जो निकटता थी, हिन्दी के अन्य किसी कवि में पायी नहीं जाती। निजी अनुभवों के माध्यम से वे साहित्य की जड़ों तक पहुँच चुके थे। ''वास्तव में साहित्य की जड़ें अनुभवों में होती हैं और अनुभवों की जड़ें अपने परिवेश में। इसलिए अपने परिवेश को छोड़कर साहित्य में आधुनिकता की चर्चा हो नहीं हो सकती। सिद्धांत रूप में हम अस्तित्ववाद की चाहे जितनी चर्चा कर लें और उससे दृष्टि भी ग्रहण कर लें किन्तु व्यवहार में वह सब निकम्मा है यदि हम अपने परिवेश से परिचित नहीं हैं तो।'' (1)

इस दृष्टि से हिन्दी काव्य-जगत के सबसे श्रेष्ठ आधुनिक व्यक्तित्व निराला का है क्योंकि उन्होंने अपने परिवेश के आधुनिकता - विरोधी - अंशों से विद्रोह तथा आधुनिकता के गुणपूर्ण अंशों का प्रबल समर्थन किया है।

6.6 वैज्ञानिक चेतना :

निराला वैज्ञानिक दृष्टि रखनेवाले काव्य-मर्मज्ञ हैं। इसलिए काव्य में उनकेलिए कुछ भी अस्पृश्य न रहा। उनके काल में टेक्नालजी का आज का सा विकास न हुआ था। विज्ञान तथा टेक्नालजी से हमारा रागात्मक संबंध भी स्थापित न हुआ था। इसलिए आज जहाँ मिलों, कारखानों, रेलगाड़ियों, मोटरों और टाइपराइटरों को लेकर कविताएँ लिखी जाती हैं, वहाँ निराला बहुत कम अवसरों पर वैज्ञानिक शब्दों का उल्लेख मात्र कविताओं में करते हुए हुए हैं। 'कुकुरमुत्ता' में 'टार्च', 'स्टीमबोट', 'लट्टू', 'बायस्कोप', 'सूप', 'सितार' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है : ''मोती डोडी पर पाउडरवाली कोठी, स्टीम बोट की डोंगी, फिरती दौड़ी''(2) 'अनामिका' में अखबारों के प्रतिनिधि

- -

1. डॉ० रामदरश मिश्र, आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं०1972, पृ० 29
2. निराला रचनावली-2, पृ० 51

'श्यामा' लेकर दौड़ती हैं : ''पत्रों से प्रतिनिधि दल में मच जाती हलचल, / दौड़ते सभी, श्यामा साथ करते सवार '' (1)

निराला ने एक स्थान पर सृष्टि की तुलना कारखाना से की है : सृष्टि पाप और पुण्य जड़ और चेतन दोनों के योग से होती है, केवल पुण्य या केवल चेतन से कभी सृष्टि का कारखाना चल नहीं सकता । ''(2)

काव्य में साधारण बोलचाल की जो शैली अपनायी गयी है, वह सर्वथा विज्ञान के अनुकूल है । वैज्ञानिक लेखकों से कवि ने प्रार्थना की थी कि बोलचाल में व्यवहृत होनेवाली भाषा का ही वे अधिक प्रयोग करें । (3)

निराला ने जड़-विज्ञान का संबंध वेदांत से जोड़ा है (4) संसार की गति और परिवर्तन के संदर्भ में विज्ञान और वेदांत का अंतर मिट जाता है । पौराणिक प्रतीकों की व्याख्या करके उन्होंने साबित किया कि देवता में भी विरोधी गुण पाये जाते हैं गणेश सुरेश हैं तो विघ्नेश भी । शिव रुद्र हैं, कल्याणकारी भी । जड़ विज्ञान के एक पूरे आवर्त के लिए प्रतिकूल (Negative) अनुकूल (positive) तत्वों की जरूरत पड़ती है । (5)

निराला के अनुसार विरोधी तत्वों के संघर्ष से ही संसार में प्रगति होती है । अपनी व्यक्तिगत प्रगति भी वे संघर्षों के कारण मानते हैं । संघर्षों के कारण ही जीवन सार्थक बनता है : '' कितने ही विघ्नों का जाल / जटिल, अगम, विस्तृत पथ पर विकराल ; / कण्टक, कर्दम, भय श्रम-निर्मम कितने शूल, / हिंस्र निशाचर, भूधर, वन्यपशु - संकुल /

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 328
2. प्रबंध प्रतिमा पृ0 10-11
3. निराला रचनावली, 6, पृ0 380
4. ,, पृ0 161 'वैदिक साम्यवाद' या 'वर्तमान धर्म'
5. प्रबन्ध प्रतिमा, पृ0 98

पथ भग्न तन्, अगम अकूल-/धारधार काटे अभी, है मृदुल । [illegible] जीवन है अति [illegible] में [illegible], [illegible] । '' (1)

विज्ञान के विकास के ''धर्म का स्थान अर्थ ने ले लिया है, कल्पना का प्रयोग ने, नैतिकता का यथार्थ ने, भावुकता का बौद्धिकता ने/ इस तरह पूरा का पूरा आधुनिक युग विश्वास, आस्था, श्रद्धा के स्थान पर संदेह, तर्क, अनास्था और प्रयोग को लेकर चला है ।''(2)

परिणामतः साहित्य में हृदय और आत्मा का स्थान बुद्धि ने ग्रहण किया । यह सब होते हुए भी छायावादियों ने बुद्धि की सत्ता का पूर्ण त्याग न माना । छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद ने कामायनी में हृदय के सामने बुद्धि को निर्मूल सिद्ध कर दिया । निराला थोड़ी भिन्न दृष्टि लेकर सामने आये । हृदय और आत्मा के सहयोग से जब महा-शक्ति को अपने अनुकूल न कर सके तो उन्होंने बुद्धि का आश्रय भी ले लिया । आत्मा और हृदय जहाँ हारे, वहाँ बुद्धि सहारा देने को आ गयी :

''बुद्धि के दुर्ग पहुँचा, विद्युत-गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन । '' (3)

मन, आत्मा और बुद्धि का योग ही निराला-साहित्य का मूल तत्व है ।

---

1. निराला रचनावली-1, पृ0 118
2. डॉ0 रामदरश मिश्र : आज का हिन्दी साहित्य-संवेदना और दृष्टि पृ0 12
3. 'राम की शक्तिपूजा' निराला रचनावली-1, पृ0 318

प्रत्येक वस्तु को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति निराला में शुरू से थी । उनकी वैज्ञानिक दृष्टि उदार थी, पूर्वाग्रह मुक्त थी । केवल शब्दों के विश्लेषण से उनकी यह दृष्टि तृप्त नहीं होती थी । व्यावहारिकता के क्षेत्र में भी वह खरी उतरी ।

धर्मों और पर्वों के संबंध में उनका अभिमत था कि ''... केवल आग में घी जलाकर वायुशोधन करते रहना मूर्खता ही है, कारण, इससे इतना अब यहाँ पुण्य नहीं होता । जहाँ आदमियों को घी-दूध न मिलता हो, वहाँ वायु-शुद्धि से अन्न शुद्धि अवश्य ही अधिक महत्त्व रखती है, और जब कि फिनायल बना लेने से, धूप आदि के जलाने से भी वायु शुद्ध हो सकती है ।'' (1)

निराला का विचार किसी भी परिस्थिति में विज्ञान के खिलाफ नहीं पड़ता । उनका मत है कि पांडित्य-पूर्ण विचार साहित्य की शोभा बढ़ाने में सहायक होंगे ।(2) प्रतिभा तथा पांडित्य की अभिव्यक्ति संयोग उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास में देखा । पश्चिम के विज्ञान को अधूरा बताकर गोस्वामी के पांडित्य को उन्होंने ऊँचा ठहराया है : ''...पश्चिम का विज्ञान अभी अधूरा है और है ही, जब कि वह अभी मैटर की (जड़ की) [illegible] शक्ति के संबंध में, उस जड़ की चलनेवाली गति के संबंध में प्रश्न कर रहा है । गोस्वामी तुलसीदास प्रश्न की इन सब अवस्थाओं को पार कर चुके थे ।'' (3)

- -

1. 'सुधा', जुलाई, 30 संपा०टि०-4
2. निराला रचनावली-6, पृ० 382
3. विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास(निबंध) निराला रचनावली-5, पृ० 163 164

निराला ने मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश जैसे जीवन के पाँच तत्वों तथा रूप, रस, स्पर्श, गंध और शब्द जैसे पाँच गुणों का प्रयोग भी अपने साहित्य में वैज्ञानिक नियमों के अनुसार किया है। भारतीयों के इन पंचभूतों को ही वैज्ञानिक 'एलिमेंट्स' कहते हैं। इन तत्वों के रूप, रस, गंधादि गुणों को निराला अभिन्न रूप से हु मनुष्यों के भावों से जुड़ा मानते हैं ''...रूप रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श द्वारा जिस प्रकार की भावना हृदय में प्रवेश करती है, उस समय मनुष्य के मस्तिष्क में उसी प्रकार का भाव आ जाता है।'' (1)

निरंतर परिवर्तित होनेवाले जीवन के इन पाँच तत्वों की समय-समय पर की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र भी निराला की कविताओं में मिलते हैं:

''तुम और मैं'' (सन् 1940) कविता में इस परिवर्तन का अच्छा चित्रण मिलता है : '' झुकता है जब, / दुनिया से मैं बोझ बढ़कर/ मिलता हूँ जब/ मुझे उठा लेते ही तुम तब/ज्यों पानी की किरण, सवाकार/ फिर दुनिया का आँखों से मुझको ओझल कर/ रखती आसमान पर, / बादल मुझे बनाती/रंग किरणों से भरती हो सुंदर, / मुझे उड़ाती रहती हो फिर क्या-क्या पर ; / वर पारावार/नदी आदि तन /मैं देखता देश-देशांतर, / तब पद पर आँसू भर-भर/ कहता है 'आओ जलधर!''/ गरज-गरज बिजली कड़काकर/ (जब कहती हो, जाओ, प्यारे) हाथ-हाथ छूटों से मैं टूटता गगन से जैसे तारे। ''(2)

कलाकार भावात्मकता विज्ञान की कसौटी की दृष्टि से देखते हैं।

- -

1. 'कला के विरह में जोशी बंधु' (निबंध) निराला रचनावली-5, पृ० 226

2. निराला रचनावली-2, पृ० 172

परंतु निराला विज्ञान की विजय पर पूर्ण विश्वास करते हैं। (1) आधुनिक युग को विज्ञान-युग कहने में उन्हें आपत्ति नहीं। (2) ''यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, हमारे ऊपर विज्ञान का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा है कि यदि कल, किसी प्रलयकारी आकस्मिक घटना, किसी विनाशकारिणी आपत्ति किंवा किसी अविज्ञात दैवीप्रकोप के कारण, धरा से विज्ञान और तत्संबंधी विभूतियाँ मिट जायें, बहुत संभव है, आज के नागरिक रूप में उस विज्ञान-विहीन संसार की पहचान ही न करें और उसे एक विलक्षण लोक देख उसी भूमंडल के स्थान में किसी अन्य लोक की संज्ञा दें।'' (3)

निराला भविष्य के वैज्ञानिकों पर बड़ी आशा रखते हैं: ''अभी तक विज्ञान ने मृत्यु के साधनों की ही अधिक खोज की है, पर अब वह जीवन की समस्या की ओर भी अग्रसर हुआ है।'' (4)

विश्व कल्याण के लिए प्राविधिकों तथा वैज्ञानिकों का सहयोग निराला आवश्यक समझते हैं :

''नयी शक्ति, अनुरक्ति जगा दो,
विद्युत भाव से भक्ति भगा दो,
उत्पादन के मार्ग लगा दो
प्राविधिक-वैज्ञानिक के बल।'' (5)

8·7· नवीन यथार्थवाद :

यह कहना उचित नहीं है कि निराला अपनी सृजन-यात्रा के पहले चरण में छायावादी थे, दूसरे में प्रगतिवादी और तीसरे में प्रयोगवादी। छायावाद की कल्पनाशीलता, प्रगतिवाद की यथार्थोन्मुखता और प्रयोगवाद की नवचेतना को देखकर अगर कालखंडों में निराला-काव्य का वर्गीकरण

- -

1· विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति (निबंध) निराला रचनावली-6, पृ० 377

करें तो पूरा-पूरा चित्र सामने नहीं उतरेगा । यह सत्य है कि निराला स्वभाव से कल्पनाशील, यथार्थ-प्रिय और अन्तर्मुखी थे । ''निराला प्रत्येक चरण में कल्पनाशील हैं, यथार्थ द्रष्टा हैं, अन्तर्मुखी हैं । किन्तु कल्पनाशीलता यथार्थ दर्शन और अन्तर्मुखी होने के तरीके अलग-अलग हैं, इन्हें पहचानना ज़रूरी है । (1)

निराला की 'जन्मभूमि', 'जुही की कली', 'पंचवटी प्रसंग', जैसी प्रारंभिक कविताओं में कल्पना के सहारे प्रकृति को विस्मय रूप में देखने की प्रवृत्ति मुखर है, लेकिन उसी काल में लिखी गयी 'अध्यात्मफल', 'अधिवास' 'राम-सेवन', 'विधवा' , 'भिक्षुक' जैसी कविताओं में यथार्थ द्रष्टा के रूप में ही कवि हमारे सामने आते हैं । उनकी छायावादी कृतियाँ भी यथार्थ से सर्वथा दूर नहीं ।

प्रथम 'अनामिका' तथा बाद में 'परिमल' में संकलित 'अध्यात्मफल' (सन् 1921) कविता का आरंभ ही कवि के अपने वैयक्तिक अनुभवों के प्रतिपादन से होता है : '' जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल गया, / पर न कर चूँ भी कभी पाया यहाँ/ मुक्ति की तब युक्ति से मिल खिल गया/ भाव, जिसका चाह है जाना यहाँ । '' (2)

इसी प्रकार 'अधिवास' (सन् 1923) में भी कवि अपने भोगे हुए सत्य का उद्घाटन करते हैं । ''उसके निकट गया मैं धाय, / लगाया उसे गले से हाय ।/फँसा माया में हूँ निरुपाय, / कहो, कैसे फिर गति रुक जाय ?'' (3)

- -

1. डा० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्यसाधना-2, पृ० 448
2. रचनावली-1, पृ० 30
3. निराला रचनावली-1, पृ० 35

दीनों के प्रति सहानुभूति दिखाते समय निराला कल्पना की दुनिया से उतरकर तट पर आते हैं, बोल-चाल की भाषा में अपने भावों को व्यक्त करते हैं। कुल-कुमारियों से एकान्त भाव व्यापित करने का आग्रह द्वितीय 'अनामिका' में संकलित 'प्रकाश' (सन् 1923) कविता में भी पाया जाता है। कवि पूछते हैं :-

" है पैसन का आभास
प्रिये, देखा भी उसने कभी किसी की राह ?"(1)

सन् 1923 में रचित 'रक्षा बंधन' तथा 'नव मम वदवान' राष्ट्रीयता पर कुछ बेमिसाल यथार्थवादी कृतियाँ हैं :-

'' 'रक्षा' के धागे हैं भारतीयों के जीवन का,
बंधन बनाते क्यों न,
रहा क्यों कलेजा चिर ? '' (2)

'नव मम वदवान' को बड़े विद्वान डे०ओ० शैलिन ने निराला की पहली रचना करकर सम्पादित किया है।(3) प्रस्तुत कविता में कवि देश की गौरव-गाथा सुनाते हैं और देशवासियों को स्वाधीनता हेतु संघर्ष निरत होने की प्रेरणा देते हैं :-

''बन-बन-बन वन वन में क्या
मां गौरव-गरिमा गुनगाता का। '' (4)

'विधवा' (सन् 1923) भारत की विधवा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है।(5) इससे पूर्व भारतेंदु रामनरेश त्रिपाठी(6) जैसे कवियों ने भी

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ० 35
2. " पृ० 36
3. " पृ० 54
4. डे०ओ० शैलिन : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ० 18
5. निराला रचनावली-1, पृ० 55
6. Madan Gopal: The Bharatendu: His Life and Times, Sagar

विधवा की समस्याओं पर ध्यान दिया था । परंतु निराला 'विधवा' पर सहानुभूति करते करते आखिर देव की शत्रुता मोल लेने को भी तैयार हो जाते हैं : ''यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है, / देव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है । '' (1)

निराला की प्रारंभ कालीन कविताओं में यथार्थ चित्रण का सबसे प्रौढ़ - रूप 'भिक्षुक' (1923) में दृष्टिगत होता है । सड़क पर मिले भिखारी के करुण-चित्र से चोट खाये हुए कवि की आत्म-वेदना यों प्रकट होती है : '' चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए / और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।'' (2)

'स्वप्न स्मृति' (सन् 1924) में भी दीन-दुःखियों पर सहानुभूति प्रकट की गयी है । (3)

'दिल्ली' (सन् 1924) में भारत के अतीत का यथार्थ वर्णन मिलता है । कवि पूछते हैं : '' क्या यह वही देश है/ यमुना-पुलिन से चल/ 'पृथ्वी' की चिता पर/ नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने/ किया आहुत जहाँ विजित स्वजातियों को/ आत्म-बलिदान से . . . '' (4)

'परिमल' में संकलित 'सिर्फ एक उन्माद' में पीर उत्पीड़न सहने-वाले कवि का सच्चा चित्र उभर आता है— ''अपने लिए पीर उत्पीड़न/

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ० 61
2. वही, पृ० 65
3. " पृ० 82-83
4. " पृ० 88

किन्तु छोड़ना था लोगों के लिए/ यही कच्चा जीवन ।''(1)

'परिमल' की 'आदान प्रदान' (सन् 1924)(2) 'यमुना'(3) (सन् 1924), 'दीन'(सन् 1924)(4), 'पतनोन्मुख' (सन् 1925)(5) 'प्रिया के प्रति'(6) और द्वितीय 'अनामिका' की 'रेखा (सन् 1927)(7) कविताएँ कवि के यथार्थ-जीवन का परिचय देती हैं ।

सरोज की मृत्यु (सन् 1935) के बाद की कृतियों में, चाहे छायावादी हों या यथार्थवादी, यथार्थवाद का रूप अधिक दृढ़ होता दिखाई देता है । निराला-काव्य में यथार्थवादी प्रवृत्ति की इस दृढ़ता के दर्शन डॉ0 रामविलास शर्मा ने सन् 1936 से किये हैं ।(8)

'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' (सन् 1936),(9) 'तोड़ती पत्थर' (सन् 1937)(10), 'वनबेला' (सन् 1937)(11) जैसी यथार्थवादी कृतियों के अतिरिक्त 'सरोज स्मृति' (सन् 1935)(12), 'राम की शक्ति पूजा' (सन् 1936)(13) आदि छायावादी कविताओं में इस ठोस यथार्थ के प्रमाण मिलते हैं ।

कवि के वैयक्तिक जीवन पर आधारित शोकगीत 'सरोजस्मृति' की नींव यथार्थ पर खड़ी है ।

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 98
2. वही पृ0 101
3. वही पृ0 114-115
4. वही, पृ0 124-125
5. निराला रचनावली-1, पृ0 134
6. निराला रचनावली-1, पृ0 190
7. वही, पृ0 170
8. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-2, पृ0 448
9. निराला रचनावली-1, पृ0 319
10. वही पृ0 323
11. वही, पृ0 326
12. वही, पृ0 296
13. वही, पृ0 310

"अरे, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।" (1)

'राम की शक्तिपूजा' ने यथार्थवादिता को प्रतीक-योजना के भीतर छिपाकर रखा है। (2) भीतर दबी यह यथार्थवादिता उस कृति की अपार व्यंजना में सहायक हुई है।

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध, (3)
धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध।"

सन् 1939 में निराला का यथार्थवाद एक विशिष्ट दिशा की ओर मुड़ा। इस नये यथार्थवाद को डॉ० रामविलास शर्मा ने प्रगतिवाद-युगीन यथार्थवाद की विभूति कहा है। (4) "कवि अपने में अधिक गहराई तक गोता लगाते हैं और अपने मन में उत्पन्न भले-बुरे भावनाओं को बड़ी ईमानदारी के साथ शब्दों तक प्रेषित करते हैं"। एक ओर उनकी छायावादी संकोचशीलता भी पूर्ण रूप से दूर हो गयी थी और दूसरी ओर 'तोड़ती पत्थर' में प्रकट की गयी गम्भीरता का आभास भी न रहा। 'प्रेमसंगीत' में वह निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि वे पनिहारिन पर मरते हैं —

"बम्हन का लड़का/मैं उसको प्यार करता हूँ/जात की कहारिन वह/मेरे घर की है पनिहारिन वह/आती है होते तड़का/

---

1. निराला रचनावली, पृ० 297
2. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ० 448
3. निराला रचनावली-1, पृ० 318
4. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ० 221, 225

उसकी गोदी में पलता हूँ । '' (1)

'कुकुरमुत्ता' में भी प्रगतिवाद-युगीन यथार्थवाद का विकास नहीं दिखाई देता । 'पिपेटलिट' से लेकर प्रोलिटेरियट तक, आदि-कवि से लेकर आधुनिक-कवि तक निराला के परिहास के पात्र बने हैं । वेद पुराणों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा । आखिर स्वयं कुकुरमुत्ता भी व्यंग्य का शिकार हो गया । निराला एजों के कोटेशन को बेकार कह रहे हैं । महापुरुषों पर उनका विश्वास तब तक मिट चुका था । (2) अपने आराध्य तुलसीदास को भी वे पुरुष ही मानते हैं, महापुरुष नहीं । महान कृतियों को भी आलोचनात्मक दृष्टि से देखने के वे अभ्यस्त हो गये हैं । तुलसीदास, कालिदास, रवीन्द्रनाथ की आलोचना निराला ने कई जगहों पर की है । कनक कमल और अलौकिकता की दुनिया उनकी आँखों से ओझल हो गयी थी । रूप-रंग या कुल-जाति का महत्व भी अब न रह गया । नयी परिस्थिति में कवि के सौन्दर्य-बोध में हुए इस परिवर्तन की प्रथम झलक 'प्रेम संगीत' (सन् 1939) होती है । गोरी-गोरी गोल-मोल मांसलवाली मुग्ध नायिकाओं के चुंबनों की आसक्ति अब निराला की कवित्व-चेतना को नहीं बहलाती, काली-कलूटी कहार जाति की पनहारिन की पदचाप ही उनमें अब प्रेम का संचार करती है ।

कवि-रवीन्द्र के दिव्य तथा अलौकिक पात्रों से अलग अपनी काली कलुष-नायिकाओं की भी जिन्दगी का आग्रह ही निराला का प्रेरणा-स्रोत रहा । जब तक उनका मन संतुलित रहा तब तक वे इस क्षेत्र में पूरी 'मर्म कसौटी' को पकड़े रहे ।

---

1. निराला रचनावली-2, पृ० 29
2. निराला : 'कुल्ली भाट', निराला रचनावली-4, पृ० 21

इसी नये सौंदर्य-बोध से प्रेरित होकर उन्होंने कुल्ला की 'अप्सरा' की नायिका चुन लिया था । यही सिद्धि-रवीन्द्र की विपरीत दिशा में अपनी कला को स्थापित करते समय कुल्ला की परेशानी परिहास का विषय बन गयी है । डॉ० रामविलास शर्मा ने कुप्रीन प्रोग्रेसिस्ट वाला दृष्टिकोण अपनाकर उसे यथार्थवाद का विकास मानना गलत समझा है । (1) लेकिन नवीन यथार्थवादी मनोरंजक, विनोदात्मक, बौद्धिक और तार्किक शैलियों को अपनाते रहे हैं (2) और वे हास्य-व्यंग्य का प्रयोग करते समय अपने पराये का भेद-भाव नहीं रखते । कभी कभी अपनी परेशानी का परिहास स्वयं कवि करते हैं और विनोदात्मक तथा मनोरंजक वातावरण की सृष्टि करते हैं । 'गर्म पकौड़ी' में कवि की परेशानी हमने देखी थी । उनकी जीभ जल गयी, लारें टपकीं, फिर भी उन्होंने उसे छोड़ा नहीं ''मेरी जीभ जल गयी, / सिसकियाँ निकल रहीं, / लार की बूंदें कितनी टपकीं, / पर दाढ़ तले दबा रक्खा मैंने / कंजूस ने ज्यों कौड़ी ।''(3)

हास्य-व्यंग्य की सृष्टि करने में परेशानी का चित्रण करना ही पड़ता है, उसके बिना असंभव है ।

'रानी और कानी' में और अधिक चुभने वाले व्यंग्य का प्रयोग मिलता है । उसमें वस्तुतः हास्य का नहीं करुणा का सागर उमड़ पड़ता है । अपनी माँ के दुःख को देख एक आँख से आँसू बहानेवाली रानी (कानी) का चित्र हँसने के लिए नहीं रोने के लिए ही हमें बाध्य करता है ।

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, पृ० 229
2. नंददुलारे वाजपेयी: नया साहित्य नये प्रश्न, विद्यामंदिर, वाराणसी, 1973, पृ० 2
3. निराला रचनावली: 2, पृ० 42

'अर्चना' (1950) आराधना (1953) और 'सांध्य काकली'(1963) के गीत भी वास्तविक दुनिया से संबद्ध हैं। इन गीतों से कवि के व्यक्तिगत जीवन का आभास मिलता है। भक्तिमय रचनाओं की भांति निराला रह रहकर प्रभु के सामने मरने का आग्रह प्रकट किया करते थे। फिर भी उनकी मति हार माननेवाली न थी, इसलिए काव्य-यात्रा जारी रही। 'अर्चना' में लिखा है: '' रुक जाती है वाणी मेरी, / दिखती है नाव मेरी/फिर भी मति डोलती मेरी/ कहती है तू ठीक उतार।'' (1)

घटती हुई आयु की बात कवि के स्वरों को तुल मति देती है: ''दिन-दिन, छिन छिन, आयु घटती हुई, / प्रभु पद की युगल आयु करती हुई/कामना छोड़ दे छोड़ दे संचित धुन।'' (2)

'आराधना' के कुछ गीतों में भी इस काव्य-यात्रा का अंत कर देने की दुर्भावना कवि ने व्यक्त की है: चलता नहीं हाथ/कोई नहीं साथ उन्नत विनत माथ/दो शरण, दोष हरण।'' (3)

मृत्यु की मधुर माननेवाली कवि ऐसी स्थिति में भी (सन् 1956) में लिखित के नये प्रकाश में अपनी जवा की मुकुल बनाने के मार्ग सोच रहे थे:

''खिला जीवन जग का, महका, / नाचा, देखा,
देखते कहाँ गया/निराला की आँखों मुकुल जवा।'' (4)

- -

1. निराला रचनावली-2, पृ0388
2. 'अर्चना', निराला रचनावली-2, पृ0389
3. निराला रचनावली-2, पृ0432
4. 'गीतगुंज' निराला रचनावली-2, पृ0 459

निराला का मन स्वप्न तथा स्वप्न भंग के बीच [illegible] झूलता रहा।(1) 'सांध्यकाकली' की 'रही तुम' (सन् 1958) कविता इसका प्रमाण है। कवि स्वप्नों से हटकर यथार्थ दुनिया में पदार्पण करते हुए कहते हैं: "बैठा हुआ देखता हूँ—/ स्वप्न हीन जीवन है/ एक दिन मन था मैं/खिलता हुआ गगन कुसुम।"(2)

सन् 1961 में लिखी अपनी अंतिम कविता में कवि अपनी समाप्त होनेवाली जीवन-लीला को देखते हैं : "क्षीण हुआ है [illegible] चतुरंग, काव्य, गति/यतिवाला, ध्वनि, अलंकार, रस, राग बन्ध के/ वाद्य-छन्द के रंजित मणित छूट चुके हाथ से—/क्रीड़ाके प्रांगण में परिणत।.. (3)

8.8 शिल्प के क्षेत्र में :

निराला का विचार पक्ष या भावपक्ष ही नहीं शिल्पपक्ष भी नूतनता की खोज करता है। जो न कहा गया उसको कहने का आग्रह उनमें शुरू से था। नित्य-नूतनता की इस खोज ने उन्हें युगान्तरकारी कवि बना दिया—

"कहो जो न, कहो।
नित्य नूतन, प्राण, अपने
गान रच रच दो।" (4)

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-2, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, 1972, पृ० 226
2. निराला रचनावली-2, पृ० 462
3. 'सांध्यकाकली', निराला रचनावली-2, पृ० 484
4. निराला रचनावली-1, पृ० 339

शिल्प के क्षेत्र में जो रूढ़ियाँ प्रचलित थीं उन्हें तोड़ने के उद्देश्य से ही उन्होंने मुक्तछंद का आविष्कार किया था—

''मुक्तछंद, / सहज प्रकाशन वह मन का—/ निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।'' (1)

कविता को गजगामिनी मानकर उन्होंने छंदों की छोटी राहों से उसका गुजरना असंभव बताया है। कविता कामिनी से कवि का अनुरोध है—

''आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बंधनमय छन्दों की छोटी राह।
गजगामिनी, वह पथ तेरा संकीर्ण, कण्टकाकीर्ण,
कैसे होगी उससे पार।'' (2)

कर्मों के बंधनों से मनुष्यों की मुक्ति की तरह निराला कविता की मुक्ति भी चाहते हैं। ''मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।'' (3) मुक्तछंद को उन्होंने वेदों में सुरक्षित देखा: ''पाया सुरक्षित वह वेदों में आज भी मुक्त छन्द, / सहज प्रकाशन वह मन का—/निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।'' (4)

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ0 173
2. वही पृ0 90
3. परिमल की भूमिका : निराला रचनावली-1, पृ0 401
4. 'जागरण' कविता, निराला रचनावली-1, पृ0 173

छंदों से कविता को मुक्त करते ही नहीं, नये नये छंदों की सृष्टि करके भी उन्होंने रूढ़ियों को तोड़ा है।

शब्द-चयन में भी निराला रूढ़ि-विरोधी हैं। 'तुलसीदास' में 'कुंभापूर्व' 'तमस्तूर्य' आदि शब्दों को गढ़कर उन्होंने रूढ़िवादियों को चौंकाया। प्रतीकों - बिंबों को स्वीकार करते समय भी निराला ने नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। भारतीय परंपरा के अनुसार बादल शृंगारोद्दीपक तत्व के रूप में हमारे सामने आते हैं। कालिदासादि की परंपरा से हटकर (1) निराला ने बादलों को सर्वहारा वर्ग के लिए दुःख हरनेवाले नेताओं तथा विप्लवी वीरों के रूप में देखा है। (2)

''बरसो मायामय आँगन पर/
गरजो विप्लव के नव जल धर। (3)

वर्णन पद्धति में भी निराला ने नवीनता को बड़े उत्साह से अपनाया है। 'नैन' कविता में नैनों को चंचल मित्रों के रूप में चित्रित किया है:

''एकटक हैं ये मनोहर मित्र दो, / एक पल है अपलक प्रियतम मित्र दो, / एक ही होकर रहे सब तक रहे, / एक ही जीवन मात्र, दुख-सुख सहे।''

- -

1. 'बादल के प्रति' (1923) निराला रचनावली-1, पृ0 53-54
2. 'बादल राग' निराला रचनावली-1, पृ0 116-117, 121-124
3. निराला रचनावली-1, पृ0 117

नयी शैली में नये भावों को व्यक्त करने में निराला सानी नहीं रखते। प्रगतिविरोधी सामाजिक व्यवस्था पर असंतोष एक ओर 'बादलराग', 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में प्रत्यक्षतः प्रकट है तो दूसरी ओर 'भिक्षुक', 'अभिमान' 'विधवा' जैसी कृतियों में यह परोक्ष रूप धारण करता है। निराला की कला का यह परोक्ष-प्रभाव कम शक्तिशाली नहीं है।

''गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार :
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।'' (1)

अपनी इन पंक्तियों से परोक्ष-प्रभाव की ओर स्वयं कवि ने संकेत किया है :

''यहाँ शोषण वर्णन होने पर भी, हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिए, किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है, लेखक के वर्णन-प्रकार के कारण और निहित है।'' (2)

वर्तमान सामाजिक वैषम्य ने पत्थर तोड़नेवाली के हृदय को चूर-चूर कर दिया है। उस युवती की [illegible] छिन्न हो गयी है। तब ऐसे प्रभाव पर चोट होना स्वाभाविक ही है। नीरस जीवन बितानेवाली, [illegible] से छूट [illegible] वाली, कठोर प्रहार तथा हथौड़े से संबंध रखनेवाली, कठिन धूप में बैठ कर [illegible] में रत उस युवती की

- -

1. 'तोड़ती पत्थर', निराला रचनावली-1, पृ० 323
2. जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला के पत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971, पृ० 122

तुलना निराला ने शेफालिका से की है । कवि ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकृति के सौन्दर्य की तुलना कोमल के भिन्न नारी से की जा सकती है । अभिजात वर्ग की युवती कन्या दिन उसे भी प्राप्त है । शैली की नायिका के ओठों से संगीत फूटता है (1) तो निराला की नायिका हृदय में बोझ लेकर फिरती है । (2)

७.९ निष्कर्ष :

1. छायावाद पूर्व एवं युग निराला की साहित्य-साधना अब भी पश्चिमोन्मुखी नवकार अनुभूतियों का पथप्रदर्शन कर रही है । हिन्दी काव्य में आधुनिक प्रवृत्तियों के स्थापन में निराला की ओर से सर्वाधिक प्रयास हुआ है ।

2. समस्त बंधनों से मानव की मुक्त कामना ही निराला साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है । इसीलिए व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व की मुक्ति निराला अनिवार्य मानते हैं ।

---

1. "Like a high-born maiden
   In a palace-tower,
   Soothing her love-laden
   Soul in secret hour
   With music sweet as love, which over-
   flows her bower"-- The poetical works of
   Percy Bysshe Shelley, Edited by Edward Dowden,
   Macmillan and Co.Ltd., London, 1913, P-344
2. निराला: तोड़ती पत्थर, निराला रचनावली-1, पृ० 323

3. रूढ़ि के बंधन से मानवता को मुक्त करना भी निराला का लक्ष्य रहा । सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियों से साहित्य को ही नहीं, अपने जीवन को भी उन्होंने दूर रखा ।

4. अज्ञानजन्य शासन का निराला ने तिरस्कार किया । निराला का विरोध अज्ञानजन्य शासन से या पुरातन से नहीं, मात्र कल्पित रूढ़ियों से है । परंपरा के गुणपूर्ण अंशों को आत्मसात् करते ही वे आगे बढ़े हैं ।

5. छायावाद की भांति अहंकार का भी प्रमुख कहनेवाले हिन्दी के प्रथम कवि निराला हैं । परंतु वे अहंकार के उपासक नहीं बने ।

6. नयी नैतिकता की प्रतिष्ठा के लिए निराला सतत प्रयत्नशील रहे । उनके काव्य में ऐसी नायिकाओं का वर्णन मिलता है जो परिस्थिति से टकराकर लौटती हैं । निराला ने ऐसे प्रसंगों में अपवित्रता का भाव नहीं देखा, क्योंकि परिस्थिति उनके अनुसार मानवी को ऐसी बनाने की क्षमता रखता है ।

7. शुरू-शुरू में शृंगार वर्णन में पवित्रता का ध्यान रखा गया था, लेकिन दूसरे महायुद्ध के आरंभ होने के पश्चात् लिखी गयी निराला की कविताओं में कवि के परिवर्तित नैतिकबोध का परिचय मिलता है । इसकी चरम परिणति 'स्फटिक शिला' में लक्षित है ।

8. प्रौढ़ावस्था पार करने पर भी निराला की उत्तेजना-रीतिकवियों की तरह अनियंत्रित नहीं बनती, इसलिए उनकी शृंगारिकता में एक प्रकार की उदात्त गरिमा आ गयी है ।

9. निराला के गद्य-साहित्य में यौन-रोग, समलिंगी मैथुन, बलात्कार जैसी कुत्सित बातों का भी संयमित वर्णन मिलता है, उनका विपुल अनुकरण गद्य व पद्य में करने वाले लेखकों ने कुरुचिपूर्ण मार्गों को अपनाया है ।

10. जनता के प्रति निराला का रुख ही आकर्षक था, क्योंकि जनता से ही आत्मीयता की आशा की जा सकती है ।

11. निराला का वर्तमान पर बड़ा भरोसा था, वे अतीत तथा भविष्य की उपेक्षा वर्तमान के लिए करने के पक्ष में न थे । अतीत के अमरत्व तत्वों तथा भविष्य आगामी सत्यों के वे समर्थक थे ।

12. वैज्ञानिक दृष्टि रखनेवाले काव्य-मर्मज्ञ निराला यह मानते थे कि विरोधी शक्तियों के संघर्ष से ही संसार प्रगति के मार्ग पर अग्रसर है । हृदय तथा आत्मा के साथ-साथ बुद्धि के तीक्ष्ण पर भी निराला ने बल दिया है ।

13. निराला एक साथ कल्पनाशील, यथार्थप्रिय और अन्तर्मुखी कलाकार थे । गरीबों के प्रति सहानुभूति दिखाते समय वे कल्पना की दुनिया से हटकर यथार्थ को स्वीकार करते थे । यथार्थ की दुनिया से ठोकरें खाकर वे अन्तर्मुखी भी हो जाते थे । निराला का मन स्वप्न तथा स्वप्न - भंग के बीच

संगीत गूंजता रहा ।

14. आधुनिक शिल्प - पद्धतियों का आविष्कार करने में निराला सिद्धहस्त हैं । अपनी कविता को शिल्प-नूतन रखने हेतु उन्होंने जो नये-नये प्रयोग किये हैं वे आज भी नये कवियों को निर्देशन करते हैं । संकरी गली से कविता को मुक्त करके खुली हवा में लाने का श्रेय निराला को है ।

■ ■ ■ ■ ■

नवाँ अध्याय :

जीवन दिशा

9. जीवन रेखाएँ

9.1. विवाद - पुरुष निराला :

आधुनिक लेखकों में निराला ही एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसके जीवन-संबंधी अनेक तथ्यों की जानकारी कठिन है । उनकी जन्म-तिथि, बचपन का नाम, पहली रचना और उसका प्रकाशन-काल, पत्नी का नाम आदि विवादास्पद हैं । निराला के वैयक्तिक जीवन से वर्षों तक घनिष्ट संबंध रखनेवाले रामविलास शर्मा इस संबंध में लिखते हैं –'' निराला का जीवन-चरित लिखनेवाले के सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं । पहली बड़ी कठिनाई है- सही तथ्यों का पता लगाने की । निराला ने अपने बारे में बहुत कुछ लिखा है और दूसरों को बताया है । वह सब अत्यंत महत्वपूर्ण है पर सदा सत्य नहीं है । जो दूसरों ने लिखा है, वह भी काफी महत्वपूर्ण है पर उसमें कभी तथ्य प्रकाशित नहीं किये गये, कुछ बातें गढ़कर जोड़ी भी गयी हैं । ''(1) ऐसी अवस्था में निराला का जीवन-चरित भी शोध का विषय बन जाता है ।

9.2 निराला का जन्म ;

जन्म-स्थान इस बात में गंगाप्रसाद मिश्र को छोड़ शेष सब एकमत हैं कि निराला का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले में महिषादल नाम के एक छोटे राज्य में हुआ । गंगाप्रसाद मिश्र उनका जन्म गढ़ाकोला गाँव में मानते हैं ।(2)

निराला की तरह ही, विभिन्न साहित्यिकों तथा इतिहासकारों की दी गयी जन्म-तिथि से भी बहुत भ्रम होता है । निराला ने महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी और मित्र बंधुओं को अपने जन्म के संबंध में जो कुछ लिखा

---

1. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ0 418
2. गंगाप्रसाद मिश्र: निराला, संपा0 इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती प्रकाशन, प्र0सं0 1975, पृ0 9

और कहा जा उसके आधार पर रामविलास शर्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निराला का जन्म संवत् 1955 माघ सुदी 11, मंगलवार (21 फरवरी, 1899) को हुआ।[1] इस तिथि को ठीक मानने का आधार यही बताया गया कि पहले निराला का मन अपेक्षाकृत संतुलित था। पीछे चलकर वे विक्षिप्तता के शिकार बन गये और अपने जीवन से संबंधित कहानियाँ गढ़ते रहे।

परंतु महिषादल स्कूल के रजिस्टर में निराला के स्कूल में भर्ती होने की तिथि 13 सितंबर 1907 और उस दिन की उम्र 10 साल 8 महीने की लिखी गयी है।[2] इस हिसाब से उनका जन्म हुआ 1896 ई० में। स्कूल रजिस्टर की बात को रामविलास शर्मा अप्रामाणिक मानते हैं। उनके अनुसार या तो निराला के पिताजी रामसहाय तेवारी ने उम्र दो साल बढ़ाकर बतायी नहीं तो भर्ती करनेवाले को हिसाब लगाने में गलती हुई। इस तर्क को हम यों ही स्वीकार नहीं कर सकते। रामसहाय तेवारी के इस प्रकार अपने बेटे की उम्र में वृद्धि करने का उचित कारण तो दिखाई नहीं देता। अगर निराला को स्कूल में भर्ती करनेवाला दूसरा कोई रहा तो क्या हिसाब लगाते समय दो-तीन वर्ष का अंतर आना स्वाभाविक है? अपनी आयु को बढ़ाकर दूसरों में बड़े बनने का ध्यान भले ही निराला में रहा हो, मगर उनकी जन्म-तिथि के निर्धारण करते समय इस ध्यान पर अधिक आश्रित नहीं रह सकते। स्कूली रिकार्ड ही हमारे सामने सही आधार है।

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ0 443
2. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 443

निराला वसंत पंचमी को अपना जन्म दिवस मनाते थे । रामविलास शर्मा की राय में यह भी निराला की अपनी कल्पना थी कि उनका जन्म वसंत पंचमी को हुआ । ''उन्होंने देखा कि कुलशिक्षित भारतीय वसंत पंचमी को अपना जन्म-दिवस मनाते हैं । उन्होंने निश्चय किया कि वह भी वसंत पंचमी को पैदा हुए थे । वसंत पंचमी सरस्वती पूजा का दिन, निराला सरस्वती के वरद पुत्र, वसंत पंचमी को न पैदा होंगे तो कब पैदा होंगे ? '' (1)

इस आधार पर अगर हम वसंत पंचमी को निराला का जन्म न भी मान लें, कुण्डली लिखाई में बताये गये साल में परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती ।

रामविलास शर्मा की भाँति महादेवी वर्मा भी निराला का जन्म माघ शुक्ल एकादशी संवत् 1955 वि० (20 फरवरी 1899) मानती हैं ।(2) रामविलास शर्मा तिथि 29 फरवरी मानते हैं(3) पर महादेवी वर्मा एक दिन पहले अर्थात् 19 फरवरी 1899 । राम अवध शास्त्री तिथि 29 फरवरी कहते हैं ।(4) जानकी वल्लभ शास्त्री एक ओर निराला का जन्म वि०सं० 1955 में मानते हैं तो दूसरी ओर ईस्वी वर्ष 1896 ।(5) सन् 1896 का वि०सं० 1953 ही होगा, 1955 नहीं। निराला अभिनंदन ग्रंथ के अनुसार माघ शुक्ल 11, सं० 1953 विक्रमी (सन् 1896 ई० को वसंत पंचमी) को निराला का जन्म हुआ ।(6) नंददुलारे वाजपेयी ने एक साल

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ०444
2. अवार, संपा० मंत्री, साहित्यकार संसद भवन (महादेवी), बीच पर दी गयी जन्मतिथि ।
3. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, द्वि०सं० 1979, पृ०17
4. राम अवध शास्त्री, निराला: व्यक्ति और कवि, विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्र०सं० 1972, पृ०2
5. जानकी वल्लभ शास्त्री (संपा), महाकवि निराला-1, 1963, पृ०1
6. निराला अभिनंदन ग्रंथ, पृ०11

का अंतर कर दिया है । वे सन् 1897 में माघशुक्ल एकादशी को निराला का जन्म मानते हैं ।[1] स्पष्ट है निराला की जीवनी तैयार करते समय बहुत कम लेखकों ने ही सावधानी से काम लिया है ।

गंगाप्रसाद पाण्डेय[2], गंगाधर मिश्र[3], दूधनाथ सिंह[4], ओंकार शरद[5] जयनाथ नलिन[6], श्यामसुंदर घोष[7] जैसे लेखक निराला का जन्म सन् 1896 में मानते हैं । रूसी विद्वान ये.पे. चेलिशेव भी इसी वर्ष को सही समझते हैं । (8)

9.3. निराला के पिता :
- - - - - - - - - - -

रामसहाय तेवारी के नाम को लेकर भी काफी वाद-विवाद चल पड़े हैं । कुछ उन्हें रामसहाय तेवारी कहते हैं[9] तो कुछ रामसहाय त्रिपाठी[10] कुछ विद्वानों के अनुसार रामसहाय बैठकनुमा झोंपड़ी में रहते थे ।[11] कुछ जीवनीकार उन्हें संपन्न बताते हैं ।[12] रामसहाय बड़े निष्ठुर भी बताये गये[13] और बड़े स्नेहपूर्ण भी ।[14]

- -

1. नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ0 216
2. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0सं01968, पृ043
3. गंगाधर मिश्र : पुनराविष्कृत निराला पृ० 11
4. दूधनाथसिंह : निराला: आत्महन्ता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, प्र.सं.1972, पृ013
5. ओंकार शरद (संपा) निराला ग्रंथावली, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्र0सं0संवत् 2030, पृ0 9
6. जयनाथ नलिन : काव्य-पुरुष निराला, आलोकप्रकाशन, इन्दौर, प्र.सं.1970, पृ0 1
7. डॉ0 श्यामसुन्दर घोष: सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, विश्व भारती, नागपुर, प्र.सं.1976, पृ03
8. ये0पे0चेलिशेव: सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, राजपाल एण्ड संज़, दिल्ली पृ0 15
9. डॉ0रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य-साधना-1, पृ01
10. (अ) जानकी वल्लभ शास्त्री (संपा)महाकवि निराला-1, पृ0 1
(आ) नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ0 215
(इ) जयनाथ नलिन : काव्यपुरुष निराला, आलोक प्रकाशन, इन्दौर, प्र.सं.1970, पृ.1
(ई) भगीरथ मिश्र : निराला (संपा) रूपनारायण मैदान, पृ0 9
11. जयनाथ नलिन : काव्य पुरुष निराला, पृ0 1
12. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, साहित्यकार संसद, प्रयाग, प्र.सं.संवत् 2006, पृ. 26
13. जयनाथ नलिन : काव्य पुरुष निराला, पृ. 2
14. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ018

रामसहाय गाँव के थे, किसान थे। अपने नाम को त्रिपाठी करके उसको परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने का कोई खास कारण दिखाई नहीं देता। उन्नाव जिले के गढ़ाकोला गाँव में पूर्वजों से मिली उनकी थोड़ी-सी ज़मीन थी। उनकी खेती से जीविकोपार्जन संभव न हुआ तो नौकरी की तलाश में निकल पड़े। पहले पुलिस में फिर महिषादल राज्य की फौज में भर्ती हुए[1]। फौज में रामसहाय तेवारी सौ सिपाहियों के ऊपर जमादार बने। भगीरथ मिश्र के अनुसार वे सिपाही के पद से बढ़ते-बढ़ते राजकोष के संरक्षक भी बने[2]। इसके अंदर उनकी पहली पत्नी का देहांत हो चुका था। फलस्वरूप से उन्होंने दूसरी शादी कर ली। ढलती उम्र में, चालीस पार करने के बाद उनको पुत्रप्राप्ति हुई।

9.4. बचपन का नाम

पंडित के आदेशानुसार पुत्र का नाम रखा गया सुर्जकुमार[3]। सुर्जकुमार तेवारी के नाम को लेकर भी विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। निराला अभिनंदन ग्रंथ में उनका नाम सुर्जकुमार है[4]। जयनाथ नलिन[5] और ओंकार शरद[6] इसका समर्थन करते हैं। नंददुलारे वाजपेयी उनके बचपन का नाम सूर्यकुमार-त्रिपाठी कहते हैं[7] और डॉ० बच्चनसिंह सूर्यप्रसाद[8]। स्कूली रिकार्ड में सुर्जकुमार-तेवारी लिखा गया है[9]। सन् 1920 तक नाम में परिवर्तन नहीं लाया गया। सुर्जकुमार तेवारी काव्यकार बनते ही 'सूर्यकान्त त्रिपाठी' हो गया।

---

1. नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० 215-216
2. भगीरथ मिश्र : निराला, संपा. इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती, 1975, पृ. 9
3. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 17
4. निराला अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 11
5. डॉ० जयनाथ नलिन : काव्य पुरुष निराला, पृ. 1
6. ओंकार शरद (संपा) निराला ग्रंथावली-1- पृ. 9
7. नन्द दुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ. 215
8. डॉ० बच्चनसिंह : क्रांतिकारी कवि निराला, पृ. 6
9. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-1, पृ. 21

'जन्मभूमि' इस नाम से मुद्रित प्रथम कविता है ।

9.5 माँ :

सुर्जकुमार की माँ का स्वास्थ्य ठीक न था । ओंकार शरद के अनुसार कवि जब तीन वर्ष के थे तभी उनकी माँ की मृत्यु हो गयी ।(1) निराला अभिनंदन ग्रंथ के अनुसार सुर्जकुमार के जन्म होने के कुछ दिन बाद ही उनकी माँ चल बसीं ।(2) किसी रहस्यात्मक घटना का उल्लेख भी सुर्जकुमार की माँ की मृत्यु के सिलसिले में किया गया है ।(3) किन्तु रामविलास शर्मा ने इसे भी निराला की कहानी गढ़ने की नैसर्गिक प्रवृत्ति कहकर निरस्त कर दिया है । यह कहानी निराला के मुख से ही सुनकर पथिक(4) जैसे लेखकों ने ऐसा मंतव्य प्रकट किया है ।

9.6 नटखट निराला :

दूसरी पत्नी की भी मृत्यु हो गयी तो रामसहाय तिवारी का सारा स्नेह बेटे पर केन्द्रित हो गया । इस लाड़-प्यार से सुर्जकुमार स्वभाव से कुछ जिद्दी नटखट और ढीठ निकले । रामविलास शर्मा ने एक घटना का उल्लेख किया है ।(5) एक बार सुर्जकुमार ने घर के पास हाता रचा था । छोटे [illegible] 'ओखा स्टाइल' में पत्तों से जगह [illegible] [illegible]

---

1. ओंकार शरद (संपा) निराला ग्रंथावली-1, पृ09
2. निराला अभिनंदन ग्रंथ : पृ011
3. गंगाप्रसाद पाण्डेय: महाप्राण निराला: द्वितीय संस्करण, 1968, पृ044
4. वही , पृ044
5. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 19

रहीं घर आईं । लेकिन उनकी भाभी खिड़की से यह देख रही थीं । उन्होंने उन्हें चौके में घुसने नहीं दिया, रामसहाय से शिकायत भी की । राम सहाय के क्रोध की सीमा न रही । उन्होंने कठोर दंड दिया । यह दंड सूर्जकुमार को अन्याय-सा लगा क्योंकि इस बात में कोई स्पष्ट निषेध उन्हें पहले न मिला था । (1)

नंददुलारे वाजपेयी ने भी प्रस्तुत घटना का वर्णन अपने 'कवि-निराला' में किया है, इधर-उधर कुछ परिवर्तन के साथ ।

शायद रामसहाय तिवारी की कठोर-दंड नीति को देखकर ही जगन्नाथ मलिन ने लिखा- "... शिशु सूर्यकान्त को पिता का प्यार भी प्राप्त न हुआ । उनके स्वभाव और व्यवहार के कारण वह अत्यंत कठोर हृदय थे ।"(2)

असल में रामसहाय सूर्जकुमार पर बड़ा प्रेम रखते थे । वे चाहते थे कि बेटा पढ़-लिखकर बड़ा बने । दंड दिया, उसे ठीक रास्ते पर लगाने के उद्देश्य से । लेकिन जब बेटा स्कूल में फेल हो गया तो पिता आपे से बाहर हो गये । बेटे-बहू को उन्होंने घर से बाहर कर दिया ।(3) बेटे के भविष्य की चिंता ही रामसहाय को इस प्रकार के कठोर व्यवहारों हेतु प्रेरित करती थी ।

9.7. वर्ण - संस्कार :

कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में जन्मे

---

1. डॉ0 रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 19
2. डॉ0 जगन्नाथ मलिन : काव्य-पुरुष निराला, पृ0 2
3. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 30

सूर्यकुमार का यज्ञोपवीत संस्कार आठ वर्ष की आयु में महिषादल में कर दिया गया। जनेऊ के बाद प्रत्येक बात में नियंत्रण रखा गया। अन्य जातिवालों का छुआ खाना-पीना मना था पर सूर्यकुमार पर सब पाबन्दियाँ कब थीं? कभी दंड भोगे, गाँव के अन्य ब्राह्मणों से रामसहाय तिवारी का नाता टूटा। सूर्यकुमार तब भी निर्द्वन्द्व थे, अपनी मुक्त-स्वभाव को छोड़ने के लिए तैयार न थे।

९.८ शिक्षारंभ :

जनेऊ संस्कार के पश्चात् महिषादल में आकर रामसहाय ने सूर्यकुमार को स्कूल में भर्ती करा दिया। "13 सितंबर 1907 को महिषादल स्कूल की कक्षा 8 सेक्शन बी (अब के हिसाब से तीसरी कक्षा) में सूर्यकुमार का नाम लिखा दिया गया।" (1) उनका दिल खेल-कूदों में जितना लगा पढ़ाई में न लगा। गोली, कबड्डी, फुटबाल, क्रिकेट आदि में वे बड़ी निपुणता रखते थे। वहीं कुश्तीबाज थे, तैरना जानते थे, नाटक देखने और अभिनय करने में उनकी विशेष रुचि थी। अपने शरीर को सुदृढ़ व सुंदर रखने के लिए वे कसरत करते थे, कभी-कभी दंड भी मालिश भी करते थे। पढ़ने की किताबों से बढ़कर रामायण, भारत, मोहन, कालिदास की किताबें उन्हें अच्छी लगीं। गाँव की किसी कुछ काल तक उन्हें सिरदर्द-पुरुष भी मानती रहीं।

९.९ कूट-नीति :

एक बार सूर्यकुमार ने सिपाही से पूछा : तुम्हारे मातहत

---

1. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 21।

इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा की लूट क्यों नहीं लेते ? '' (1) रामसहाय चौंक पड़े । उन्होंने सोचा कि बेटे को किसी ने सिखाया है । जमादार का पद छिनने के लिए किसी दुश्मन ने चाल रची है । रामसहाय ने लड़के को पीटा, इतना पीटा कि लड़का बेहोश हो गया । पिताजी की मार-पीट के संबंध में निराला ने स्वयं लिखा है :

''मुझे मार मारकर अपने दुश्मन का भूत उतारते हुए पूछने लगे कि किसने सिखलाया है । मैं किसका नाम बतलाता ? वह उद्भावना मेरी ही थी । मैं जितना ही कहता था, यह बात मेरी ही सोची हुई थी, पिताजी उतना ही संदेह करते और मार-मारकर पूछते जाते थे । मैं कुछ देर बाद बेहोश हो गया था ''। (2)

9.10 ब्याह

जब सूर्यकुमार बारह साल के हो गये तो कुलरीति के अनुसार उनके ब्याह की तैयारियाँ हुईं । सूर्यकुमार के ब्याह का वर्णन शर्मा जी ने यों किया है : ''सात सुहागिनों ने एक साथ मूसल पकड़कर धान कूटे, एक साथ हल्दी का कूँड़ा पकड़कर उबटन रखे । उबटन की रस्म निभाई गई । रामसहाय की बूढ़ी भौजाई के साथ चौक पर बिठाया गया । दोनों की गांठ जोड़ी गयी और दोनों ने दाल पीसने की रस्म पूरी की । फिर उबटन की थोई से बड़े तले गये । मेड़ के दरवाजे पर मौर लगाई गई, उन्हें दाल-भात खिलाया गया । हर रोज ढोलक बजती, गीत होते । नाउन सूर्यकुमार के उबटन लगाती । आखिर तिलक का दिन आया । सूर्यकुमार को हाथ पैरों में कड़े पहनाये गए, गले में कंठा,

---

1. निराला : 'कुल्ली भाट', निराला रचनावली-4 पृ0 35
2. वही

पीली धोती, पीला जामा, पीली पगड़ी बँधवाई गई। सिर पर मौर रखा गया। धूम-धाम करते बारात गढ़ाकोला रवाना हुई।'' (1)

९.११. साहित्य से संपर्क:

शादी हो गयी, बहू मायके ही रही। सूर्यकुमार पिता तथा अन्य संबंधियों के साथ गढ़ाकोला आकर कुछ दिन रहे और महिषादल लौट आये। शादी के बाद सूर्यकुमार का मन पढ़ाई में बहुत कम लगता था। नाटक देखने तथा खेलने में उनकी दिलचस्पी बढ़ी। उन्हीं दिनों '[illegible]' नामक बंगला नाटक में सूर्यकुमार को अभिनय करने का अवसर प्राप्त हुआ। स्कूल के नीरस वातावरण में उनका मन घुटता था। भक्ति और शृंगार रसपूर्ण रचनाएँ पढ़ने में ही अधिक समय लगाते थे। तुलसी की रामायण तथा पद्माकर की कविताएँ उन्हें विशेष प्रिय थीं।

बंगाल में जन्म लेने के कारण बंगला उनके लिए मातृभाषा के समान थी। बैसवाड़ी उनकी मातृभाषा तो थी ही। ब्रजभाषा और हिन्दुस्तानी पर अधिकार प्राप्त करने का विचार था। उनकी स्मरणशक्ति अच्छी थी।

सूर्यकुमार सोलह बरस के हो गये। लंबा-तगड़ा शरीर। रामसहाय तेवारी ने सोचा कि लड़की के गौने का समय आ गया है। गौना हुआ। रामदयाल दुबे की बेटी मनोहरा देवी (2) सूर्यकुमार के साथ गढ़ाकोला में आयीं।

सूर्यकुमार गवाही देने के लिए ससुराल निमंत्रित किये गये। वहीं उनकी एक मित्र मिली—जूही। पर जूही के चरित्र पर ससुरालवालों को

- -

१. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 24
२. ओंकार शरद के संपादकत्व में निकली निराला ग्रंथावली(भाग -1) में मनोहरा देवी को मनोरमा देवी कहा गया है, पृ० 9

शिकायत की । सूर्जकुमार उसके साथ घूमने को निकले तो साधु रुष्ट हो गयीं । लेकिन सूर्जकुमार यह जानना चाहते थे कि तुलसी से लोग क्यों डरते हैं, और आखिर जान भी गया कि तुलसी की कमज़ोरी क्या है । ''कुल्ली भाट' उपन्यास में स्वयं उसका मुख्य पात्र बनकर निराला ने कुल्ली की कहानी ही कही है ।

७.११.१. तुलसी का प्रभाव :

ससुराल में एक दिन सूर्जकुमार ने मनोहरा देवी का गाना सुना । वे भजन गा रही थीं :

''श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्''

मनोहरा देवी की सुरीली आवाज़ में तुलसी का पद सुना तो सूर्जकुमार के सामने एक नया संसार ही खुल गया । वे चकित रह गये । अपने ज्ञान पर, सौंदर्य पर उन्हें जो गर्व था चूर चूर हो गया । अपनी कमियों का उन्हें बोध हुआ । हिंदी का ध्यान आया । पत्नी को लेकर वे महिषादल पहुंचे ।(1) एन्ट्रेंस परीक्षा में गणित के दिन कॉपी में ब्रजभाषा की शृंगारपरक कविताएं लिखकर वे परीक्षा-भवन से बाहर हो गये । (2) परीक्षा में फेल होने की बात सुनी तो रामसहाय ने दोनों को घर से बाहर कर दिया । सूर्जकुमार खिन्न होकर पत्नी के साथ ससुराल पहुंचे । कई महीनों तक ससुराल रहे । रामसहाय का मनःपरिवर्तन हुआ । डलमऊ जाकर बहू-बेटे को साथ ले वे महिषादल लौट आये ।

७.१२ स्वास्थ्य की चिंता :

सूर्जकुमार अपने स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रखते

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 30
2. वही, पृ० 30

थे । उन्होंने महिषादल में बड़े-बड़े पहलवानों को देखा था । अपनी शारीरिक पुष्टि के लिए गोश्त खाना उन्होंने अनिवार्य समझा था । पर मनोहरा देवी शाकाहारी थीं । उनके कहने से सूर्यकुमार ने गोश्त खाना छोड़ तो दिया लेकिन दिन-ब- दिन दुबले होते गये । गाँव के बूढ़े पंडित ने बात जानकर फिर से गोश्त खाने की सलाह दी । इस पर पति-पत्नी में झगड़ा हुआ । मनोहरा देवी रूठकर मायके चली गयीं । सन 1914 में निराला के पुत्र रामकृष्ण का जन्म हुआ (1)

9.13. पिता का निधन :

रामसहाय काफी बूढ़े हो चले थे । खाँसी की बीमारी से पीड़ित भी थे । महिषादल में इलाज हुआ पर रामसहाय स्वस्थ न हुए ।

1917 में रामसहाय तिवारी का देहांत हुआ । सरोज का जन्म भी इस साल हुआ । (2) नंददुलारे वाजपेयी की राय में सरोज का जन्म एक वर्ष पूर्व हुआ था । (3)

डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त के अनुसार रामसहाय तिवारी का देहांत इन्फ्लुएन्जा के प्रकोप से 1918 ई० में हुआ —''इन्फ्लुएंजा के भीषण प्रकोप ने उनके चाचा, पिता और परिजनों को भी काल का ग्रास बना दिया ।''(4) यह तो सच है कि रामसहाय के कई कुल-संबंधियों का अंत 1918 की महामारी के प्रकोप से हुआ था । मनोहरा देवी भी इस

---

1. डॉ०रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 31-32
2. डॉ० रामकुमार वर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ०32
3. नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० 217
4. डॉ०शान्तिस्वरूप गुप्त : आधुनिक प्रतिनिधि कवि, सूर्यप्रकाशन-दिल्ली, प्र०सं० 1976, पृ० 33

नहीं । लेकिन रामसहाय का निधन इससे एक वर्ष पूर्व ही 1917 में हो गया था (1) । शान्तिस्वरूप गुप्त के लेख में और भी भारी त्रुटि आयी है । जीवित व्यक्ति को भी उन्होंने मरा समझा । निराला के सुपुत्र रामकृष्ण की मृत्यु का उल्लेख गुप्तजी के लेख में हुआ है । (2)

9.14. नौकरी :

पिता न रहे तो सूर्यकुमार को अपने दायित्व का बोध हुआ । पूरे परिवार का बोझ स्वयं उठाना पड़ा । बाप की सेवाओं के उपलक्ष्य में महिषादल के राजा ने सूर्यकुमार को ड्यूटी का काम दे दिया । उससे घर का खर्च निभ जाता था।

राजमहल में कभी कभी नाटक खेले जाते थे । एक बार सूर्यकुमार को एक छोटा-सा पार्ट दिया गया । उनका संस्कृत-शक्ति-पाठ राजा को अच्छा लगा । उन्होंने सूर्यकुमार को गाना सिखाने का प्रबंध कर दिया ।

9.15. पत्नी का निधन :

प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया था । अब महामारी की बारी आयी - इंफ्लुएंजा का प्रकोप हुआ । डलमऊ से सूर्यकुमार के नाम तार आया-'तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, अंतिम मुलाकात केलिए आओ' (3) । वे चल पड़े, लेकिन डलमऊ में मनोहरादेवी की लाश तक देखने को न मिली । मनोहरा देवी ने अंग्रेज़ी दवा पीकर धर्म बिगाड़ने से मरना ही भला समझा ।

गंगा के घाटों पर लाशों के ढेर लगे । ''जलमय दोनों किनारे लाशों से ढके हुए, बीच में प्रवाह की बहुत ही क्षीण रेखा, घोर दुर्गन्ध, दोनों ओर एक-एक मील तक रहा नहीं जाता । जल-जन्तु, कुत्ते, गीध, स्यार लाशें छुते तक नहीं । नदियों से दूरवाले देशों में लोगों ने कुओं में

1. नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० 217
2. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त : आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ. 33
3. 'कुल्ली भाट', निराला रचनावली-4, पृ. 52

वहीं डाल-डाल दीं । मकान-के-मकान खाली हो गये । '' (1)

रामकृष्ण तथा सरोज की नानी के पास छोड़ सुर्जकुमार अपने गाँव पहुँचे । वहाँ भी महामारी का तांडव था । सब चल बसे केवल उनके चचेरे भतीजे रह गये ।

इतनी मौतें एक साथ देखकर सुर्जकुमार भयभीत हो गये । बाईस वर्ष की आयु में ही उन्हें विधुर होना पड़ा । (2) अब उन्हें पता चला कि मनोहरा देवी के प्रति उनके मन में कितना अगाध प्रेम है ।

वे डलमऊ पहुँचे । गंगा के किनारे श्मशान में - जहाँ मनोहरा देवी की चिता जली थी - घंटों घूमे । अब उनके मन में किसी प्रकार का डर न था । परंतु इस बात में आत्मग्लानि का अनुभव होने लगा था कि मनोहरा देवी के जीवित रहते उनकी कद्र न कर सके ।

7.6 अध्यात्म पर आस्था :

सुर्जकुमार महिषादल आकर काम में लग गये । पर मन कहीं न टिकता था । छोटी आयु में सभी प्रियों के निष्ठुर आघातों से वे थक गये थे । अब उनके आर्त मन को कुछ आसरा अपेक्षित था । तभी एक दिन महिषादल में रामकृष्ण परमहंस के शिष्य प्रेमानंद पधारे । प्रेमानंद के प्रभाव में पड़कर सुर्जकुमार वैराग्य की ओर मुड़े । उन्होंने रामकृष्ण को ईश्वर का अवतार ही मान लिया । उनके सपनों में महावीर, रामकृष्ण, प्रेमानंद और मनोहरा देवी बारी-बारी से प्रकट होते थे । मनोहरादेवी कभी कभी सरस्वती का रूप भी धारण कर लेती थीं । सुर्जकुमार में अब कामवासना

---

1. 'अलका': निराला रचनावली-3, पृ० 137
2. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 38

पदानिकृत हो गयी थी, केवल ज्ञान-पिपासा ही उनमें सक्रिय रही। (1)

9.17. पहली कविता :

देश में स्वराज्य की माँग ज़ोरों पर हो रही थी, अंग्रेज़ दमन-नीति अधिकाधिक अपनाते थे। साहित्यिक क्षेत्र में रचनाओं की रचना हुई। सूर्यकुमार का खून उबलने लगा। बंगला के अखबारों से तथा अन्य क्रान्तिकारियों के संपर्क से देश की स्थिति का पूरा ज्ञान उन्हें प्राप्त होता था। असहयोग आंदोलन शुरू हुआ था। जनता में एक नई स्फूर्ति आ गयी थी। राष्ट्रीय-गीत रचनाओं की संख्या में लिखे गये। सूर्यकुमार ने भी मातृभूमि पर एक गीत लिखा : ''वंदू मैं अमल कमल . . ।'' (2) कवि ने तो नाम में भी थोड़ा-सा परिष्कार कर लिया। सूर्यकुमार तेवारी नाम को सूर्यकान्त त्रिपाठी करके गीत को कानपुर से निकलनेवाली 'प्रभा' मासिक पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेज दिया। इस प्रकार ''जन्मभूमि की वन्दना से रामसहाय तेवारी के पुत्र सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपनी साहित्य-साधना आरंभ की।'' (3)

9.18. पहला लेख :

जून 1920 ई0 की 'प्रभा' पत्रिका में गीत छपकर आया तो सूर्यकान्त को और लिखने की प्रेरणा मिली। लेकिन बंगला की तुलना में खड़ीबोली उन्हें कमज़ोर लगी। अब उन्हें हिन्दी को बंगला से भी श्रेष्ठ सिद्ध करना था। बंगला भाषा के उच्चारण संबंधी अशुद्धियों तथा असुविधाओं

---

1. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 36
2. दूधनाथ सिंह : निराला: आत्महन्ता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, 1972, पृ0 13
3. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 40

को लेकर सूर्यकांत ने एक लेख लिखा : ''बंगभाषा का उच्चारण ।'' लेख महावीर प्रसाद द्विवेदी को भेज दिया गया । 'अपरिचित संतान' से इस परिश्रम को सफल बनाने की प्रार्थना भी की गयी ।(1) अक्टूबर 1920 की 'सरस्वती' पत्रिका में लेख छपा । इस प्रकार निराला की पहली गद्यकृति भी प्रकाश में आयी ।

9.19. राजनीति से संबंध :

सूर्यकांत त्रिपाठी का अब अध्यात्म से ही नहीं, राजनीति और साहित्य से भी निकट का संबंध हो गया । अध्यात्म का अर्थ वे जनसेवा ही समझते हैं । ढोंगी बाबाओं से वे नफरत करते हैं । एक बार राजमहल में पुराने ढंग के तिलक-चुटियावाले साधु आये तो सूर्यकांत उन पर बिगड़ उठे । इस पर राजमहल के सुपरिंटेंडेंट से कुछ कहा सुनी हुई । इस सिलसिले में सूर्यकांत अपनी नौकरी छोड़ गढ़ाकोला वापस आये ।

नौकरी की तलाश में सूर्यकांत भटकते रहे । महावीर प्रसाद द्विवेदी कहीं-न-कहीं नौकरी दिलवाने के प्रयत्न करते रहे । लेकिन सफल न हुए । तभी महिषादल से दूसरी बार बुलावा आया । पेट का सवाल था, महिषादल को ही लौटे ।

9.20. समन्वय के संपादक :

रामकृष्ण मिशनवालों ने कलकत्ता से एक पत्र निकाला - 'समन्वय' । 'समन्वय' के संपादकीय विभाग में सूर्यकांत को काम दिलवाने का भरसक प्रयत्न महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया । किन्तु मिशनवालों ने किसी दूसरे को उस पद पर रखा । सूर्यकांत त्रिपाठी ने 'समन्वय' में एक लेख लिखा : 'भारत में श्री रामकृष्णावतार' । मिशनवालों को लेख पसंद आया ।

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-3, पृ० 215

उन्होंने सूर्यकान्त को 'समन्वय' में काम करने को बुलाया । सन् 1922 में वे राजमहल की नौकरी छोड़ कलकत्ता आ गये ।

रामकृष्ण मिशन के सन्यासियों के संपर्क से स्वभावतः कवि अद्वैत-दर्शन से प्रभावित हो गए । सन् 1922 में उन्होंने 'श्री रामकृष्ण वचनामृत' का हिन्दी में अनुवाद किया ।(1)

'समन्वय' कार्यालय 23, शंकर घोष लेन में आ गया तो सूर्यकांत को बालकृष्ण प्रेस के मालिक महादेव प्रसाद सेठ से मिलने का अवसर मिला । 'समन्वय' उन्हीं के प्रेस में ही छपता था । सेठजी स्वयं लेखक भी थे । मारवाड़ियों के पत्र 'मारवाड़ी सुधार' के संपादक शिवपूजनसहाय से भी सूर्यकान्त को निकट का परिचय हो गया । वे हिन्दी में भी लिखते थे ।

उन्हीं दिनों सूर्यकान्त ने 'अधिवास' कविता लिखी । वस्तुतः उनका जीवन एक नई दिशा की ओर मुड़ता जा रहा था । सन्यास से हटता जा रहा था, अधिवास छूट रहा था । माया कहकर संसार की उपेक्षा करना उन्हें अब व्यर्थ दिखाई देने लगा । जन साधारण की गरीबी, दुःख और अन्य समस्याओं के प्रति वे जागरूक हो उठे ।

'अधिवास' कविता 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ भेज दी । मगर वह वापस कर दी गयी । शिवपूजन सहाय को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने उसे 'माधुरी' में भेज दिया और वह छप गयी ।

9•21• बंगला रंगमंच और मुक्तछंद :

सन्यासी-जीवन से सूर्यकान्त का मन उकता जा रहा था । नयी दीक्षा की मस्ती में वे वैयक्तिक दुःख-दर्द को भूलते जा रहे थे । महादेव-

---

1• निराला ग्रंथावली:- 1, संपा० ओंकार शरद, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्र०सं० सं० 2030, पृ० 10

प्रसाद सेठ, हरिकृष्ण पवार जैसे मित्रों के साथ वे उर्दू तथा बंगला के नाटक देखते थे, नाटक की रचना तथा पात्रों के अभिनय की आलोचना करते थे। बंगला नाटककार तथा अभिनेता गिरीशचन्द्र घोष पर सूर्यकांत विशेष रूप से मुग्ध थे। गिरीशचन्द्र का प्रफुल्ल उन्हें बहुत अच्छा लगा। घोष के बंगला छंद से प्रभावित होकर सूर्यकान्त ने हिन्दी में एक नाटिका लिखी : 'पंचवटी प्रसंग'। उसका कुछ अंश महावीर प्रसाद द्विवेदी के पास सम्मति हेतु भेजा। द्विवेदी जी ने 'ठीक है' कहा लेकिन साथ साथ यह शंका भी प्रकट की कि हिन्दीवालों में 90 फीसदी इस छंद को शायद ही समझ सकेंगे। (1) भाव तथा भाषा से पुष्ट होने पर भी उस रचना को अप्रतिष्ठित देखने की इच्छा उन्हें न हुई। 'अप्रतिष्ठित मुझे देखने की जरूरत नहीं' (2) कहकर उसको प्रकाशनार्थ कहीं भेजने के इरादे से वे निवृत्त हो गये। स्पष्ट है कि उनकी रचना पसंद न आयी।

9.12 पंचवटी प्रसंग और जुही की कली :

'पंचवटी प्रसंग' में गिरीश चन्द्रघोष की नाटकीयता और पद्माकर की शृंगारिकता का सुंदर समन्वय हुआ है। शूर्पणखा के सौंदर्य-चित्रण से पता चलता है कि सूर्यकान्त का मन अब फिर से नारी-सौन्दर्य में रमने लगा है। सरल, कोमल, सुकुमार पदावली इस रचना को एक नया प्रवाह देती दृष्टिगोचर होती है। अब इसी शैली में उन्होंने एक और कविता लिखी : ''जुही की कली।'' छंद के बारे में हिन्दीवालों को संदेह न रहे, इसलिए शीर्षक के नीचे लिखा : ''बंगला छंद''। (3)

---

1. निराला को महावीर प्रसाद द्विवेदी का पत्र, निराला की साहित्यसाधना-1 पृ0 39
2. वही
3. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0 440

शैली और रवीन्द्रनाथ की याद करते हुए कविता की कड़ियाँ अवतरित हुई :

''विजन वन वल्लरी पर ,
सोती थी सुहाग-भरी , स्नेह-स्वप्न-मग्न ,
अमल-कोमल-तनु तरुणी- जुही की कली
दृग बंद किये , शिथिल पत्रांक में . . .'' (1)

मूर्त सौंदर्य का इतना आकर्षक , सुंदर भावपूर्ण चित्रण अन्यत्र अलभ्य है । शैली ने भी '[illegible]' में नारी सौंदर्य का वर्णन किया है लेकिन उसकी नायिका नागरिक सभ्यता की शिकार है ।

महादेव प्रसाद सेठ तथा शिवपूजन सहाय को सूर्यकांत ने 'जुही की कली' सुनायी । शिवपूजन सहाय सूर्यकांत की प्रतिभा से परिचित हो चुके थे । वे 'जुही की कली' की सुकुमारता पर अधिक मुग्ध हो गये । उन्होंने इसे अपने 'आदर्श' मासिक पत्रिका में मार्ग शीर्ष संवत् 1979 वि०(नवंबर-दिसंबर 1922) को प्रकाशित किया । (2)
निराला ग्रंथावली में इसका रचनाकाल 1923 बताया गया है । (3)
'मतवाला' में 'जुही की कली' सन् '23 में ही प्रकाशित हुई थी । इस आधार पर ही शायद निराला ग्रंथावली में इसका रचनाकाल सन् '23 रखा गया है । (4) अप्रैल सन् '23 की माधुरी में 'अधिवास' भी छपी । इन कविताओं के प्रकाशनकाल निर्धारित करते समय 'निराला काव्यः पुनर्मूल्यांकन' के लेखक धनंजय वर्मा को भ्रम कई प्रकार के हुए हैं । वे लिखते हैं :- ''यद्यपि 'जुही की कली' सन् '16 में ही रची हुई थी पर पंत के 'उच्छ्वास' की प्रकाशन तिथि है । 'उच्छ्वास' के पहले

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ० 31
2. " " पृ० 32
3. सं० ओंकार शरद : निराला ग्रंथावली, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्र०सं० 2030, पृ० 10
4. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 61

भी 'समन्वय' 'मतवाला' और 'माधुरी' में निराला की रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। जोशीलापन या रहस्यात्मकता प्रधान उनकी 'तुम और मैं' तथा 'अधिवास' सन् 16 में मतवाला में पहले ही निकल चुकी थी और 'जुही की कली' भी सरस्वती से सन् 16 में ही वापस हुई थी।(1)

सुमित्रानंदन पंत की 'उच्छ्वास' की प्रकाशन-तिथि सन् 1916 नहीं है, सन् 21 में ही उसका प्रकाशन हुआ(2) वही नहीं सन् '16 में 'समन्वय', 'मतवाला' आदि का प्रकाशन भी शुरू नहीं हुआ था। 'समन्वय' का प्रकाशन 1922 ई० में(3) तथा 'मतवाला' का प्रकाशन 1923 में आरंभ हुआ।(4) 'अधिवास'(5) कविता 'माधुरी' में 25 अप्रैल सन् 1923 को(6) तथा 'तुम और मैं' माधुरी में 20 जुलाई 1923 को छपी(7)। पता नहीं कि किस आधार पर धनंजय वर्मा ने इन बातों का हिसाब लगाया है।

अगर 'जन्मभूमि' (सन् 1920) को ही निराला की प्रथम कविता मान लें तो उनकी रचना प्रक्रिया का विकास सन् 1916 से मानने में कोई आधार नहीं है। परंतु दूधनाथसिंह एक ओर 'जन्मभूमि' को निराला की पहली कविता मानते हैं(8) और साथ-साथ उनकी रचना-प्रक्रिया का

- -

1. धनंजय वर्मा: निराला काव्य: पुनर्मूल्यांकन, विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, प्र०सं० 1973, पृ० 55-56
2. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव, पृ० 60
3. डॉ० रामकुमार वर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 50
4. वही, पृ० 65
5. धनंजय वर्मा ने कविता के नाम तक को परिवर्तित कर दिया। 'अपरा' में संग्रह 'अधिवास' छपा है।-'अपरा', साहित्यकार संसद प्रकाशन
6. निराला रचनावली-1, पृ० 36
7. निराला रचनावली-1, पृ० 38
8. दूधनाथ सिंह : निराला: आत्महंता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्र०सं० 1972, पृ० 13

विवाद सन् 1916 से लेकर सन् 1961 तक के 40-50 वर्षों में फैली हैं। (1) नंद दुलारे वाजपेयी की भी धारणा प्रायः यही है। ''उन्होंने ऋतु संबंधी कविताएँ सन् '16 से लेकर '61 तक बराबर लिखीं।'' (2) गंगाप्रसाद पाण्डेय भी 'जुही की कली' को सन् 1916 की रचना मानते हैं। (3)

'समन्वय' में काम करते समय सूर्यकांत कभी कभी उच्छृंखलता से काम लेते थे। पूजा पश्चात संन्यासियों के कमरों में घुसने तथा उनके सामने सिगरेट सुलगाकर धुआँ उड़ाने में उन्हें एक विशेष प्रकार का आनंद मिलता था। (4) इस प्रकार की उच्छृंखलता अंत तक निराला के व्यक्तित्व में प्रकट होती रही।

9.23 अनामिका (प्रथम) का प्रकाशन :

इन्हीं दिनों सूर्यकांत का परिचय नवजादिकलाल श्रीवास्तव से हुआ। तेल-साबुन का व्यापार करनेवाले श्रीवास्तव सेठ जी के बड़े दोस्त थे। सूर्यकांत के व्यक्तित्व तथा प्रतिभा से वे अत्यंत प्रभावित हो गये। मित्र-प्रेमी होने के कारण श्रीवास्तव सूर्यकांत की कविताओं का प्रकाशन करने को तैयार हो गये। चालीस पृष्ठों की एक छोटी-सी किताब 'अनामिका' तैयार हो गयी। उस में नौ कविताएँ संकलित थीं। सूर्यकांत की पहली कविता 'जन्मभूमि' को छोड़कर तब तक लिखी गयी सभी कविताएँ 'अनामिका' में संकलित हुईं।

---

1. दूधनाथ सिंह : निराला : आत्महन्ता आस्था, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1972, पृ० 14
2. नंददुलारे वाजपेयी : कवि-निराला, वाणी प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 1965 पृ० 15
3. गंगा प्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, द्वितीय सं० 1968, पृ० 52
4. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना, पृ० 62

नवजादिकलाल द्वारा प्रकाशित 'अनामिका' अब अप्राप्य है। उसकी नौ कविताएँ ये हैं -- (1) अध्यात्म फल (2) माया (3) जलद (4) अधिवास (5) तुम और मैं (6) जुही की कली (7) पंचवटी प्रसंग (8) [illegible] प्यार (9) [illegible]। अनामिका सन् 1923 में प्रकाशित हुई। (1)

9.24. मतवाला - मंडल

महादेव प्रसाद सेठ के कहने पर नवजादिक अपनी नौकरी छोड़ 23 शंकर घोष लेन में आ गये। अब चारों शिवपूजन सहाय, सूर्यकान्त, नवजादिकलाल तथा महादेव प्रसाद सेठ - ने मिलकर एक हास्य-रस का पत्र निकालने की योजना बनायी। डॉ० जयनाथ नलिन ने मतवाला मंडल के सदस्यों की संख्या सात बतायी है। अन्य तीन सदस्य हैं - [illegible] प्रसाद वर्मा, रामगोविंद त्रिवेदी, चन्द्रशेखर पाठक। (2) '' रविवार, श्रावणी पूर्णिमा, 26 अगस्त सन् 23 को 'मतवाला' का प्रथम अंक प्रकाशित हो गया।''(3)

आवरण पृष्ठ पर सूर्यकान्त की दो पंक्तियाँ छपीं : '' अमिय गरल शशि सीकर रविकर राग विराग भरा प्याला पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला। '' (4)

मतवाला में सूर्यकांत छद्म नामों में कविता, निबंध, आलोचना आदि लिखने लगे। पुराने महारथी, जनाब अली, गरगजसिंह वर्मा, साहित्य-शार्दूल आदि कई छद्म नामों से सूर्यकांत मतवाला के स्तंभों को भरते रहे।

---

1. जानकी वल्लभ शास्त्री, महाकवि निराला-1, पृ० 2
2. डॉ० जयनाथ नलिन: काव्य-पुरुष निराला, पृ० 7
3. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 65
4. वही, पृ० 65 से उद्धृत

'निराला' भी उस समय स्वीकृत स्तम्भ नामों में एक है ।

मतवाला के प्रत्येक अंक में 'निराला' की एक-एक, दो-दो कविताएँ छपती रहीं । पहले अंक में उनकी खड़ीबोली कविता 'रास्ता संगम' और 'पुराने मतवाले' की एक ब्रजभाषा कविता प्रकाशित हुई । दूसरे अंक में 'पुराने मतवाले' ने एक कुण्डलिया लिखी : 'कृष्ण महात्म्य' । तीसरे अंक में 'निराला' की 'नवी सम पहचान' कविता प्रकाश में आयी । राष्ट्रभाषा की भव्य मनोहर शान पर मुग्ध कवि ने गोरों से वर्ष रखने का आह्वान प्रस्तुत कविता में किया है । न जाने क्यों, रूसी-विद्वान ये०पे० चेलिशेव ने 'नवी सम पहचान' को 'निराला' की प्रथम मुद्रित कृति स्वीकार की । (1)

22 सितंबर, सन् 23 के मतवाला के आठवें (2) अंक में 'जुही की कली' का प्रकाशन हुआ । कवि का पूरा नाम प्रस्तुत कविता के साथ ही सर्वप्रथम छपा : ''पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी' निराला'' । (3)

9.25. विविधता के उपासक :

निराला की कविताओं में छायावाद के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं । काशी में प्रसाद, प्रयाग में पंत और कलकत्ता में निराला एक ही काव्य प्रवृत्ति को स्वीकार करके आगे बढ़े । निराला की सभी कृतियाँ एक ही स्तर की नहीं हैं, कभी वे वार्णिक मुक्तछंद में लिखते तो कभी मात्रिक छंद में । शुरू से लेकर वे विविधता के उपासक हैं । '' वह दिमाग की एक खिड़की

---

1. ये०पे०चेलिशेव: सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला,' राजकमल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्र०सं० 1982, पृ० 18
2. जयनारायण ने 'जुही की कली' का प्रकाशन मतवाला के आठवें अंक में माना है, काव्य रचना 'निराला' पृ 07
   (आ) निराला अभिनंदन ग्रंथ : पृ० 11
3. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 66

सोचते थे तो गंभीर कविताएँ निकलती थीं, दूसरी जिनसे खेलते थे तो व्यंग्य के तीर छूटते थे। वे बराबर विरोधियों-की जानेवाली क्रियाएँ वे एक साथ प्रायः प्रति अंक में प्रति सप्ताह संपन्न करते थे।'' (1)

द्विवेदी युगीन लेखकों की छायावादी प्रवृत्ति शून्य रही। उनकी दुरूहता पर व्यंग्य किया गया। 'छायावाद' नाम भी इस व्यंग्य का परिणाम था। मगर प्रसाद ने इन व्यंग्य बातों की परवाह न की। पंत के पास तब कोई पत्रिका न थी जिससे कि ईंट का जवाब पत्थर से दे सकें। निराला ही छायावादियों के प्रतिनिधि बनकर अपने हथियार 'मतवाला' से सारे विरोधियों का सामना करते रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि बनारसीदास चतुर्वेदी, ज्वालादत्त जोशी, इलाचन्द्र जोशी, ज्योति प्रसाद 'निर्मल' जैसे अनेकों साहित्यिकों से उन्होंने दुश्मनी मोल ली। भगवतीचरण वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि से भी उनकी पटती नहीं थी। परंतु इन दिनों निराला को जो हीन दृष्टि से देखते थे, अंत में उनकी अपूर्व क्षमता और प्रतिभा के सामने सिर झुकाते नज़र आये।

9.28. पंत से छेड़छाड़

सुमित्रानंदन पंत को ही हिन्दी काव्य-जगत में निराला सबसे अधिक चाहते थे। हिन्दी में पंत पर लिखा पहला प्रशंसात्मक लेख निराला का था : ''कविवर श्री सुमित्रानंदन पंत।''(2) 3 मई सन् '24 के मतवाला में लेख प्रकाशित हुआ। लेकिन सन् '26 में प्रकाशित 'पल्लव' की भूमिका लिखते वक्त पंत जी ने इस दोस्ती की परवाह न की। उन्होंने निराला की आलोचना की। पंत ने सोते सिंह को छेड़ा था। निराला को उत्तर लिखना पड़ा।

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 71।
2. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ० 104

'पंत जी और पल्लव' आलोचना का पूर्वार्द्ध माधुरी में छपा । समालोचना में कुछ कटुता तो अवश्य आ गयी थी, लेकिन पंत ने बड़ी शालीनता से अपनी आलोचना सहन कर ली । यही नहीं, निराला को लिख भी दिया कि पूरा लेख छपा दो, मैत्री पूर्ववत् जारी रहे । दोनों मित्र फिर जुड़ गये ।

तब तक शिवपूजन सहाय वेतन संबंधी बातों में खिजकर मतवाला मंडल को छोड़ और कहीं चले गये थे । निराला का संबंध भी महादेव प्रसाद सेठ से शिथिल होता जा रहा था । ''इसका मुख्य कारण यह था कि निराला का आदर-स्थान अब पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने ले लिया था । महादेव प्रसाद सेठ की निगाह में वह निराला से भी अधिक प्रभावशाली लेखक थे ।''(1) जब महादेव प्रसाद सेठ 'उग्र' के हो गये, 'मतवाला' उग्र का हो गया तब निराला शिवपूजन सहाय की सहायता से दूसरी नौकरी की तलाश करने लगे । अब निराला ने 'मतवाला' में लिखना छोड़ दिया । मतवाला कार्यालय 36 नंबर शंकर-घोष लेन में आया तो कमरे के भाड़े का प्रश्न उठा । निराला ने मत-वाला कार्यालय छोड़कर बिचपुर रोड पर एक कमरा किराये पर ले लिया ।

नौकरी कहीं न मिली । 'भक्त ध्रुव', 'भक्त प्रह्लाद', 'भीष्म' जैसी बालोपयोगी रचनाओं से कुछ आर्थिक लाभ तो हुआ अवश्य, लेकिन जीने के लिए वह पर्याप्त न था । वे रोगग्रस्त भी हो गये । एक दिन अपने साथियों को भी सूचना दिये बिना वे गढ़ाकोला चले गये ।

सन् 1927 की शरद के आरंभ में निराला फिर कलकत्ता आये ।(2)

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 107

महादेवप्रसाद सेठ 'उग्र' को साथ लेकर निराला से मिलने गये । सेठ जी ने उन्हें फिर 'मतवाला' में आने का प्रेमपूर्वक आमंत्रण दिया, साठ रुपये मासिक देने का वादा भी किया । (1) निराला प्रसन्न हो गये । मतवाला परिवार में पुन: शामिल होने का वर्ष निराला ग्रंथावली के अनुसार 1926 ई० है । (2) इस साल बाद सन् '27 में दूसरी बार 'मतवाला' से विच्छेद की बात भी कही गयी है । (3) पर 'मतवाला' से दूसरी बार संबंध विच्छेद इतनी जल्दी न हुआ । 'मतवाला' से उनकी घनिष्ठता न बनी रही, इसलिए 'मतवाला' में काम करते हुए भी निराला दूसरी जगह की तलाश करते रहे । उन्हीं दिनों चण्डीदास ग्रंथावली का पद्यानुवाद करने के लिए निराला को दुलारेलाल का आमंत्रण मिला, लखनऊ से । वे लखनऊ गये, वहां मलेरिया से पीड़ित हुए । (4) रोग इतना कठोर था कि कवि की दशा अब बचने नहीं । दुलारेलाल ने सेवा का उचित प्रबंध किया । बीमारी से मुक्त होने पर वे गांव गढ़ाकोला लौट आये ।

महादेव प्रसाद सेठ तथा पांडेय बेचन शर्मा उग्र दोनों मिर्जापुर के थे । इस कारण 'मतवाला' कार्यालय को कलकत्ता से मिर्जापुर ले जाने की योजनाएं बनायी गयीं । अब नवजादिकलाल श्रीवास्तव और महादेवप्रसाद सेठ के बीच पुरानी दोस्ती नहीं थी । काम के सिलसिले को लेकर दोनों में

- -

1. डॉ०रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-1, पृ०130
2. ओंकार शरद (संपा०) निराला ग्रंथावली-1, पृ० 10
3. वही, पृ० 10
4. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 136

बड़ी खुशी हुई । मतवालामण्डल ने स्वतंत्र रूप से एक पत्र निकालने का निर्णय किया । नाम रखा गया -'सरोज' । 'सरोज' के लिए मोटो तैयार करने तथा कहानियाँ, कविताएँ लिखने को निराला से प्रार्थना की गयी । ' निराला गाँव में थे । वे कलकत्ता आये । सरोज के लिए 'मोटो' तैयार की ; कविता लिखी : ''सरोज के प्रति'' । कुमार - पंत को लेकर लेख लिखा : ''सौन्दर्य दर्शन और कवि कौशल ।'' यद्यपि निराला दूसरे प्रकाशनों के लिए कविता, निबंधादि लिखते थे तो भी सन् '29 तक वे 'मतवाला' से अलग न हो पाये थे । 10-4-1929 को नंद दुलारे वाजपेयी के नाम अंग्रेजी में लिखा पत्र इसका प्रमाण है :

'' Past a few days a vagabond indeed I had been here to look after the press works and the Matwala." (1)

9.27. एक दुर्घटना :

एक बार मतवाला कार्यालय में एक दुर्घटना हुई । प्रकाशक शिवचन्द्र वर्मा के भाई दयाराम बेरी 'उग्र' की पुस्तकों के लिए आर्डर देने आ गये तो निराला ने उन्हें उठाकर नीचे पटक दिया । कुछ दिन पहले अपनी पुस्तक का पैसा मांगने निराला शिवचंद्र के यहाँ गये थे । शिवचंद्र ने पैसा नहीं दिया । निराला को पैसे की सख्त ज़रूरत थी । दयाराम बेरी बीच में आ गये और क्रोध में आकर -काठ की तलवार से - जो रंगमंच के काम आती है - उसने निराला के सिर पर वार किया था । उसका बदला निराला ने ले लिया । लेकिन महादेव प्रसाद इस पर रुष्ट हुए । उन्होंने बेरी का पक्ष लिया और कहा कि इस प्रकार के

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, से उद्धृत पृ० 155

व्यवहारों का बुरा प्रभाव उनके मस्तिष्क पर पड़ेगा। निराला के दिल को कड़ा आघात लगा। उन दिनों पुत्र रामकृष्ण उनके साथ रहते थे। रामकृष्ण भी अपने मित्रों के बहकावे पर वे संन्यास लेने कालीघाट की ओर चल पड़े। सर मुंडाया, जनेऊ उतारा और गेरुआ कपड़ा पहना। यहीं तक वे इधर-उधर भटकते रहे। आधी रात को वापस आये और गेरुए कपड़े उतार कर फेंक दिये। इस प्रकार यहीं में संन्यास समाप्त हो गया। सबेरे रामकृष्ण को साथ लेकर निराला गाँव चले गये।

9.28 सरोज का ब्याह

सरोज तेरह वर्ष की हो गयी थी। निराला ने उसका ब्याह अपने शिष्य तथा मित्र कलकत्ता निवासी शिवशेखर द्विवेदी के साथ करा दिया। अत्यंत सादे ढंग से विवाह-संस्कार पूरा हुआ। ''निराला की आर्थिक स्थिति अत्यंत चिन्तनीय थी। विवाह के पश्चात् भी रामकृष्ण और सरोज अपने ननिहाल डलमऊ में ही रहा करते थे।'' (1)

9.29 किसानों का संगठन :

महिषादल के जमींदार किसानों को लूट रहे थे। उन्होंने कवि की जमीन भी बेदखल की थी। बड़ा अत्याचार हो रहा था। ''निराला जी ने किसानों का संगठन किया और काफी समय तक जमींदारों से लोहा लेते रहे।''(2) परन्तु उन्हें यह समझने में देर न लगी कि किसानों का संगठन बहुत कमज़ोर है, उन्हें जमींदार आसानी से अपनी रक्षा कर सकते हैं। स्वयं 'बादल राग' के [illegible] [illegible] से भूमि।

1. नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० 218
2. वही, पृ० 218

लेकिन किताबों का पूर्ण प्रकाशन न मिलने के कारण अब तक न छपे ।

सन् 1929 में निराला का दूसरा कविता संग्रह 'परिमल' प्रकाशित हुआ । इसी वर्ष वे मतवाला छोड़कर लखनऊ आ गये । 'सुधा' के संपादकीय विभाग में सौ रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त हुए । संपादकीय टिप्पणियाँ वे स्वयं लिखते थे, लेकिन नाम किसी और का छपता था ।

देश, समाज, स्त्रियों तथा शूद्रों की मुक्ति को मन में रखकर निराला लगातार लिखते रहे । उनका प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' 1930 ई० में प्रकाश में आया । (1) इस उपन्यास के भी अनुकूल-प्रतिकूल आलोचनाएँ निकलीं । कुछ आलोचकों ने निराला को प्रेमचंद से भी श्रेष्ठ उपन्यासकार कहकर उनकी बड़ी तारीफ़ की । (2)

9.30 अभिनंदन :

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का बीसवाँ अधिवेशन कलकत्ता में संपन्न हुआ । सम्मेलन में भाग लेनेवालों का बंगीय साहित्य परिषद ने अभिनंदन किया । अभिनंदन-समारोह में निराला ने बंगला में भाषण दिया । बंगाल के साहित्यिकों की खुशी की सीमा न रही । उनके मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्नचित्त होकर निराला कलकत्ता से लौटे ।

9.31 विधि के प्रहार :

एक ओर निराला छायावाद के विरोधियों से जूझ रहे थे तो दूसरी ओर विधि का प्रहार भी सह रहे थे । राजयक्ष्मा से पीड़ित बेटी रायबरेली ससुराल में थी, इलाज यथासमय न हो सका । पैसे की कमी थी ।

---

1. निराला रचनावली-8, पृ० 9
2. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-1, 198

उन्हीं दिनों निराला के कुछ मित्रों ने कलकत्ता से एक साप्ताहिक निकालने की बात सोची । नाम रखा गया 'रंगीला' । 'रंगीला' लेकिन सब कुछ निराला को स्वयं लिखना पड़ा । जून 1932 में निकले पहले अंक में गीतों और अन्य सामग्रियों के अतिरिक्त एक कहानी भी प्रकाशित की गयी : 'श्यामा' । बड़े मुश्किल से तीन अंक निकले, निराला बीमार पड़ गये । स्वस्थ होने पर वे 'सुधा' के संपादकीय विभाग में लौट आये । घोर अशांति के उस काल में भी 'विशाल भारत' के संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी निराला को बहुत अधिक तंग करते थे । (1)

निराला का दूसरा उपन्यास निकला : 'अलका' । इस काल में उन्होंने कहानियाँ भी बड़ी संख्या में लिखीं । देवी, चतुरी-चमार आदि अपने जीवन की मुख्य घटनाओं से संबद्ध कहानियाँ हैं । उनकी शैली में एक नया वेग आ गया था । ''सन् '33-34 में निराला गीत, कहानियाँ, उपन्यास, संपादकीय लेख बड़े वेग से लिखते चले जा रहे थे ।''(2)

9-32 पंत की लोकप्रियता :

सन् '34-35 में पंतजी की लोकप्रियता घटती जा रही थी । परंतु निराला के लिए शब्दों की कोमलता ही सब कुछ नहीं थी । शब्दों के पीछे भाव तथा विचार की पुष्टि भी वे चाहते थे । लेकिन उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ होते जा रहे थे । उनकी कृतियों के महत्त्वपूर्ण अंशों पर बहुत कम व्यक्ति ही ध्यान देते थे । उनको लगा कि सारा हिन्दी संसार

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 174-175, 178-179
2. वही, पृ० 262

उनके मित्र थे । किसी सेठ के अखबार, जिसका भी और कामों तक का उन्होंने संपादन किया । (1)

तभी रामविलास शर्मा से निराला का परिचय हुआ था । अंग्रेजी के एम०ए०, रिसर्च स्कॉलर को अपनी कविताओं की प्रशंसा करते सुना तो निराला का तप्त-चित्त थोड़ा ठंडा पड़ गया । निराला से परिचित होने के पहले ही रामविलास शर्मा 'परिमल' देख चुके थे । उनके मन में यह धारणा दृढ़ हो गयी थी कि निराला शैली या व्याकरण से पक्के नहीं हैं । (2) किन्तु 'परिमल' के प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव की निराला की प्रतिभा पर उतना विश्वास न था ।

9.3 कवि का कमरा :

नारियलवाली गली की एक पुरानी इमारत में निराला रहते थे । रामविलास शर्मा उनके साथ हो गये । निराला नीचे के कमरे में रहते थे, रामविलास ऊपर थे । कवि के कमरे में कोई मेज़-कुर्सी नहीं थी, फर्श पर दरी बिछी थी । एक कोने एक पुराना संदूक रखा हुआ था जिसमें एक-दो कुर्ते कनटोप आदि थे । एक ओर पत्र-पत्रिकाओं के ढेर । एक पुरानी मटकी थी जिसमें ताजा पानी रखा हुआ था । एक बूढ़ा कुक्कुर भी था जो चौकीदार का काम करता था । लकड़ी के एक तख्ते को ज़मीन पर टेककर वे लिखते थे । आवश्यक काट-छाँट लिखते समय ही कर देते थे । प्रत्येक कार्य में उनकी गति धीमी थी, पर दृढ़ और निश्चित ।

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 208
2. वही पृ० 213

'निराला ने 'तुलसीदास'- एक लंबी कविता लिखी जो धारावाहिक रूप से 'सुधा' में प्रकाशित हुई । राम विलास शर्मा ने 'तुलसीदास' देखकर कहा-'बढ़िया चीज है' ।(1)

पर दुलारेलाल भार्गव शिकायत करने लगे थे कि 'तुलसीदास' के छापने से 'सुधा' की ग्राहक संख्या घट गयी । (2) इस कमी को पाटने के लिए निराला ने 'प्रभावती' उपन्यास लिखा ।

9.34. सरोज की मृत्यु

सरोज की बीमारी बढ़ी । वैद्यों ने उसे गंगा के किनारे रखने को कहा । महीने भर, गंगा के तट पर, एक मठ में सरोज रखी गयी । दवा लेकिन पैसे कहां से आयें ? कई बार सुधा के प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव से रुपये मांगे, कचहरी भी दौड़ गये, फायदा न हुआ । आखिर सरोज की मृत्यु (3) की खबर आयी । ''उन्होंने एक भी आंसू न गिराया, एक भी शब्द न कहा । कुछ देर कमरे में चक्कर लगाते रहे । फिर कुर्ता पहना, छड़ी उठाई और घर से बाहर निकल गये । '' (4)

निराला का दुख सरोजस्मृति में प्रकट हुआ । लिख के दुख को बहा दिया तो वे कुछ प्रकृतिस्थ हुए । 'सरोजस्मृति' सुधा में ही छपी ।

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 247
2. डॉ० '' '' पृ० 248
3. सन् 1935 में ओंकार शरद (संपा०) निराला ग्रंथावली-1, पृ०11
4. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 259

लेकिन दुलारेलाल भार्गव से उनका नाता टूट गया था ।

निराला गीतों की सृष्टि में डूब गये । निरंतर लिखते रहे, लेकिन मन की तृप्ति न मिली । गीतों का संग्रह 'गीतिका' दुलारेलाल भार्गव को न देकर लीडर प्रेस में छपवाया ।

'तुलसीदास' के अंत में जानकी वल्लभ शास्त्री ने निराला पर कविता लिखी । यह निराला पर पहली कविता थी । कविता देखकर निराला खुश तो हुए, लेकिन उसे न छापने की सलाह दी । उन्होंने शास्त्री को लिखा था : ''आपकी काव्य-प्रतिभा निराला' की तारीफ में, उसे तुलसीदास से मुकाबले मंजूर नहीं । पर मैं इसे कहीं भेज नहीं सकता, न भेजा सकता हूँ । इसे तारीख डालकर, रख रखिए । मेरी राय में प्रतिष्ठित होकर, यदि इच्छा हुई, तो कहीं भेजिए ।'' (1) गुरुदेव का आदेश उन्होंने मान लिया । सन् '35 में लिखी उस कविता को बारह वर्षों बाद सन् '47 में श्री श्री शमशेर बहादुर सिंह के अनुरोध पर 'नया साहित्य' में शास्त्री जी ने प्रकाशित कराया था । (2)

9.35 ध्रुव और शक्ति :

'शक्ति पूजा' के कवि देख रहे थे कि सब कहीं अंधकार की ही विजय होती है । जहाँ अन्याय है, वहीं शक्ति है । उस शक्ति से रणकौशल की अवहेलना देखते रहनेवाले निराला (3) को लगा कि मर्यादा-

---

1. जानकी वल्लभशास्त्री : निराला के पत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, फर्स्ट 1971, पृ० 82
2. वही, पृ० 82

पुरुषोत्तम राम पर दुष्ट रावण के तीर चल रहे हैं। जीवन भ्रान्ति से उनके मन का एक पक्ष तो अवसन्न हो रहा था, लेकिन उनके मन का दूसरा पक्ष रावण से समझौता करने को तैयार न था। साधना से उस पर शक्ति को अपनी ओर कर लेने का उन्होंने निश्चय कर लिया। उनकी कठोर साधना का परिणाम है 'राम की शक्तिपूजा'। यह लंबी कविता इलाहाबाद से प्रकाशित 'भारत' दैनिक में 26 अक्टूबर 1936 को छपी।(1) राम विलास शर्मा ने इसका प्रकाशनकाल 10 अक्टूबर सन् '36 कहा है जो ठीक नहीं लगता। क्योंकि 'राम की शक्तिपूजा' की रचना 23 अक्टूबर में ही हुई थी।(2) रचे जाने से पहले प्रकाशित कैसे हो सकती है?

सन् 1938 में निराला ने 'कुल्ली भाट' लिखा। यह एक अजीब ढंग की रचना है। "पं० पथवारी दीनजी भट्ट (कुल्ली भाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका में है। उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है, और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है। सहयोगियों के लिए यह दोष है, पर साहित्यिकों के लिए, निश्चित जितने पर गुण होगा।"(3) फिर भी निराला रचनावली के संपादक नंदकिशोर नवल ने इसे उपन्यासों की कोटि में रख दिया है। 'कुल्ली भाट' में निराला स्वयं प्रधान पात्र के रूप में आ गये हैं। 'कुल्ली भाट' के चरित्रांकन द्वारा निराला ने सच्ची देश-सेवा का आदर्श लोगों के सामने रखा है।

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ० 319
2. निराला रचनावली-1, पृ० 319
3. वही-4, पृ० 20

बलभद्र दीक्षित पढ़ीस, उनके पुत्र [illegible] अमृतलाल नागर, नरोत्तम नागर, रामविलास शर्मा और निराला ने मिलकर एक हास्य-रस का साप्ताहिक 'चकल्लस' निकाला। कांग्रेसी नेताओं और ढोंगी साहित्यिकों की खिल्ली उड़ाना ही 'चकल्लस' का मुख्य काम था।

कालाकांकर से सन् '38 में पंत तथा नरेन्द्र शर्मा के संपादकत्व में 'रूपाभ' निकला। उसके पाँचवें अंक में पंत के अनुरोधानुसार रामविलास शर्मा ने निराला पर लेख लिखा। 'रूपाभ' के आठवें अंक में निराला का अधूरा उपन्यास 'चमेली' प्रकाशित हुआ। इस काल में निराला ने अनेक -'नये गीत' भी लिखे।

9.36. पुत्र की शादी :

जुलाई 1, 1938 को रामकृष्ण की शादी रामखिलावन शुक्ल की भतीजी कुशकुमारी देवी से संपन्न हुई। विवाह का निमंत्रण 'चकल्लस' में भी छपा था।(1) विवाह में तिलक-दहेज की प्रथा तोड़ी गयी। विवाह का वर्ष जानकी वल्लभ शास्त्री ने सन् '37 बताया है(2) जो ठीक नहीं लगता। विवाह का निमंत्रण भेजते हुए निराला ने रामविलास शर्मा को जो पत्र लिखा था वह 8-6-'38 का था। (3)

सन् '39 में नवजादिक लाल श्रीवास्तव का देहांत हुआ। निराला सोचने लगे कि अब उनकी बारी है। उनका शरीर जर्जर हो चला था।

9.37. गर्म पकौड़ी :

आत्मीयता का अभाव निराला को खिझा देता था। एक बार निराला

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 312-313
2. जानकी वल्लभ शास्त्री : महाकवि निराला-1, पृ 102
3. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्यसाधना-1, पृ० 312

मेरठ बुलाये गये । कविता-पाठ के समय छात्रों ने कुछ गड़बड़ी की । निराला नाराज़ हो गये । उन्होंने कहा कि कविता नहीं सुनाएँगे । प्राध्यापकों तथा अन्य मित्रों के बहुत कहने पर वे मान गये और केवल 'मरण कसौटी' सुनाकर चुप हो गये । श्रोताओं ने 'राम की शक्तिपूजा' और 'जुही की कली' सुनने का आग्रह प्रकट किया गया, पर निराला टस-से-मस न हुए । उन्होंने कहा कि तुम 'मरण कसौटी' के ही काबिल हो ।

निराला औपचारिक समारोहों में भाग न लेते थे । ऐसे समारोहों में आत्मीयता के अभाव का अनुभव उन्हें होता था । आत्मीयता की आशा में ही बड़े-बड़े लोगों का संघर्ष छोड़ वे छात्रों के बीच आ गये थे, पर वहाँ भी कसौटी छोड़कर खेल में चुनी गई कसौटी स्वीकार की थी :

''हारी, तेरे सिर चोटी / समय की चकाई
मैं ने भी दी कसौटी । '' (1)

लेकिन यहाँ भी आत्मीयता की आशा व्यर्थ रही । इसलिए निराला 'राम की शक्तिपूजा' या 'जुही की कली' सुनाने को राजी न हुए ।

9·38· मृत्यु - प्रेम :

सन् 1940 में रामकृष्ण की स्त्री प्रसूति-ज्वर से पीड़ित हो गयी । निराला को अब जिन्दगी से मोह ही जाता रहा । मृत्यु के नीले रंग पर वे मुग्ध हो गये । कभी - कभी अपने को वे मृत भी मान लेते थे । ऐसी अवस्था में भी कल्पना करते रहे, व्यक्तिवाद

- -

1· निराला रचनावली-2, पृ० 42

निरीह' जैसी तीखी उनकी व्यंग करने में पेश पाती है। (1)

सन् 1941 में 'कुकुरमुत्ता' अंशकाव्य तैयार हो गया। इसी समय यह काव्य-कृति पुनर्प्रकाशित प्रकाश हुई। सन् '42 में 'स्फटिक शिला' लिखी गयी। ज्यों-ज्यों निराला की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी त्यों-त्यों पंत निराला से दूर होते जा रहे थे। पंत जी के मन में यह गलत धारणा बैठ गयी थी कि निराला तथा उनके भक्त रामविलास ने मिलकर उनपर अनर्गल आक्षेप का प्रयोग किया है :

''अमिता माँ का आधार लिये
कुमारी का बलिदान प्रचंड,
स्वागत करते, करते स्थापित
हुए, शक्ति माली उद्दंड।
x x x x
किया प्रेरित गुरु ने कवि चित्त
शिष्य की मेरे रही पुकार'' (1)

1943 ई० में अज्ञेय के संपादकत्व में 'तारसप्तक' निकला जिसमें निराला पर लिखी गयी रामविलास शर्मा की कविता भी संकलित थी।

9.39. भीख और भीखमंगे :

निराला अब भी सपने देखते हैं। राजाओं और महात्माओं के साथ-साथ राक्षसों तथा जिन्नातों का दर्शन वे करते हैं। वे स्वप्न में उन जिन्नातों से लड़ते हैं। फिर भी उनकी लेखनी ने विराम न लिया।

---

1. सुमित्रानंदन पंत : 'शिल्पायन', पृ० 356

'बिल्लेसुर बकरिहा' 'चमेली' आदि पुस्तकें इसी काल की रचनाएँ हैं।

सुमित्राकुमारी सिन्हा के पति वाजपेयी रसिक संसार प्रकाशक थे। निराला वाजपेयी की कोठी में अक्सर रहे। उनकी कई पुस्तकें प्रेस में थीं, लेकिन वाजपेयी साहब रायल्टी की बात कुछ नहीं करते थे। पुस्तकों की रायल्टी को लेकर पति-पत्नियों से निराला झगड़ा कर बैठे। इस अपराध में पकड़ कर उन्हें चार दिन तक वाजपेयी ने कमरे में बंद रखा। इस लड़ाई के संबंध में निराला ने जानकी वल्लभ शास्त्री को 17-3-44 में लिखा : ''वाजपेयी की किताबें कई प्रेस में हैं। एक मुकदमे से घूम रहा हूँ। जवाब वे किसी को नहीं देते। मतलब बड़ी चालें। जवाब न देने से चोरी एक किताब गया बेचे। 'चोटी की पकड़' उन्हीं के यहाँ लिखी गई थी, अब तक दूसरे के यहाँ रही है। इस पर सुमित्रा जी से लड़ाई हो गयी। कुछ लोग कहते हैं, सुमित्राजी अधिक बुद्धिमती हैं, कुछ कहते हैं, वाजपेयी साहब।'' (1)

9.40 कुकुरमुत्ता :
==============

महादेवी वर्मा ने साहित्यकार संसद की स्थापना की थी। उन्होंने निराला की कविताओं का एक संकलन (अपरा) तैयार किया। ''निराला की बड़ी इच्छा थी कि संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' भी रहे। महादेवी ने अपने भाई का जो छायावादी चित्र बनाया था उसमें 'कुकुरमुत्ता' की कहीं गुंजाइश न थी। निराला ने उन्हें बहुत समझाया कि

- -

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ0 220

'कुकुरमुत्ता' आज की सबसे सुंदर कविता है, जीवन के यथार्थ से घबड़ाना नहीं चाहिए। ''(1) फिर भी 'कुकुरमुत्ता' को 'अपरा' में स्थान न मिला। सन् '46 में यह काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ। (2) इसके अतिरिक्त इसी साल 'बेला' (गीतों का संग्रह), 'चोटी की पकड़' (उपन्यास)[3] और 'नये पत्ते' (आधुनिक काल की कविताओं के संग्रह) निकले। मदनेन्द्र गुप्त ने 'नये पत्ते' शीर्षक को भी बदल डाला है। उन्होंने 'नीम के पत्ते' बताया है। (4)

सन् 1947 में निराला के साथी रामचन्द्र द्विवेदी बीमार पड़े (5) तो निराला अपने बेटे रामकृष्ण के साथ लखनऊ पहुंचे। यह खबर पाकर रामविलास शर्मा अपने दो भाइयों के साथ उन्हें देखने गये। रामविलास ने देखा कि निराला अपनी नाक के सामने बाहर से विराट पुरुष दीखते हैं।

रामविलास शर्मा की ''उन्होंने यह स्नातक-मुनि दिखाई पड़ी अक्रोधित गर्म पानी वह राम में घंटों घूमा करते थे। उन्हें यह ख्याल तक भी याद था नहीं उनके लखनऊ पहुंचने से पहले ही मनोहरा देवी की चिता जली थी। '' (6)

गंगा के तट पर मंदिर के प्रांगण में लकड़ी-हारमोनियम लेकर सब बैठ गये। पिता ने हारमोनियम रखा, पुत्र ने पिता के लिये कुछ गीत गाये।

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 369
2. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ० 247
3. वही, पृ० 249
4. मदनेन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य विविध प्रसंग, सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1974, पृ० 58
5. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ० 251
6. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 373

कुछ गीत निराला ने भी गाये, रामकृष्ण ने उनको भी सँभाला ।
आखिर निराला के कंठ से तुलसीदास का पद फूटा :

''श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम् ।''

अंधकार में गंगातट की ओर देखते-देखते वे गा रहे थे और अपने अतीत में भ्रमण भी करते जा रहे थे । इसी वातावरण में उन्होंने यह गीत पहली बार मनोहरादेवी के मधुकंठ से सुना था ।(1) यही गंगा तट सरोज की क्रीडा-भूमि था ।(2) माँ-बेटी दोनों अब न रहीं ।

दो महीने और दो - ढाई बीत चले । चार महीने की कड़ी बीमारी के पश्चात् निराला के भाई का देहांत हो गया ।

9.41. अज्ञातवास :

एक दिन विवेकानंद का 'रामचरित' लेकर निराला घर से निकल पड़े । कुछ दिन तक न दिखे तो अखबारों में खबर दी गयी :
''निराला जी, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अपने घर से विवेकानंद के रामचरित को लेकर अचानक एक दिन लापता हो गये । इधर कुछ दिनों से उनका दिमाग कुछ खराब था ।'' (3)
निराला सीधे आगरा में रामविलास शर्मा के घर आये । ओढ़ा गाँव भी साथ लाये हैं । दो दिन तक वहां रहे, वहां से उन्नाव चले गये । 1947 में गंगाप्रसाद पाण्डेय उनसे मिलने उन्नाव गये, तो देखा कि कवि स्वस्थ हैं, प्रसन्न हैं । (4)

- -

1. कुल्ली भाट : निराला रचनावली-4: पृ0 49
2. सरोज स्मृति : निराला रचनावली-1, पृ0 298
3. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ0374 से उद्धृत
4. गंगा प्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला ; पृ0 272

निराला अब विवेकानंद की तरह साफा भी बाँधने लगे थे । भारती प्रचारिणी सभा में आयोजित अभिनंदन समारोह में रेशमी कुर्ता और कामदार जूते पहनकर आ विराजे । वेदमंत्रों का पाठ हुआ, महिला के हाथों तिलक लगाया गया, जानकी वल्लभ शास्त्री ने 'वर दे वीणा वादिनी' का गायन किया । ग्यारह हजार की निधि भेंट की गयी । निराला ने वह धन साहित्यिक संस्थाओं को दे दिया । महादेवी और पंत समारोह में आये नहीं थे, इससे निराला को बड़ा क्षोभ हुआ । फिर भी महादेवी वर्मा के 'साहित्यकार संसद' के लिए निधि से दो हजार रुपये दान देने को वे न भूले । कवि सम्मेलन में शिवमंगलसिंह सुमन ने निराला पर अपनी कविता सुनायी । ''स्वर्ण-जयन्ती (1947) के पश्चात् निराला का अधिकतर प्रयाग में ही रहे । वहाँ 'भारती भंडार' से उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं अतएव वहाँ रहने में उन्हें कुछ अधिक सुविधा प्रतीत होती थी ।'' (1)

9.42 'अपरा' :

निराला ने किसी प्रतियोगिता में अपनी पुस्तक न भेजी । परंतु महादेवी ने 'अपरा' काव्य संग्रह प्रतियोगिता में भेज दिया । दो हजार एक सौ रुपये पुरस्कार के रूप में प्राप्त हो गये । निराला ने उसे नवजादिक लाल श्रीवास्तव की विधवा को देने का प्रबंध किया ।

एक बार वे गाँव चले गये । लौट आये तो बुरी तरह पिटे थे । चोटों के स्वभाव से मित्रों को लगा कि कई लोगों ने मिलकर मारा है, सिर में गहरे घाव थे । पूछने पर निराला ने टाल दिया । लेकिन

- -

1. नंद दुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० 219

जानकी वल्लभ शास्त्री के सामने , जिन्हें निराला अपना बेटा समझते थे, सारा रहस्य खुल गया । 'अपरा ' पर जो धन मिला था, उसको लेकर जो मार-पीट की दुर्घटना हुई थी । भगवतीप्रसाद की विधवा पर की गयी सहानुभूति पर चोटकर निराला के सम्बन्धों ने ही उनकी खिल्ली उड़ायी थी । (1)

फिर से निराला संन्यास लेने की सोचने लगे । 4-10-49 को उन्होंने भगोती [illegible] को लिखा कि वे संन्यासी हो गये हैं । साधों का लिबास (रामनामी आदि) छोड़कर संन्यास ग्रहण करने में वे गर्व का अनुभव कर रहे थे । अब उन्हें रोटी की चिंता नहीं थी भिक्षुओं की भांति भिक्षा से मांगकर खाने को वे तैयार थे । वहाँ पीपल की छाया में बैठकर कुछ-कुछ लिखते रहने का इरादा था ।

निराला ने संगम भवन (दारागंज) छोड़ दिया । इसका एक दूसरा कारण भी था । कुछ मित्रों के निमन्त्रणों के सामने आते ही दयापूर्ण होनेवाले कवि ने संगम-भवन साफ करनेवाली गरीब लड़की को ओढ़ने के लिए खिड़की का पर्दा काट कर दे दिया था । यह व्यवहार संगम के अधिकारियों को न रुचा । बिना कुछ सोचे वे अपने ही वर्षों का 'विलासी जीवन' (सुख सुविधाओं से युक्त संगम-भवन का जीवन) छोड़ हिन्दुस्तान में (दारागंज के एक मामूली मकान में) आकर रहे । पहले एक स्वतंत्र मकान किराये पर लेकर रहे । फिर श्रीनारायण चतुर्वेदी के साथ हो गये । राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी में भी कुछ काल तक रहे । आखिर निराला के घनिष्ठ मित्र और कलाकार कमलाकर के अनुरोध पर वे उनके घर आ गये । (2)

---

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ0 263
2. नंददुलारे वाजपेयी : कवि-निराला, पृ0 220

9.43. यश और मौन :

निराला पूर्ण रूप से मौन न हो सके । अब भी रूप-रस-स्पर्श-गंधशब्द की दुनिया में उनका निवास था । इसलिए वे निरंतर प्राणवान रचनाओं की सृष्टि में डूबे रहे । 'अर्चना' (गीतों का संग्रह) सन् 50 में प्रकाशित हुआ । गीतों का एक दूसरा संग्रह 'आराधना' भी निकला जिसका प्रकाशन साहित्यकार संसद ने किया । 'निराला' पर भी कविताएँ तथा लेख बड़ी संख्या में लिखे जाने लगे थे । 23 जनवरी 1950 में 'संगम' साप्ताहिक का विशेषांक निकला तो उसमें निराला पर माखनलाल चतुर्वेदी, पंत और रामकुमार वर्मा की कविताएँ पंत, अज्ञेय आदि के लेख प्रकाशित हुए ।

सन् '54 की गर्मियों में निराला का स्वास्थ्य कुछ गिर गया । मानसिक कमज़ोरी के साथ साथ शारीरिक पीड़ाएँ भी बढ़ती जा रही थीं । मिलनेवालों से वे अंग्रेज़ी में ही ज़्यादा बातचीत करते थे । मिलने के लिए हिन्दी के नये-पुराने लेखक आ जाते थे, अपनी किताबों के लिए निराला से सम्मतियाँ भी लिखवाते थे । कभी हिन्दी में, कभी अंग्रेज़ी में, कभी अपने नाम से कभी दूसरे के नाम से निराला सम्मतियाँ लिख देते थे ।

सरकारी नौकरियों से उनको चिढ़ थी । रेडियो में भाषण देने या कविता-पाठ करना उन्हें पसंद नहीं था । यह जानकर कि पंतजी ने आकाशवाणी में नौकरी स्वीकार की है, वे तिलमिला उठे ।

9.44. बीमार :

विक्षिप्तता के लक्षण रह रहकर निराला में प्रकट होते थे । उनकी अस्वस्थता के दिनों में पंत उन्हें देखने न आये । सन् साठ की निराला

की स्थिति अत्यंत खराब हो गयी । वे पहले से ही अपने पिता से विरासत में मिली बीमारी - साइटिका से पीड़ित थे । अब खाँसी भी आ गयी । सांस लेने में कष्ट होने लगे । कुछ दिन तक वे मौन पड़े रहे । जब बचना मुश्किल लग रहा था, तभी पंत जी उन्हें देखने आये । निराला को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

निराला मरे नहीं । उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा । वे उठे, चले । यद्यपि मांसाहार पर प्रतिबंध लगाया हुआ था तो भी कहीं से मांस लाकर घंटों तक पकाया । दूसरों को खिलाकर स्वयं भी खा लिया ।

रात में निराला का गला घुटने लगा, सिर में गर्मी का अनुभव हुआ । कमलाशंकर से उन्होंने शिकायत की कि किसी ने उन्हें जहर दिया है । रात बढ़ने पर कष्ट बढ़ा । जोरों से कराह रहे थे । सभी मित्रों ने अस्पताल ले जाने की सोचा । लेकिन निराला ने इनकार कर दिया । 'उनकी अंतिम इच्छा थी कि शांति से उनके प्राण निकल जाते हैं ।' (1)

निराला के पुराने दुश्मन ज्योति प्रसाद निर्मल 14 अक्टूबर 1961 को मिलने आये । आश्चर्य कि निराला उठ बैठे । 'निर्मल' को तम्बाकू खिलायी, पान खिलाया और विदा किया ।

9.45 मृत्यु :

दूसरे दिन फिर कष्ट हुआ । इस बार डाक्टर ने कहा अब हालत ज्यादा बेकार है । 'किडनी' काम नहीं करती । निराला बार-बार

---

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना-1, पृ० 415

उंगलियों पर हाथ फेरते थे । लोगों को मालूम हुआ कि उन्हें अवश्य पीड़ा हो रही है । मगर वे शांत थे । चीख या चिल्लाहट न हुई । आँखों में आँसू भी न छलके । इंजेक्शन देकर उन्हें बेहोश किया गया ।

महाप्राण निराला को जमीन पर लिटाया गया । पास रामकृष्ण बैठे । शक्तिपुकार सब कुछ हुआ । अवनीमाल मित्र ने 'राम की शक्तिपूजा' की पंक्तियाँ पढ़ीं :

''रवि हुआ अस्त , ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर । '' (1)

मृत्युपर्यंत अपराजेय समर में निराला लगे रहे । अंतिम दौर तक प्रतिरक्षा-क्रिया की । देवियों की तरह उन्होंने अपने को असमर्थ नहीं पाया, उनकी लेखनी रुकी नहीं । सन् 1961 में हार्ट की कठिन-बीमारी पर भी हुए थे मृत्यु से जूझ रहे थे । मृत्यु को कपोल आँखों से नहीं, संकुचित मन से स्वागत कर रहे थे । अगले भी सवेरा कहकर पुकार रहे थे । वह सवेरा 15 अक्टूबर 1961 को आया । सवेरे 9 बजकर 23 मिनट पर निराला ने देहत्याग किया ।(2) मृत्यु उनके लिए भी एक और फेरा था :

''धूप झुकी है डाल-डाल की तरह लगी थी ,
पुन : सवेरा एक और फेरा है जी का । '' (3)

---

1. निराला : 'राम की शक्तिपूजा' , निराला रचनावली-1, पृ० 310
2. जानकी वल्लभ शास्त्री (संपा०) महाकवि निराला-1, पृ० 1
3. निराला की अंतिम कविता की पंक्तियाँ , निराला रचनावली-2, पृ० 484

9.46 वैयक्तिक विशेषताएँ :

1. दुःखियों - पीड़ितों के प्रति निराला के हृदय में करुणा का अपार उमड़ पड़ता था ।
2. भारत-राष्ट्र और हिन्दी से उनका प्रेम निस्सीम था ।
3. अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु दूसरों पर दबाव डालना उन्हें पसंद नहीं था ।
4. निराला भंग खाने के आदी है , कभी कभी मदिरा भी पीते है ।
5. औपचारिक समारोहों में बहुत कम भाग लेते है ।
6. खेलों में विशेष दिलचस्पी लेते है । गोली, कबड्डी, फुटबाल , टेनिस , क्रिकेट , आदि खेलते थे । 'ब्रेक - ब्लेन', 'ट्रेस्टी मास्टर' आदि ताश के ऐसे कई खेलों में वे निपुण थे , जिनपर जादूगरों का भी अधिकार न था ।
7. निराला नियमित रूप से व्यायाम करते थे ।
8. प्रतिभाशालियों की प्रशंसा करने में वे कभी पीछे न रहे । हाकी के क्षेत्र में ध्यानचंद , कविता के क्षेत्र में रवीन्द्र और कुश्ती के क्षेत्र में गामा के वे उपासक थे ।
9. रात को कभी कभी उन्हें नींद नहीं आती थी , तब घर या कमरे में घूमा करते थे , कभी कुछ सोचकर हँस पड़ते थे ।
10. फक्कड़ और घुमक्कड़ स्वभाव के होने पर भी वे घर की बड़ी चिंता रखते थे ।
11. निराला अपने को किसी से कम नहीं मानते थे । उनकी दृष्टि में महात्मागांधी अगर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति

थे तो वे स्वयं साहित्य-व्यक्ति थे । वे कभी अपने को राजपरिवार से संबद्ध मानते थे तो कभी मार्कण्डेय, कभी तुलसीदास से सम्बद्ध मानते थे तो कभी [illegible] से ।

12. गाना-बजाना, कविता-पाठ करना, अभिनय करना आदि में दूसरा कोई आधुनिक साहित्यकार उनकी बराबरी नहीं रखता था । रागों में 'भैरवी' उन्हें विशेष प्रिय थी ।

13. भरसक रुपया दे गरीबों की आर्थिक सहायता पहुँचाने में वे सबसे आगे रहे ।

14. वेश-भूषा में वे लापरवाह थे ।

15. उनका जीवन सादा है, घर के सभी कामों में दक्ष थे । अतिथियों का खूब आदर-सत्कार करते थे । निराला छुआ-छूत का भेद नहीं रखते थे । सबसे समान व्यवहार करते थे ।

16. निराला फूलों की गंध और रंग के शौकीन थे । वे जानते थे कि लखनऊ में कहाँ-कहाँ कौन-कौन फूल खिलते हैं ।

17. स्त्रियों तथा छोटों से वे अत्यंत सहानुभूति से व्यवहार करते थे । अपनी दुःखगाथा दूसरों को सुनाना उन्हें पसंद न था ।

- - -0- - -

दसवाँ अध्याय :

उपसंहार

10 · उपसंहार

निराला का समग्र अनुशीलन यही सिद्ध करता है कि समकालीन कविता की तुलना में निराला - काव्य का अपना अलग व्यक्तित्व है । भाव , विचार तथा शिल्प - भंगिमा सबकी अनूठी है । निराला की कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह पाठक की पकड़ में जल्दी नहीं आती , उसके लिए थोड़े श्रम की आवश्यकता है । जानकी वल्लभ शास्त्री ने ठीक लिखा है : ''निराला प्राणों की प्रचंड शक्ति के स्रष्टा थे । युग-सा व्यवधान उनकी महत्ता को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकता था । उनका साहित्य भी शक्ति सम्पन्न न था , माधुर्य की ऊर्जा से तरंगित होता ही था ।'' (1) सचमुच उत्कृष्ट कला वह जो धीरे-धीरे पाठकों के सामने उद्घाटित होती हो और देर तक पाठकों को अपनी प्रभाव - सीमा में बांधे रहे । (2)

निराला छायावाद के श्रेष्ठ कवि थे किन्तु छायावाद के प्रभाव में न आये , क्योंकि जड़ता-विरोधी चेतना की वेगवती धारा उनमें से होकर बहती थी । वे रहस्यवादी थे लेकिन योगी लेकिन उन्होंने मौन न ओढ़ा , आत्मा की मुक्ति से बढ़कर पीड़ित - मानव की मुक्ति के लिए विरोधी-शक्तियों से जूझते रहे । निराला प्रगतिवादी

- -

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ03।

2. ". . . the poem should conceal certain properties that may only reveal themselves very gradually. It's not the business of the poet to allow a poem; at a first reading, to burn itself out in one brilliant flash."--Robert Miller & Ian Currie, The Language of P., Heinemann Educational Books Ltd, London, First-published 1970, P-3.

थे लेकिन समाज की ऊपरी सतह पर बहते रहना उन्हें पसंद नहीं था, वे एक कुशल गोताखोर थे। वे प्रयोगवादी थे परंतु प्रयोगों के लिए प्रयोग कर न सके, घोर-वैयक्तिकता में डूबकर समाज को न भूले। वे आधुनिक थे, मगर उनकी आधुनिकता थे अपने माप से। अज्ञान-जन्य आधुनिकता के वे विरोधी थे। कविता में वे सब कुछ थे, पर कुछ भी नहीं थे। उनका कोई विशेष वाद न था, वे वादों से ऊपर थे।

निराला की प्रतिभा में ऐसा एक तत्व हमेशा कम्पित रहा जो समसामयिकता से आगे सोचने को उन्हें बाध्य करता था। उनकी अतिरिक्त सात्विकता ही इसकी मूल-प्रेरणा थी। वे भविष्य की परवाह किये बिना अपने कवि-अनुराग से हटकर सीधे मार्गों से आगे बढ़े। डॉ० संसार चन्द्र ने उन्हें व्यूह का टूटा हुआ रथचक्र माना है — ''यह रथचक्र उनकी व्यूह-रचना में अनुभूति और अनुकरण के शिलाखंडों से टकराकर चूर-चूर हो जाता है।''(1) निराला टूटा हुआ रथचक्र तो अवश्य थे लेकिन वह रथचक्र कहीं गिरा नहीं, शिलाखंडों से टकराकर चूर-चूर हुआ नहीं, आज भी वह हमारे बीच से होकर ढुलकता अनंत की ओर अग्रसर है।

किसी का अनुकरण निराला को अभीष्ट न था। परंतु वे तुलसीदास, रवीन्द्र, शैली, कीट्स, शेक्सपियर और मिल्टन से अवश्य प्रभावित थे। इन्हीं के नाटक भी उन्हें विशेष प्रिय थे। (2)

- -

1. डॉ० संसारचन्द्र : आकलन और समीक्षा, अशोक प्रकाशन गृह, नई-दिल्ली, पृ० 14
2. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला, पृ० 27

'दो महाकवि, गो० तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' (सन् 1929)(1) 'शैली और रवीन्द्रनाथ' (सन् 1930)[2], 'शैली और रवीन्द्रनाथ का दर्शन' (सन् 1930)[3] आदि निबंध तथा संस्मरणीय टिप्पणियाँ निराला के 'तुलसी-रवीन्द्र-शैली' क्रम की पुष्टि करती हैं। निराला पर लिखी गयी पहली कविता में जानकी वल्लभ शास्त्री ने यह और स्पष्ट भी किया है —

''शैली-रवीन्द्र-ललित-निनाद
हिन्दी - उर्वर - उर पर अबाध —
कवि - छायावाद अनाथ बालिका-काया,
उसकी चंचल लहरों में स्थिर
गुरु - ग्राह मकर - कर से फिर - फिर
पौरुष - प्रमाथ फिर - लभ्य रूप कवि आया —''(4)

रवीन्द्र की ओर निराला इतने आकृष्ट थे कि पूर्व के आधुनिक साहित्यकारों में वे केवल रवीन्द्र की प्रतिभा को ही मानते थे: ''पूर्व के विद्वानों में रवीन्द्रनाथ ही एक ऐसे महापुरुष हैं, जिनका पश्चिम के प्रायः सभी शिक्षित समुदाय पर प्रभाव है। उसका कारण बहुत कुछ यह भी है कि रवीन्द्रनाथ पश्चिम की संस्कृति की आत्मा तक

- -

1. निराला रचनावली-4, पृ0270
2. वही, पृ0 448
3. वही, पृ0 457
4. जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला', शिप्रा : पृ038

फेंक रहे हैं और प्राणों को प्रसन्न करने का कौशल उन्हें मालूम हो चुका है । वे अपनी स्वर के तार को इस प्रकार झंकृत कर सकते हैं, जिससे एक ही ध्वनि में पूर्व और पश्चिम की महिमा की रागिनी बड़ी ही मधुर बज उठती है ।'' (1) अपनी रागिनी का स्वर भी समस्त संसार में फैलाने के क्रम में निराला भी जुटे हुए थे ।

शैली से निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व का अद्भुत साम्य है । शैली की भांति निराला ने भी मानवता की मुक्ति हेतु धर्मतंत्रवादी शासन का विरोध किया । ब्रह्म की ओट दु:खी मानव वैदिक माया की अवमानना का जो साहस निराला ने दिखाया, वह शैली से प्रभावित प्रतीत होता है । रवीन्द्रनाथ की कविता पर विचार करते हुए स्वयं निराला शैली की उन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं जिनमें धार्मिक पुरोहितों से बढ़कर भक्तों का सम्मान किया गया है :

> ''Churchmen damn themselves to see
> God's sweet love in burning coals.'' (2)

''इस प्यार की शक्ति से शैली की तमाम प्रकृति चेतन देख पड़ती है । यह शैली के दर्शन की आत्मा है ।'' (3) इस 'प्रेम-दर्शन' से निराला बहुत कुछ प्रभावित थे । शैली की कविता-पुस्तक 'आलास्टर' की एक प्रति वे हमेशा पास रखते थे । (4)

- -

1. निराला रचनावली-5, पृ0448
2. वही, पृ0 451
3. वही, पृ0 450
4. डॉ0 रामविलास शर्मा : निराला, पृ0 27

शैली के 'ओड टू वेस्टविण्ड' (पश्चिमी प्रभंजन के प्रति) और निराला के 'बादल-राग' में अद्भुत साम्य भी है। (1) रूसी विद्वान ये०पे० चेलिशेव ने इस साम्य का संबंध दोनों कवियों के अनुभवों से जोड़ा है। (2)

'पश्चिमी प्रभंजन के प्रति' तथा 'बादल-राग' के भाव-शिल्प में बड़ा साम्य है। दोनों विद्रोह की भावना से प्रेरित हैं। दोनों कवियों की दृष्टि नव-निर्माण पर टिकी हुई है। वर्तमान सामाजिक वैषम्य का ध्वंस और स्वर्णिम भविष्य का सपना दोनों देखते हैं। शैली के पश्चिमी प्रभंजन से सूखे-सूखे तरु-पात टूट-टूट कर गिरते हैं, जीर्ण - शीर्ण उनको हवा उड़ा देती है; केवल बीज ही पृथ्वी के गर्भ में पड़ते हैं। भविष्य में उनके उग आने की आशा की जाती है। निराला के बादल घन-घोर गर्जन सुनाते हैं, पर्वत के उन्नत शिखरों पर आघात करते हैं, जलप्लावन करके धरती की मलिनताओं को दूर करते हैं और धरती में नवजीवन का संचार कर देते हैं। दोनों कवियों के प्रतीक एक साथ मारक तथा रक्षक हैं।

शिल्प में भी कई सादृश्य दृष्टिगोचर हैं। शैली पश्चिमी हवा के लिए 'wild', 'wild spirit', 'uncontrollable' 'impetuous' आदि संबोधनों का प्रयोग करते हैं तो निराला भी अपने बादल को 'निर्बंध', 'अगम', 'अनर्गल', 'स्वच्छंद', 'उच्छृंखल', 'उद्दाम', 'विराट' 'गगन के सम्राट' आदि कहकर पुकारते हैं। (3)

- -

1. डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ०172
2. ये०पे० चेलिशेव : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ०63
3. 'Ode to West Wind', 'The poetical works of Percy Bysshe Shelley'-Edited by Edward Dowden, Macmillan &

एक स्थान पर बादल प्रमेथस से क्रीड़ा करते भी हम देखते हैं –
''कभी किलकारता बाल प्रमेथस'' (1)

जिस प्रकार शैली प्रमेथस का उद्धार करना चाहते हैं उसी प्रकार निराला भी बादलों की दुनिया देखना चाहते हैं :
''पार ले चल तू मुझको / बहा, दिखा मुझको भी निज गर्जन-भैरव संसार'' । (2)

परंतु यही गाथा तथा मिल्टन शैलिक गीतीय काव्य के रूप में शैली के प्रमेथस से बढ़कर निराला का बादल ही खरा उतरा है। प्रमेथस गाथा के अंत में कृषक की शक्तिशाली विद्रोह होगा लेकिन मिल्टन के क्षेत्र में बादल ही अधिक सुयोग्य निकलता है । धरती के गर्भ में बीज वपन के लिए प्रमेथस की आवश्यकता नहीं । पृथ्वी में पेड़-पौधों के उगने में वर्षा की अनिवार्य आवश्यकता है । प्रतीक-ग्रहण में निराला अधिक सफल हुए हैं ।

डॉ० रामविलास शर्मा निराला की कविता में शैली या अन्य किसी रोमांटिक कवि का प्रभाव देखना असंगत समझते हैं । (3) डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा की लिखी उनकी बात से इसकी सूचना मिलती है । (4) डॉ० शर्मा ने लिखा है कि शैली, कीट्स जैसे अंग्रेजी कवियों को

- -

1. 'बादल राग'-3, निराला रचनावली-1, पृ0122
2. 'बादल राग-1, निराला रचनावली-1, पृ0116
3. डॉ0 रवीन्द्रसहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र0 2011, परिशिष्ट पृ0276
4. वही, पृ0 276

पढ़ने का अवसर उनकी परिचित होने के बाद ही निराला को मिला था। पर यह तर्कसंगत नहीं है। 1930 ई० तक शेली की कविता से निराला काफी परिचित हो चुके थे। 'सुधा' मासिक पत्र के 1930 मई तथा जुलाई अंकों की संपादकीय टिप्पणियाँ ('शेली और रवीन्द्रनाथ', 'शेली और रवीन्द्रनाथ का दर्शन') डॉ० शर्मा के मत का निराकरण करती हैं। 'अप्सरा'-प्रकाशन (1931) के पश्चात ही 'निराला-रामविलास' का प्रथम परिचय हुआ था।(1) परिचित होते समय प्रस्तुत उपन्यास की चर्चा भी हुई थी।(2) 'निराला-रामविलास-संबंध' 1931 ई० के बाद ही (सन् 1934 में)(3) स्थापित हुआ। उसके बहुत पहले ही शेली की कविता पर निराला मुग्ध हो चुके थे।

गांधीवाद, मार्क्सवाद तथा अस्तित्ववाद का प्रभाव भी निराला पर पड़ा। 'अलका', 'विधवा', 'भिक्षुक' आदि 1930 ई० तक की मानवतावादी कृतियाँ मार्क्सवाद से प्रभावित न होकर गांधीवाद तथा अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं। सन् 1930 में अपने गांव के किसानों का पक्ष लेकर तिरंगे झंडे की रक्षा के लिए निराला जमींदार का विरोध कर रहे थे।(4) लेकिन '30-31 के असफल आंदोलन ने गांधीवाद पर बड़ा धक्का लगाया और 1930 ई० से लेकर 1938 ई० तक की इस गांधी विरोधी रुझान से निराला के दृष्टिकोण में भी भारी

- -

1. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 211
2. निराला रचनावली-3, पृ० 16
3. 'देवी' तथा 'चतुरी चमार' के प्रकाशन काल में।
4. निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 169

परिवर्तन आ गया । सन् 1934 में होटल के बरामदे में खड़े होकर निराला देख रहे थे कि देश के नेता तथा अनुगामी दस हजार की पेटी लेकर जुलूस में चले जाते हैं और सड़क के किनारे पगली (निराला कृत 'देवी') का बच्चा भूखा जाता है । (1)

मार्क्स के सिद्धान्तों से प्रेरित होकर ही चरित्रों से सजाते हुए 'चतुरीचमार', (2) और 'देवी' (3) की पूजा में निराला लग गये। किसान-मजदूरों की शक्ति पर उनका बड़ा भरोसा था । लेकिन यह समझने में भी देर न लगी कि कुलीनवर्गों के विरुद्ध वे बहुत थोड़ा ही कर सकते हैं । निराशा ही निराशा के हाथ लगी ।

सन् 1935 में पत्नि की मृत्यु; ऊपर से छायावाद के विरोधियों का आक्रमण; निराला टूट रहे थे । भीड़ से कटकर मौनभंग के वे शिकार हो गये । मन थक चुका था, सर्वत्र सन्नाटा दिखाई दे रहा था । उस शून्य के ही भीतर से उन्हें शून्य के पार जाना था ।

''शून्य के ही भीतर से/ शून्य के पार जाना है । ''(4)

निराला का यह दर्शन अस्तित्ववाद से अनुकूल है । नीत्शे ने भी वेदना से गुजरकर वेदना पर विजय प्राप्त करने की बात कही है । (5) कीर्केगार्द के शून्यता-दर्शन से भी निराला प्रभावित दिखाई

---

1. निराला रचनावली-4, पृ0374
2. वही, पृ0379
3. वही, पृ0 371
4. निराला रचनावली-1, पृ048
5. डॉ0 लाल चन्द गुप्त मंगल : अस्तित्ववाद : दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका, अनुपम प्रकाशन मंदिर, पटियाला, प्र0सं0 1977 पृ0 92

देते हैं। हाइडेगर का कहना है कि मनुष्य इस भूमि में शून्य से फेंका गया है (1) और मृत्यु के पश्चात् भी शून्य में विलीन हो जाता है। शून्य भूत-भविष्य की छाया वर्तमान पर भी पड़ती है, इसलिए अस्तित्ववादी के लिए वर्तमान भी शून्य है। (2)

शून्य संबंधी निराला का दर्शन भी बहुत कुछ इसी प्रकार का है। ''शून्य या बिंदु सब शास्त्रों में सब तरफ सब समय स्वयं सिद्ध है। उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूलाधार है। जिस शक्ति संसार को शून्य से अलग किये हुए है, दूसरे तरीके से, शून्य को ही व्याख्या करने में सदैव तत्पर। x x x गणित की संख्या की तरह संसार के जीव और तमाम भावनाएँ दोनों तरफ से शून्यों से दबी हुए हैं। x x x शास्त्रानुसार शून्य और शक्ति अभिन्न है। फर्क इतना ही है कि जब शून्य में स्थिति है, तब शक्ति का ज्ञान नहीं, क्यों कि 'वह नहीं बोलता' सिद्ध है, और जब शक्ति का परिचय है, तब शून्य का ज्ञान नहीं, क्योंकि 'वह बोलता है' सिद्ध है।'' (3)

निराला ने शून्य या आकाश और शक्ति में अभेद मानकर शून्य की सारी सृष्टि का मूलाधार माना है। यह शून्य, शक्ति या वस्तु का आधार मन ही है। मन में कंपन नहीं तो शून्य भी मृत है,

- -

1. Existentialism : John Macquarrie, Penguin Books, Newyork, 1982, P.191
2. वही, पृ094
3. 'शून्य और शक्ति' (निबंध), निराला रचनावली-6, पृ0176

मन के कुंठित होते ही शून्य से शक्ति की कलाएँ फूटती हैं, शक्ति फिर पदार्थ-रूप में परिणत होती है। इस प्रकार संसार शक्ति द्वारा शून्य से जुड़ा हुआ रहता है।

ज्यों-ज्यों आत्मविश्वास टूटता गया, मन थकता गया, त्यों-त्यों निराला शक्ति की उपासना में डूबते गये। उन को इस बात की आशा थी कि दैवविधान उनके अनुकूल हो जाएगा, भाग्य उनके अनुकूल बन सकेगा, कोई अलौकिक शक्ति उनका हाथ थामेगी। आखिर सपना सत्य सिद्ध हुआ। शक्ति ने हाथ पकड़ा और आशीर्वाद भी दिया : ''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन (1).

आशीर्वाद देकर देवी राम के मुख में-हृदय या मस्तिष्क में नहीं – प्रविष्ट हो गयी, उनकी जीभ में सरस्वती बनकर बैठ गयी। यही उनकी अपार शक्ति वस्तु रूप में - कलाकार कृति 'राम की शक्ति पूजा' कलाकार - संसार को प्रत्यक्ष हो गयी। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला की कला का चरम उत्कर्ष हुआ। कवि की विजय हुई।

अपने जीवन के अंतिम दौर तक निराला ने यह सृष्टिक्रम जारी रखा। पूरी तरह से विक्षिप्तता के शिकार होकर भी सृजन-कार्य में रत रहे। विक्षिप्तता का कोई लक्षण रचनाओं में नहीं दिखाई देता। पूर्ववर्ती कृतियों से अंतर यही आया कि शब्दों के चुनाव में कवि उतना ध्यान नहीं देते।

- -

1. निराला रचनावली-1, पृ० 319

बड़े साहस के साथ निराला ने अपनी बीमारी का सामना किया। मन को संतुलित रखने के लिए आध्यात्मिकता का सहारा लिया। सांसारिक संकटों से मुक्त रहने के लिए भक्तिपरक रचनाओं की सृष्टि में लग गये। 'अर्चना' 'आराधना' 'सांध्यकाकली' के गीत इसके प्रमाण हैं।

कवि के इस प्रकार अन्तर्मुखी होने का मतलब यह कदापि नहीं था कि वे सामाजिकता से दूर हो गये। ''...भौतिक जीवन के प्रति उनका लगाव एक क्षण के लिए भी कम नहीं हो सका, संसार की नश्वरता की भावना एक क्षण के लिए भी जीवन के प्रति उनकी आस्था को कम नहीं कर सकी, धरती तथा मनुष्य के सुख-दुःख गहन-से-गहन दार्शनिक पर्वों पर भटकते हुए भी वे भूल नहीं सके, मुक्ति तथा मानव-प्रेम में उन्होंने दूसरे को ही चुना।'' (1)

लेकिन बाद में उन्होंने उस युग-प्रतीक्षा को क्षितिज पर पहुंचाया।(2) हमारी पीढ़ी के समकालीन ऐसे युगपुरुषों में सबसे पहले निराला का ही स्मरण करते हैं -

''निराला या राहुल या [illegible] या मुक्तिबोध
चाहे वह [illegible] या गैलिलियो
अथवा लुमुम्बा या मार्टिन लूथर
या गांधी या लिंकन या रोजन बर्ग

....

1 डॉ. संसार चन्द्र : आकलन और समीक्षा, पृ० 148

2. डॉ० संसार चन्द्र : आकलन और समीक्षा, पृ० 148

वे और हम जैसे सब के सब लोग
बेकार से पीड़ित एक दूषित परंपरा के शिकार हैं
इन्होंने सिर्फ अपने लिए न सोचकर
सभी आदमियों के सुख के लिए
सोचने और जीने का जुर्म किया था । '' (1)

अछूते क्षेत्रों की खोज और नयेपन का उद्घाटन करने में ही निराला का ध्यान हमेशा लगा रहा । लेकिन इस नयेपन का परंपरा-वादियों की ओर से तिरस्कार हुआ तो अपने पक्ष के समर्थन का उन्हें मार्ग अपनाना पड़ा । अमरीका के वाल्ट ह्विटमैन की तरह अपनी कृतियों की आलोचना स्वयं करने को वे मजबूर हो गये ।

अमरीकी काव्य में मुक्तछंद के प्रवर्तक ह्विटमैन ने अपनी बहुचर्चित कृति 'लीव्ज ऑफ ग्रास' की अधिकांश पंक्तियों को गद्य की पंक्तियों की तरह अनियमित रखा है । उन्होंने अपने जीवन में कहीं भी बराबरी नहीं पायी थी । ऐसे अनियमित जीवन में काव्य में ही अनुशासन का आग्रह क्यों ? उन्होंने काव्य-नियमों का भंग किया, लेकिन लय को कायम रखा ।

'लीव्ज ऑफ ग्रास' की कड़ी निंदा की गयी । उस कृति की तीन आलोचनाएँ ही अनुकूल निकलीं और वे तीनों ह्विटमैन की ही लिखी हुई थीं । (2)

- -

1. जयप्रकाश : सुबह होने से पहले, पृ085

2. ". . .More over the publication of 'Leaves of Grass' was a curiously individual venture sponsered by Whitman himself, indeed partly printed by him, it received, when it came out in 1855, only three favourable reviews. All three were written by Whitman." -- Philip Hobsbaum : Tradition & Experiment in English poetry, 1979, page: 279-280

नये प्रयोगों पर रुष्ट होकर तत्कालीन आलोचक एक साथ ह्विटमैन पर टूट पड़े, गालियाँ दीं, पागल कहा, (1) लेकिन आगे चलकर आधुनिकता के अग्रदूतों में उनकी गणना की गयी। (2)

निराला ने भी अपने '[illegible]' की प्रतिक्रिया के लिए स्पष्टीकरण का सहारा लिया। सन् 1923 की शरद में कलकत्ता से निकली 'समन्वय' पत्रिका में 'अनामिका' (प्रथम) की आलोचना प्रकाशित हुई थी उसमें आलोचक का नाम नहीं दिया गया था। 'अनामिका' के मुक्तछंद पर आलोचक की राय थी : '' बंगला के नाट्य-सम्राट महाकवि गिरीशचन्द्र ने बड़ी खूबी से ऐसे छंदों को अपनाया है, जिनमें भाव के अनुसार पंक्तियाँ भी छोटी-बड़ी होती हैं, पर पढ़ने में सभी सुंदर होती हैं और इसी से छंदों में एक अनोखी स्वाभाविकता पायी जाती है। '' (3)

स्पष्ट है कि यह आलोचना या तो निराला ने स्वयं लिख दी थी नहीं तो उनके साथियों में से किसी ने निराला के ही विचारों को शब्द-बद्ध किया था। क्योंकि 'समन्वय' तथा 'मतवाला' एक ही प्रेस में छपते थे और दोनों के कार्यकर्ता एक ही जगह रहते थे (4) और दोनों से मुक्तछंद के प्रवर्तक निराला का निकट-संपर्क था।

. . . .

1. Philip Hobsbaum : Tradition & Experiment in English poetry, p-279-280
2. Maurice Mendelson : Life and Works of Walt Whitman - A Soviet view, Progress Publishers, Moscow 1976 P.8
3. उद्धृत: डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना-1, पृ०68
4. डॉ० रामविलास शर्मा: निराला की साहित्य-साधना-1, पृ 69

निराला मात्र ज़माने के फेर में न थे। नवीनता का प्रचार ही उनका लक्ष्य था। रूढ़िवादियों की ओर से प्रायः नवीन प्रवृत्तियों का विरोध होता ही रहता है। रूढ़िवादियों से जूझते समय किंचित् आत्मप्रचार का मार्ग अपनाने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया। कवि को काँटों से निकालने की नीति ही उन्होंने अनामिका की आलोचना में अपनायी थी। नवीनता का महत्व तभी सिद्ध होगा जब हम अपरिचित प्रयोगों का अंधा विरोध न करके सतर्कता से उनकी परख करें। (1)

निराला को कभी कभी अपना सारा काम व्यर्थ मालूम होता था। कोरिन्थ के राजा 'सिसिफस' (2) तथा कैलास के 'मारामस्तु-प्रांजन' की तरह निराला देवों की ओर से दी गयी सजा मानकर पत्थर को ढकेलकर पर्वत की चोटी पर पहुँचाने के क्रम में थे। ऊपर पहुँचाये गये पत्थर को नीचे की ओर लुढ़कते देख वे ठहाका मारकर हँसते थे। उस हँसी में दुःख की छाया भी अवश्य रही। मगर इस कष्टसाध्य कार्य से निवृत्त होना वे कभी नहीं चाहते थे। हम देखते हैं कि निराला अपनी वेदना पर विजय प्राप्त करके फिर से पत्थर को ऊपर पहुँचाने के लिए तराई की ओर लौटते हैं।

यद्यपि निराला अनुभव कर रहे थे कि अपने प्रयत्न का उचित सम्मान नहीं होता, सब कुछ व्यर्थ हो रहा है, फिर भी अपने

- -

1. ". . We shall be able to decide how far such novelty is good only if we are constantly careful not to condemn the unfamiliar as necessarily unsuitable to poetry."
   --Peter Westland; History of English-Literature; contemporary literature 1880-1950 Vol.VI, 1961. P-203.
2. Albert Camus : The myth of Sisyphus, trans. Justin O'Brien penguin books, Great Britain, 1979, p-108-109.

मन से छुटटी पाना वे उचित नहीं समझते, क्योंकि उनका जीवन ही संकल्पित है, पलायन उन्हें प्रिय नहीं। इसीलिए यह 'व्यर्थ-काम' निरर्थक या निष्काम कर्म ही था, फिर भी उनको यह मारजन किया गया है। इस कठिन यत्न में उनके सारे कपड़े 'झुमझुमार' हो गये हैं, उनकी देह पर केवल लंगोटी का अनुमान ही बाकी है। निराला ने इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं की कि दुनिया क्या कहेगी? आधुनिक अस्तित्ववाद के जनक किर्केगार्द को भी पीठ पर कोई विश्वास न था। (1)

हेमिंग्वे की तरह निराला भी विक्षिप्तता के शिकार बने, लेकिन आत्महत्या इसलिए नहीं की कि निरर्थक जगत त्यागी होने के साथ-साथ निराला भोगी भी है। डॉ० रामविलास शर्मा ने इस ओर संकेत भी किया है — ''अन्तर्मुखी मन से निराला राजमहलों की उपेक्षा करते, भोगी मन से राजसी जीवन की ओर प्रबल रूप से आकर्षित होते।'' (2)

इसलिए अंतिम क्षण तक उनकी लेखनी न रुकी, सरस्वती की सेवा में लीन रही।

अपने अभ्युदय काल से — छायावाद-काल से — आधुनिकता का मशाल लेकर आगे आगे चलनेवाले निराला एक सच्चा प्रगतिशीलता

- -

1. Kierkegaard : The point of view for My work as an Author, trans- Walter Lowrie, New york, 1939, P-193

2. डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना-1, पृ० 424

प्रयोगशीलता तथा नयी कविता के प्रवर्तक सिद्ध हुए हैं। नयी पीढ़ी के कलाकारों के भी वे प्रेरणास्रोत हैं। मुक्तिबोध, धूमिल, नागार्जुन, शमशेर बहादुरसिंह, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे आधुनिकों का संबंध निराला से जोड़ा गया है। ''.....किसी की प्रशंसा में निराला से अधिक उन्मुक्तता प्रदर्शित कर देने पर फिर केवल लड़कर एक शब्द जोड़ने की भी गुंजाइश नहीं रह जाती।'' (1)

निराला अपने समय से काफी पचीस कदम आगे जीते थे और आधुनिकता के नये-नये द्वार खोल देते थे। आधुनिक हिन्दी काव्य को समृद्ध बनाने में यद्यपि अन्य कवियों का भी हाथ रहा है, निराला का योगदान सर्वाधिक मूल्यवान और मंगलमय है।

''आधुनिक हिन्दी कविता को अभी निराला से बड़ा कोई कवि नहीं मिला है।''(2) हिन्दी काव्य में नवयुग प्रवाह के अग्नि-वाही कविरूप निराला को पाना साहित्य-संसार के लिए सौभाग्य है। शक नहीं कि वे 'वसंत के अग्रदूत' हैं।(3)

- -

1. जानकी वल्लभ शास्त्री : निराला के पत्र, पृ0 2
2. जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला के पत्र, पृ0 2
3. अज्ञेय : स्मृतिलेखा, पृ0 74

परिशिष्ट - 1

आधारग्रंथ - सूची

आधार ग्रंथ –

1. निराला की मौलिक कृतियाँ : काव्य

1. अनामिका (प्रथम) नवजादिकलाल श्रीवास्तव, कलकत्ता 1923 ई0
2. परिमल, गंगापुस्तक माला, लखनऊ 1930 ई0
3. गीतिका, भारती भंडार, इलाहाबाद 1935 ई0
4. अनामिका (द्वितीय) भारती भंडार, इलाहाबाद 1937 ई0
5. तुलसीदास, भारती भंडार, इलाहाबाद 1937 ई0
6. कुकुरमुत्ता, युगमंदिर, उन्नाव 1942 ई0
7. अणिमा, युगमंदिर, उन्नाव 1943 ई0
8. बेला, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, इलाहाबाद 1943 ई0
9. नये पत्ते, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, इलाहाबाद 1946 ई0
10. अर्चना, कलामंदिर, प्रयाग 1950 ई0
11. आराधना, साहित्यकार संसद, प्रयाग 1953 ई0
12. गीतगुंज, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी 1954 ई0
13. सांध्यकाकली (मरणोपरान्त प्रकाशित) वसुमती, इलाहाबाद 1969 ई0

उपन्यास :–

1. अप्सरा : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ 1931 ई0
2. अलका : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ 1933 ई0
3. प्रभावती : सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ 1936 ई0
4. निरुपमा : भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद 1936 ई0
5. कुल्ली भाट : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ 1939 ई0

6. चमेली (अधूरा उपन्यास) 'रूपाभ', कालाकांकर 1939 ई०

7. बिल्लेसुर बकरिहा : युगमंदिर, उन्नाव 1942 ई०

8. चोटी की पकड़ : किताब महल, इलाहाबाद 1946 ई०

9. काले कारनामे : कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग 1950 ई०

10. इन्दुलेखा (अधूरा) अवन्तिका मासिक, दीपावली-अंक, पटना 1960 ई०

3. कहानी संग्रह :-

1. लिली : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ 1934 ई०

2. सखी : सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ 1935 ई०

3. सुकुल की बीवी : भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद 1941 ई०

4. चतुरी चमार : ('सखी' का नया नाम) किताब-महल, इलाहाबाद 1945 ई०

5. देवी : (विभिन्न पत्रों की चुनी हुई कहानियाँ) 1948 ई०

4. बाल-साहित्य :-

1. भक्त ध्रुव : रत्नाकर ग्रंथमाला-ग्यारहवाँ रत्न, दि पीपुलर ट्रेडिंग कंपनी, 115, हरिसन रोड, कलकत्ता 1926 ई०

2. भक्त प्रह्लाद : रत्नाकर ग्रंथमाला-बारहवाँ रत्न, दि पीपुलर ट्रेडिंग कंपनी, कलकत्ता 1926 ई०

3. भीष्म : रत्नाकर ग्रंथमाला-पन्द्रहवाँ रत्न, दि पीपुलर ट्रेडिंग कंपनी, कलकत्ता 1926 ई०

4. महाराणा प्रताप : रत्नाकर ग्रंथमाला-[illegible] रत्न, दि पीपुलर ट्रेडिंग कंपनी, कलकत्ता 1927 ई०

5. [illegible] कहानियाँ : ([illegible] प्रकाशित)

5. आलोचना - पुस्तकें :-

1. रवीन्द्र कविता कानन : शिवशंकर एण्ड को0 1, नारायण-दास लेन, कलकत्ता 1929 ई0
2. प्रबंध पद्म - गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ 1934 ई0
3. प्रबंध प्रतिमा - भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद 1940 ई0
4. चाबुक : कला मंदिर, दारागंज, इलाहाबाद 1941-42
5. पंतजी और पल्लव : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, इलाहाबाद 1949 ई0
6. चयन : कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी 1957 ई0
7. संग्रह : (मरणोपरांत प्रकाशित) निरुपमा प्रकाशन, 50, लहरारा बाग, प्रयाग 1963 ई0

6. पुराण कथाएँ :-

1. रामायण की अन्तर्कथाएँ (23 कथाएँ)
2. महाभारत।

7. भाषा संबंधी कृतियाँ :-

1. रस अलंकार
2. हिन्दी बंगला शिक्षा

8. विद्वानों द्वारा संपादित कृतियाँ :-

1. अपरा, संपा0 मंत्री, साहित्यकार संसद
2. कवि श्री निराला, संपा0 सियारामशरण गुप्त, निराला साहित्य सदन, झाँसी, प्रथमावृत्ति 2012 वि0
3. निराला ग्रंथावली-1, संपा0 ओंकार शरद, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ 2030 वि0

5. निराला ग्रंथावली-3, संपा० ओंकार शरद, प्रकाशन - 2030 वि०
केन्द्र, लखनऊ ।

6. निराला रचनावली-1, संपा० नंदकिशोर नवल,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली । 1983 ई०

7. निराला रचनावली-2, संपा० नंदकिशोर नवल,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली । ,,

8. निराला रचनावली-3, ,, ,,

9. निराला रचनावली-4, ,, ,,

10. निराला रचनावली-5, ,, ,,

11. निराला रचनावली-6, ,, ,,

12. निराला रचनावली-7, ,, ,,

13. निराला रचनावली-8, ,, ,,

9. अनूदित कविताएँ :

1. तुम (रजनी सेन) 2. गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को (स्वामी विवेकानंद) 3. तट पर (रवीन्द्र नाथ)

4. समाधि (विवेकानंद) 5 नाचे उस पर श्यामा (विवेकानंद)

6. शोक (रवीन्द्र नाथ) 7. कहाँ देता है (रवीन्द्र नाथ)

8. मेरी प्रार्थना (रवीन्द्रनाथ) 9. सखा के प्रति (विवेकानंद)

10. पद-1 (क), पद-1 (ख) (चंडीदास) 11. कवि गोविन्ददास की कुछ कविता (गोविंद दास) 12. सागर के वक्ष पर (विवेकानंद) 13. शिवसंगीत (विवेकानंद) 14. चौथी जुलाई के प्रति (विवेकानंद की अंग्रेज़ी कविता का अनुवाद) 15. काली - माता (विवेकानंद की अंग्रेज़ी कविता का अनुवाद) 16. रामायण - विनयपत्रिका (तुलसीदास)

10. अन्य अनूदित कृतियाँ :-

वैदिक साहित्य और वात्स्यायन कामसूत्र ; रामकृष्ण परमहंस साहित्य : परिव्राजक (जीवनी), रामकृष्ण वचनामृत ; विवेकानंद साहित्य : भारत में विवेकानंद ; बंकिम साहित्य : आनंद मठ, कपाल कुंडला, चन्द्रशेखर, दुर्गेशनंदिनी, कृष्णकांत का विल, युगलांगुरीय, रजनी, देवी चौधरानी, राधा रानी, विषवृक्ष और राजसिंह ।

परिशिष्ट - १

संदर्भग्रंथ - सूची

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिन्दी पुस्तकें :-

1. अंधा युग : धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1967
2. अकविता और कला संदर्भ : श्याम परमार, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, 1958.
3. अकेले कंठ की पुकार : अजित कुमार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1958.
4. अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य : संपा० कुमार विमल, पराग प्रकाशन, इलाहाबाद
5. अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन : नागार्जुन
6. अरी ओ करुणा प्रभामय : अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र०सं० 1959
7. अस्तित्ववाद : दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका : डॉ० लालचन्द्र गुप्त मंगल, अनुपम प्रकाशन, पटियाला, प्र०सं० 1977
8. अज्ञेय : सृजन और संघर्ष : रामकमल राय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1978
9. आँगन के पार द्वार : अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, द्वि० सं० 1969
10. आलोचना और समीक्षा : डॉ० संसार चन्द्र, आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली
11. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि : डॉ० रामदरश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1975
12. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'अज्ञेय', संपा० विद्यानिवास मिश्र, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6, 2022 वि०
13. आत्मजयी, कुँवर नारायण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1965

14. आत्मनिर्वासन, राजीव सक्सेना

15. आत्मनेपद, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1971

16. आधुनिक कवि -1, महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नवीं आवृत्ति, 1965

17. आधुनिक कवि-2, सुमित्रानंदन पंत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग छठा संस्करण, संवत् 2012

18. आधुनिक कविता : नये संदर्भ, डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1975

19. आधुनिक कविता और युगदृष्टि, शिवकुमार मिश्र

20. आधुनिक काव्य : रचना और विचार, नंददुलारे वाजपेयी, साकेत-प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, चतुर्थ संस्करण, 1966

21. आधुनिक काव्य की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ : डॉ0अवध सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 1975

22. आधुनिक काव्यधारा : डॉ0 केसरी नारायण शुक्ल, नंदकिशोर एण्ड-सन्स, वाराणसी, 1969

23. आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ : रूप मूल्यांकन, गणेश खरे, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र0सं0 1976

24. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, कुसुम चन्द राजपाल, दीपक-पब्लिशर्स, जालंधर, प्र0सं0 1972

25. आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह -लोकभारती-प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

26. आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ0 [illegible] गुप्त, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र0सं0 1976

27. आधुनिक बोध, डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर, पंजाबी पुस्तक भंडार दिल्ली

28. आधुनिक युग में धर्म, डॉ0 राधाकृष्णन

29. आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, नरेन्द्र मोहन, भारती
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1973

30. आधुनिकता और हिन्दी आलोचना, डॉ० इन्द्रनाथ मदान,
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1975

31. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, रमेश कुंतल मेघ, अक्षर-
प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1969

32. आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, गंगा प्रसाद विमल,
दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, प्र०सं० 1978

33. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ० नामवरसिंह, लोकभारती-
प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1964

34. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डॉ० नगेन्द्र नेशनल-
पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र०सं० 1979.

35. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, कैलाश वाजपेयी, आत्माराम-
एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6, प्र०सं० 1963

36. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, केदारनाथ अग्रवाल,
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971.

37. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प और शैली, रांगेय राघव

38. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम और सौंदर्य, डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल,
प्रथम संस्करण

39. आधुनिक हिन्दी साहित्य : अज्ञेय, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6

40. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० बच्चनसिंह, लोकभारती-
प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1978

41. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डॉ० कृष्णलाल हिन्दी परिषद,
प्रयाग विश्वविद्यालय, तृतीय संस्करण।

42. आलवाल, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971

43. आलोचना और आलोचना, डॉ० इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती-
प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1971

44. आलोचना तथा काव्य, डॉ० इन्द्रनाथ मदान, राजपाल एण्ड सन्ज़,
दिल्ली -6, प्र०सं०

45. इतिहास और आलोचना, डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन,
1978

46. इतिहास हन्ता, जगदीश चतुर्वेदी

47. इत्यलम्, अज्ञेय, प्रतीक प्रकाशन केन्द्र, दिल्ली, प्रथमावृत्ति, 1946

48. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ -
प्रकाशन, द्वि०सं० 1964

49. एक सूनी नाव, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अक्षर प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड,
दिल्ली-6, प्र०सं० 1966

50. ओ अप्रस्तुत मन, भारत भूषण अग्रवाल

51. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,
चतुर्थ संस्करण, 1971

52. कवि निराला, नंददुलारे वाजपेयी, वाणी वितान प्रकाशन,
वाराणसी, प्र०सं० 1965

53. कविता और कविता : संपा० इन्द्रनाथ मदान, साहित्य सहकार,
दिल्ली, द्वि० सं० 1979

54. कविताएँ - 1965, संकलन संपादन - अजित कुमार, तथा विश्वनाथ-
त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-7, 1968

55. कवितांतर, जगदीश गुप्त, प्रकाशन, प्र०सं० 1973

56. कविता के नये प्रतिमान, डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
द्वि० सं० 1974

57. कबीर का रहस्यवाद - डॉ० रामकुमार वर्मा

58. कबीर ग्रंथावली- श्याम सुंदर दास

59. कबीर ग्रंथावली- डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र, विनोद पुस्तक मन्दिर,
आगरा, द्वि० सं० [illegible]

60. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, अष्टम संस्करण, सं० 2010 वि०

61. कामायनी एक पुनर्विचार, गजानन माधव मुक्तिबोध

62. कामायनी का पुनर्मूल्यांकन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1970

63. काव्य और कला तथा अन्य निबंध : जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, सं० 2026 वि०

64. काव्य का देवता - निराला, विश्वंभर मानव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1964

65. काव्य के रूप, गुलाब राय, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 1964

66. काव्यपुरुष निराला : डॉ० जयनाथ नलिन, आशीष प्रकाशन, कानपुर, प्र०सं० 1970

67. काव्य शास्त्र : डॉ० भगीरथ मिश्र

68. कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, नया संस्करण, 1984

69. कुछ चंदन की कुछ कपूर की, विष्णुकांत शास्त्री, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1971

70. क्रांतिकारी कवि निराला, डॉ० बच्चन सिंह, नंदकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2100

71. गजानन माधव मुक्तिबोध, सं० लक्ष्मणदत्त गौतम, विद्यार्थी-प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1972

72. गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य, डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र, हिन्दी साहित्य-भंडार, प्र०सं० 1974

73. गीत भी अगीत भी, नीरज, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली प्र०सं० 1963

74. ग्राम्या - सुमित्रानंदन पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
सातवाँ संस्करण, 1967
75. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
प्र०सं० 1964
76. चिंतन के क्षण, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली-7, प्र०सं० 1965
77. चिंतामणि (भाग-2) रामचन्द्र शुक्ल
78. चिदंबरा, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, द्वि०सं० 1966
79. तीसरा सप्तक, संपा० अज्ञेय, सरस्वती विहार, नई दिल्ली,
प्र०सं० 1979
80. छायावाद, डॉ० नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
तृतीय आवृत्ति, 1979
81. छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत
82. छायावाद की प्रासंगिकता, रमेशचन्द्र शाह, राधाकृष्ण प्रकाशन,
दिल्ली - 19 73
83. छायावाद का पतन, डॉ० देवराज
84. छायावाद के आधार स्तंभ, गंगाप्रसाद पाण्डेय, संपा० रामजी पाण्डेय,
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971
85. छायावाद और रहस्यवाद, गंगाप्रसाद पाण्डेय, रामनारायण लाल,
इलाहाबाद, 1950
86. छायावाद काव्य तथा दर्शन, डॉ० हरनारायण सिंह, ग्रंथम,
कानपुर, 1964
87. छायावादयुग : डॉ० शंभुनाथ सिंह
88. झरना : जयशंकर प्रसाद, आठवाँ संस्करण
89. तारसप्तक, संपा० अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नईदिल्ली,
पंचम संस्करण, 1981
90. तारसप्तक प्रसंग- नेमिचन्द्र जैन

91. तारसप्तक के कवि : काव्य शिल्प के मान, कृष्णलाल, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1979

92. तीसरा सप्तक, संपा० अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 1959

93. दर्शन संग्रह, डॉ० दीवान चन्द, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1968

94. दिनकर के काव्य में परंपरा और आधुनिकता : डॉ० जयसिंह नीरद, अनुराधा प्रकाशन, मेरठ, प्र०सं० 1984

95. दूसरा सप्तक, संपा० अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, 1951

96. द्विवेदी काव्यमाला, महावीर प्रसाद द्विवेदी

97. नया काव्य नये मूल्य, ललित शुक्ल, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, द्वि०सं० 1979

98. नया सप्तक, संपा० डॉ० रामेशगुप्त तथा कमलकुमार चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982

99. नया साहित्य नये प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, तृतीयावृत्ति, 1963

100. नया हिन्दी काव्य, डॉ० शिवकुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962

101. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पु०सं० 1983

102. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, विश्वभारती - प्रकाशन, नागपुर, द्वि०सं० 1977

103. नयी कविता का स्वरूप, डॉ० श्यामसुन्दर घोष

104. नयी कविता की पहचान, डॉ० रवीन्द्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, पु०सं० 1980

105. नयी कविता के बाद, डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी, पुस्तक - संस्थान, कानपुर, 1974.

106. नयी कविता नये कवि, विश्वम्भर मानव

107. नयी कविता : सीमाएं और संभावनाएं, गिरिजाकुमार माथुर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, पु०सं० 1966

108. नयी कविता और अस्तित्ववाद, डॉ० रामविलास शर्मा

109. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद, संवत् 2014

110. नयी कविता और रस सिद्धांत, डॉ० सुंदरलाल कथूरिया,

111. नयी कविता : स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ, डॉ० विजय त्रिवेदी, प्रगति-प्रकाशन, आगरा-3, प्र०सं० 1979

112. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ० जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र०सं० 1969

113. नयी समीक्षा, अमृतराय, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस, प्र०सं० 1950

114. नये प्रतिमान, पुराने निकष, लक्ष्मीकांत वर्मा

115. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, राधाकृष्ण-प्रकाशन, दिल्ली-6, 1971

116. नवगीत दशक-2, संपा० शंभुनाथ सिंह, पराग प्रकाशन, दिल्ली-32 प्र०सं० 1983

117. नागार्जुन जीवन और साहित्य, डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट, [illegible] प्रकाशन, [illegible], प्र०सं० 1974

118. [illegible], गंगाप्रसाद पाण्डेय

119. निराला, डॉ० रामविलास शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, 1971

120. निराला, संपा० डॉ० इन्द्रनाथ मदान, भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

121. निराला अभिनंदन ग्रंथ

122. निराला : आत्महंता आस्था, दूधनाथ सिंह, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972

123. निराला काव्य : पुनर्मूल्यांकन, धनंजय वर्मा, विद्याप्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1973

124. निराला का काव्य, डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1974.

125 निराला की काव्य-साधना, वीणा शर्मा

126. निराला की साहित्य साधना -1, डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल-प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1971

127. निराला की साहित्य साधना-2, डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल-प्रकाशन, नई दिल्ली, 19 2

128. निराला की साहित्य साधना-3, डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976

129. निराला के पत्र : जानकी वल्लभ शास्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971

130. निराला ग्रंथावली-1, संपा० ओंकार शरद, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ प्र०सं० 2030

131. निराला रचनावली-1, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983

132. निराला रचनावली-2, संपा० नंदकिशोर नवल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983

133. निराला रचनावली-3, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983

134. निराला रचनावली-4, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983

135. निराला रचनावली -5, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983

136. निराला रचनावली-6, संपा० नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०सं० 1983

138. परिवेश और प्रतिक्रियाएँ - डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र०सं० 1972

139. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, [illegible] संस्करण, 1977

140. [illegible], [illegible]

141. पिघलते पत्थर, रांगेय राघव, भारती भवन, आगरा, 1946

142. प्यासा निर्झर, नरेन्द्र शर्मा

143. प्रगति और परंपरा, डॉ० रामविलास शर्मा

144. प्रगतिवाद, शिवकुमार मिश्र

145. प्रगतिवाद, एक समीक्षा, धर्मवीर भारती

146. प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन, हंसराज रहबर

147. प्रतिक्रियाएँ, डॉ देवराज, राजकमल, नई दिल्ली, 1966

148. प्रयोगवाद, नरेन्द्रवर्मा, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1964

149. प्रयोगवाद और नयी कविता, डॉ० शंभुनाथ सिंह, समकालीन प्रकाशन, वाराणसी, 1966

150. प्रयोगवादी काव्य धारा, डॉ० रामशंकर तिवारी, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र०सं० संवत् 2021, (1964)

151. प्रसाद काव्यकोश, सं० सुधाकर पाण्डेय, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण

152. प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

153. बदलते भाव उभरती धार, जगदीश चतुर्वेदी, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण 1980

154. भग्नदूत : अज्ञेय, हिन्दी भवन, लाहौर, प्र०सं० 1933

155. भारत में [illegible], जवाहरलाल नेहरू

156. भारतीय साहित्यकोश, संपा० डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र०सं० 1981

157. भाषा युगबोध और कविता, डॉ० रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन,

158. मंजीर, गिरिजाकुमार माथुर
159. मध्यकालीन हिन्दी सगुण काव्य के ऐतिहासिक दार्शनिक प्रेरणा स्रोत, अप्रकाशित शोध प्रबंध, डॉ॰ रामचन्द्र देव
160. महाकवि निराला-1, जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला निकेतन, मुजफ्फरपुर, प्र॰सं॰ 1963
161. महाकवि निराला : काव्य कला और कृतियाँ, डॉ॰ विश्वंभर नाथ उपाध्याय
162. महाप्राण निराला, गंगाप्रसाद पाण्डेय, साहित्यकार संसद, प्रयाग, संवत् 2006
163. महीयसी महादेवी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र॰सं॰ 1969
164. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता, डॉ॰ कलाराम शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र॰सं॰ 1980
165. मार्क्सवादी साहित्यचिंतन : इतिहास तथा सिद्धांत, डॉ॰ शिवकुमार मिश्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्र॰सं॰ 1973
166. मुकुटधर पाण्डेय, नंदकिशोर तिवारी
167. यामा, महादेवी वर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, सं॰ 2018
168. युगपथ, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि॰सं॰ 1964
169. युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, 1939
170. युगांत, सुमित्रानंदन पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 1982
171. युगस्रष्टा निराला, गंगाधर मिश्र, 1967
172. रहस्यवाद और हिन्दी कविता, गुलाबराय, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्र॰सं॰ संवत् 2013

173. रीति और शैली, नंददुलारे वाजपेयी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1971
174. लहर, जयशंकर प्रसाद
175. लाल निशान, नरेन्द्र शर्मा
176. लोकायतन, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1964
177. विचार और अनुभूति, डॉ० नगेन्द्र
178. विचार और विवेचन, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई-दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1974
179. विमर्श के क्षण, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र०सं० 1979
180. वृन्त और विकास, शांतिप्रिय द्विवेदी
181. शिप्रा, जानकी वल्लभ शास्त्री
182. शिलापंख चमकीले, गिरिजाकुमार माथुर
183. शुद्ध कविता की खोज, डॉ० रामधारी सिंह दिनकर, प्रथम संस्करण
184. शैली और सिद्धांत, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
185. श्री रामचरित मानस, गो० तुलसीदास, टीकाकार के देवनारायण द्विवेदी, गंगापुस्तकालय, बनारस प्रथम संस्करण
186. संतुलन, प्रभाकर माचवे, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1954
187. संसद से सड़क तक, धूमिल
188. सतरंगे पंखोंवाली, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1984
189. समकालीन कविता का व्याकरण, परमानंद श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1980
190. समकालीन साहित्य : एक नई दृष्टि, डॉ० इन्द्रनाथ मदान, लिपि-प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं० 1977
191. समकालीन सिद्धान्त और साहित्य, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, दिल्ली, 1976
192. [illegible], संपा० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० माहेश्वरी सिंह महेश

193. सात गीत वर्ष : धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वि.सं. 1964

194. सामधेनी : डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर

195. साहित्य की चेतना, पं. विद्यानिवास मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, जबलपुर, प्र.सं. 1967

196. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966

197. साहित्य की समस्याएँ, शिवदानसिंह चौहान, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1959

198. साहित्य : नया और पुराना, विनयमोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1972

199. साहित्य-सहचर, डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, द्वि.सं. 1968

200. साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन, डॉ0 रामविलास शर्मा, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1968

201. सुमित्रानंदन पंत, डॉ0 नगेन्द्र, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, नवम संस्करण, संवत् 2016

202. सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1980

203. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : डी.के. बेलिय, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1982

204. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : श्यामसुंदर घोष, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, प्र.सं. 1976

205. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास, स्तालिन

206. स्मृतियाँ और कृतियाँ, शांतिप्रिय द्विवेदी

207. स्मृतिलेखा, अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं. 1982

208. हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, 1949

209. हिन्दी कविता : तीन दशक, डॉ0 रामदरश मिश्र, ज्ञानभारती प्रकाशन,
[illegible]

210. हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र०सं० 2011 वि०

211. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1979

212. हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

213. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1967

214. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ग्यारहवाँ संस्करण, सं०2019 वि०

215. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1983

216. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, जयकिशन प्रसाद, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1956

217. हिन्दी साहित्य की नवीन विधाएँ, कैलाशचन्द्र भाटिया

218. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, नंददुलारे वाजपेयी,

219. हिन्दी साहित्य : विविध प्रसंग, महेन्द्र शुक्ल, सर्वोदय प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1974

220. हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, द्वि० संस्करण, संवत् 2013

221. नवीन का काव्य: बालकृष्ण शर्मा नवीन

222. प्रलय सृजन : शिवमंगल सिंह सुमन

223. मार्क्सवादी दर्शन : वि० अफानास्येव, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तृ०सं० 1977

224. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, डॉ० बेचन

225. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1970

226 मिट्टी की ओर : डॉ० रामधारी सिंह दिनकर

227 मार्क्सवाद और हिन्दी साहित्य, डॉ० रामविलास शर्मा

ENGLISH BOOKS

1. Collected works : V.I. Lenin, Vol. 38
2. Discovering Poetry : Elizabeth Drew, Oxford University Press, Lond
3. Encyclopaedia Britanica Vol.4. London, Britanica Ltd., 1964.
4. History of English Literature : Contemporary Literature- 1880 - 1960 Vol. VI, 1961
5. Illusion and Reality : Christopher Caudwell, People's - Publishing House Ltd., Bombay, First Indian Edition, 1947
6. Indian Poetry Today, Vol. II, Indian Council for Cultural relations, New Delhi, Ed. by. Ashok Vajpayee.
7. Introduction to comparative Mysticism, Jacques De Marque
8. Existentialism, John Macquarrie, Penguin Books, Newyork, 1982
9. The Language of poetry : Robert Miller and Ian Currie, Heinemann Educational Books Ltd., London , First published 1970.
10. Literature and Science, Aldous Huxley, Chatto & Windus, London, 1963.
11. Modern and Otherwise, Sisir Kumar Ghosh.
12. Modern Hindi Literature : A critical analysis, The Minerva Book shop, Lahore, 1939.
13. Mysticism in World religion: Sidney spencer, pelican books, Great Britain, 1963.
14. New horizons in Creative thinking : R.M. Micheever.

15. On Literature and Art : Marx Engels, Progress publishers, Moscow, 1976.

16. Personality Theories : guides to living, Nicholas.S. DiCaprio, W.B. Saunders Company, Philadelbphia, 1974.

17. Poets on Ezra pound.

18. Poets on poetry : Aiken – Conrad Potter

19. Poetical works of percy Bysshe Shelley, Ed. by Edward Dowden, Macmillan & Co. Ltd., London, 1913.

20. Poetic Truth Robin Skelton, Heinemann, London, First published 1978.

21. Romanticism, Abercrombie Lascelles

22. Science and English poetry, Bush

23. Short History of American Literature, G.M. Onions

24. The Bharatendu : His life and times, Madan Gopal, Sagar Publications, New Delhi, first published 1976.

25. The criticism of poetry. S.H. Burton, Second Edition.

26. The Encyclopaedia Americana, Vol. 19, Americana - Corporation, New york, International Edition, 1974.

27. The Encyclopaedia Americana Vol.23, First published in 1829.

28. The History of philosophy, Will Durant.

29. The Inner Journey of the poet, Kathleene Raine, George Allen & Unwin, London, First Published 1982.

30. The Macmillan Encyclopaedia, Macmillan, London, First edition, 1981.

31. The Myth of Sisyphus, Albert Camus trans. Justin O'Brien,

32. The New College Encyclopaedia, Galahabad Books, Newyork, 1978

33. The point of View for my work as an author-Kirkegaard, trans. Walter

34. The shorter Oxford English Dictionary, Oxford, 1950.

35. The poetic Image: C.Day Lewis, Jonathan Cape, London, Seventh Impression 1953.

36. The Romantic Imagination, C.M. Bowra.

37. The Waste land, T.S.Eliot, Ed.by Valeria, Faber and Faber, London, 1972.

38. Yhoughts on Indian Mysticism, Patanjali

39. Tradition & Experiment in English poetry : Philip Hobsbaum, 1979.

40. Walt Whitman: The critical Heritage, Ed.Milton-Hindus, Routledge & Kegan Paul, London, 1971.

41. Western Influence in Bengali Literature, Priya Ranjan Sen.

42. Wordsworth & Coleridge : Lyrical Ballads, Ed.by Little-dale Oxford University Press, London, 1798.

43. Literature and Life: Maxim Gorkey

44. Life and work of Walt Whitman: A Soviet View, Progress Publishers, Moscow, 1976.

III. MALAYALAM BOOKS.

1. Irupatham Noottantinte Ithihasam (Poetry Collection) Akkitham, Sahithya Parishad, Ernakulam, 1988.

2. Bhasha Sahithi, Kerala Viswavidyalaya Prakashan, 1982.

4. पत्र - पत्रिकाएँ :-

1. अवन्तिका, जनवरी 1954
2. अवन्तिका, काव्यालोचनांक
3. आलोचना, अप्रैल, 1952
4. आलोचना - 14
5. कल्पना, अगस्त, 1953
6. कल्पना, नवंबर 1956
7. कल्पना, फरवरी 1968
8. [illegible], कलकत्ता, दिसंबर 1966
9. क ख ग (त्रैमासिक) जनवरी 1969
10. जनयुग, 4 जनवरी 1968
11. ज्ञानोदय, जनवरी 1967
12. ज्ञानोदय, अप्रैल 1967
13. नया साहित्य-3, जन प्रकाशन गृह, बंबई, 1945-46
14. नया साहित्य, संपा० विश्वनाथ, भारतीय संस्कृति [illegible], अक्टूबर, 1983.
15. नया साहित्य - अंक-1, 1946
16. नयी कविता अंक-1, सम्पादक : डॉ० जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी, कविता प्रकाशन, प्रयाग, 1954
17. नयी कविता अंक-2
18. नयी कविता, अंक-3
19. नयी कविता, अंक-4
20. नयी कविता, अंक-5, 6
21. नयी कविता, अंक -7

22. निकष - 3, 4, संपा० धर्मवीर भारती तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा, जनवरी 1956

23. रूपाभ, संपा० सुमित्रानंदन पंत, वर्ष - 1, अंक - 1, जुलाई 1938

24. [illegible] - 7

25. [illegible] पीढ़ी - 6

26. संस्कृति - 13

27. सुधा मासिक पत्रिका, जुलाई 1930

28. सुधा, सितंबर 1932

29. सुधा, जनवरी 1933

30. हंस, अगस्त 1947

31. London Magazine, New Series, April/May 1974, Vol.19/ Number 182 Ed. by Alan Ross

32. London Magazine, May 1956.

....